पं० अम्बिका दत्त व्यास

(एक अध्ययन)

डॉ० कृष्ण कुमार

प्रकाश बुक डिपो
बड़ा बाजार, बरेली।

पं० अम्बिकादत्त व्यास–एक अध्ययन

लेखक की अन्य प्रकाशित रचनायें—

भारतीय संस्कृति के आधार तत्व
अलंकार शास्त्र का इतिहास
संस्कृत साहित्य का इतिहास
वैदिक साहित्य का इतिहास
ऋक्सूक्त संग्रह
ऋक्सूक्त सुधाकर
चतुर्वेद सूक्त सुधाकर
वैदिक सूक्त संग्रह
ध्वन्यालोक–व्याख्या
अभिज्ञानशाकुन्तल व्याख्या
प्रियदर्शिका व्याख्या
हर्षचरितम्—पंचम उच्छ्वास–व्याख्या
रघुवंश—द्वितीय सर्ग-व्याख्या
रघुवंश—त्रयोदश सर्ग–व्याख्या
किरातार्जुनीयम्—प्रथम सर्ग–व्याख्या
उदयनचरितम्
संस्कृत–नाटक–सूक्तितरंगिणी
पोषण के लिये विटामिन और खनिज
गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ
गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख
विष विज्ञान
प्राचीन कथायें

पं० अम्बिकादत्त व्यास—एक अध्ययन

डा० कृष्णकुमार
एम.ए., साहित्याचार्य, पी-एच.डी.,डी.लिट्.
विभागाध्यक्ष संस्कृत
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (गढ़वाल)

प्रकाश बुक डिपो
बड़ा बाजार, बरेली—२४३ ००३

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
पुस्तकालय

द्वितीय संस्करण १९८२

मूल्य साठ रुपये (६०-००)

सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

प्रकाशन : **प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली।**

मुद्रण : मूना मुद्रण एवं प्रकाशन केन्द्र, बरेली।

निवेदन

पाश्चात्य संस्कृति और साहित्य का सम्पर्क भारतवर्ष की प्रायः सभी भाषाओं के लिये लाभप्रद सिद्ध हुआ। केवल आधुनिक भारतीय भाषा ही नहीं, अपितु प्राचीन संस्कृत भाषा और उसका साहित्य भी इनसे प्रभावित हुये। पाश्चात्य प्रभाव से संस्कृत भाषा के साहित्य में आधुनिक प्रवृत्तियों का समावेश हुआ एवं उसमें वैज्ञानिक बुद्धि, यथार्थवादी प्रवृत्ति और राष्ट्रीय तथा जातीय गौरव की अभिवृद्धि करने वाले तत्वों का सचार हुआ। पाश्चात्य प्रभाव का यह संस्पर्श उत्तर भारत के साहित्य में उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से दृष्टिगोचर होता है। बंगला एवं हिन्दी के अनेक लेखकों और कवियों में यह प्रवृत्ति उनकी रचनाओं के माध्यम से परिलक्षित हुई है। हिन्दी के भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, श्रीनिवासदास, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास आदि की रचनाओं में हम इन नवीन प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति का दर्शन करते हैं। व्यास जी ने हिन्दी और संस्कृत में अनेक कृतियों की रचना की जिनमें नवयुग का संस्पर्श न केवल रचना शैली की दृष्टि से, अपितु भावों की अभिव्यक्ति एवं उद्देश्य की दृष्टि से भी है।

पाश्चात्य साहित्य के संस्पर्श का प्रभाव भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक तो नवीन विचारधारा के ग्रहण और दूसरे नवीन साहित्यिक विधाओं के प्रयोग की दृष्टि से द्रष्टव्य है। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से प्रथम बंगला भाषा में और तदनन्तर अन्य भारतीय भाषाओं में उपन्यास नामक एक नवीन और रोचक साहित्यिक विधा का प्रादुर्भाव हुआ। पहले साहित्य के सृजन के लिए पद्य का उपयोग अधिक किया जाता था, गद्य का कम। 'गद्य' कवीनां निकषं वदन्ति' इस लोकोक्ति के प्रसिद्ध होने पर भी काव्यों के निर्माण में गद्यरचना की अपेक्षा पद्यरचना का प्राधान्य रहा। परन्तु उपन्यास नामक विधा के प्रचलित होने पर अन्य भारतीय भाषाओं के साथ ही संस्कृत में गद्य लिखने का प्रचार हुआ और व्यास जी कवित्व के गद्यरचना रूप निकर्ष पर खरे उतरे। आपने अंग्रेजी साहित्य की उपन्यास विधा को अंगीकार करके 'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की। परन्तु व्यास जी की प्रतिभा ने यहीं पर विश्राम नहीं लिया। आपने अपनी संस्कृत रचनाओं के लिये

इस उपन्यास विधा के साथ ही रूपक, निबन्ध, दार्शनिक साहित्य, बालोपयोगी साहित्य आदि विविध साहित्यिक विधाओं की रचना करके देवी सरस्वती की आराधना की। इस प्रकार संस्कृत साहित्य के आधुनिक निर्माताओं में व्यास जी का स्थान अनुपम है।

संस्कृत साहित्य में अनुसन्धान का कार्य व्यापक रूप से हुआ है और हो रहा है। किन्तु यह कार्य प्रायः प्राचीन कवियों और आचार्यों की रचनाओं के आधार पर है। आधुनिक युग के संस्कृत कवियों और उनकी रचनाओं के अनुसंधानात्मक अध्ययन की ओर अभी तक आलोचकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया था। संस्कृत साहित्य की श्रीवृद्धि में आधुनिक कवियों का योगदान कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन कवियों में व्यास जी का स्थान महत्वपूर्ण है। यद्यपि व्यास जी की रचनाओं की ओर विद्वानों की दृष्टि आकर्षित तो हुई थी, तथापि यह दृष्टि इतनी क्षीण थी कि न तो व्यास जी का वास्तविक महत्व स्पष्ट हो पाया और नाहीं उनकी रचनाओं की व्यवस्थित और सांगोपांग आलोचना हुई। यद्यपि व्यास जी की कुछ पुस्तकें, जिनमें 'शिवराजविजय' मुख्य है, अनेक विश्वविद्यालयों में निर्धारित रही है, तो भी आलोचकों ने उनके विस्तृत आलोचनात्मक अध्ययन की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया।

प्रस्तुत प्रबन्ध में व्यास जी की संस्कृत रचनाओं का विस्तृत अध्ययन किया गया है। परन्तु व्यास जी ने न केवल संस्कृत भाषा में ही, अपितु हिन्दी भाषा में भी अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि के साथ साथ आधुनिक हिन्दी के निर्माताओं में उनका नाम भी आदर के साथ लिया जाता है। प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्त में परिशिष्ट में उनकी हिन्दी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। व्यास जी की हिन्दी रचनाओं के महत्व को समझने के लिये एक स्वतन्त्र शोध प्रबन्ध लिखे जाने की आवश्यकता है।

इस प्रबन्ध के लिखने में मुझे गुरुजनों के जो परामर्श और निर्देश प्राप्त हुये, उनके लिए मैं उनका अत्यधिक आभारी हूं। अपने निर्देशक श्री कुन्दनलाल शर्मा अध्यक्ष संस्कृत विभाग, सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर का मैं अत्यन्त उपकृत हूँ, जिन्होंने अत्यधिक कार्यव्यस्त होते हुये भी मेरा पथप्रदर्शन किया और यत्र-तत्र संशोधन और संवर्धन करने की कृपा की। गुरुवर डा० गोविन्द त्रिगुणायत का भी मैं चिर-ऋणी हूँ, जिन्होंने मेरे प्रति कृपा भाव रखते हुए प्रबन्ध के लिखने में निर्देश देने की कृपा की। इस प्रबन्ध को पूरा करने के लिए मुझे जिन सज्जनों की सहायता प्राप्त हुई, उनके प्रति आभार प्रकट न करना अकृतज्ञता होगी। व्यास जी के पौत्र श्री कृष्णकुमार व्यास की सदाशयता का मैं कभी विस्मरण नहीं कर सकता, जिनकी कृपा से मुझे व्यास जी की अनेक रचनाओं और उनके सम्बन्ध में सूचनाओं की प्राप्ति हो सकी। सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर के पुस्तकालय के अतिरिक्त

काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी; हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी और गुरुकुल विश्वविद्यालय, हरिद्वार के पुस्तकालयों से भी मुझको अमूल्य सहायता प्राप्त हुई थी।

इस प्रबन्ध में अनेक गुणों के साथ साथ कुछ दोष भी हो सकते हैं। इसमें जो भी गुण हैं वे गुरुजनों की कृपा के कारण हैं और दोष मेरी अल्पज्ञता के सूचक है। तथापि जिस प्रकार सामान्य नदियों का जल भागीरथी के जल से मिल कर पवित्र हो जाता है, उसी प्रकार गुरुजनों के सम्पर्क से मेरे दोष भी गुणों में परिवर्तित हो सके होंगे। इस प्रबन्ध का विद्वान् समालोचकों द्वारा समादर किया जाना ही मेरे परिश्रम का वास्तविक मूल्य होगा।

विनीत

कृष्णकुमार

विषय-सूची

प्रथम अध्याय— (विषय प्रवेश) पृष्ठ १—३६

१. व्यास जी के अध्ययन की आवश्यकता

२. सांस्कृतिक पृष्ठभूमि :—राजनीतिक स्थिति - धार्मिक जागरण - सामाजिक सुधार - शैक्षणिक प्रगति - साहित्यिक प्रवृत्तियां - संस्कृत का अध्ययन

३. जीवनवृत्त :—वंशपरिचय - व्यास जी के पिता - व्यास जी का जन्म - बाल्यकाल और शिक्षा - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से सम्पर्क - सुकवि पद प्राप्ति-शिक्षा में प्रगति-व्यास पद की प्राप्ति - लेखनकार्य का प्रारम्भ - माता पिता का निधन - उच्च उपाधियां प्राप्त करने के लिए उद्योग - ऋषि दयानन्द से सम्पर्क - घटिकाशतक उपाधि की प्राप्ति - बल्लभ सम्प्रदाय से सम्पर्क और कलकत्ता की यात्रा –पत्रिका का प्रकाशन - अध्यापन और लेखन कार्य में प्रगति -संस्कृतप्रसार के लिये उद्योग और मुजफ्फरपुर को स्थानान्तरण-सुधारों का विरोध और धर्म-प्रचार - सन्तानप्राप्ति - धर्मप्रचार के लिये यात्रायें - भागलपुर में नियुक्ति - शिवराजविजय की रचना - अन्य रचनायें - छपरा को स्थानान्तरण - रुग्णता और निधन - श्रद्धाञ्जलियां – व्यास जी के अनन्तर उनके साहित्य की अवस्था

४. व्यक्तित्व और कृतियां

द्वितीय अध्याय— (शिवराजविजय - १) पृष्ठ ३७-५३

संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा में एक नवीन प्रयोग

१. गद्यकाव्य का शास्त्रीय विवेचन तथा व्यास जी की देन

२. व्यास जी का नवीन प्रयोग और उसकी प्रेरणायें

३. प्रयोग के रूप में इस काव्य की विशेषतायें:— कथानक - पात्र - संवाद - देश-काल - रचनाशैली - उद्देश्य

४. शिवराजविजय और शिवविजय

तृतीय अध्याय—(शिवराजविजय - २) पृष्ठ ५४-१०२

कथावस्तु

१. ऐतिहासिक उपन्यास :—इतिहास का स्वरूप - उपन्यास का स्वरूप - ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप – इतिहास और कल्पना की विभाजक रेखा – ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य

२. कथानक

३. कथावस्तु का संगठन :— कथावस्तु का प्रकार - आधिकारिक तथा प्रासंगिक

इतिवृत्त - अर्थप्रकृतियां (बीज - बिन्दु - पताका - प्रकरी - कार्य) - कार्यावस्थायें (आरम्भ - यत्न - प्राप्त्याशा - नियताप्ति - फलागम) - सन्धियां (मुख - प्रतिमुख - गर्भ - अवमर्श - उपसंहृति) - कथानक की घटनाओं का संघटन - कथा कहने का ढंग - कथा का प्रारम्भ, चरमोत्कर्ष और अन्त

४. शिवराजविजय के कथानक के स्रोत :– ऐतिहासिक स्रोत - काल्पनिक स्रोत (बंगला उपन्यास और निजी कल्पनायें)

चतुर्थ अध्याय— (शिवराजविजय -३) पृष्ठ १०३—१३७

चरितचित्रण

१. पात्र और चरितचित्रण :—पात्र - चरित्र - चित्रणविधि - आदर्श और यथार्थता

२. ऐतिहासिक काव्यों में चरितचित्रण

३. शिवराजविजय के चरितचित्रण की विशेषतायें

४. शिवराजविजय के पात्रों का वर्गीकरण

५. शिवाजी का चरित्र

६. शिवाजी के सहायकों का चरित्र :— रघुवीरसिंह - गौरसिंह - श्यामसिंह - वीरेन्द्रसिंह - माल्यश्रीक - मुरेश्वर - क्रूरसिंह - देवशर्मा - गणेशशास्त्री - अन्य सहायक

७. शिवाजी के विरोधियों का चरित्र (मुसलमान) :—औरंगजेब - शाइस्ताखां - चांदखां - मोअज्जम - अफजलखां

८. शिवाजी के विरोधियों का चरित्र (हिन्दू) :—यशवन्तसिंह - जयसिंह - रामसिंह

९. नारीचरित :—रोशनआरा - रोशनआरा की सखी - सौवर्णी - सौवर्णी की सखियां

१०. अन्य चरित :—योगिराज - यवनयुवक - गोपीनाथ - हनूमत्पूजक - भूषणकवि - रहमतखां - मौलवी

पंचम अध्याय— (शिवराजविजय - ४) पृष्ठ १३८-१८२

संवाद-देशकाल-उद्देश्य

१. संवाद

२. शिवराजविजय में संवादों का महत्व

३. शिवराजविजय के संवादों की विशेषतायें :—स्वाभाविकता - सार्थकता - नाटकीयता

४. शिवराजविजय के संवादों का वर्गीकरण :—देश, जाति और धर्म की गौरव-भावना को अभिव्यंजित करने वाले संवाद - क्रोधावेश अभिव्यक्त करने वाले

संवाद - प्रणयसंवाद - युवतीवार्तालाप - हास्यसंवाद - चाटुसंवाद - साधारण संवाद

५. देशकाल :—

(अ) कालयोजना

(ब) भौगोलिक विवरण :—विभिन्न राज्य - नगर और ग्राम - दुर्ग - पर्वत - नदियां - समुद्र

(स) राजनीतिक वातावरण :—शिवाजी द्वारा स्वाधीनता के प्रयत्न - मुसलिम अत्याचार - हिन्दुओं में एकता का अभाव - राजपूतों की राजनीति - औरंगजेब की राजनीति - शिवाजी और औरंगजेब की राजनीति की तुलना - आशा का संदेश

(द) रणनीति, सैन्ययोजना, युद्ध और शस्त्र

(इ) सामाजिक विचारधारा :— समाज का संगठन और वर्णाश्रम - धर्म, देवी-देवता और पूजा— लोकविश्वास - प्रणय और विवाह - खानपान - वस्त्राभूषण - उत्सव - शिक्षा और कला - क्रीडाविनोद - यातायात के साधन

(फ) प्रकृतिचित्रण :—देश - ग्राम्यप्रदेश - वन्य तथा पर्वतीय प्रदेश - आश्रम और मन्दिर - महासर - सरिता - वाटिका - काल का माहात्म्य - सूर्य - सूर्योदय - प्रातःसमीर - सूर्यास्त - संध्याकाल - चन्द्रोदय - रात्रि की निस्तब्धता - ग्रीष्म - वर्षा - शरद् - हेमन्त - शिशिर - वसन्त - अग्नि की प्रचण्डता - आंधी और वर्षा का ताण्डव - समुद्र का तूफान

६. उद्देश्य :—संस्कृत भाषा में उपन्यास की रचना - सनातन धर्म के रक्षक शिवाजी का वर्णन - हिन्दूधर्म पर होने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन और जातीय तथा राष्ट्रीय गौरव के उत्थान का प्रयत्न - सदुपदेश - आनन्द की प्राप्ति

षष्ठ अध्याय— (शिवराजविजय - ५) पृष्ठ १८३-२३३

शैली और रसाभिव्यक्ति

१. भाषा :—शब्दशक्तियां - अनुगुण शब्दों का प्रयोग - शब्दों का अक्षय भण्डार नवीन शब्दों का प्रयोग - लोकोक्तियां और मुहावरे - भाषा की सशक्तता - भाषागत दोष

२. गुण :—माधुर्य - ओजः - प्रसाद

३. रीति :—वैदर्भी - गौडी - पांचाली

४. अलंकार :—अनुप्रास - यमक - उपमा - उत्प्रेक्षा - रूपक - भ्रान्तिमान् अपह्नुति - अतिशयोक्ति - तुल्ययोगिता - प्रतिवस्तूपमा - निदर्शना - दृष्टान्त -

दीपक - व्यतिरेक - समासोक्ति - अप्रस्तुतप्रशंसा - पर्यायोक्त-परिकर -परिकरांकुर - विरोध - विभावना - विशेषोक्ति - असंगति - विषम - सम - अर्थान्तरन्यास - विकस्वर - संभावना - तद्गुण - अनुगुण – उल्लेख - स्वभावोक्ति - व्याजोक्ति - लोकोक्ति - सहोक्ति - भाविक - उदात्त - उदात्त (२) - समाधि - समुच्चय - अनुमान - हेतु - अलंकारसंसृष्टि - अलकारसंकर - अलंकारदोष

५. रसाभिव्यक्ति :—वीर - शृंगार - हास्य - करुण - रौद्र - भयानक - बीभत्स - अद्भुत - शान्त - भाव - रसाभास और भावाभास - भावशान्ति और भावोदय - भावशबलता

सप्तम अध्याय— (व्यास जी का नाट्यसाहित्य-१) पृष्ठ १२४-२७१

प्राक्कथन - कथावस्तु - चरितचित्रण

१. संस्कृत नाट्यपरम्परा :—नाट्य का उद्भव
२. संस्कृत रूपकों के विभिन्न प्रकार
३. व्यास जी के रूपक
४. व्यास जी के रूपकों के प्रकार
५. व्यास जी के रूपकों के अध्ययन की रूपरेखा

कथावस्तु

१. कथानक
२. कथानक का स्रोत
३. कथानक का प्रकार
४. अर्थप्रकृतियां —(बीज - बिन्दु – पताका - प्रकरी - कार्य)
५. कार्यावस्थायें —(आरम्भ - यत्न - प्राप्त्याशा - नियताप्ति - फलागम)
६. सन्धियां —(मुख - प्रतिमुख - गर्भ - अवमर्श - निर्वहण)
७. वस्तुसंगठन सौष्ठव
८. सामवतम् नामकरण का औचित्य

चरितचित्रण

१. नाटकीय चरितचित्रण की विशेषतायें
२. सामवतम् की पात्रयोजना
३. सामवतम् के पात्रों का चरितचित्रण :—सुमेधा - सामवान् - सारस्वत - वेदमित्र - राजा - अमात्य - राजपुरोहित - सीमन्तिनी का पुरोहित - वन्धुजीववसन्तक - कलि – दुर्वासा - भिक्षुक - ब्रह्मचारी - सामवती - मधुरवचना - देवी अम्बिका - इन्द्रवदना और मदालसा - यज्ञदत्त - सेनापति - सीमन्तिनी

अष्टम अध्याय —(व्यास जी का नाट्य साहित्य -२) पृष्ठ २७२-३१८

संवाद - देशकाल - अभिनय - उद्देश्य

१. संवाद :—संवादों का वर्गीकरण - नाटकीय संवादों की विशेषतायें - व्यास जी के रूपकों के संवादों की विशेषतायें

२. देशकाल :—

(क) काल तथा स्थान योजना :—कालयोजना - स्थानयोजना

(ख) स्थान वर्णन :—मिथिलादेश - विदर्भवन और तपोवन - राजप्रसाद - राजसभा

(ग सामाजिक व्यवस्था:– वर्णव्यवस्था - धार्मिक विश्वास - देवी देवता - लोकविश्वास - राजा का कर्त्तव्य - शिक्षा और शास्त्र - प्रणय और विवाह - उत्सव

(घ) प्रकृतिचित्रण :—वन की शोभा - मेघवर्णन - चन्द्रोदय - अर्धरात्रि - सूर्योदय

३. अभिनय :—

(क) अभिनेयता का शास्त्रीय दृष्टिकोण

(ख) व्यास जी के रूपकों की अभिनेयता :—रूपक का आकार और अंकों एवं दृश्यों का विभाजन - क्रिया व्यापार - वाचिक अभिनय - आंगिक अभिनय - आहार्य अभिनय - सात्विक अभिनय - वृत्तियां - दृश्ययोजना का औचित्य - रसनिष्पत्ति

(ग) सामवतम् नाटक की रंगमंचीय विशेषतायें

४. उद्देश्य :—भारतीय संस्कृति का प्राचीन आदर्श प्रस्तुत करना - सनातनधर्म का प्रचार करना - सदुपदेश प्रदान करना - मिथिलानरेश के राज्याभिषेकोत्सव के निमित्त नाटक की रचना करना - रसरूप आनन्द की प्राप्ति

नवम अध्याय —(व्यास जी का नाट्य साहित्य -३) पृष्ठ ३१९-३७१

रचनाशैली - रसाभिव्यक्ति

१. बाह्यविधान :—नान्दी - प्रस्तावना - अंक और दृश्य - अर्थोपक्षेपक - भरतवाक्य

२. आन्तरिक विधान :—

भाषा :—शब्दशक्तियों का उपयोग - अनुगुण शब्दों का प्रयोग - शब्द और ध्वनि वैशिष्ट्य - व्याकरण सम्बन्धी विशेषतायें - भाषा की सशक्तता - लोकोक्तियां - भाषागत दोष - पद्ययोजना - प्राकृत का प्रयोग

गुण:—माधुर्य - ओजः - प्रसाद

रीति :—पांचाली - गौडी - वैदर्भी

अलंकार :—अनुप्रास - यमक - वक्रोक्ति - शब्दश्लेष - उपमा - उत्प्रेक्षा - रूपक - प्रतीप - भ्रान्तिमान् - अपह्नुति - अतिशयोक्ति - तुल्ययोगिता - निदर्शना - दृष्टान्त - दीपक - व्यतिरेक समासोक्ति - अप्रस्तुत प्रशंसा - प्रस्तुतांकुर-परिकर - विरोध - अर्थश्लेष - असंगति - विषम - सम - एकावली - सार - यथासंख्या - परिसंख्य - अर्थापत्ति - काव्यलिंग - अर्थान्तरन्यास - संभावना - विकस्वर - लेश - मुद्रा - तद्गुण - उन्मीलित - स्वभा- वोक्ति - लोकोक्ति - उदात्त - अत्युक्ति - निरुक्ति - विधि - समाधि - समुच्चय - अनुमान - हेतु - संसृष्टि - सकर

३. रसाभिव्यक्ति :—शृंगार - अद्भुत - अन्य रस - भाव - रसाभास आदि

दशम अध्याय —(व्यास जी की अन्य संस्कृत रचनायें) पृष्ठ ३७२-३९८

सहस्रनामरामायणम् - सांख्यसागरसुधा - पातंजलप्रतिबिम्ब - दुःखद्रुमकुठार - अवतारमीमांसाकारिका - प्राकृतविचित्रशब्दार्थकोष - गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् - बालव्याकरणम् - संस्कृताभ्यासपुस्तकम् - कथाकुसुमम्.

उपसंहार पृष्ठ ३९९-४१६

परिशिष्ट — १ पृष्ठ ४१७-४४४

व्यास जी की हिन्दी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय :—

ललिता नाटिका - गोसंकट नाटक - भारतसौभाग्य - कलियुग और घी - मन की उमंग - सुकविसतई - पुष्पवर्षा - ईश्वरेच्छा - बिहारीविहार - धर्म की धूम - पावसपचासा - हो हो होरी - झूलनझमंक - आश्चर्यवृत्तान्त - स्वर्गसभा मूर्तिपूजा - अवतारमीमांसा - सांख्यतरंगिणी - तर्कसंग्रह भाषाटीका - चतुरंग चातुरी - तासकौतुकपचीसी - महातासकौतुकपचासा - गद्यकाव्यमीमांसा भाषाविभक्तिविलास - साहित्यनवनीत - संस्कृतसंजीवन - निजवृत्तान्त - क्षेत्रकौशल - कथाकुसुमकलिका - भाषाऋजुपाठ - अबोधनिवारण

परिशिष्ट—२ पृष्ठ ४४५-४४६

व्यास जी को प्राप्त होने वाले पदकों का विवरण

परिशिष्ट —३ पृष्ठ ४४७-४४८

व्यास जी की रचनायें

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में आलोचित व्यास जी की रचनायें पृष्ठ ४४९-४५०

सहायक पुस्तकें पृष्ठ ४५०-४५६

चित्रसूची—

१. पण्डित अम्बिकादत्त व्यास पृष्ठ १० के अनन्तर

२ पं० दुर्गादत्त की जन्मकुण्डली
३. कोष्ठक यन्त्र पृष्ठ १
४. शिवविजय नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का प्रथम पृष्ठ पृष्ठ १५
५. पुष्पवर्षा नामक काव्य में कनकाचलवासी खेचर नामक गन्धर्व की यात्रा का मार्ग पृ० ४८
पृ० ४२८

—०—

प्रथम अध्याय

विषय–प्रवेश

१. व्यास जी के अध्ययन की आवश्यकता—

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी बहुमुखी प्रतिभा से साहित्य के गगन को चमत्कृत करने वाले साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का महत्व संस्कृत काव्य-जगत् में अप्रतिम है। आपने संस्कृत साहित्य को अनेक विधाओं की मौलिक कृतियों द्वारा समृद्ध किया। हिन्दी साहित्य के निर्माण में भी आपका स्थान कम महत्व का नहीं है। आपका जन्म जयपुर नगर में हुआ और पालन-पोषण तथा शिक्षा भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र वाराणसी नगरी में। परिवार की परम्परागत प्रवृत्तियों से युक्त आपके साहित्यिक संस्कार वाराणसी के पवित्र एवं विद्वत्तापूर्ण वातावरण से सम्पुष्ट हुये। बाल्यकाल से ही पिता दुर्गादत्त से प्रोत्साहन प्राप्त कर आपने हिन्दी और संस्कृत में काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी। तत्कालीन कवि और विद्वान् आपकी इस प्रतिभा से प्रभावित हुये थे। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों और कठिनाइयों के होते हुये भी आपने उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न किया और निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न रहे। आपने विविध प्रकार की साहित्यिक रचनायें प्रस्तुत कीं। गद्यकाव्य (उपन्यास), पद्यकाव्य, दृश्यकाव्य, मुक्तक, लोकगीत, काव्यशास्त्र, दर्शन, कौतुक आदि विषयों पर मौलिक और उत्कृष्ट रचनाओं को उपस्थित करके आपने न केवल संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया, अपितु हिन्दी साहित्य की भी महती श्री वृद्धि की। यद्यपि आपका बयालीस वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया, तथापि छोटे से इस जीवन में आपने संस्कृत और हिन्दी का विशाल साहित्य भारतीय जनता को भेंट किया। यह साहित्य मात्रा की दृष्टि से ही नहीं, अपितु गुणों की दृष्टि से भी विशाल है।

व्यास जी की सबसे प्रमुख और प्रौढ़ रचना 'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास है जो उनको दण्डी, बाण आदि प्राचीन उच्च कोटि के गद्य काव्यकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है। इस रचना के द्वारा आपने संस्कृत गद्य को नवजीवन तो प्रदान किया ही, इस देवभाषा में एक नवीन साहित्यिक विधा का सूत्रपात भी किया। इस रचना द्वारा आपने सिद्ध किया कि संस्कृत कोई मृतभाषा नहीं, अपितु इसमें जीवन का सशक्त स्पन्दन है, जो अन्य भारतीय भाषाओं को भी जीवन प्रदान करने का सामर्थ्य रखता है। इस उपन्यास के

साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आपने प्राचीन शास्त्रीय आधार पर 'सामवतम्' नाटक की रचना करते हुये भी उसमें आधुनिक दृष्टिकोण का समावेश किया। उसे श्रेष्ठतम रंगमंच से सम्पन्न करके रागों, गीतों और नृत्यों की मधुरिमा से सम्भृत किया। इसके अतिरिक्त 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' के रूप में आपने नवीन नाट्यविधाओं की भी सृष्टि की। गद्यकाव्य के विषय में आपका नवीन दृष्टिकोण वस्तुतः अद्भुत है। इस प्रकार के प्रयत्न किसी भी साहित्य में नवजीवन का संचार करते हैं। केवल काव्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु दर्शन के क्षेत्र में भी आपने अनेक कृतियाँ प्रस्तुत कीं। संस्कृत के प्रचार के लिये आपने कुछ ऐसी प्रारम्भिक पुस्तकों का भी निर्माण किया जिनसे इस भाषा का ज्ञान सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

इतने विस्तृत, मौलिक, प्रतिभा–सम्पन्न और चमत्कारी साहित्य के रचयिता होते हुये भी व्यास जी की रचनाओं के प्रति आलोचकों का ध्यान अधिक आकृष्ट नहीं हुआ। आपकी 'शिवराजविजय' पुस्तक तो अवश्य ही कहीं-कहीं पाठ्यक्रमों में निर्धारित हुई, परन्तु अन्य रचनायें प्रायः अन्धकार के गर्त में पड़ी रहीं। वस्तुतः संस्कृत के अध्येताओं का ध्यान प्रायः प्राचीन कवियों की रचनाओं की ओर ही रहा, जिससे मध्यकाल और आधुनिक काल की उत्तम रचनाओं की ओर उपेक्षा की प्रवृत्ति रही। व्यास जी जैसे कवि का इस प्रकार से उपेक्षित होना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है।

२. साँस्कृतिक पृष्ठभूमि—

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म भारतीय इतिहास के उस युग में हुआ, जब कि भारत के साँस्कृतिक जीवन में नवीन क्रान्ति का प्रवेश हो चुका था। युग की परिस्थितियों का प्रभाव उस समय के कवियों की रचनाओं में परिलक्षित होता है, अतः उस युग की राजनीतिक स्थिति, धार्मिक जागरण, सामाजिक सुधार, शैक्षणिक प्रगति, साहित्यिक प्रवृतियाँ और संस्कृत के अध्ययन की स्थिति पर संक्षेप से विचार करना उपयुक्त है।

व्यास जी का जन्म १८५८ ई० में हुआ। सन् १७५७ से प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय और सन् १७६३ में बक्सर के संग्राम में मीरकासिम के पलायन के पश्चात् भारत के पूर्वी प्रान्तों में ब्रिटिश राज्य की नींव दृढ़ हो गई। धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारतवर्ष ईस्ट इन्डिया कम्पनी के आधीन हो गया। सन् १८५७ तक यह देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासनान्तर्गत हो चुका था। भारतीयों की स्वाधीनता के सभी प्रयत्न अंग्रेजों की कूटनीति और शक्ति द्वारा विफल कर दिये गये थे। स्वाधीनता प्राप्ति के लिये १८५७ ई० में किया गया महान् सैनिक संघर्ष अंग्रेजों

ने वेतनभोगी भारतीय सैनिकों और भारत में विद्यमान थोड़े से अंग्रेज सैनिकों द्वारा ही शान्त कर दिया था।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार होते रहे थे। हिन्दू बलपूर्वक इस्लाम में दीक्षित कर लिये जाते थे। मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया जाता था, धर्म-पुस्तकों को नष्ट कर दिया जाता था, हिन्दू स्त्रियों का सम्मान सुरक्षित नहीं था और हिन्दुओं को मुसलमान न होकर हिन्दू होने का एक विशेष कर जजिया, देना पड़ता था। हिन्दू जनता के शासन से निरपेक्ष रहने, और हिन्दू राजाओं तथा सरदारों में संगठन के अभाव के कारण भारत में हिन्दू स्वतन्त्रता के प्रयत्न प्रायः विफल होते रहे। जब अंग्रेज भारत में प्रबल हुये, उस समय मुसलमानी शासन शिथिल हो चुका था। जनता नित्यप्रति के युद्धों और पिण्डारियों, ठगों आदि के उपद्रवों से त्रस्त थी। अंग्रेजों के शासन, विशेष रूप से महारानी विक्टोरिया के शासन ने साधारण प्रजा में सुरक्षा की भावना उत्पन्न की। महारानी विक्टोरिया की घोषणा—"भारतीय राजाओं से की गई सन्धियों का पालन करते हुये उनके राज्य को ब्रिटिश राज्य में नहीं मिलाया जायेगा तथा महारानी की सरकार भारतीय प्रजा के धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी[१]"— ने भारतीय राजाओं को विश्वास में लेकर धर्मप्राण हिन्दू जनता के हृदय में राजभक्ति को जन्म दिया। उस समय के कवियों ने अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा में गीतों की रचना की,[२] परन्तु अंग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति कभी-कभी उनमें विक्षोभ भी उत्पन्न करती थी। राजभक्ति की इस भावना के वशीभूत होकर ही सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक नेता पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग न करके केवल शासन-तन्त्र और उच्च सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने लिये ही प्रस्ताव पास करते रहे।[३]

यूरोपीय सम्पर्क ने भारत में धार्मिक जागरण की भी भावना उत्पन्न की। अंग्रेजों के आगमन से भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और

---

१. भारतवर्ष के राजाओं, सरदारों और जनता के प्रति महारानी का घोषणा-पत्र। रेमजे म्योर कृत 'दि मैकिंग आफ ब्रिटिश इन्डिया' (१९२३ ई०) पृष्ठ ३८२-३८३।

२.
जासु राज सुख बस्यौं सदा भारत भय त्यागी।
जासु बुद्धि नित प्रजा पुंज रंजन महँ पागी॥
जो न प्रजा तिय दिसि सपनेहूँ चित चलावैं।
जो न प्रजा के धर्म हि हठ करि कबहुँ नसावैं॥
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'भारत-वीरत्व' से। पद संख्या १९-२०।

३. आर० सी० मजूमदार एण्ड अदर्स कृत 'एन एडवांस्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया' पृ० ८९३।

२ पं० दुर्गादत्त की जन्मकुण्डली पृष्ठ ११
३. कोष्ठक यन्त्र पृष्ठ १५
४. शिवविजय नामक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का प्रथम पृष्ठ पृ० ४८
५. पुष्पवर्षा नामक काव्य में कनकाचलवासी खेचर नामक गन्धर्व की यात्रा का मार्ग पृ० ४२८

प्रथम अध्याय

विषय–प्रवेश

१. व्यास जी के अध्ययन की आवश्यकता—

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अपनी बहुमुखी प्रतिभा से साहित्य के गगन को चमत्कृत करने वाले साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का महत्व संस्कृत काव्य-जगत् में अप्रतिम है। आपने संस्कृत साहित्य को अनेक विधाओं की मौलिक कृतियों द्वारा समृद्ध किया। हिन्दी साहित्य के निर्माण में भी आपका स्थान कम महत्व का नहीं है। आपका जन्म जयपुर नगर में हुआ और पालन-पोषण तथा शिक्षा भारतवर्ष के प्रसिद्ध विद्याकेन्द्र वाराणसी नगरी में। परिवार की परम्परागत प्रवृत्तियों से युक्त आपके साहित्यिक संस्कार वाराणसी के पवित्र एवं विद्वत्तापूर्ण वातावरण से सम्पुष्ट हुये। बाल्यकाल से ही पिता दुर्गादत्त से प्रोत्साहन प्राप्त कर आपने हिन्दी और संस्कृत में काव्य-रचना आरम्भ कर दी थी। तत्कालीन कवि और विद्वान् आपकी इस प्रतिभा से प्रभावित हुये थे। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों और कठिनाइयों के होते हुये भी आपने उच्च से उच्च शिक्षा प्राप्त करने का प्रयत्न किया और निरन्तर साहित्य-साधना में संलग्न रहे। आपने विविध प्रकार की साहित्यिक रचनायें प्रस्तुत कीं। गद्यकाव्य (उपन्यास), पद्यकाव्य, दृश्यकाव्य, मुक्तक, लोकगीत, काव्यशास्त्र, दर्शन, कौतुक आदि विषयों पर मौलिक और उत्कृष्ट रचनाओं को उपस्थित करके आपने न केवल संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया, अपितु हिन्दी साहित्य की भी महती श्री वृद्धि की। यद्यपि आपका बयालीस वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया, तथापि छोटे से इस जीवन में आपने संस्कृत और हिन्दी का विशाल साहित्य भारतीय जनता को भेंट किया। यह साहित्य मात्रा की दृष्टि से ही नहीं, अपितु गुणों की दृष्टि से भी विशाल है।

व्यास जी की सबसे प्रमुख और प्रौढ़ रचना 'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास है जो उनको दण्डी, बाण आदि प्राचीन उच्च कोटि के गद्य काव्यकारों की श्रेणी में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है। इस रचना के द्वारा आपने संस्कृत गद्य को नवजीवन तो प्रदान किया ही, इस देवभाषा में एक नवीन साहित्यिक विधा का सूत्र-पात भी किया। इस रचना द्वारा आपने सिद्ध किया कि संस्कृत कोई मृतभाषा नहीं, अपितु इसमें जीवन का सशक्त स्पन्दन है, जो अन्य भारतीय भाषाओं को भी जीवन प्रदान करने का सामर्थ्य रखता है। इस उपन्यास के अतिरिक्त आपका नाट्य-

साहित्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। आपने प्राचीन शास्त्रीय आधार पर 'सामवतम्' नाटक की रचना करते हुये भी उसमें आधुनिक दृष्टिकोण का समावेश किया। उसे श्रेष्ठतम रंगमंच से सम्पन्न करके रागों, गीतों और नृत्यों की मधुरिमा से सम्भृत किया। इसके अतिरिक्त 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' के रूप में आपने नवीन नाट्यविधाओं की भी सृष्टि की। गद्यकाव्य के विषय में आपका नवीन दृष्टिकोण वस्तुतः अद्भुत है। इस प्रकार के प्रयत्न किसी भी साहित्य में नवजीवन का संचार करते हैं। केवल काव्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु दर्शन के क्षेत्र में भी आपने अनेक कृतियाँ प्रस्तुत कीं। संस्कृत के प्रचार के लिये आपने कुछ ऐसी प्रारम्भिक पुस्तकों का भी निर्माण किया जिनसे इस भाषा का ज्ञान सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

इतने विस्तृत, मौलिक, प्रतिभा–सम्पन्न और चमत्कारी साहित्य के रचयिता होते हुये भी व्यास जी की रचनाओं के प्रति आलोचकों का ध्यान अधिक आकृष्ट नहीं हुआ। आपकी 'शिवराजविजय' पुस्तक तो अवश्य ही कहीं-कहीं पाठ्यक्रमों में निर्धारित हुई, परन्तु अन्य रचनायें प्रायः अन्धकार के गर्त में पड़ी रहीं। वस्तुतः संस्कृत के अध्येताओं का ध्यान प्रायः प्राचीन कवियों की रचनाओं की ओर ही रहा, जिससे मध्यकाल और आधुनिक काल की उत्तम रचनाओं की ओर उपेक्षा की प्रवृत्ति रही। व्यास जी जैसे कवि का इस प्रकार से उपेक्षित होना किसी भी अवस्था में उचित नहीं है।

२. साँस्कृतिक पृष्ठभूमि—

पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म भारतीय इतिहास के उस युग में हुआ, जब कि भारत के साँस्कृतिक जीवन में नवीन क्रान्ति का प्रवेश हो चुका था। युग की परिस्थितियों का प्रभाव उस समय के कवियों की रचनाओं में परिलक्षित होता है, अतः उस युग की राजनीतिक स्थिति, धार्मिक जागरण, सामाजिक सुधार, शैक्षणिक प्रगति, साहित्यिक प्रवृतियाँ और संस्कृत के अध्ययन की स्थिति पर संक्षेप से विचार करना उपयुक्त है।

व्यास जी का जन्म १८५८ ई० में हुआ। सन् १७५७ से प्लासी के युद्ध में सिराजुद्दौला की पराजय और सन् १७६३ में बक्सर के संग्राम में मीरकासिम के पलायन के पश्चात् भारत के पूर्वी प्रान्तों में ब्रिटिश राज्य की नींव दृढ़ हो गई। धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारतवर्ष ईस्ट इन्डिया कम्पनी के आधीन हो गया। सन् १८५७ तक यह देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश शासनान्तर्गत हो चुका था। भारतीयों की स्वाधीनता के सभी प्रयत्न अंग्रेजों की कूटनीति और शक्ति द्वारा विफल कर दिये गये थे। स्वाधीनता प्राप्ति के लिये १८५७ ई० में किया गया महान् सैनिक संघर्ष अंग्रेजों

ने वेतनभोगी भारतीय सैनिकों और भारत में विद्यमान थोड़े से अंग्रेज सैनिकों द्वारा ही शान्त कर दिया था।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व मुसलमानी राज्य में हिन्दुओं पर भयंकर अत्याचार होते रहे थे। हिन्दू बलपूर्वक इस्लाम में दीक्षित कर लिये जाते थे। मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिदों में परिवर्तित कर दिया जाता था, धर्म-पुस्तकों को नष्ट कर दिया जाता था, हिन्दू स्त्रियों का सम्मान सुरक्षित नहीं था और हिन्दुओं को मुसलमान न होकर हिन्दू होने का एक विशेष कर जजिया, देना पड़ता था। हिन्दू जनता के शासन से निरपेक्ष रहने, और हिन्दू राजाओं तथा सरदारों में संगठन के अभाव के कारण भारत में हिन्दू स्वतन्त्रता के प्रयत्न प्रायः विफल होते रहे। जब अंग्रेज भारत में प्रबल हुये, उस समय मुसलमानी शासन शिथिल हो चुका था। जनता नित्यप्रति के युद्धों और पिण्डारियों, ठगों आदि के उपद्रवों से त्रस्त थी। अंग्रेजों के शासन, विशेष रूप से महारानी विक्टोरिया के शासन ने साधारण प्रजा में सुरक्षा की भावना उत्पन्न की। महारानी विक्टोरिया की घोषणा–"भारतीय राजाओं से की गई सन्धियों का पालन करते हुये उनके राज्य को ब्रिटिश राज्य में नहीं मिलाया जायेगा तथा महारानी की सरकार भारतीय प्रजा के धार्मिक विश्वासों और अनुष्ठानों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगी[1]"– ने भारतीय राजाओं को विश्वास में लेकर धर्मप्राण हिन्दू जनता के हृदय में राजभक्ति को जन्म दिया। उस समय के कवियों ने अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा में गीतों की रचना की,[2] परन्तु अंग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति कभी-कभी उनमें विक्षोभ भी उत्पन्न करती थी। राजभक्ति की इस भावना के वशीभूत होकर ही सम्भवतः उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक नेता पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग न करके केवल शासन-तन्त्र और उच्च सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने लिये ही प्रस्ताव पास करते रहे।[3]

यूरोपीय सम्पर्क ने भारत में धार्मिक जागरण की भी भावना उत्पन्न की। अंग्रेजों के आगमन से भारत में ईसाई धर्म के प्रचार को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और

---

१. भारतवर्ष के राजाओं, सरदारों और जनता के प्रति महारानी का घोषणा-पत्र। रेमजे म्योर कृत 'दि मैकिंग आफ ब्रिटिश इन्डिया' (१६२३ ई०) पृष्ठ ३८२-३८३।

२.
जासु राज सुख बस्यौं सदा भारत भय त्यागी।
जासु बुद्धि नित प्रजा पुंज रंजन महँ पागी ॥
जो न प्रजा तिय दिसि सपनेहूँ चित चलावें।
जो न प्रजा के धर्म हि हठ करि कबहुँ नसावें ॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'भारत-वीरत्व' से। पद संख्या १९-२०।

३. आर० सी० मजूमदार एण्ड अदर्स कृत 'एन एडवांस्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया' पृ० ८९३।

हिन्दू जाति की आन्तरिक निर्बलता के कारण लाखों की संख्या में हिन्दुओं ने ईसाई धर्म स्वीकार किया।[१] अपने धर्म के खण्डन से व्याकुल भारतीय मनीषी हिन्दू धर्म के रक्षार्थ धार्मिक सुधारों के लिये प्रयत्नशील हुये। ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्य-समाज, रामकृष्णमिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी उस युग के मुख्य आन्दोलन थे। इन आन्दोलनों ने हिन्दू जनता को स्वर्णिम अतीत और वर्तमान की शोचनीय स्थिति का ज्ञान करा कर उज्ज्वल भविष्य के प्रति आशावान् बनाया। बंगाल में राजा राममोहन राय ने ईसाइयों के आक्षेपों का उत्तर देते हुये हिन्दू धर्म में आधुनिक अवस्थाओं के अनुकूल सुधार करने का प्रयत्न किया। १८२८ ई० में आपने ब्राह्म-समाज की स्थापना कलकत्ता में की। आप मूर्तिपूजा और आवागमन सिद्धान्त के विरोधी तथा एकेश्वर के मानने वाले थे। आप की प्रार्थनाओं में वेदों और उपनिषदों का पाठ होता था। १८३३ ई० में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में ब्राह्मसमाज के निश्चित नियम बने और वेदों को छोड़कर उपनिषदों के आधार पर समाज के सिद्धान्त निश्चित किये गये। अंग्रेजी शिक्षा-सम्पन्न और ईसाइयत से प्रभावित केशव-चन्द्रसेन ने, जो १८५७ में आये, प्राचीनतावादी महर्षि का विरोध करके पृथक् समाज की स्थापना की। इस प्रकार जिस ब्राह्मसमाज की स्थापना ईसाइयत से हिन्दू धर्म की रक्षा करने के लिये हुई थी, वह पूर्णतः ईसाइयत से प्रभावित हो गया। केशवचन्द्रसेन की १८६४ की बम्बई यात्रा के फलस्वरूप १८६७ में बम्बई में प्रार्थनासमाज स्थापित हुआ, पर यह आन्दोलन अधिक शक्तिशाली न हो सका।

धार्मिक आन्दोलनों में आर्यसमाज का स्थान प्रमुख है। सन् १८६० से १८६३ तक दण्डी स्वामी विरजानन्द से शिक्षा प्राप्त कर ऋषि दयानन्द ने हिन्दू धर्म के सुधार का बीड़ा उठाया। आप वेदों और वैदिक साहित्य को धर्म के विषय में प्रमाण मानते थे तथा मूर्तिपूजा एवं अवतारवाद का खण्डन करते हुये एक अनन्त, निराकार, सर्व-व्यापक ईश्वर की उपासना में विश्वास रखते थे। अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिये आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की, जिन में सत्यार्थप्रकाश मुख्य है। १८७३ ई० में आर्यसमाज की स्थापना करके आपने इस आन्दोलन को स्थायी रूप प्रदान किया।

थियोसोफिकल सोसाइटी की स्थापना अमेरिका में मैडम ब्लेवेट्स्की और कर्नल अल्काट ने १८७५ ई० में की थी। भारत में इसका प्रथम केन्द्र १८८६ ई० में अडयार में स्थापित हुआ। यहाँ एनीबिसेन्ट ने इस संस्था का कार्य मुख्य रूप से किया। इस संस्था ने हिन्दू दर्शन और आचारों के वैज्ञानिक स्वरूप का प्रतिपादन करके उनकी उपादेयता सिद्ध की। रामकृष्ण परमहंस ने वेदान्त दर्शन के आधार पर

१. कालीशंकर भटनागर कृत 'भारतीय संस्कृति का इतिहास' (१९५९ ई०) पृ० ४६४-४६५।

धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करके हिन्दू गौरव की रक्षा की। आपके शिष्य विवेकानन्द ने देश-विदेशों में उनके धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार किया।

उन्नीसवीं सदी के धार्मिक आन्दोलनों द्वारा सामाजिक सुधारों के भी प्रयत्न किये गये। कन्या-वध, बाल-वध, सतीप्रथा, बाल-विवाह, स्त्रियों की अशिक्षा, परदे की प्रथा, अस्पृश्यता, जाति-भेद आदि विनाशक प्रथायें हिन्दू समाज को पतन के गर्त में धकेल रही थीं। सतीप्रथा के दारुण दृश्यों से व्यथित हुये राजा राममोहन राय के प्रयत्नों से दिसम्बर १८२९ ई० में लार्ड विलियम बैंटिक ने इस प्रथा को कानून द्वारा अवैध और दण्डनीय निर्धारित किया। कुछ समय बाद बाल-वध भी कानून से बन्द कर दिया गया। हिन्दू स्त्रियों की स्थिति को ऊँचा उठाने और जातिप्रथा की संकीर्णता कम करने के लिये भी प्रयत्न किये गये। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्नों से १८५६ ई० में विधवा-विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान की गई। बाल-विवाह को कानून द्वारा निषिद्ध करने में समय लगा। इसके सम्बन्ध में प्रथम कानून १८९१ ई० में बनाया जा सका।

ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज आदि अनेक संस्थाओं ने सामाजिक सुधारों के जो प्रयत्न किये, उनमें एक ओर ब्राह्मसमाजियों ने मुख्यतः पश्चिमी प्रभाव से प्रेरणा ग्रहण की और दूसरी ओर आर्यसमाजियों ने अपनी ही संस्कृति और ग्रन्थों से नवस्फूर्ति प्राप्त की। ऋषि दयानन्द ने हिन्दू समाज की पुरानी रूढ़ियों पर प्रबल आघात किये, जिसके परिणामस्वरूप कालान्तर में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुद्धि-आन्दोलन का भी प्रादुर्भाव हुआ।

मुसलमानी शासन में अनेक हिन्दू राजनीतिक पराधीनता के साथ सांस्कृतिक रूप से भी पराधीन हो गये। उन्होंने दैनिक जीवन में मुसलमानी रीति-रिवाज अपना लिये थे।[१] इसी प्रकार अंग्रेजों के सम्पर्क और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से अनेक भारतीयों ने अंग्रेजियत अपना ली। आर्यसमाज आदि संस्थाओं के प्रचार के कारण हिन्दू जनता पुनः हिन्दुत्व की प्रतिष्ठा का अनुभव करती हुई अपने को हिन्दू कहने में गौरवान्वित समझने लगी।

---

१. Anybody who doubts it should study the manners of the two ruling castes among the Hindus in U. P. viz. the Kayasthas and the Kashmiri Brahmans who in their dress, food, etiquette, language and even in some of their customs are almost as islamic as any Muslim..
धूर्जटि प्रसाद मुकर्जी कृत 'मोडर्न इन्डियन कल्चर' (द्वितीय संस्करण) पृ० ३५।

प्राचीन काल में इस देश में तक्षशिला, नालन्दा, विक्रमशील और बलभी जैसे महान् विश्वविद्यालय उच्च शिक्षा प्रदान करते थे। बाह्य आक्रमणकारियों द्वारा इन विश्वविद्यालयों के नष्ट कर दिये जाने पर भी ग्रामों और नगरों में राजाओं और धनिकों के आश्रय में पाठशालाओं द्वारा जनता को शिक्षित किया जाता रहा। अंग्रेजों के भारत में आगमन के समय पण्डित और मौलवी हिन्दुओं और मुसलमानों को शिक्षा प्रदान करते थे। उच्च शिक्षा संस्कृत, फारसी और अरबी भाषाओं के माध्यम से दी जाती थी। प्रारम्भ में ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने शिक्षा का उत्तरदायित्व वहन करने में हिचकिचाहट अनुभव की, किन्तु वारेन हेस्टिंग्ज के समय में सरकार द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध हुआ। इस समय संस्कृत और फारसी का प्रशिक्षण उपयुक्त समझा गया। १७८१ ई० में कलकत्ता मदरसा तथा १७९२ ई० में बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना हुई।

इस समय ईसाई मिश्नरियों ने अंग्रेजी का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। विलियम कैरी नामक एक अंग्रेज ने अनेक अंग्रेजी स्कूल खोले, परन्तु उनको सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ। सन् १८१३ ई० में सरकार द्वारा स्थापित 'कमेटी आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन' ने कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कालेज का पुनः संगठन करके कलकत्ता, आगरा और दिल्ली में संस्कृत कालेज स्थापित किये तथा संस्कृत और अंग्रेजी पुस्तकों के प्रकाशन का प्रबन्ध किया।

राजा राममोहन आदि विद्वान् संस्कृत एवं फारसी की शिक्षा के विरोधी थे। उन्होंने इस दिशा में अनेक प्रयत्न किये कि भारतवर्ष में पाश्चात्य पद्धति की शिक्षण-व्यवस्था हो। १८१३ ई० में थामस बैविंगटन मैकाले के प्रभाव से गवर्नर जनरल विलियम वैंटिक ने अंग्रेजी माध्यम से आधुनिक विषयों की शिक्षा की नीति स्वीकार की। मैकाले की धारणा भारतीय साहित्य तथा भारतीय भाषाओं के विषय में अत्यन्त हीन थी।[१] वह अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ऐसे भारतीय उत्पन्न करना चाहता था,

---

१. All parties seem to be agreed on one point, that the dialects commonly spoken among the natives of this part of India contain neither literary nor scientific informations and are moreover so poor and rude that until they are enriched from some other quarter it will not be easy to translate any valuable work in to them......I have never found one among them who could deny that a single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia.

रेमजे म्योर कृत 'दि मैकिंग आफ ब्रिटिश इन्डिया' (१९२३ ई०) पृ० २९९।

जो शरीर और रक्त से भारतीय होते हुये भी विचारों, भावनाओं और आदर्शों से अंग्रेज हों।[1]

१८५३ ई० की सर चार्ल्स वुड की रिपोर्ट से प्रभावित होकर लार्ड हार्डिंग ने अंग्रेजी के प्रसार में विशेष योग दिया। उसने कानून बनाया कि सरकारी सेवाओं में नियुक्ति के लिये 'काउन्सिल आफ एजुकेशन' द्वारा स्पर्धात्मक परीक्षायें ली जावें तथा इनमें अंग्रेजी का ज्ञान रखने वाले और अंग्रेजी स्कूलों में पढ़े हुये व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जावे। इस प्रकार भारतवर्ष में भारतीय भाषाओं के ऊपर अंग्रेजी का प्राधान्य निर्विवाद रूप से स्थापित हो गया।

व्यास जी ने हिन्दी प्रदेश में जन्म लेकर इसे ही अपना कार्य क्षेत्र बनाया अतः इस प्रदेश की साहित्यिक हिन्दी परम्पराओं पर कुछ विचार-विमर्श अपेक्षित है। मध्यकाल का भारतीय साहित्य प्रायः पद्य में है। हिन्दी का आदिकालीन साहित्य धार्मिक सम्प्रदायों और राजाश्रित कवियों की रचनाओं के रूप में प्राप्त होता है। हिन्दी का दूसरा युग रीति काल है, जिसमें शास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुये काव्य लिखे गये। इस परम्परा का प्रारम्भ केशवदास ने किया और विकास देव, चिन्तामणि, भिखारीदास आदि ने। रीति-परम्परा का पूर्ण विकास अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ।[2] कवियों ने काव्यशास्त्र सम्बन्धी रचनाओं में काव्य, काव्यगुण, काव्यदोष, ध्वनि, व्यंजना, रस, अलंकार और छन्द की विवेचना करते हुये नायक-नायिका भेद द्वारा मुख्यतः श्रृंगार-रस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया तथा स्वच्छन्द रूप से भी प्रेम तत्त्व से युक्त मुक्तक-काव्यों की सृष्टि की।

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व कविता-निर्माण के प्रधान केन्द्र प्रायः धार्मिक सम्प्रदाय और राजाओं एवं जागीरदारों के रहे थे। राज्याश्रय में रहने वाले कवि राजाओं और उनके पूर्वजों के अद्भुत श्रृंगारिक एवं वीर-रस पूर्ण चित्रण उपस्थित करते थे। धार्मिक सम्प्रदायों में भक्ति साहित्य की रचना होती थी। इन स्थलों में भी, विशेष कर बल्लभ सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की भक्ति-भावना के निमित्त से श्रृंगार-रस का ही अधिक पोषण हुआ। यह क्रम उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक किसी न

---

१. Thomas Babington Macaulay says:—We must at present do our best to form a class who may be interpreters between us and the millions whom we govern, a class of persons Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, morals and intellect.
धूर्जटि प्रसाद मुकर्जी कृत 'मोडर्न इन्डियन कल्चर' पृ० ८७।

२. डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय कृत 'आधुनिक हिन्दी साहित्य' की भूमिका (१९४८ ई०) पृ० २२७

किसी रूप में चलता रहा। अंग्रेजों के सम्पर्क से भारतीय राजाओं के स्वाभिमान का लोप होने पर उनके दरबारों में कवियों के आश्रय सामाप्तप्राय से होने लगे। इस युग में जनता में मध्यम-वर्ग का उदय हुआ और कविता के नवीन केन्द्र प्रायः इसी वर्ग में स्थापित हुये। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि इसी युग के इस श्रेणी के कवि थे। इस काल की कवितायें रीति-काल की परम्परा का परित्याग न करती हुई भी आधुनिकता को समाविष्ट करती हैं। अम्बिकादत्त व्यास भी इसी वर्ग के कवि हैं।

हिन्दी गद्य के उदाहरण यद्यपि उन्नीसवीं शताब्दी से पूर्व के भी प्राप्त होते हैं, तथापि इसका समुचित विकास अंग्रेजी शासन प्रारम्भ होने पर हुआ। गद्य के विकास की मुख्य विशेषता कथा-साहित्य (उपन्यास) का विकास है। इस कला का विकास अंग्रेजी उपन्यासों के सम्पर्क से सर्वप्रथम बंगला साहित्य में हुआ। प्रारम्भ में हिन्दी में मुख्यतः संस्कृत कथाओं के आधार पर रचनायें लिखीं गईं, किन्तु शीघ्र ही बंगला उपन्यासों के सम्पर्क से उपन्यास लिखे जाने भी प्रारम्भ हो गये। यह प्रयत्न प्रायः मध्यम वर्गी जनता के लेखकों द्वारा किया गया। बंगाल के अनेक उपन्यास-लेखकों के हृदय, जो नवीन अंग्रेजी शिक्षापद्धति से शिक्षित और हिन्दू राष्ट्रीयता से ओतप्रोत थे, निकट भूत काल के मुसलिम अत्याचारों की विभीषका का अनुभव कर रहे थे। उन्होंने हिन्दू जाति के जागरण को प्रोत्साहन देने वाले उपन्यासों आदि की रचना प्रारम्भ की। बंकिमचन्द्र के उपन्यास इस सम्बन्ध में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुये। महाराष्ट्र के जागरण का चित्र उपस्थित करने वाले 'महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात' के लेखक रमेशचन्द्र दत्त एक अर्थशास्त्री की अपेक्षा उपन्यासकार के रूप में अधिक प्रसिद्ध हुये। बंगाल की इस लहर का हिन्दी प्रदेश पर भी प्रभाव पड़ा। बंगाली उपन्यासों के अनुवाद हिन्दी में हुये। भारतेन्दु जी ने 'राजसिंह' का अनुवाद किया। भारतेन्दु जी के सहयोगी, कट्टर सनातन-मतावलम्बी अम्बिकादत्त व्यास ने हिन्दी में उपन्यास-रचना के साथ ही हिन्दू राष्ट्रीयता को उद्‌बोधित करते हुये संस्कृत में 'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की।

व्यास जी के जन्म के समय की संस्कृत के अध्ययन की अवस्था पर संक्षेप में कुछ विचार करना यहाँ अप्रासंगिक न होगा। मुसलमानी राज्य में फारसी की प्रधानता होने पर भी संस्कृत का महत्त्व कम नहीं था। उच्च वर्ग के हिन्दू संस्कृत के प्रेमी थे। अनेक मुसलमान बादशाह भी संस्कृत के प्रेमी हुये। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् पण्डितराज जगन्नाथ शाहजहाँ के कृपापात्र थे। दारा ने अनेक संस्कृत रचनाओं का स्वयं अनुवाद किया और कराया। अंग्रेजों के भारत में आगमन के समय इस देश में उच्च शिक्षा

संस्कृत, अरबी और फारसी भाषाओं के माध्यम से दी जाती थी।[1] प्रारम्भ में अंग्रेजी नीति भी संस्कृत आदि भारतीय भाषाओं के अध्ययन के प्रति अनुकूल थी, किन्तु मैंकाले द्वारा अंग्रेंजी का समर्थन होने से जनसाधारण में संस्कृत के प्रशिक्षण का अवरोध हुआ। फिर भी राज्य द्वारा स्थापित कुछ संस्कृत कालेजों और धार्मिक वृत्ति के धनिकों द्वारा पोषित संस्कृत पाठशालाओं और संस्कृत के अनुरागी पण्डितों के प्रयास से संस्कृत का प्रशिक्षण चलता रहा। इसके साथ ही शासन द्वारा स्थापित विश्वविद्यालयों में संस्कृत को स्थान देने से आधुनिक प्रणाली से इस भाषा के अध्ययन की व्यवस्था हुई।[2]

साधारणत: सरकारी नीति के संस्कृत के पक्ष में न होने पर भी एक ओर तो संस्कृत पाठशालाओं की प्राचीन परम्परा चलती रही, जिसे क्वींस कालेज जैसी सरकारी संस्थाओं द्वारा सुसंगठित किया गया, दूसरी ओर संस्कृत के विशाल और वैविध्य-पूर्ण साहित्य के सम्पर्क में आकर विस्मित और प्रभावित होने वाले पाश्चात्य विद्वानों ने इसका अध्ययन आधुनिक आलोचनात्मक प्रणाली से करना प्रारम्भ किया। वारेन हैस्टिंग्ज, सर विलियम जोन्स, मैक्स मूलर, हेनरी टामस, कोलब्रुक, बूलर, बेवर, आफ्रेक्ट, मोनिअर विलियम आदि विद्वानों के कार्य इस सम्बन्ध में सराहनीय हैं। इन्होंने संस्कृत रचनाओं के अनुवाद करने के साथ ही ग्रन्थों का सम्पादन, संग्रह, सुरक्षा, कोषनिर्माण आदि कार्य सम्पन्न किये। इन पाश्चात्य विद्वानों ने आलोचनात्मक अध्ययन की आधुनिक प्रणाली द्वारा संस्कृत रचनाओं और लेखकों के ऐतिहासिक और तुलनात्मक मूल्य स्थापित किये। भारत सरकार द्वारा स्थापित पुरातत्व विभाग ने भी संस्कृत के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार व्यास जी के समय में संस्कृत के अध्ययन की दो धारायें प्रवाहित हो रहीं थीं। एक ओर तो प्राचीन ढंग की संस्कृत-पाठशालायें थीं, जिनमें प्राचीन पद्धति की गुरुशिष्य परम्परा से संस्कृत का अध्ययन कराया जाता था। इन पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का ज्ञान प्रायः एकांगी होता था। यद्यपि वे अपने विषय के प्रकाण्ड पण्डित होते थे तथापि अन्य आधुनिक विषयों के सम्पर्क के अभाव में उनकी प्रतिभा कुण्ठित ही थी। दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के अध्ययन की जो दिशा प्रतिपादित की उसमें आलोचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन

---

१. While the British took over the administration of Bengal, all higher education was confined to the study of classical Sanskrit, Arabic and Persian
आर० सी० मजूमदार एण्ड अदर्स कृत 'एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ इन्डिया' पृ० ८१६।

२. १८५० ई० के बाद कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयों में संस्कृत के अध्ययन की व्यवस्था की गई।

की ओर अधिक बल दिया गया। ये दोनों ही दिशायें स्वयं में पूर्ण नहीं थीं। सम्भवतः इसी कारण उस युग में मौलिक रचनाओं के निर्माण का प्रायः अभाव रहा। पण्डितराज जगन्नाथ के बाद कोई भी संस्कृत का विद्वान् उस कोटि की प्रतिभा से संपन्न नहीं हुआ जो उच्च कोटि के काव्यों की रचना के साथ–साथ उसी स्तर के मौलिक काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ की रचना भी कर सकता। यद्यपि संस्कृत में काव्य लिखे गये (जिनका उल्लेख आगे किया गया है), तथापि उनमें वह प्रतिभा, प्रत्युत्पन्नमतित्व, सर्वांगपूर्णता, और मौलिकता नहीं है, जो प्राचीन काव्यों में दृष्टिगोचर होती है।

इस प्रकार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में जन्म लेने वाले हमारे आलोच्य कवि पं० अम्बिकादत्त व्यास के जीवन और कृतियों पर इन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों ने आपको राजभक्त बनाया, किन्तु प्राचीन रूढ़ियों के प्रति आस्थावान् आपका हृदय सामाजिक और धार्मिक सुधारों को सहन करने में असमर्थ रहा। उनका आपने यथाशक्ति विरोध किया। संस्कृत के अध्ययन और रचनाओं में आपकी गहन रुचि थी। उपन्यास नामक साहित्यिक विद्या की मनोरंजकता और उपयोगिता ने आपके हृदय में एक संस्कृत उपन्यास लिखने की प्रेरणा दी। इसके अतिरिक्त प्राचीनता का परित्याग न करते हुये भी आधुनिकता का सन्निवेश करके आपने अनेकविध रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया। हिन्दी की प्राचीन साहित्यिक परम्परा को आपने नवीन दिशा प्रदर्शित की और अनेक रचनाओं के साथ साथ उपन्यासों की रचना करके हिन्दी-गद्य के विकास के लिये भी आप प्रयत्नशील हुये।

३. जीवन–वृत्त —

व्यास जी ने अपना जीवन-वृत्त स्वयं विस्तार से लिखा है। आपकी अनेक पुस्तकों में इनका संक्षिप्त जीवन-वृत्त है, जो 'निजवृत्तान्त' नामक पुस्तक में विस्तार से लिखा गया है। आपके निधन के पश्चात 'सरस्वती' के १९०१ ई० के फरवरी के अंक में आपका जीवन-वृत्त प्रकाशित हुआ था।

जयपुर नगर से पूर्व दिशा में ग्यारह मील दूर रावत जी धूला नामक ग्राम है। इस ग्राम के समीपवर्ती मानपुर ग्राम में व्यास जी के पूर्वज रहा करते थे। इनका पाराशर गोत्र था और कुल मींडा नाम से प्रसिद्ध था। इस कुल के पण्डित ईश्वरराम जी गौड़ ज्योतिष विद्या के लिये प्रसिद्ध थे। उनके पुत्र कृष्णराम की प्रतिभा से प्रभावित होकर रावत जी धूला के ठाकुर दलेलसिंह ने उन्हें अपने ग्राम धूला में बसा लिया। कृष्णराम जी के सुपुत्र हरिराम भी ज्योतिष के प्रकाण्ड पण्डित थे और वे धूला के ठाकुरों के आश्रय में सुख से रहते रहे।

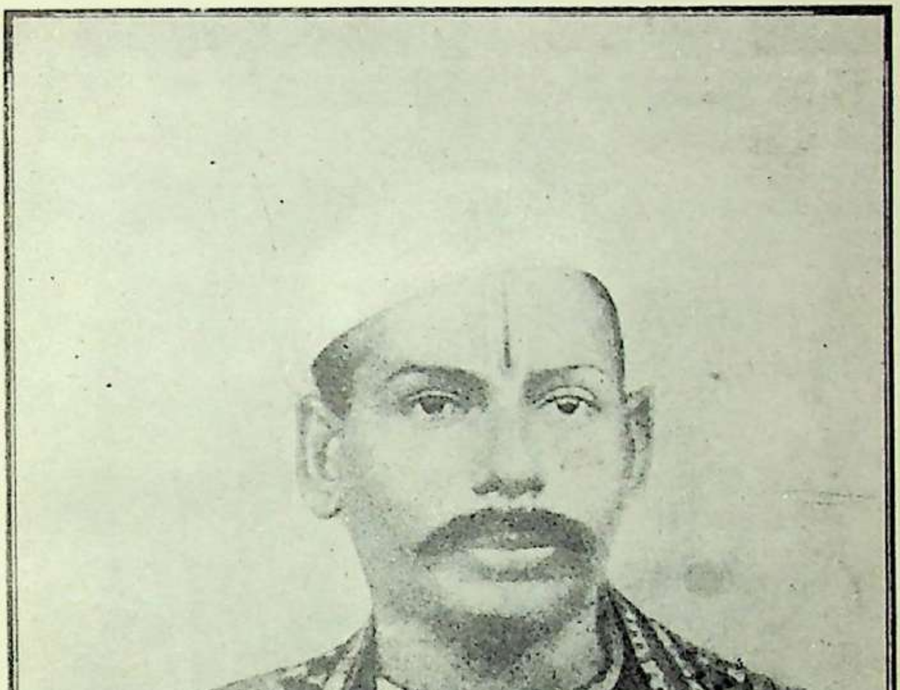

बिहारभूषण, भारतभूषण, भारतरत्न, भारतभास्कर, घटिकाशतक, शतावधान, धर्माचार्य, महामहोपदेशक, सुकवि, साहित्याचार्य—

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

पं० हरिराम के चार पुत्र उत्पन्न हुये—राधाकृष्ण प्रथम, राधाकृष्ण द्वितीय, गंगाराम और राजाराम। एक बार राजाराम सकुटुम्ब तीर्थयात्रा के लिये काशी गये। काशी में पं० राजाराम को अपनी विद्वता और ज्योतिष विद्या के कारण अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई तथा इनके अनेक प्रशंसक और यजमान बन गये। यजमानों ने इनके लिये काशी के मानपुर मोहल्ले में एक मकान बनवा दिया। पं० राजाराम कुटुम्ब सहित स्थायी रूप से काशी ही में रहने लगे। अपने पाण्डित्य और ज्योतिष के कारण आपने शीघ्र ही विपुल धन और कीर्ति प्राप्त की।

पं० राजाराम की अनेक सन्तानें हुईं। उनमें से केवल दो जीवित रहीं—दुर्गादत्त और देवीदत्त। पं० दुर्गादत्त का जन्म काशी में भाद्रपद कृष्ण ३ सम्वत् १८७२ को हुआ।[1] बाल्यकाल में दुर्गादत्त की शिक्षा उत्तम रीति से न हो सकी।

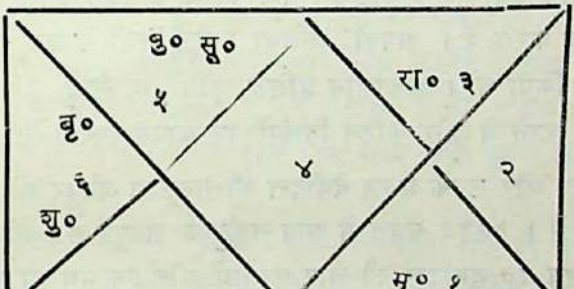

पं० दुर्गादत्त की जन्मकुण्डली[2]

१. 'विद्याविनोद पत्रिका' १८६४-१८६५ ई०।
२. 'विद्याविनोद' प्रथम भाग १८६४-६५।

पं० राजाराम ने स्वयं ही इनको कुछ कर्मकाण्ड तथा ज्योतिष पढ़ाया।[1] दुर्गादत्त में विद्या के वंशपरम्परागत संस्कार प्रबल थे तथा अध्ययन का व्यसन था। इन्होंने स्वयं ही शास्त्रों और काव्यों का अध्ययन प्रारम्भ करके काशी के विद्वानों से भी कर्मकाण्ड, यजुर्वेद और संस्कृत काव्य पढ़े। पं० दुर्गादत्त की पुस्तकें लिखने तथा लिखवाने में रुचि थी। इस कार्य को आपने बड़े उत्साह के साथ प्रारम्भ किया। आप न केवल शास्त्रों के विद्वान् थे अपितु कुश्ती, लाठी, गदका और बनैठी के भी शौकीन थे। आप अखाड़ों में जाते और उत्साह से इन शारीरिक कलाओं का अभ्यास करते थे। आप कविता करने में भी कुशल थे तथा काशी की कविगोष्ठियों में दत्त कवि के नाम से प्रसिद्ध थे।

महाराज काशी नरेश ने 'महाभारत' के अनुवाद का कार्य आरम्भ किया और प्रत्येक पर्व के लिये एक एक पण्डित तथा एक एक कवि नियुक्त किया। पं० दुर्गादत्त भी इस कार्य के लिये नियुक्त हुये।[2] आपने अनेक हिन्दी तथा संस्कृत ग्रन्थों की टीकायें लिखीं। इनके द्वारा निबद्ध ४१ ग्रन्थों की सूची 'विद्याविनोद' पत्रिका के १८९५ और १८९६ के अंकों में प्रकाशित हुई थी। इन ग्रन्थों में से २२ ग्रन्थों का मुद्रण भी हुआ। आप कथा करने में कुशल थे। काशी के रईस इनसे कथा कहलवाने में गौरव का अनुभव करते थे। अपनी प्रतिभा और विद्या के बल से पण्डित जी ने प्रभूत धन उपार्जित किया था। तत्कालीन प्रसिद्ध कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आपका बहुत अधिक आदर करते थे और कठिन विषयों पर आपसे सलाह लेते थे।

पं० दुर्गादत्त और उनके अनुज देवीदत्त की ससुराल जयपुर थी। दोनों भाई जयपुर जाया करते थे। १९१३ संवत् में आप सकुटुम्ब जयपुर गये और तीन वर्ष तक वहीं रहे। इस समय पं० दुर्गादत्त की चार कन्यायें और एक पुत्र हो चुके थे। इनमें तीन कन्याओं का तो विवाह हो चुका था, किन्तु पुत्र गणेशदत्त साथ था। जयपुर में सिलबटों के मोहल्ले में चैत शुक्ल अष्टमी सम्वत् १९१५ को उनके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। यह नवरात्र की अष्टमी थी, अतः इस बालक का नाम अम्बिकादत्त रखा गया। अगले दिन राम नवमी होने से पं० देवीदत्त ने इसका नाम रामचन्द्र रखा।

सम्वत् १९१६ में पं० दुर्गादत्त सकुटुम्ब जयपुर से काशी के लिये चले। उस समय भारतीय स्वाधीनता संग्राम को यद्यपि अंग्रेज कुचल चुके थे, तथापि विद्रोह की लूटमार पूरी तरह शान्त नहीं हुई थी। आपके मित्रों ने इस समय

---

१. 'विद्याविनोद' प्रथम भाग १८९४-९५।

२. 'विद्याविनोद' प्रथम भाग १८९४-९५।

इन्हें काशी न जाने के लिये बहुत समझाया, पर आप अपने भाई, पत्नी, पुत्र गणेशदत्त, नवजात शिशु अम्बिकादत्त और एक ब्राह्मण पं० उदयभान को साथ लेकर काशी के लिये चल पड़े। मार्ग में आपको अनेक कष्ट उठाने पड़े, कुछ सामान चोरी हो गया तथा गाड़ी में आग लग जाने से बहुत सा सामान जल गया। अनेक कष्ट उठाकर आप काशी पहुँचे।

पण्डित दुर्गादत्त ने अम्बिकादत्त को यथोचित शिक्षा देने में कुछ कमी न रखी। बालक के पांच वर्ष का होते ही शास्त्रानुसार उसकी शिक्षा प्रारम्भ हो गयी। अक्षराभ्यास के साथ ही 'अमरकोष' और 'रूपावली' कण्ठस्थ करना प्रारम्भ किया गया। अम्बिकादत्त की माता, बड़ी बहनें, चाची और दादी सभी पढ़ी लिखी और विदुषी थीं, पिता भी प्रसिद्ध विद्वान् थे, अतः उनकी शिक्षा चतुरस्र होने लगी। घर में शिक्षा का, विशेषकर संस्कृत का वातावरण होने से बालक में ज्ञान प्राप्त करने की रुचि और संस्कृत के लिये गहन अनुरक्ति उत्पन्न हो गई। संस्कृत के कुछ काव्य, कोष और हिन्दी के अनेक कवित्त, सवैये इनको कंठस्थ हो गये। पिता ने नित्यप्रति के व्यवहार में आने वाले पदार्थों के संस्कृत में नाम सिखला दिये और वे संस्कृत के वार्तालाप को समझने लगे। अध्ययन के अतिरिक्त अम्बिकादत्त को बाल्यावस्था में ही जादू के खेल, शतरंज, ताश के कौतुक आदि का शौक उत्पन्न हुआ और वे इन कौतुकों को अपने घर वालों को दिखलाने लगे। पिता ने भी पुत्र की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोकना अनुचित समझ कर स्वयं तथा अन्य गुणी पुरुषों की सहायता से ये कौतुक उनको सिखलाये।

काशी के प्रसिद्ध विद्वान् पं० घनश्याम गौड़ ने अम्बिकादत्त का उपनयन कराया। दस-ग्यारह वर्ष का अवस्था में इनको अनेक कवित्त, सवैये और श्लोक कंठस्थ हो गये और हिन्दी में कविता बनाने का अभ्यास हो गया। उसके साथ ही ताश, शतरंज और चित्रकला में भी निपुणता प्राप्त हुई। इस अल्प आयु में अम्बिकादत्त की रचनायें इतनी उत्तम होती थीं कि सुनने वाले इनको पं० दुर्गादत्त की रचना समझकर बालक की अवहेलना करते थे। पुत्र के उदास होने पर पं० दुर्गादत्त यह श्लोक कहा करते थे—

कमलिनि मलिनीकरोषि चेतः किमिति बकैरवहेलितानभिज्ञैः।
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते जगति चिरायुषो मिलिन्दाः॥

कवियों तथा पहलवानों का सम्मान करने वाले जोधपुर के राजगुरु कवि तुलसीदत्त ओझा सम्वत् १९२६ में काशी आये। आपने पं० दुर्गादत्त से पढ़ना प्रारम्भ किया। अम्बिकादत्त को कविता-रचना में उत्साही देखकर ओझा जी ने 'जनि तोरहु नेह को काचो लगा' समस्या पूर्ति के लिये दी। व्यास जी द्वारा की गई समस्या-पूर्ति को सुनकर ओझा जी को विश्वास नहीं हुआ कि इतनी उत्तम कविता

अल्प आयु का यह बालक कर सकता है। सन्देह की निवृत्ति के लिये उन्होंने एक दूसरी समस्या 'मूंदि गई आंखें तब लाखें कौन काम की' पूर्ति के लिये दी। अम्बिकादत्त ने अन्य कवियों के सामने इस समस्या को इस प्रकार पूर्ण किया—

चमकि चमाचम रहे है मनिगन चारु मोहन चहूँ धां धूम धाम धन धाम की।
फूल फुलवारी फल फैली के फवे है तज छवि छटकीली यह नहिन अराम की।।
काया हाड़ चाम की लै राम को बिहारी सुधि जाय की को जानै बात करत हराम की।
अम्बादत्त भाषै अभिलाषै क्यों करत झूठ मूंदि गई आंखें तब लाखें कौन काम की।।

ओझा जी ने इस कवित्त को सुनकर परम प्रसन्नता प्रकट की और पारितोषिक के रूप में अनेक मूल्यवान वस्त्र तथा प्रशंसापत्र दिये। इस समय से बालक अम्बिका दत्त की कीर्ति साहित्य-प्रेमियों के समाज में फैलने लगी।

ग्यारह वर्ष की अवस्था में अम्बिकादत्त ने कथा कहने का अभ्यास प्रारम्भ कर दिया। पहिले वे अपने घर में माता बहन आदि के सामने कथा कहते थे, बाद में सभाओं में कहने लगे। पं० दुर्गादत्त स्वयं कथा कुशल थे, उन्होंने पुत्र को भी कथा कहने में कुशल बना दिया। इससे अम्बिकादत्त सभाओं में भाषण देने में चतुर हो गये और उत्तम वक्ता बन गये। छोटी आयु में इनको 'अमरकोष', 'रूपावली' आदि कंठस्थ हो गये। वे अपने पिता से 'श्रीमद्भागवत' तथा पं० कृष्णदत्त से 'लघुकौमुदी' भी पढ़ने लगे। पं० दुर्गादत्त के पास अनेक विद्यार्थी संस्कृत पढ़ने आया करते थे। अम्बिकादत्त भी पाठों को सुना करते थे और अपनी योग्यता बढ़ाया करते थे।

सम्वत् १९२६ में एक ग्वाल कवि के शिष्य खड्ग कवि काशी आये। आपने राधारमण जी के मन्दिर में अनेक कविजनों के सम्मुख भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को निम्न समस्या पूरी करने के लिये दी—

"सूरज देखि सके नहीं घुग्घू"

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस समस्या-पूर्ति के लिये कुछ समय तक प्रयत्न करते रहे, परन्तु कोई अच्छी पूर्ति नहीं बन सकी। उन्होंने कहा कि इस पर कोई अच्छा कवित्त नहीं बन सकता। इस सभा में पं० दुर्गादत्त पुत्र सहित उपस्थित थे। उनके आग्रह से अम्बिकादत्त से समस्यापूर्ति के लिये कहा गया। अम्बिका दत्त ने यह कवित्त बनाया—

गोद लिये हरि को नन्दराय जू सुग्गा कहायो कह्यो उन सुग्घू।
तोतरे बैन सुनो चित चैन भी काग कहायो कह्यो तब कुग्घू।।
अम्बिकादत्त अनन्दित ह्वै पुनि बाघ कहाये कह्यो उन बुग्घू।
देखि सकै नहि पातकी सौ जिमि सूरज देखि सकै नहि घुग्घू।।

यह कवित्त सुन कर सबने बहुत प्रशंसा की । हरिश्चन्द्र बाबू ने बहुत अधिक स्नेह और अनुग्रह दर्शाया तथा पिता ने आशीर्वाद दिया । इस घटना के बाद अम्बिका दत्त प्रायः बाबू हरिश्चन्द्र के स्थान पर जाया करते थे ।

सम्वत् १९२७ में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविता-वर्द्धिनी सभा की स्थापना की । एक बार सभा में "चिरजीवी रहो विकटोरिया रानी" यह समस्या पूर्ति के लिए दी गई । साथ में यह भी कहा गया कि इस कविता में प्रातःकाल का भी वर्णन होना चाहिये । अम्बिकादत्त ने इस समस्या की पूर्ति इस प्रकार की—

आनन्द तै परजा विकसै सब कौल से कोसगिरी हरषानी ।
सेवकिनी चिरियासम चारहुँ ओर से बोलि रही मृदु बानी ।।
भोर प्रताप सो जाको प्रताप लखे इमि अम्बिकादत्त बखानी ।
पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवी रहै बिकटोरिया रानी ।।

इस कविता से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने अपने पत्र 'कविवचनसुधा' जिल्द दो कार्तिक कृष्ण ३० सम्वत् १९२७ में उक्त समस्यापूर्ति को प्रकाशित करके अम्बिकादत्त की विलक्षण बुद्धि की प्रशंसा की ।

अम्बिका दत्त अभी बारह वर्ष के थे कि संस्कृत के श्लोकों की रचना करने लगे थे । पं० दुर्गादत्त ने इनको सरस्वती-यन्त्र (कोष्ठक यन्त्र) बनाकर श्लोक-रचना सिखलाई थी । यह यन्त्र इस प्रकार बनाया जाता है कि चार कोष्ठों की पंक्ति पर बत्तीस कोष्ठक बना लिये जाते हैं । समस्या देने वाला जिन जिन कोष्ठों में संकेत करता जाता है, कविता करने वाला उन कोष्ठों में अपनी रुचि से कोई अक्षर लिखता चला जाता है। इन सब कोष्ठों के भर जाने पर उसे क्रम से पढ़ने पर इसी विषय का श्लोक बन जाता है। एक बार काशी में दक्षिण से एक तैलंग शतावधान पण्डित आये । उनका प्रदर्शन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कोठी पर हुआ । उस सभा में पण्डित दुर्गादत्त और अम्बिकादत्त उपस्थित थे । तैलंग पण्डित के प्रदर्शन के पश्चात् भारतेन्दु जी ने अपनी कविता सुनाई । तदनन्तर आपने कहा कि यदि कोई काशीवासी इस समय चमत्कार दिखाता तो काशी का नाम रह जाता । सबके चुप हो जाने पर पं० दुर्गादत्त ने अम्बिकादत्त की ओर संकेत करके कहा कि यह बालक सरस्वती-यन्त्र द्वारा कविता-रचना का प्रदर्शन करेगा । अम्बिकादत्त के आगे लेखनी, मसि और कागज रख दिये गये । उन्होंने एक पत्र पर सरस्वती यन्त्र

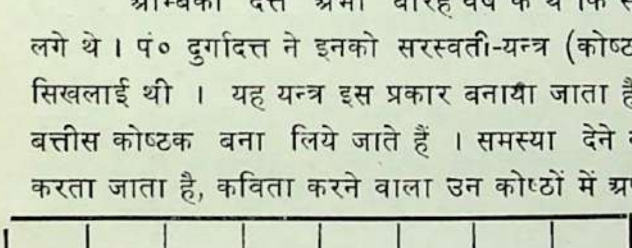
कोष्ठक—यन्त्र

की रचना करके पूछा कि किस पदार्थ का वर्णन करें। उस सभा में भारतेन्दु जी के अनुज गोकुलचन्द्र थे। उन्होंने सामने टंगी घड़ी का वर्णन करने को कहा। अम्बिकादत्त के कहने पर गोकुलचन्द्र एक एक कोष्ठक में संकेत करते गये और अम्बिकादत्त एक एक अक्षर लिखते गये। पूरा कोष्ठक भर जाने पर निम्न श्लोक बना—

घटी सुवृत्ता सुगतिर्द्वादशांसकमन्विता।
उन्निद्रा सततं भाति वैष्णवीव विलक्षणा॥

शतावधान तैलंग पण्डित के पुनः आग्रह करने पर एक अन्य श्लोक की रचना की—

घटी खटखटाशब्दव्याजेन कथयत्युत।
रामं रट रट प्राज्ञ किमन्यैर्विफलैः श्रमैः॥

इन श्लोकों को तथा अम्बिकादत्त की अन्य कविताओं को सुनकर तैलंग पण्डित ने कहा "सुकविरैषः"। यह सुनकर बाबू हरिश्चन्द्र और अन्य कवियों ने अम्बिकादत्त की सराहना करके उन्हें "सुकवि" पद के योग्य निर्धारित किया। भारतेन्दु जी ने एक प्रशंसापत्र और एक प्रमाण-पत्र दिया कि अम्बिकादत्त को काशी की कवितावर्द्धिनी सभा से "सुकवि" पद प्राप्त हुआ। अगले दिन तैलंग पण्डित स्वयं पं० दुर्गादत्त के घर गये और उनके पुत्र की प्रशंसा करते हुये उसे आशीर्वाद दिया।

अम्बिकादत्त की प्रतिभा तथा रुचि बहुमुखी थी। पं० देवीदत्त को सितार बजाने का शौक था। पुत्र की संगीत में रुचि देख कर पं० दुर्गादत्त ने सितार तथा संगीत सिखाने का प्रबन्ध कर दिया। अम्बिकादत्त के बहनोई पं० वासुदेव वैद्यक जानते थे। उनसे अम्बिकादत्त ने 'वैद्यजीवन' आदि छोटे छोटे वैद्यक के ग्रन्थ पढ़ने आरम्भ कर दिये। इसी समय उनका परिचय काशी के उस समय के प्रसिद्ध वैद्य विश्वनाथ कविराज विद्याकल्पद्रुम से हुआ। कविराज जी अत्यन्त स्नेह से इनको वैद्यक के सुगूढ़ तत्त्व सिखाने लगे। कविराज जी बंगाली थे, उनके संसर्ग से अम्बिकादत्त ने बंगला भाषा का अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। पं० दुर्गादत्त को कुश्ती, लाठी, गदका, बनैठी आदि में प्रवीणता प्राप्त थी, अम्बिकादत्त ने पिता से इन विद्याओं की भी शिक्षा ग्रहण की।

काशिराज की ओर से एक धर्मसभा की स्थापना हुई थी, जहाँ छात्रों की परीक्षायें हुआ करती थीं। अम्बिकादत्त ने इस सभा से परीक्षा देकर विशेष योग्यता और पारितोषिक प्राप्त किया। काशिराज ईश्वरीप्रसाद नारायणसिंह बहादुर इतनी छोटी आयु के विद्यार्थी को पारितोषिक का अधिकारी देखकर और अम्बिकादत्त के श्लोकबद्ध उत्तरों को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुये तथा दरबार में आने का आग्रह किया।

अम्बिकादत्त की रुचि संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों की ओर भी थी। वे साहित्य, अलंकार, दर्शन, गणित, अंग्रेजी आदि विद्याओं की ओर प्रवृत्त हुये। उन्होंने पं० ताराचरण भट्टाचार्य तर्करत्न से 'साहित्यदर्पण' और 'सिद्धान्तलक्षण' (न्याय), स्वामी राममित्र से संस्कृत साहित्य, पं० वामनाचार्य झलकीकर से सांख्य और पं० कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य से गणित पढ़ा। अंग्रजी पढ़ने के लिये अम्बिकादत्त ने बनारस कालेज के एंग्लो-संस्कृत विभाग में नाम लिखवा लिया और अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष डा० थीबो के पास अंग्रेजी पढ़ने जाने लगे। यहाँ ग्रिफिथ की 'रामायण' और लाजिक का भी अध्ययन किया। इस कालेज में इन्हें प्रथम वर्ष दो रुपये मासिक, द्वितीय वर्ष पांच रुपये मासिक और तदन्तर बारह रुपये मासिक वृत्ति मिली। सम्वत् १९३४ में इन्होंने कालेज में उत्तम वर्ग तक के पाठ्यक्रमों का अध्ययन समाप्त कर लिया। इसी वर्ष कालेज के डाइरेक्टर कैम्सन साहब ने एंग्लो-संस्कृत विभाग को समाप्त कर दिया, परन्तु अम्बिकादत्त ने अंग्रेजी का अध्ययन छोड़ा नहीं। वे घर पर ही अंग्रेजी पढ़ते रहे और साथ ही पिता की सम्मति के अनुसार कुलपरम्परागत संस्कृत विद्या के गहन अध्ययन की ओर भी प्रवृत्त हुये। इसी वर्ष काशी के प्रसिद्ध विद्वान् स्वामी विशुद्धानन्द की प्रेरणा से काश्मीराधिपति ने बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना की। अम्बिकादत्त ने इस कालेज में अध्ययन किया।

उस युग में धार्मिक सुधारों के आन्दोलनों के कारण शास्त्रार्थ बहुत होते थे। अम्बिकादत्त की रुचि इन शास्त्रार्थों में भी हुई। ये अपने पिता के साथ कथा करने तो जाया ही करते थे, अतः बहुदर्शिता और वक्तृत्व-शक्ति का इनमें विकास हो गया था। शास्त्रार्थ में प्रवीण होने के लिये इन्होंने न्यायशास्त्र का गहन अध्ययन किया और साथ में अन्य दर्शनों को पढ़ा। सोलह वर्ष की आयु में इनकी वेदान्तप्रिय मण्डली ने काशी में ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा की स्थापना की।

अम्बिकादत्त का विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में ही हो गया था। परिवार के बढ़ने से कुटुम्ब के पोषण की चिन्ता इन पर बढ़ गयी। पिता के साथ कथा करने वे पहले जाते ही थे, अब स्वतन्त्र रूप से भी जाने लगे। उत्तम कथा कहने से लोग इनको 'व्यास' कहने लगे। काश्मीराधिपति द्वारा स्थापित संस्कृत कालेज के प्रधानाध्यापक स्वामी विशुद्धानन्द जी ने भी इनको अनेक पण्डितों के समक्ष 'व्यास' पद प्रदान किया, जिससे इनकी व्यास उपाधि नियत हो गई और ये पं० अम्बिकादत्त व्यास के नाम से प्रसिद्ध हुये।

संवत् १९३२ से व्यास जी हिन्दी तथा संस्कृत में लेख लिखने लगे। इनके लेख उन दिनों काशी के 'आर्यमित्र' नामक पत्र से प्रकाशित होते थे। लेख लिखने

के साथ आपने 'प्रस्तारदीपक', 'ललितानाटिका' आदि पुस्तकों की रचना आरम्भ की। भारतजीवन के सम्पादक बाबू रामकृष्ण, देवकीनन्दन, अमीरसिंह, कार्तिकप्रसाद आदि इनके अन्तरंग मित्र थे। हिन्दी के अतिरिक्त आप संस्कृत में लिखने, बोलने और श्लोक बनाने का भी अभ्यास करते थे। एक बार देवीप्रसाद नामक सज्जन के घर आपने एक घन्टे में सौ श्लोक बनाये जो 'विद्यार्थी' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुये। इस घटना ने इनकी प्रसिद्धि को और भी अधिक विस्तृत कर दिया। मिथिला नरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह के राज्याभिषेक समारोह के लिये राजाज्ञा पाने पर व्यास जी ने 'सामवतम्' नाटक की रचना की। यह नाटक सम्वत् १९३७ में पूरा होकर सम्वत् १९४५ में प्रकाशित हुआ एवं सम्वत् १९५० में मिथिलानरेश द्वारा पुरस्कृत हुआ।

व्यास जी की माता सम्वत् १९३१ में चित्रकूट की यात्रा के लिये गईं। उस समय यात्रा करना अत्यन्त कठिन था। यात्रा की परिश्रान्ति से वे रुग्ण हो कर कुछ ही समय पश्चात् दिवंगत हुईं। सम्वत् १९३७ में व्यास जी के पिता पं० दुर्गादत्त ज्वर से ग्रस्त हुये। इस समय इनके तीन पुत्र गणेशराम, अम्बिकादत्त और गौरीशंकर थे। गणेशराम अपने छोटे भाइयों से वैमनस्य रखते थे तथा पिता की किंचिन्मात्र भी सहायता नहीं करते थे। व्यास जी यथाशक्ति पिता की सेवा करते रहे। रोग क्रमशः बढ़ता गया और चैत्र शुक्ल एकादशी को प्रातः ६ बजे पं० दुर्गादत्त का स्वर्गवास हो गया। पिता के देहावसान से व्यास जी पर सम्पूर्ण कुटुम्ब के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व आ गया। इस समय व्यास जी अत्यन्त दुःखी थे। पितृवियोग, बड़े भाई का वैमनस्य, छोटे भाई का पालन, पुत्र का जन्म इन सबके कारण व्यास जी पर ऋण का बोझ हो गया। बड़े भाई ने पिता के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थों को नष्ट कर दिया। यद्यपि पं० दुर्गादत्त अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति का विभाग तीनों भाइयों में कर गये थे, तथापि बड़े भाई के वैमनस्य रखने और दुष्टों के बहकाने के कारण पारिवारिक झगड़े बढ़े, जिससे परिवार पर ऋण का बोझ और भी अधिक हो गया।

सम्वत् १९३७ में काशी के गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज (क्वीन्स कालेज) में संस्कृत की स्नातकोत्तर परीक्षा (आचार्य परीक्षा) आरम्भ हुई। यह परीक्षा इस कालेज की सर्वोच्च परीक्षा थी। अपने गुरू स्वामी रामिश्र की प्रेरणा से व्यास जी ने संस्कृत साहित्य विषय के साथ आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने का निश्चय किया। परीक्षा क सभी ग्रन्थ आपको तैयार थे ही, इन ग्रन्थों को पुनः अध्ययन करके व्यास जी परीक्षा में प्रविष्ट हुये। उस वर्ष आचार्य के लिये साहित्य विषय से १३ और व्याकरण विषय से १५ छात्र परीक्षा देने के लिये बैठे थे। साहित्य में अकेले व्यास जी तथा व्याकरण

में केवल दो छात्र उत्तीर्ण हुये। परीक्षा उत्तीर्ण करने के कारण आपको साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त हुई और भारतेन्दु जी ने एक घड़ी पारतोषिक रूप में प्रदान दी।

अगले वर्ष स्वामी राममिश्र की प्रेरणा से व्यास जी सांख्य विषय लेकर आचार्य परीक्षा में बैठे, किन्तु कोई योग्य गुरू न मिलने तथा परीक्षा के अन्तिम दिन रुग्ण हो जाने के कारण आप अनुत्तीर्ण हो गये। स्वामी राममिश्र के ही पुनः आग्रह से व्यास जी ने सम्वत् १९३९ में सांख्य की उपाधि परीक्षा देने के लिये कलकत्ता प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग में ज्वर हो जाने से वैद्यनाथधाम से ही लौट आये।

उस युग में थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्यसमाज तथा अन्य संस्थायें प्रबल वेग से धार्मिक और सामाजिक सुधार करने के लिये प्रयत्नशील थीं। इस सम्बन्ध में काशी में शास्त्रार्थों की धूम मची रहती थी। कट्टर सनातन मतावलम्बी और प्राचीन रूढ़ियों के भक्त व्यास जी इन सुधारवादियों को नास्तिक समझते एवं इनका विरोध करते थे। थियोसोफिकल सोसाइटी के मैडम ब्लेवेट्स्की तथा कर्नल अल्काट की वक्तृताओं का व्यास जी ने खण्डन किया। सम्वत् १९३७ में आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द काशी पधारे और महमूदगंज में ठहरे। व्यास जी ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व, उद्योग, निर्भयता, परिश्रम, सदाचार और जितेन्द्रियता से बहुत अधिक प्रभावित हुये। जब ऋषि दयानन्द ने मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि सनातनी मन्तव्यों का खण्डन करना आरम्भ किया तो व्यास जी से भी इनका शास्त्रार्थ हुआ। इस सम्बन्ध में व्यास जी स्वयं लिखते हैं—

स्वामी से प्रथम हमारा वेदान्त पर शास्त्रार्थ हुआ, पर जब उनका पक्ष झुकने लगा तो वे हमारी संस्कृत भाषा में अशुद्धियां निकालने लगे। अगले दिन हमने स्वामी जी की संस्कृत में व्याकरण की अनेक अशुद्धियां निकालकर उनको दिखाईं तो वे बहुत क्रुद्ध हुये तथा अण्ड-बण्ड कहा, परन्तु शीघ्र ही हमने 'अबोध-निवारण' नामक ग्रन्थ लिख कर स्वामी जी की संस्कृत भाषा की अशुद्धियां निकालीं। यह ग्रन्थ पहिले काशी में 'भारतजीवन' पत्रिका में और उसके बाद भागलपुर से पुस्तक रूप में छपा। इसी के साथ हमने 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन' अथवा 'पण्डितपछाड़' नामक ग्रन्थ लिखा।[1]

काशी कवियों, साहित्यिकों और विद्वानों की नगरी तथा विद्या का केन्द्र है। व्यास जी के समय में संस्कृत एवं हिन्दी के अनेक कवि-समाज काशी में विद्यमान थे। ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा, भागवतसुधावगाहिनी सभा, संस्कृत-समाज आदि समाजों के व्यास जी सक्रिय सदस्य थे।[2] सम्वत् १९३८ में ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के सदस्य

---

१. 'निजवृत्तान्त' पृ० २७।
२. 'सरस्वती' फरवरी १९०१।

पण्डितों ने व्यास जी को एक घटिका अर्थात् २४ मिनट में १०० श्लोक बना लेने के कारण 'घटिकाशतक' की उपाधि दी।

व्यास जी ने बल्लभ-मत के ग्रन्थों का भी अध्ययन किया था। एक बार बल्लभ-मत के प्रसिद्ध विद्वान् गोस्वामी १०८ श्री गोविन्दलाल महाराज काशी आये। वे अपने मत के ग्रन्थों पर व्यास जी के शास्त्रार्थ पर अत्यन्त प्रसन्न हुये। इन्हीं दिनों पोरबन्दर के गोस्वामी बल्लभकुलावतंस १०८ श्री जीवनलाल जी भी काशी आये। आप अपने मत के ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहते थे। व्यास जी से परिचय होने पर इनके वे शिष्य बने। गोस्वामी जी के साथ व्यास जी कलकत्ते गये। वे वहां तीन मास तक रहे। कलकत्ते में गोस्वामी जी बड़ा बाजार में ठहरे। यहां नित्य धार्मिक सभायें होती थीं और गोस्वामी जी से उनके मतविषयक प्रश्न पूछे जाते थे। गोस्वामी जी की ओर से व्यास जी उत्तर देते थे। अन्ततः व्यास जी के व्याख्यानों का प्रबन्ध किया गया और उन्होंने ईश्वर-सत्ता आदि सनातन धर्म के विषयों पर २८ व्याख्यान दिये। आपने बंगदेश के पण्डितों से गहन शास्त्रार्थ किये और अनेक प्रकार के कौशल दिखाये। इन सब का वृत्तान्त उस समय के कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले पत्रों 'सारसुधानिधि', 'भारतमित्र' और 'उचितवक्ता' में प्रकाशित हुआ।[१]

कलकत्ते से काशी वापिस आकर व्यास जी ने 'वैष्णव-पत्रिका' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया।[२] यह पत्रिका निरन्तर घाटे में चली और इसके अधिक ग्राहक नहीं बन सके। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रेरणा से सम्वत् १९४१ में व्यास जी ने इसे 'पीयूषप्रवाह' के नाम से प्रकाशित किया।

पिता के देहावसान के पश्चात् व्यास जी पर बहुत अधिक ऋण हो गया और आजीविका के स्थायी साधन न होने से वे बहुत कष्ट में रहे। आपको क्वींस कालेज के प्रिंसिपल ने दरभंगा जिले के मधुबनी नामक स्थान पर ३५ रुपये माहवार वेतन पर संस्कृत स्कूल का अध्यक्ष बना कर भेज दिया[३]। बिहार प्रान्त में आपने संस्कृत की उन्नति और प्रचार के लिये बहुत उद्योग किया तथा बिहार-संस्कृत-संजीवन समाज की स्थापना करके संस्कृत की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया।

इस समय तक व्यास जी ने संस्कृत तथा हिन्दी में कुछ पुस्तकें लिख ली थीं। इस लेखनकार्य को आपने प्रगति दी। सांख्य दर्शन का 'तर्कसंग्रह' के समान कोई सरल ग्रन्थ न देख कर पिता की प्रेरणा से व्यास जी ने संस्कृत में 'सांख्यसागरसुधा' लिखी थी। इस पर इनके शिष्य पं० महावीरप्रसाद पाण्डे ने भाषाटीका लिखी, जो

---

१. 'सरस्वती' फरवरी १९०१
२. वही।
३. वही।

सम्वत् १९५२ में भागलपुर के व्यास-यन्त्रालय से प्रकाशित हुई। 'योगसूत्र' पर आपने 'पातंजलसूत्रकारिका' (पातंजलप्रतिबिम्ब) लिखी थी, जो सम्वत् १९४८ में प्रकाशित हुई। रासलीला को नाटक रूप में परिणत करने के लिये लिखी गई 'ललिता-नाटिका' पहिले 'उचितवक्ता' नामक पत्रिका में तथा बाद में सम्वत् १९४० में हरिप्रकाश-यन्त्रालय काशी से मुद्रित हुई। व्यास जी की गणित में भी पर्याप्त रुचि थी। रेखागणित को कण्ठस्थ करने के लिये आपने 'रेखागणित-सार' की रचना की। अनेक कौतुकों तथा इन्द्रजाल का व्यसन होने से 'तासकौतुक-पचीसी' तथा 'महातास-कौतुकपचासा' लिखी। शतरंज पर 'चतुरंग-चातुरी' नामक पुस्तक की रचना की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कृत 'संस्कृत-ऋजु-पाठ' का भाषानुवाद करके उसे हरिप्रकाश-यन्त्रालय काशी में छपाया और 'रसीली-कजरी' नामक एक छोटा सा गीतों का संग्रह प्रकाशित किया। बाबू हरिश्चन्द्र के 'वेश्या-स्तोत्र' की शैली पर 'द्रव्य-स्तोत्र' बनाया। कलकत्ते में रहते हुये 'गोसंकट' नाटक लिखा, जो 'उचितवक्ता' में छपा। इसका अंग्रेजी अनुवाद सम्वत् १९४३ में खड्गविलास-यन्त्रालय बांकीपुर से मुद्रित हुआ। ईश्वरकृष्ण-विरचित 'सांख्यकारिका' पर आपने भाषाटीका भी लिखी।

मधुबनी के संस्कृत-विद्यालय के अध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुये भी व्यास जी साहित्य-साधना और सनातनधर्म के प्रचार में संलग्न रहे। बालक रेखागणित सरलता से समझ सकें इस उद्देश्य से 'क्षेत्र-कौशल' पुस्तक लिखी जो सम्वत् १९४१ में चन्द्रप्रभा-यन्त्रालय काशी से प्रकाशित हुई। आपने 'आश्चर्यवृत्तान्त' नामक अद्भुत रस का उपन्यास हिन्दी भाषा में लिखा। यह 'पीयूषप्रवाह' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होने के बाद व्यास-यन्त्रालय, भागलपुर से सम्वत् १९५१ में पुस्तक रूप में छपा। कई छोटे छोटे नाटक 'संस्कृतसंताप,' 'देवपुरुषदृश्य' आदि लिखने प्रारम्भ किये। छन्दःशास्त्र पर 'छन्दःप्रबन्ध' नामक ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ किया। सम्वत् १९४० में व्यास जी मझौली गये। आषाढ़ का महीना था, मार्ग में ही रेल में आपने वर्षा पर ३५ कवित्त रचे तथा मझौली पहुँच कर १५ कवित्त और लिख कर 'पावस-पचासा' नामक पुस्तिका पूरी की। वापस लौटकर 'धर्म की धूम' नाम से भजनों की पुस्तिका और तैयार की। इसी वर्ष व्यास जी के छोटे भाई गौरी शंकर (गोविन्दराम) का १८ वर्ष की छोटी आयु में ही स्वर्गवास हो गया। अनुज की मृत्यु से व्यास जी बहुत विह्वल हुये तथा बहुत समय तक अकेले ही बैठे रहते थे। इस दुःखावस्था में आपने 'दुःखद्रुमकुठार' नामक पुस्तक लिखी। ६ जनवरी, १९८५ को काशी के रईस, हिन्दी भाषा के आधार, व्यास जी के परम शुभचिन्तक, सहायक और आत्मीय श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस नश्वर संसार को छोड़कर स्वर्ग सिधार गये। भारतेन्दु जी की मृत्यु से व्यास जी को हार्दिक शोक हुआ और आपने 'पीयूष-

प्रवाह' में उनके सम्बन्ध में कई लेख लिखे ।[1]

बिहार इन दिनों बंगाल प्रान्त का एक भाग था । बिहार सर्किल के स्कूलों के इन्स्पेक्टर उस समय जौनवेन सोमरेन पोप थे । ये संस्कृत स्कूल बन्द करवाना चाहते थे । जब वे मधुबनी के संस्कृत स्कूल का निरीक्षण करने आये तो व्यास जी ने निडरता से इनको संस्कृत स्कूल की आवश्यकता तथा संस्कृत शिक्षा की अनिवार्यता का महत्त्व बता कर संस्कृत अध्यापन की रीति समझाई । पोप साहब व्यास जी की युक्तियों और उनकी संस्कृत शिक्षण की अभिनव प्रणाली की योजना से अत्यधिक प्रभावित हुये । तत्कालीन संस्कृत शिद्या प्रणाली के दोष देखकर व्यास जी ने संस्कृत शिक्षा की व्युत्पादक अभिनव प्रणाली का आविष्कार किया था । यह प्रणाली उस समय लोगों को बहुत बुरी लगी, किन्तु इसी प्रणाली के प्रभाव से सैकड़ों विद्यार्थी प्रतिवर्ष परीक्षा में उत्तीर्ण होने लगे । इस प्रणाली को स्थिर करने के लिये व्यास जी किसी सभा की स्थापना करना चाहते थे । इस सम्बन्ध में पोप साहब का सहयोग प्राप्त करके आपने 'बिहार-संस्कृत–संजीवन' नामक सरकारी संस्था की स्थापना की । इस सभा द्वारा बिहार में संस्कृत का बहुत प्रचार हुआ और सैकड़ों विद्यार्थी संस्कृत-अध्ययन में संलग्न हुये । इस सभा की उन्नति के के लिये व्यास जी ने घूम घूम कर जनता और राजा-महाराजाओं से धन एकत्रित किया तथा सभा की सहायता के लिये दी गई वक्तृताओं का सारसंग्रह 'संस्कृत-संजीवनी-समाज' नामक पुस्तक में प्रकाशित किया । मधुबनी में व्यास जी ने अपना मकान बनवाना प्रारम्भ किया था, किन्तु बीच में ही उस में आग लग गयी और आपके अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ नष्ट हो गये ।

इससे व्यास जी खिन्न और उदास हो गये । दुःख के वशीभूत होकर आपने संस्कृत विद्यालय से त्यागपत्र दे दिया, किन्तु मित्रों के आग्रह से ६ मास का अवकाश लिया । बिहार के शिक्षाधिकारी आपको छोड़ना नहीं चाहते थे । आपको मुजफ्फरपुर के संस्कृत विद्यालय के प्रधान पण्डित का पद दिया गया और सम्वत् १९४३ (२६-६-१८८६) में आप वहां चले गये । यहां रहते हुये आपने अनेक ग्रन्थ लिखे । 'सुकवि सतसई', 'कलियुग और घी', बिहारी-विहार' 'मन की उमंग' (छोटे छोटे रूपकों का संग्रह) ग्रन्थ आपकी लेखनी से लिखे गये । 'दोषग्राही और गुणग्राही' पुस्तक भी आपने लिखनी प्रारम्भ की थी, पर वह समाप्त न हो सकी । सम्वत् १९४४ में इंग्लैण्ड की महारानी विकटोरिया का जुबली उत्सव सारे भारतवर्ष में मनाया गया । महारानी के उपहार के लिये आपने 'पुष्पवर्षा' नामक काव्य और 'भारत-सौभाग्य' नामक नाटक की रचना की ।

---

१. 'पीयूष-प्रवाह', जनवरी १९८५ ।

उस समय भारत में धार्मिक और सामाजिक सुधारों का उत्साह प्रबल था। बंगाल में ब्राह्मसमाज ने पुरातन संस्कारों की जड़ पर कुठाराघात करके नवीन जागृति का आलोक फैलाया था। ऋषि दयानन्द हिन्दू समाज को अन्धविश्वास, पराधीनता और पाखण्डों में निमग्न देखकर अत्यधिक पीड़ा का अनुभव करते थे। प्राचीन वैदिकधर्म और वेदशास्त्रों की दुर्दशा अन्तःकरण को व्यथित करती थी। ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्यसमाज ने हिन्दू जाति के पुनरुद्धार तथा हिन्दूधर्म के सुधार के प्रयत्न आरम्भ कर दिये थे। उस समय आर्यसमाजियों का धार्मिक उत्साह चरम सीमा पर था। आर्यसमाजी उपदेशक प्राचीन रूढ़ियों अन्ध-विश्वासों, मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अवतारवाद, तीर्थयात्रा, अस्पृश्यता, जन्म से वर्ण-व्यवस्था आदि का खण्डन करते थे और उनको हिन्दू जाति तथा वैदिक धर्म के पतन का कारण कह कर सच्चे वैदिक धर्म की स्थापना के लिये प्रयत्नशील थे। प्राचीन रूढ़ियों और सनातनधर्म में दृढ़ आस्था रखने वाले व्यास जी इन सुधारों को धर्म के विरुद्ध मानकर आर्यसमाजियों को नास्तिक कहते थे। आर्यसमाजियों ने बिहार में भी धार्मिक प्रचार प्रारम्भ किया। व्यास जी ने आर्यसमाज के प्रचार का खण्डन किया। बांकीपुर, मुजफ्फरपुर, भागलपुर आदि अनेक स्थानों पर आर्यसमाज के विरुद्ध भाषणों और शास्त्रार्थों द्वारा आपने सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की। इस सम्बन्ध में व्यास जी लिखते हैं—

इन दिनों बिहार में कहीं कहीं आर्यसमाज के प्रचारकों ने मूर्तिपूजा, तीर्थ-यात्रा आदि की निन्दा कर सनातन-धर्मावलम्बी सत्पुरुषों के हृदय में आघात पहुँचाना आरम्भ किया था, सो सज्जनों की प्रार्थनानुसार मध्य मध्य में स्थानान्तर में जा जा कर निजवक्तृता और शास्त्रार्थ आदि द्वारा उस कलही मत के फैलाये क्लेश को हटाने की मुझे भी झक चढ़ गई थी और जहां जहां मैं उपदेश करता था, वहां के कितने ही नास्तिक पुनः आस्तिक हो जाते थे।

व्यास जी ने न केवल बिहार में किन्तु भारतवर्ष के अनेक भागों में घूम-घूम कर धर्म का प्रचार किया। सम्वत् १९४४ में हरिद्वार में भारत-धर्म-महामण्डल का प्रथम अधिवेशन हुआ, जिसमें व्यास जी को सादर निमन्त्रित किया गया और धार्मिक सेवाओ के उपलक्ष्य में उनको 'बिहार–भूषण' की उपाधि प्रदान की गई। सम्वत् १९४८ में देहली में पुनः भारत-धर्म-महामण्डल का अधिवेशन हुआ जिसमें आपको बिहार–भूषण उपाधि के साथ ही महाराज मिथिलेश्वर के व्यय से एक स्वर्णपदक भी प्राप्त हुआ। सम्वत् १९५१ में कांकरौली-नरेश ने आपको भारतरत्न उपाधि सहित स्वर्णपदक प्रदान किया और इसके दो वर्ष पश्चात् बम्बई के बल्लभ-सम्प्रदाय के गोस्वामी घनश्यामलाल जी ने महासभा करके आपको भारत-भूषण उपाधि सहित स्वर्णपदक भेंट किया। अयोध्यानरेश ने आपको 'शतावधान' पद सहित स्वर्ण–

पदक तथा सम्मान-पत्र प्रदान किया । आपको अन्य भी अनेक प्रशंसापत्र और सम्मानपत्र विभिन्न स्थानों से प्राप्त हुये ।

धर्मप्रचार के लिये व्यास जी ने भारतवर्ष के अनेक स्थानों का अनेक बार भ्रमण किया । सम्वत् १९४३ में आप पुष्कर और अपने जन्मस्थान जयपुर गये। सम्वत् १९४३ में कलकत्ता से हरियाणा तक यात्रा की । सम्वत् १९५० में अवकाश लेकर देशभ्रमण के लिये चल पड़े और डुमरांव, गया, बम्बई आदि स्थानों पर होते हुए पटना वापिस आये । सम्वत् १९५१ में आपने पश्चिम की ओर जाने का कार्यक्रम बनाया तथा डेढ़ वर्ष में लौटे । आपने गोस्वामी जीवनलाल जी के साथ पंजाब की ओर यात्रा की । सहारनपुर, अमृतसर, लाहौर, वजीराबाद आदि स्थानों पर होते हुये आप डेराइस्माइल खां पहुँचे । यहां कुछ दिन ठहर कर सक्खर आदि स्थानों पर होते हुये डेरागाजीखां पहुँचे । डेरागाजीखां में व्यास जी आन्त्रज्वर से पीड़ित होकर लगभग तीन मास तक पड़े रहे । स्वस्थ होने पर मुलतान पहुँचे । मुलतान में आपने धूमधाम से सभायें कीं । आपके घटिकाशतक और शतावधान कौशलों को देख कर पण्डितों ने प्रशंसापत्र दिया । मुलतान से शिकारपुर, रोड़ी, सक्खर, सेवन, अहमदपुर आदि स्थानों पर धर्मप्रचार करते हुये नगरठट्ठा पहुँचे । इस स्थान पर आपको वापिस आने के लिये तार मिला, अतः काशी वापिस आ गये । इन यात्राओं के विवरण व्यास जी ने स्वयं लिखे थे, परन्तु वे अपूर्ण रह गये और प्रकाशित न हो सके । व्यास जी के पश्चात् उनकी अनेक पाण्डुलिपियों के साथ ही इन यात्रा-विवरणों की पाण्डुलिपियां भी नष्ट हो गईं ।

सम्वत् १९४४ में व्यास जी भागलपुर के जिलास्कूल में ५० रुपये मासिक पर नियुक्त किये गये । भागलपुर रहते हुये भी आपकी साहित्य-साधना चलती रही । पोप साहब के अनुरोध से आपने संस्कृत भाषा सीखने के लिये कुछ प्रारम्भिक पुस्तकों की रचना की । आपकी 'कथाकुसुम', रत्नाष्टक,' और 'बाल व्याकरण' नामक पुस्तकें बिहार में पाठ्य पुस्तकों के रूप में नियत की गईं । आपने 'संस्कृत-अभ्यास पुस्तक' दो भागों में लिखी । यह पुस्तक संस्कृत भाषा सीखने वालों के लिये अत्यन्त उपयोगी है । बिहार-संस्कृत-संजीवन समाज की उन्नति के लिये भी आप निरन्तर प्रयत्न करते रहे । आपने यहां एक प्रेस खरीद लिया, जो जीवन भर आपकी चिन्ता का ही कारण रहा ।

उस समय साहित्यिकों में उपन्यास लेखन की प्रवृति बढ़ रही थी । व्यास जी की संस्कृत में एक उपन्यास लिखने की चिरकाल से इच्छा थी । भागलपुर रहते हुये उन्होंने सम्वत् १९४५ में 'शिवराजविजय' नामक उपन्यास छत्रपति शिवाजी के चरित्र के आधार पर लिखना प्रारम्भ किया । यह उपन्यास सम्वत् १९४८ में पूरा

हुआ। उपन्यास का प्रकाशन पर्याप्त व्यय की अपेक्षा रखता था, किन्तु उन्हें कोई ऐसा गुणग्राही नहीं मिला जो धन व्यय करके इसे प्रकाशित करा देता। हथुआ-नरेश, कांकरौली-नरेश आदि अनेकों व्यक्तिओं ने उसे छपवाने की प्रतिज्ञा की, किन्तु छपवाया नहीं। व्यास जी के जीवन भर 'शिवराजविजय' छपवाने के लिये चिन्तित रहे, किन्तु जीवन काल में उनकी यह अभिलाषा पूरी न हो सकी। व्यास जी के दिवंगत होने के पश्चात् सम्वत् १६५८ (सन् १६०१) में 'शिवराजविजय' का प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ।

व्यास जी ने मौलिक रचनाओं के निर्माण के साथ ही संस्कृत काव्यों का अनुवाद करना भी प्रारम्भ किया था। 'अभिज्ञानशकुन्तलम्' और 'वेणीसंहार' का अनुवाद करके आपने इसे 'पीयूषप्रवाह' में छापना आरम्भ किया शा किन्तु यह कार्य अपूर्ण ही रहा। सम्वत् १६४८ में आपने 'मूर्तिपूजा', 'हो हो होरी' 'झूलन झमंक', 'पुष्पोपहार' नामक छोटी छोटी पुस्तकें और 'स्वर्गसभा' नाम से एक छोटा सा हिन्दी उपन्यास भी लिखा। आपने सम्वत् १६४२ में 'बिहारी—सतसई' के दोहों पर कुण्डलीमय ग्रन्थ 'बिहारी-विहार' लिखना आरम्भ किया। यह ग्रन्थ सम्वत् १६४८ में पूर्ण हुआ। एक बार अयोध्या जाते हुये मार्ग में किसी ने इस ग्रन्थ की पाण्डुलिपि चुरा ली, किन्तु आपने बड़े परिश्रम से इसे पुनः लिख लिया। यह ग्रन्थ सम्वत् १६५५ में भारतजीवन-यन्त्रालय, काशी से मुद्रित हुआ। 'साहित्य-नवनीत' नामक एक पुस्तक का आपने सम्पादन किया, जिसमें अनेक विद्वानों के लेख प्रकाशित हुये। 'मरहट्टा' नामक एक नाटक की रचना भी आपने प्रारम्भ की, किन्तु यह पूर्ण न हो सका। संस्कृत में गद्यकाव्य की आलंकारिक विवेचना पूर्ण तथा आधुनिक युग के अनुरूप नहीं है, इस कमी को पूरा करने के लिये व्यास जी ने 'गद्यकाव्यमीमांसाकारिका' की रचना की। काशी नागरी प्रचारणी सभा की अनुमति से इसे आपने हिन्दी में 'गद्यकाव्यमीमांसा-भाषा' के नाम से रूपान्तरित किया। इस पुस्तक को नागरी प्रचारणी सभा ने प्रकाशित किया।

व्यास जी नागरी प्रचारिणी सभा के सदस्य थे। एक दिन सभा की बैठक में आपने प्रस्ताव रखा कि हिन्दी में त्वरित लेखन प्रणाली (short hand) की परम आवश्यकता है। आपने बताया कि इस विषय पर वे नियम आदि की सम्पूर्ण रचना कर चुके हैं और इसे कुछ व्यक्तियों को सिखलाना चाहते हैं, तदन्तर यह विद्या प्रसिद्ध हो जावेगी। इस प्रस्ताव पर सभा के सदस्यों ने एक पारितोषिक नियत किया कि जो व्यक्ति त्वरित लेखन प्रणाली में उत्तम होगा और सभा को सन्तुष्ट करेगा, सभा द्वारा उसे पारितोषिक दिया जावेगा। इस प्रयोजन से व्यास जी ने 'चटपट प्रणाली' नामक छोटी सी पुस्तिका लिखी। अस्वस्थ हो जाने के कारण

वे इस पद्धति को न तो किसी को सिखा सके और नाहीं किसी ने इसे सीखने का उद्योग किया । इस प्रकार यह विद्या उनके हृदय में ही रह गयी और कुछ समय पश्चात् उनके दिवंगत होने पर लुप्त हो गई ।[1]

सम्वत् १९५३ में व्यास जी का स्थानान्तरण भागलपुर से छपरे को हुआ । यहां व्यास जी सन्तुष्ट और प्रसन्न रहे । इस समय तक व्यास जी के एक पुत्र और एक कन्या हो चुके थे । कन्या का आपने विवाह कर दिया था । पुत्र की आयु सात वर्ष की थी । छपरे में भी व्यास जी साहित्य–साधना और धर्मप्रचार में संलग्न रहे ।

कुछ समय बाद व्यास जी को उदर की पुरानी व्याधि ने दुःखी करना प्रारम्भ किया । सम्वत् १९५६ में व्यास जी को १०० रुपया मासिक वेतन पर पटना कालेज में प्रोफेसर का पद दिया गया, किन्तु अस्वस्थ हो जाने के कारण वे इस पद पर कार्य न कर सके । दीर्घकाल तक व्यास जी का शरीर उदररोग की पीड़ा को सहन करने में समर्थ न हो सका और अन्त में बिहार–भूषण, भारत–रत्न, संस्कृत भाषा के अनन्य प्रेमी, हिन्दी भाषा के महान् भक्त, सनातनधर्म के दृढ़ पुजारी, साहित्याचार्य, घटिकाशतक, शतावधान पं० अम्बिकादत्त व्यास ४१ वर्ष की स्वल्प आयु में १९ नवम्बर, सन् १९०० के दिन इस नश्वर जगत् को त्याग कर सभी साहित्यप्रेमियों और धर्मानुरागियों के हृदयों को शोकसन्तप्त करते हुये देवलोक को प्राप्त हुये[2] ।

व्यास जी के देहावसान से हिन्दी समाज, संस्कृत साहित्य और धर्मसमाज को, विशेष कर काशी और बिहार प्रान्त को बहुत क्षति हुई । इसका पूर्ण होना अत्यन्त कठिन था । साहित्यिकों तथा धर्मप्रेमियों ने सभायें करके दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की ।[3] काशी नागरी प्रचारणी सभा के सभ्यों ने अधिवेशन करके निश्चय किया कि पं० अम्बिकादत्त व्यास का एक बड़ा चित्र सभाभवन में लगाया जावे और उनके अप्रकाशित साहित्य के मुद्रण की भी यथासाध्य व्यवस्था की जावे । सभा ने यह निश्चय किया कि व्यास जी के पुत्र (जिसकी अवस्था ११–१२ वर्ष की थी) की शिक्षा आदि का समुचित प्रबन्ध किया जावे ।[4] 'सुदर्शन' नामक मासिक पत्र के सम्पादक ने मार्च १९०१ के अंक में यह प्रस्ताव किया कि पं० अम्बिकादत्त व्यास की स्मृति में 'व्यास पुस्तक माला' नाम से एक पुस्तक-

---

१. 'सरस्वती' फरवरी १९०१ ।
२. 'सरस्वती' फरवरी, १९०१ ।
३. 'सरस्वती' फरवरी, १९०१ ।
४. 'सरस्वती' जुलाई, १९०१ ।

माला के प्रकाशन का प्रबन्ध किया जावे, जिसमें हिन्दू धर्मशास्त्रों के मुद्रण की व्यवस्था हो। यह कार्य काशी नागरी प्रचारणी सभा को अपने हाथ में लेना चाहिए। इस कार्य से एक तो व्यास जी का स्मारक स्थापित हो जावेगा और दूसरे सर्व-साधारण हिन्दू जनता में धर्म का प्रचार होगा। किन्तु इस प्रस्ताव को किसी ने स्वीकार नहीं किया।[1]

व्यास जी ने अपनी स्वल्प आयु में ही संस्कृत और हिन्दी भाषा में प्रचुर साहित्य का निर्माण किया था एवं स्वरचित अनेक ग्रन्थ स्वयं ही प्रकाशित किये थे। किन्तु उनकी मृत्यु के समय अनेक ग्रन्थ अमुद्रित ही रह गये। आपके प्रकाशित ग्रन्थों का संग्रह और अमुद्रित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियां मान मन्दिर, काशी स्थित मकान में रहीं। व्यास जी के देहावसान के समय उनके पुत्र राधाकुमार की अवस्था छोटी ही थी। न तो वे ग्रन्थों की समुचित रक्षा करने में समर्थ थे और नाहीं काशी की किसी सभा ने उनकी सुरक्षा का प्रबन्ध किया। ग्रन्थों की बन्धी हुई अनेक गांठों में दीमक लग गई और घर की स्त्रियों द्वारा वे बिना किसी हिचक के गंगा में प्रवाहित कर दी गयीं। राधाकुमार की शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध नहीं हुआ। उनमें अपने पिता के सदृश प्रतिभा भी न थी। इस कारण अम्बिकादत्त व्यास द्वारा प्रारम्भ किया गया कार्य उनके साथ ही समाप्त हो गया। फिर भी राधाकुमार व्यास ने होश सम्भालने पर अपने पिता की कुछ पुस्तकों को प्रकाशित करने का प्रबन्ध अवश्य किया। पं० राधाकुमार के भी एक ही पुत्र हुये-कृष्णकुमार। पं० राधाकुमार व्यास की मृत्यु के समय उनके पुत्र की अवस्था ९ वर्ष की थी और वे अभी नासमझ बालक थे। उनको भी योग्य शिक्षा का अवसर प्राप्त नहीं हो सका। पं० राधाकुमार के समय में व्यास जी का जो साहित्य बच भी रहा था उसमें से भी बहुत सा कृष्णकुमार के बाल्यकाल में नष्ट होगया। इस प्रकार पं० अम्बिकादत्त व्यास की मुद्रित और अमुद्रित पुस्तकों के संग्रह बहुत कुछ नष्ट हो गये। पं० कृष्णकुमार व्यास ने होश सम्भालने पर अवशिष्ट पुस्तकों के संरक्षण का स्तुत्य प्रयत्न किया। किन्तु इस समय तक व्यास जी के साहित्य की सभी पाण्डुलिपियां नष्ट हो चुकी थीं। इनमें केवल 'शिवविजय' जो सम्भवतः 'शिवराजविजय' का पूर्वरूप था, उसकी द्वितीय विराम तक की ही पाण्डुलिपि सुरक्षित रह सकी है। अनेक मुद्रित पुस्तकों की एक भी प्रति इस समय प्राप्त नहीं है।[2]

व्यास जी ने 'बिहारी-विहार' के अन्तिम भाग में स्वरचित ग्रन्थों की सूची

---

१. सुदर्शन (मासिक पत्र) मार्च, १९०१।

२. व्यास जी के पौत्र पं० कृष्णकुमार व्यास से प्राप्त जानकारी के आधार पर।

दी है । इसमें उनके द्वारा सम्वत् १९५४ तक लिखे गये ग्रन्थों की सूची है । व्यास जी कर्मनिष्ठ, परिश्रमी और प्रतिभावान् व्यक्ति थे । सम्वत् १९५४ के पश्चात् भी आपने निश्चित रूप से साहित्य की रचना की होगी और अपने अपूर्ण ग्रन्थों को भी पूरा करने का प्रयत्न किया होगा । व्यास जी के पश्चात् किसी साहित्य प्रेमी व्यक्ति ने अथवा सभा ने उनके ग्रन्थों की सुरक्षा तथा संग्रह की ओर ध्यान नहीं दिया, अतः उनके पश्चात् उनके साहित्य का पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं होता ।

४. व्यक्तित्व और कृतियां

युग की साँस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ अपनी कुल परम्परा, शिक्षा और संगति के समन्वय से विकसित व्यास जी का व्यक्तित्व उनकी कृतियों में स्पष्ट रूप से झलकता है । व्यास जी का जन्म कट्टर सनातनमतावलम्बी और विद्वान् ब्राह्मण कुल में हुआ । आपके दादा राजाराम प्रसिद्ध विद्वान और कर्मकाण्डी ब्राह्मण थे । पिता दुर्गादत्त अनेक शास्त्रों का परिज्ञान रखने के साथ कुशल कवि थे और पुस्तक-रचना में गहन रुचि रखते थे । व्यास जी पर इस कुलपरम्परा का प्रभाव अच्छा ही पड़ा था । पिता द्वारा संस्कृत और हिन्दी की योग्य शिक्षा प्रदान किये जाने के कारण तथा कविता की रचना करने के लिये प्रोत्साहन दिये जाने से व्यास जी को कवियों के समाज में प्रचुर आदर प्राप्त हुआ । व्यास जी के सहयोगी और मित्र भी प्रायः विद्याप्रेमी, कवितानुरागी और हिन्दू धर्म के प्रति आस्था रखने वाले थे । इस प्रकार की संगति ने व्यास जी की भावनाओं को प्रवुद्ध किया था ।

व्यास जी ने घर पर और विद्यालयों में संस्कृत पढ़ने के साथ ही बनारस कालेज के एंग्लो-संस्कृत विभाग में शिक्षा प्राप्त की और अंग्रेजी का रुचिपूर्वक अध्ययन किया । आपकी रुचि अन्य अनेक विषयों के प्रति भी थी जिससे आपकी प्रतिभा संस्कृत और हिन्दी के काव्य–साहित्य तक सीमित न रह कर दर्शन, गणित, इतिहास और कौतुक आदि में भी स्फुटित हुई ।

धन की दृष्टि से व्यास जी का भाग्य प्रायः सदैव उनसे विमुख रहा । छोटी आयु से ही आपको धनोपार्जन की चिन्ता करनी पड़ी । इस कारण बाल्यकाल से ही कथा कहने के लिये बाध्य होने से आपको व्यास पद की प्राप्ति तो हुई ही, साथ ही आपकी भाषण–कला भी परिमार्जित हो गई । आपका शास्त्रार्थ करने का अभ्यास बढ़ गया । इस अभ्यास ने आपको तत्कालीन धर्मप्रेमी समाज में परम आदर का भाजन बनाया । आप प्रसिद्ध वक्ता और शास्त्रार्थी हो गये । आपने भारतवर्ष के अनेकों प्रदेशों में घूमकर धर्म का प्रचार किया ।

तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक सुधारों के प्रति आपका दृष्टिकोण

विरोधात्मक था । इन सुधारकों को आप नास्तिक समझते थे और इनका खण्डन करने के लिये सदैव तत्पर रहते थे । व्यास जी के लिये यह लिखना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि वे प्राचीन भारतीय संस्कृति के ज्वलन्त प्रतीक थे और उसकी रक्षा और प्रचार के लिये सदैव उद्योग करते रहे ।

व्यास जी ने भारतीय भाषाओं, विशेष रूप से हिन्दी और संस्कृत के प्रति अगा स्नेह और उत्साह प्रदर्शित किया था । आपने इन भाषाओं की उन्नति में क्रियात्मकध सहयोग दिया । नवीन साहित्य की रचना की, प्रकाशन–कार्य किया और भाषणों आदि से जनता को इन भाषाओं के प्रति प्रोत्साहित किया। संस्कृत और हिन्दी में गद्य और पद्य दोनों प्रकार का साहित्य लिखा । व्यास जी की शिक्षा का क्षेत्र बिहार अधिक रहा । साहित्याचार्य की उपाधि प्राप्त करने के पश्चात् मधुबनी की संस्कृत पाठशाला का अध्यक्ष पद प्राप्त करके आप बिहार प्रदेश के ही भिन्न भिन्न विद्यालयों में अध्यापन का कार्य करते रहे । अन्तिम समय में आप पटना कालेज के प्रोफेसर नियुक्त हुये थे । बिहार में आपने संस्कृत की उन्नति और प्रसार के लिये बहुत उद्योग किया । विद्यार्थियों के संस्कृत सीखने के लिये प्रारम्भिक संस्कृत पुस्तकों की रचना की और 'बिहार-संस्कृत-संजीवन समाज' द्वारा स्थान स्थान पर जाकर संस्कृत के लिए जनमानस को प्रेरणा दी ।

आप पूर्ण रूप से राजभक्त थे । आपने अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा की और अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने वालों की निन्दा की ।[1] अंग्रेजी राज्य तथा तत्कालीन ब्रिटिश साम्राज्ञी विक्टोरिया की प्रशंसा में, आपने गीत और नाटक लिखे । आप अंग्रेजों की धार्मिक नीति से पूर्णतः सन्तुष्ट थे । यह आश्चर्य की बात है कि व्यास जी की रचनाओं में अर्थनीति का स्पर्श नहीं है, यद्यपि उस समय के कवियों ने अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा करते हुये भी उनकी अर्थनीति की निन्दा की थी ।[2] व्यास जी ने इस बिन्दु की सर्वथा उपेक्षा करके अपने आपको आर्थिक प्रश्न से अछूता रखा है और अपने सुखपूर्वक रहने का कारण मलिका विक्टोरिया को माना है ।[3]

व्यास जी की देशभक्ति का उद्देश्य विदेशियों से पूर्णतः स्वतन्त्र राज्य की स्थापना संभवतः नहीं रहा होगा । यदि धार्मिक स्वन्त्रता प्राप्त है तो वे विदेशियों के अधिपत्य को सहन करने में विशेष दोष नहीं देखते थे ।[4] आपकी रचनाओं में

---

१. व्यास जी कृत 'सुकविसतसई'-उपहार ।

२. अंग्रेज राज सुख साज सजै सब भारी ।
पै धन विदेस चलि जात इहै ख्वारी ।। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'भारत दुर्दशा' से ।

३. 'बिहारी-विहार'-निजवृत्तान्त पृ० १० ।।

४. 'शिवराजविजय' षष्ठ संस्करण पृ० १७० ।।

धार्मिक स्वतन्त्रता स्वीकार करने वाले और धार्मिक विश्वासों एवं अनुष्ठानों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करने की घोषणा करने वाले अंग्रेजी शासन के प्रति कहीं भी असन्तोष व्यक्त नहीं हुआ, अपितु उस शासन की प्रशंसा ही है । आपने मुसलिम आधिपत्य के प्रति अवश्य ही विद्रोह की भावनाओं को व्यक्त किया और इसका प्रधान कारण मुसलमानों की धार्मिक असहिष्णुता और हिन्दुओं का धार्मिक एवं सामाजिक उत्पीडन कहा । आपकी दृष्टि में केवल अकबर ही एक ऐसा मुसलमान शासक हुआ जो आदरणीय था, यद्यपि वह भी भारतवर्ष का गूढ़ शत्रु था ।[1]

व्यास जी सहृदय थे और उनमें कवियों के सभी गुण विद्यमान थे । आपमें कविता करने की जन्मजात प्रतिभा थी। बाल्यावस्था से ही आप अच्छी कवितायें बनाने लगे थे । आपको अपने पिता से कविता बनाने की शिक्षा और प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । आपने अनेक प्रकारों के लोक व्यवहारों और शास्त्रों में निपुणता प्राप्त करके उनका काव्यों में उपयोग किया । आप रसिक और परिहास प्रेमी थे । प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण में, पात्रों के मानसिक भावों को उभारने में, अलंकारों एवं छन्दों के प्रयोग में और रसनिष्पत्ति में सर्वत्र आपका नैपुण्य प्रकट होता है । आपके द्वारा विभिन्न प्रकार का साहित्य प्रसूत हुआ । पद्यकाव्य, गद्यकाव्य, मुक्तककाव्य, दृश्यकाव्य, लोकगीत आदि सभी आपकी लेखनी से प्रसूत हुये और सभी में भाषा की शुद्धता और प्रांजलता निहित है ।

व्यास जी के व्यक्तित्व को उनकी रचनाओं से पृथक् नहीं देखा जा सकता । उनके व्यक्तित्व और विचारों का प्रतिबिम्ब उनकी रचनाओं में परिलक्षित होता है । अतः उनके व्यक्तित्व और विचारों के साथ उनकी कृतियों का उल्लेख सर्वथा उपयुक्त है ।[2]

भक्त हृदय व्यास जी—

व्यास जी कट्टर सनातन मतावलम्बी ब्राह्मण थे । पुराणों और अन्य शास्त्रों में वर्णित सभी-देवताओं में उनकी आस्था थी । किसी विशेष देवता के प्रति विशेष भक्ति न होकर एक साधारण हिन्दू युवक के समान उनकी भक्ति सभी देवताओं के प्रति थी । देवताओं के प्रति भक्ति के कारण आपने भक्ति सम्बन्धी निम्न पुस्तकों की रचना की—

संस्कृत—गणेशशतक, सहस्रनामरामायण (स्तोत्रों सहित), रत्नपुराण (अपूर्ण) ।

---

१. 'शिवराजविजय' षष्ठ संस्करण पृ० २२ ।
२. व्यास जी कृतियों के उल्लेख में कुछ के साथ अपूर्ण लिखा हुआ है । यह विवरण व्यास जी द्वारा 'बिहारी-विहार' में प्रकाशित 'स्वरचित ग्रन्थों के बिवरण' से उद्धृत किया गया है ।

हिन्दी—शिवविवाह (अपूर्ण), घनश्यामविनोद (अपूर्ण), कंसवध (अपूर्ण), सुकविसतसई ।

प्रचारक व्यास जी—

पौराणिक विश्वासों पर आस्था रखने वाले व्यास जी ने अपने समय में प्रचलित सामाजिक मान्यताओं का विरोध करके सुधारों का प्रचार करने वाले सुधारकों के मन्तव्यों का खण्डन भाषणों, शास्त्रार्थों और पुस्तकों के लेखन द्वारा किया। अपने पक्ष की स्थापना के लिये खण्डनमण्डनात्मक साहित्य के साथ साथ अपना मन्तव्य प्रकाशित करने वाली पुस्तकें भी लिखीं। इस सम्बन्ध में आपकी निम्नलिखित रचनायें हैं—

संस्कृत—गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन, अवतारकारिका ।

हिन्दी—अबोध निवारण, पण्डित प्रपंच, दयानन्दमतमूलोच्छेद, कलियुग और घी, दोषग्राही और गुणग्राही (अपूर्ण)। मानसप्रशंसा, मूर्तिपूजा, वर्ण-व्यवस्था, आश्रमधर्मनिरूपण, अवतारमीमांसा ।

दार्शनिक व्यास जी—

व्यास जी ने भारतीय दर्शनों का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। आपने दर्शनों से सम्बन्धित पुस्तकों की रचना द्वारा अपने दार्शनिक विचार व्यक्त किये। आपने दर्शन-ग्रन्थों का अनुवाद भी किया था, जिसका उल्लेख अनुवाद के प्रकरण में किया गया है। व्यास जी की दर्शन सम्बन्धी निम्न रचनायें हैं—

संस्कृत—सांख्यसागरसुधा, पातंजलप्रतिबिम्ब, दुःखद्रुमकुठार ।

हिन्दी—ईश्वरेच्छा ।

रसिक हृदय व्यास जी—

व्यास जी स्वभाव से रसिक और साहित्यिक प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। आपकी रचनाओं में रस की धारा स्वाभाविक मधुरिमा के साथ व्यंजित होती है। स्वभाव के अनुसार इन गीतमयी रचनाओं में भी आपकी धार्मिक आस्थायें प्रकट हो गई हैं। इन गीतों में से अनेक गीत लोकगीतों के रूप में गाये जाने योग्य है। व्यास जी ने इस सम्बन्ध में निम्नलिखित रचनायें प्रस्तुत कीं—

हिन्दी—आनन्द मंजरी, रसीली कंजरी, धर्म की धूम, पावस पचासा, हो हो होरी, झूलन झमंक, बिहारी विहार ।

कौतुकी व्यास जी—

व्यास जी अनेक प्रकार के कौतुकों के शौकीन थे। अनेक प्रकार के कौतुक और क्रीड़ाओं के प्रति आपको बाल्यकाल से रुचि हो गई थी। आपके पिता दुर्गादत्त ने भी इस सम्बन्ध में आपका उत्साह-वर्धन करते हुये अनेक प्रकार के खेल सिखाने का प्रयत्न किया था। आप शतरंज के अच्छे खिलाड़ी थे और एक साथ आठ व्यक्तियों के साथ शतरंज खेल सकते थे।[1] इन कौतुकों के प्रति रुचि होने के कारण आप तत्सम्बन्धी साहित्यरचना की ओर प्रवृत्त हुये और निम्न पुस्तकों की रचना की—

हिन्दी—तास कौतुक पचीसी, महातास कौतुक पचासा, चतुरंग चातुरी।

हास्य-व्यंग्य-प्रिय व्यास जी—

व्यास जी कौतुक-प्रिय होने के साथ ही हास्य और व्यंग्य के प्रेमी थे। यद्यपि आपकी अनेक रचनाओं में हास्य और व्यंग्य के स्थल उपलब्ध होते हैं, तथापि निम्न रचनायें सम्भवतः इसी विशेषता से पूर्ण हैं—

संस्कृत—द्रव्य-स्तोत्र।
हिन्दी—पढ़े पढ़े पत्थर (अपूर्ण)।

प्रौढ़ विद्वान व्यास जी—

व्यास जी उच्च कोटि के विद्वान् थे। आपको कविता करने की रुचि स्वयं तो थी ही, आप यह भी चाहते थे कि अन्य व्यक्ति भी कविताओं की रचना और समस्या-पूर्ति करें। इस सम्बन्ध में आपने निम्न पुस्तकें लिखीं—

संस्कृत—कुण्डलीदीपक, समस्यापूर्ति-सर्वस्व (अपूर्ण)।

काव्यशास्त्री व्यास जी—

व्यास जी ने काव्यशास्त्र और छन्दःशास्त्र पर भी अपनी देन प्रस्तुत की। आपने काव्य का स्वरूप, गद्य का स्वरूप, गद्य काव्य के भेदों का विशद विवेचन किया और उपन्यास नामक विधा को बताया। इस सम्बन्ध में आपके निम्नलिखित ग्रन्थ हैं—

संस्कृत—छन्दःप्रबन्ध (अपूर्ण), अनुष्टुब्लक्षणोद्धार, गद्यकाव्यमीमांसाकारिका।
हिन्दी—गद्यकाव्यमीमांसा-भाषा।

संस्कृत प्रेमी व्यास जी—

व्यास जी का संस्कृत भाषा के लिये उत्कट स्नेह और उत्साह था। संस्कृत की उन्नति के लिये आपने निरन्तर प्रयास किया। बिहार में संस्कृत विद्यालयों के प्रधानपण्डित के पद पर कार्य करते हुये आपने तत्कालीन बिहार-सर्किल के एजुकेशन

१. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाती बाबू ब्रजकृष्णदास से प्राप्त जानकारी के आधार पर।

इंस्पेक्टर पोप महोदय के सहयोग से बिहार-संस्कृत-समाज की स्थापना की। संस्कृत के प्रचार के लिये किये गये भाषणों का संग्रह आपने बिहार-संस्कृत-संजीवन नामक पुस्तक में किया। संस्कृत भाषा सरलता से सीखी जा सके इस उद्देश्य से आपने संस्कृत की प्रारम्भिक पुस्तकों की रचना की। इस सम्बन्ध में आपकी निम्नलिखित रचनायें हैं—

संस्कृत – रत्नाष्टक, कथाकुसुम, संस्कृत-अभ्यास-पुस्तक (दो भाग), प्राकृत-प्रवेशिका, बालव्याकरण।

राजभक्त व्यास जी—

व्यास जी के समय की राजनीतिक पृष्ठभूमि का उल्लेख करते हुये यह स्पष्ट किया जा चुका है कि तत्कालीन हिन्दू जनता तथा विद्वत्-समाज अंग्रेजों के प्रति राजभक्त था। व्यास जी अंग्रेजी राज्य के प्रशंसक थे आपकी रचनाओं में यह राजभक्ति स्थान स्थान पर परिलक्षित होती है। महारानी विक्टोरिया के जुबली महोत्सव पर अंग्रेजी राज्य के गुणों का गान करते हुये व्यास जी ने दो रचनायें प्रस्तुत कीं—

हिन्दी—भारत-सौभाग्य (नाटक), पुष्प-वर्षा (गीतकाव्य)।

एक अन्य पुस्तक 'पुष्पोपहार' भी व्यास जी ने हिन्दी और संस्कृत दोनों भाषाओं में लिखी थी, किन्तु यह पुस्तक उपलब्ध नहीं हो सकी है। सम्भवतः इसमें भी अंग्रेजी राज्य की प्रशंसा होगी।

देश और धर्म के भक्त व्यास जी—

व्यास जी की देशभक्ति धार्मिक स्वतन्त्रता का रूप थी। यदि राज्य में धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो तो आप विदेशी शासन को भी सहन करने के लिये सहमत थे।[1] मुसलमानों के राज्य में हिन्दू जनता पर किये गये अत्याचारों के वर्णनों ने आपके हृदय में मुसलमानों के विरुद्ध भावनाओं का संचार किया होगा। तत्कालीन अनेक कवियों की रचनाओं में यह मुसलिम-विद्वेष स्पष्ट रूप में झलकता है।[2] इन कवियों के सम्पर्क में रहने वाले व्यास जी पर इस प्रकार का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। गौ-वध करने वाले मुसलमानों को व्यास जी कभी क्षमा नहीं कर सकते थे। आपका यह

---

१. 'शिवराजविजय' षष्ठ संस्करण पृ० १७० ।

२. (अ) जहाँ बिसेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर।
तहाँ मसजिद बन गई होत अब अल्ला अकबर ।। भारतेन्दु कृत 'प्रबोधिनी' से।

(ब) अंगरेजन के राज जबनगण, रहे नवाबी ठान हो।
अबको अपने त्यौहारन में कियो घोर अपमान हो।
जब ताजिय क्वार में परि है तब नहि बचि है प्राण हो,
हिन्दू सब अपने रंग माते, समझै लाभ न हानि हो ।। प्रतापनारायध मिश्र।

भाव 'गो-संकट' नाटक में स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ है। उस युग में मुसलमानों के अत्याचारों के विरुद्ध हिन्दुओं के गौरव को ऊंचा उठाने वाली कृतियां अनेक भाषाओं में अनेक लेखकों ने लिखीं। बंगाल के बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय और रमेशचन्द्र दत्त ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में मुसलिम आधिपत्य के विरुद्ध विद्रोह करने वाले राजपूताना और महाराष्ट्र के वीरों के चरित्र निबद्ध करके इस भावना को प्रोत्साहित किया। इन रचनाओं ने व्यास जी को भी प्रभावित किया होगा। व्यास जी ने अपने जीवन में ही मानमन्दिर मोहल्ले के समीप स्थित विश्वनाथ जी के मन्दिर के बराबर बनी हुई ज्ञानवापी मसजिद के रूप में मुसलिम अत्याचारों के दर्शन किये होंगे। हिन्दुओं के धार्मिक उत्सवों पर मुसलमानों द्वारा झगड़ा करने और गोकुशी का प्रयत्न करने के भी दृश्य देखे होंगे। इन दृश्यों को देखकर तथा मुसलिम आधिपत्य में हिन्दु जनता पर किये गये दारुण अत्याचारों का स्मरण करके आपका हृदय तीव्र वेदना से व्यथित हो जाता होगा। इन कारणों से धार्मिक विश्वासों में हस्तक्षेप न करने की अंग्रेजों की घोषणा ने आप में उस देशभक्ति और राजभक्ति को जन्म दिया जहां धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। मुसलमानों के प्रति आपकी तीव्र आक्रोश की भावना आपके संस्कृत उपन्यास 'शिवराजविजय' में स्पष्ट रूप से झलकती है।

व्यास जी की बहुमुखी रुचि और प्रतिभा—

व्यास जी की प्रतिभा केवल संस्कृत और हिन्दी के काव्यसाहित्य तक ही सीमित नहीं थी। आपने संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी और बंगला भाषा का भी अध्ययन किया था। आपकी 'मूर्तिपूजा' पुस्तक हिन्दी के अतिरिक्त बंगला में भी लिखी गई थी। साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त आपने वैज्ञानिक विषयों का भी अध्ययन किया था। इतिहास, रेखागणित, चिकित्सा आदि से सम्बन्धित रचनायें आपने लिखीं। साहित्य की आलोचना और इतिहास पर आपने ध्यान दिया। कवियों को अपना जीवन-चरित स्वयं लिखना चाहिये इसका प्रतिपादन करते हुये अपना जीवन-वृतान्त लिखा। इस सम्बन्ध में व्यास जी की निम्न रचनायें हैं —

संस्कृत—इतिहास संक्षेप (अपूर्ण), रेखागणित (श्लोकबद्ध)।

हिन्दी—चिकित्सा चमत्कार (अपूर्ण), क्षेत्र कौशल, रेखागणित भाषा (अपूर्ण), बिहारी-चरित्र तथा बिहारी-व्याख्या की चरितावली, स्वामिचरित, निजवृत्तान्त।

भ्रमण के शौकीन व्यास जी—

व्यास जी की भ्रमण में बहुत अधिक रुचि थी। जैसा कि व्यास जी के जीवनचरित से स्पष्ट है, आपने अपने जीवन में अनेक यात्रायें कीं। आपकी इन यात्राओं का प्रधान उद्देश्य धर्मप्रचार था। आपने भारत की विभिन्न यात्राओं

के विवरण पुस्तक के रूप में निबद्ध किये। व्यास जी के ये विवरण न तो पूर्ण हो सके और न अब उपलब्ध हैं। आपने निम्नलिखित पुस्तकें लिखनी आरम्भ की थीं—

हिन्दी—पश्चिम यात्रा, रांची यात्रा।

नाटककार व्यास जी—

नाटकों की रचना में भी व्यास जी कुशल थे। आपने संस्कृत तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में नाटकों की रचना की। १६ वर्ष की छोटी आयु में ही आपने 'सामवतम्' जैसा उच्च कोटि का संस्कृत नाटक लिखना आरम्भ कर दिया था। आपके नाटकों में तत्कालीन समस्याओं को भी सुलझाने का प्रयास किया गया है। यथा—'गोसंकट' नाटक में आपने गोवध की समस्या का हल दिया है कि राज्य को इसे कानूनन बन्द कर देना चाहिये। आपने निम्नलिखित नाटक लिखे—

संस्कृत—सामवतम्, धर्माधर्मकलकलम्, मित्रालापः।

हिन्दी—भारत-सौभाग्य, गोसंकट, ललिता नाटिका, कलियुग और घी, भारत धर्म, संस्कृत-संताप, धर्मपर्व, देवपुरुष-दृश्य, जटिल-वणिक्, मरहट्टा नाटक (अपूर्ण)।

गद्यकाव्य-निर्माता व्यास जी—

व्यास जी ने गद्यकाव्य की रचना में अपनी कुशलता प्रदर्शित की है। आप आधुनिक उपन्यास का समावेश गद्यकाव्य में करते हैं। आपने निम्नलिखित उपन्यासों की रचना की—

संस्कृत—शिवराजविजय।

हिन्दी—आश्चर्यवृतान्त, स्वर्गसभा।

अनुवादक व्यास जी—

व्यास जी ने मौलिक ग्रन्थों की रचना के अतिरिक्त संस्कृत पुस्तकों के अनुवाद करने भी प्रारम्भ किये थे। आपने निम्नलिखित पुस्तकों के अनुवाद किये—

दर्शनग्रन्थ—सांख्यतरंगिणी, तर्कसंग्रह।

नाटक —अभिज्ञानशाकुन्तलम्, वेणीसंहार।

लघुकथायें —भाषाऋजुपाठ, कथाकुसुमकलिका।

सम्पादक व्यास जी—

व्यास जी सुयोग्य लेखक और कवि होने के साथ साथ सुयोग्य सम्पादक भी थे। आपने अपनी अनेक पुस्तकों को स्वयं सम्पादित करके प्रकाशित किया। आपने इस निमित्त से भागलपुर में अपना प्रेस ही खरीद लिया था। आपने 'साहित्य-नवनीत' नामक पुस्तक का सम्पादन करके इसमें लल्लूलाल, प्रतापनारायण मिश्र भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि कवियों की रचनाओं के कुछ भाग प्रकाशित किये

थे। इस पुस्तक के अवलोकन से ऐसा प्रतीत होता है कि आपका विचार इसे धारा-वाहिक रूप से प्रकाशित करने का रहा होगा। व्यास जी ने 'वैष्णव-पत्रिका' का प्रकाशन प्रारम्भ किया था, किन्तु परिस्थितियों के कारण सन् १८८४में यह 'पीयूषप्रवाह' के नाम से प्रकाशित किया जाने लगा।

व्यास जी की कृतियों के अध्ययन के लिये उनके अध्ययन की आवश्यकता और उस युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार करना अपेक्षित था, अतः इस अध्याय में अध्ययन की आवश्यकता पर विचार करके उनके युग की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक परिस्थितियों का संक्षेप में निरूपण किया गया है। प्रत्येक कवि का व्यक्तित्व उसकी रचनाओं में परिलक्षित होता है, इस कारण व्यास जी के जीवन-वृत का निरूपण करने के पश्चात् उनके व्यक्तित्व की विशेषताओं के आधार पर विषयानुसार वर्गीकरण करते हुये उनकी रचनाओं के नामों का परिगणन है। इस आधारभूमि के निर्माण के अनन्तर अब व्यास जी के साहित्यिक प्रयासों की आलोचना का भवन सम्यक् रूप से निर्मित किया जाता है। सर्वप्रथम उनकी सबसे प्रसिद्ध कृति 'शिवराजविजय' का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

———

द्वितीय अध्याय

शिवराजविजय (१)

संस्कृत गद्य-काव्य को परम्परा में एक नवोन प्रयोग

व्यास जी की कृतियों में 'शिवराजविजय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास के सबसे उत्कृष्ट और महत्व पूर्ण होने से सबसे पूर्व 'शिवराजविजय' का अध्ययन प्रारम्भ किया जा रहा है। 'शिवराजविजय' के ऐतिहासिक उपन्यास के रूप में संस्कृत गद्य-काव्यों की परम्परा में एक नवीन प्रयोग होने के कारण इस दृष्टि से इस पर विचार करना उपयोगी है। अतः यहां गद्य-काव्य के शास्त्रीय विवेचन में व्यास जी की देन, व्यास जी के प्रयोग की मूल प्रेरणायें और प्रयोग के रूप में 'शिवराजविजय' की नवीनतायें, इन विषयों पर विचार किया गया है। व्यास जी ने 'शिवराजविजय' को अन्तिम रूप देने के पूर्व इसे 'शिवविजय के नाम से लिखा था तथा 'शिवविजय' और 'शिवराजविजय में कुछ पाठ भेद' भी हैं। इस अध्याय के अन्त में इस विषय पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

१. गद्य-काव्य के शास्त्रीय विवेचन में व्यास जी की देन

काव्य दृश्य और श्रव्य भेद से दो प्रकार का होता है। श्रव्य-काव्य गद्य अथवा पद्य अथवा गद्य-पद्य-मिश्र तीन प्रकार का होता है। चरणों से रहित पदों का विस्तार गद्य है। गद्य तीन प्रकार का होता है—चूर्णक, उत्कलिका और वृत्त-संधि। गद्य में रचित काव्य को गद्य-काव्य कहा जाता है।

प्राचीन लक्षण-ग्रन्थों में गद्य-काव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद हैं। इन भेदों का उल्लेख होने और भेदक लक्षणों की व्याख्या विद्यमान होने पर भी उपलब्ध संस्कृत गद्य काव्यों में कवियों द्वारा उन सिद्धान्तों का पालन प्रायः नहीं है। उन लक्षणों के अनुसार संस्कृत के उपलब्ध किसी भी गद्यकाव्य को शुद्ध रूप में कथा या आख्यायिका कह सकना कठिन है। इसी कारण दण्डी ने यह व्यवस्था दी कि कथा और आख्यायिका में कोई तत्त्व का भेद नहीं है।[1] वस्तुतः कथा और

१. 'काव्यादर्श' अध्याय १ श्लोक २३—३०।

आख्यायिका एक ही जाति के दो नाम हैं ।[1]

व्यास जी की देन—

आधुनिक युग के साहित्य में गद्य-रचना के नवीन रूप से अनुप्राणित होने के पश्चात् प्राचीन काल की अपेक्षा कथा साहित्य में गद्य के एक नवीन रूप का विकास हुआ । इस विधा को अंग्रेजी भाषा में नाविल कहा जाता है और बंगला भाषा–भाषियों ने इसे उपन्यास नाम दिया । इस नाम को हिन्दी भाषा में भी स्वीकार किया गया । प्राचीन लक्षण-ग्रन्थों में आधुनिक गद्य-साहित्य का स्वरूप उचित प्रकार से निर्धारित न होने के कारण व्यास जी ने स्वतंत्र रूप से गद्य और गद्य-काव्य के स्वरूप का विभाजन किया और अपने नियमों को प्रचलित करने के लिये 'गद्यकाव्यमीमांसा' पुस्तक की रचना की ।

व्यास जी ने सर्वप्रथम गद्य के भेदों का नियम बनाया । गद्य तीन प्रकार का होता है—ससमास, असमास, मिश्र । ससमास गद्य तीन प्रकार का होता है—अल्पसमास, दीर्घसमास, संकट । पुनः प्रत्येक गद्य के कुसुम, गुच्छ और वाटिका नाम से तीन भेद होते हैं, जिनको मुक्तक, उत्कलिका और चूर्णक भी कह सकते हैं । गद्य के पुनः तीन भेद होते हैं—वृत्तगन्धि, अवृत्तगन्धि और संकीर्णक । व्यास जी का कथन है कि इन भेदों के अतिरिक्त गद्य के यमक, श्लेष आदि के भेद से और भी अनेक भेद हो सकते हैं, पर अलंकार-रीति से बहुत से भेदों का विस्तार करना व्यर्थ ही है ।[2]

गद्य के भेदों की कल्पना करके व्यास जी ने गद्य-काव्य के स्वरूप और भेदों का प्रतिपादन किया—

काव्य के दृश्य और श्रव्य दो भेद होते हैं । श्रव्य काव्य के तीन भेद हैं—गद्यकाव्य, पद्यकाव्य, गद्यपद्यकाव्य । इनमें से प्रत्येक सन्दर्भ (छोटा) और ग्रन्थ (बड़ा) भेद से दो प्रकार का होता है । गद्य से ही सुशोभित काव्य गद्यकाव्य कहलाता है । इसी को उपन्यास कहते हैं । व्यास जी ने उपन्यास के स्वरूप तथा निबन्धन को भी स्पष्ट करने के बाद उसके ९ भेद प्रदर्शित किये—

कथा, कथानिका, कथन, आलाप, आख्यान, आख्यायिका, खण्डकथा, परिकथा, और संकीर्ण ।

उपन्यास के इन नौ भेदों के पुनः अनेक भेद होते हैं । दो प्रकार की कथा, तीन प्रकार की कथानिका, दो प्रकार का कथन, तीन प्रकार आलाप, एक प्रकार

---

१. विस्तृत विवरण के लिये देखें एम० कृष्णमाचार्य कृत 'क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर' १९३७ पृ० ४३६-४३८ ।

२. 'गद्यकाव्यमीमांसा' पृ० ११-१४ ।

का आख्यान, एक प्रकार की आख्यायिका, दो प्रकार की खण्डकथा, चार प्रकार की परिकथा और एक प्रकार का संकीर्ण। इस प्रकार से उपन्यास के १९ भेद प्रदर्शित किये गये हैं। व्यास जी ने इन १९ भेदों के भी अरबों भेद कर दिये—

दस रसों के भेद से १९×१०=१९०। यात्रा, स्वप्न, जीवन, व्याख्यान, वर्णना, चरित और मिश्र भेद से १९०×७=१३३०। ऐतिहासिक, कल्पित और मिश्र भेद से १३३०×३=३९९०। एक नायक अथवा अनेक नायक भेद से ३९९०×२=७९८०। रहस्योद्भासन, शिक्षा, आमोद, निन्दा, स्तव, तथा तथा सांकर्य भेद से ७९८०×६=४७८८०। सुखान्त, दुःखान्त, अथवा सुखदुःखान्त भेद से ४७८८०×३=१४३६४०। छोटे बड़े भेद से १४३६४०×२=२८७२८०। कल्पित पात्र, संभव पात्र और मिश्रित पात्र भेद से २८७२८०×३=८६१८४०। एक भाषा और अनेक भाषा भेद से ८६१८४०×२=१७२३६८०। परिच्छेद-कल्पना होने या न होने के भेद से १७२३६८०×२=३४४७३६०। विषय और रचना की दृष्टि से उत्तम, मध्यम अथवा अधम होने से ३४४७३६०×३=१०३४२०८०। सुर, असुर, नर या मिश्रित पात्र होने से १०३४२०८०×४=४१३६८३२०। विषय के प्रकट गुप्त, पहिले गुप्त फिर प्रकट, पुनः तृतीय के तीन भेद होने से ४१३६८३२०×५=२०६८४१६००। रसों के कठोर या कोमल होने से २०६८४१६००×२=४१३६८३२००। स्त्री, पुरुष, क्लीव अथवा मिश्र पात्र होने से ४१३६८३२००×४=१६५४७३२८००। घटना के सम्भव, असम्भव या सम्भवासम्भव होने से १६५४७३२८००×३=४९६४१९८४०० भेद होते हैं।[1]

यद्यपि व्यास जी की यह उपन्यास के भेदों की कल्पना अतिरंजित है और मस्तिष्क का व्यायाम ही है, तथापि विषय आदि की दृष्टि से भेदों का प्रतिपादन करते हुये व्यास जी ने उपन्यासों में वर्णित हो सकने वाले प्रायः सभी प्रकरणों का समावेश कर लिया है। भारतीय भाषाओं के उपन्यासों के उस प्रारम्भिक युग में आधुनिक औपन्यासिक तरीके पर संस्कृत गद्यकाव्य की यह शास्त्रीय मीमांसा यद्यपि एक अद्भुत देन है, तथापि मस्तिष्क का इतना लम्बा व्यायाम काव्य-शास्त्रीय दृष्टि से अधिक उपयोगी नहीं कहा जा सकता।[1]

२. व्यास जी का नवीन प्रयोग और उसकी प्रेरणायें

'शिवराजविजय' के रूप में एक ऐतिहासिक उपन्यासकी रचना करके व्यास जी ने संस्कृत गद्यकाव्य परम्परा में एक नवीन दिशा प्रदर्शित की। व्यास जी के समय भारत में अंग्रेजी राज्य के दृढ़ होने पर अंग्रेजी भाषा ने सभी भारतीय भाषाओं पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। अंग्रेजी के सम्पर्क का

---

१. विस्तृत विवरण के लिये व्यास जी की 'गद्यकाव्यमीमांसा' पृ० ३२—५३ देखिये

प्रभाव भारतीय भाषाओं पर पड़ना अवश्यंभावी था। इस युग से पहले भारतीय साहित्य में कुछ अंशों में गद्य-रचनाओं के होते हुये भी पद्य की प्रधानता थी। विशेष रूप से अंग्रेजा उपन्यासों के तरीके पर लिखे गये गद्य-साहित्य का प्रभाव था। उत्तरी भारत में अंग्रेजों का राज्य सर्वप्रथम कलकत्ता और बंगाल में दृढ़ होने के कारण बंगाल में अंग्रेजी तरीके पर उपन्यास लेखन का प्रभाव सबसे पहिले हुआ। यद्यपि बंगाल में सबसे पहिले कुशल उपन्यास लेखक भूदेव मुखोपाध्याय हुये[1] और आपने 'अंगुरीय विनिमय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की, तथापि मुख्यतः बंकिमचन्द्र के माध्यम से पाश्चात्य प्रभाव से युक्त सामाजिक, ऐतिहासिक आदि विविध प्रकार के उपन्यास बंगाल के साहित्य में आये।[2] उपन्यास रचना का यह प्रभाव अन्य भाषाओं पर भी पड़ना स्वभाविक था, अतः बंगला साहित्य की इस प्रवृत्ति का प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर भी पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी में उपन्यास रचना की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिया। भारतेन्दु जी के सम्पर्क में रहने वाले व्यास जी ने संस्कृत में उस काव्य-विधा का प्रयोग करके ऐतिहासिक उपन्यास लिखा।

उपन्यास शब्द का प्रयोग संस्कृत-साहित्य में पहिले से होता रहा है, पर यह इस काव्य-विधा के लिये नहीं हुआ। संस्कृत नाट्यशास्त्र में प्रतिमुख नामक एक सन्धि के लिये उपन्यास शब्द का प्रयोग है।[3] विश्वनाथ ने भाणिका के सात अंगों में से एक अंग के लिये उपन्यास शब्द का प्रयोग किया।[4] अंग्रेजी-साहित्य के सम्पर्क से गृहीत गद्यकाव्य की इस नवीन विधा के लिये उपन्यास शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम बंगला-साहित्य में हुआ। बंगला से यह शब्द हिन्दी भाषा में आया। अम्बिकादत्त व्यास हिन्दी के उस युग में हुये जबकि हिन्दी गद्य की उपन्यास शैली का प्रयोग आरम्भ ही हुआ था। व्यास जी हिन्दी और संस्कृत दोनों ही भाषाओं के विद्वान् कवि थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आपका घनिष्ठ संपर्क था। सम्भवतः उपन्यास लिखने के लिये आपको भारतेन्दु जी से प्रेरणा प्राप्त होती रही हो। आपने हिन्दी में 'आश्चर्यवृत्तान्त' और 'स्वर्गसभा' पुस्तकें लिखीं थीं, जिनको उपन्यास कहा जाता है और जो तत्कालीन गद्य-साहित्य की दृष्टि से उत्तम रचनायें थीं। यूरोपीय प्रभाव के कारण प्रथम बंगला भाषा में और तदनन्तर गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में

१. 'भारतीय साहित्य' अप्रैल १९५६ पृ० १३९।

२. 'भारतीय साहित्य' अप्रैल १९५६ पृ० १३८।

३. विलासः परिसर्पश्च विधतं शमनर्मणी। नर्मद्युतिः प्रशमनं निरोधः पर्युपासनम्॥
वज्रं पुष्पमुपन्यासः वर्णसंहार इत्यपि॥'दशरूपक' १. ३१-३२॥

४. भाणिका श्लक्ष्णनेपथ्या मुखनिर्वहणान्विता। कैशिकी भारती वृत्तियुक्तैकांगविनिर्मिता॥
उदात्तनायिकामन्दपुरुषापात्रांगसप्तकम्। उपन्यासोऽथ विन्यासो विबोधः साध्वसन्तथा॥
'साहित्यदर्पण' परि० ६।३०८-३०९।

उपन्यासों की रचना के साथ यह परम्परा हिन्दी भाषा में भी प्रारम्भ हुई।[१] किन्तु संस्कृत भाषा में इस काव्यविधा का प्रारम्भ नहीं हो सका था। इस नवीन, मनोरम, चमत्कारी मार्ग की ओर संस्कृतज्ञों की प्रवृत्ति न होते देख कर व्यास जी संस्कृत-साहित्य की इस दुर्बलता को दूर करने के लिये प्रवृत्त हुये।[२] इसी प्रेरणा को ग्रहण करते हुये व्यास जी ने महाराष्ट्र-वीर शिवा जी के चरित के आधार पर इस ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करके संस्कृत-साहित्य में एक नवीन काव्यविधा का सूत्रपात किया। दुःख का विषय यह है, कि संस्कृत में ऐतिहासिक उपन्यास की परम्परा को प्रारम्भ करने वाले और प्रारम्भिक युग में ही इतनी ऊँची कोटि की रचना करने वाले कवि को आलोचकों ने उतना अधिक महत्व नहीं दिया, जिसके कि वे अधिकारी थे।

व्यास जी कृत 'गद्यकाव्यमीमांसा भाषा' के अध्ययन से विदित होता है कि व्यास जी यूरोपीय सम्पर्क से प्रोत्साहित बंगला-उपन्यासों की शैली से प्रभावित थे। उपन्यास में एक शृंखलाबद्ध कथानक होता है, जो जनसाधारण की सामान्य अनुभूतियों को और जीवन के चित्रण को उपस्थित करने के कारण अधिक रोचक तथा हृदय-स्पर्शी होता है। उसमें कवि अपने हृदय की भावनाओं और कल्पनाओं द्वारा जन जन की भावनाओं को शब्दों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित करता है। संस्कृत में अब तक जो भी साहित्य, विशेष कर गद्य-साहित्य लिखा गया था, वह प्रायः उन कवियों द्वारा लिखा गया था, जो राजाओं के आश्रित थे। जनसामान्य से उनका सम्पर्क कम ही रहा होगा। व्यास जी का यद्यपि राजाओं से सम्पर्क रहा, तथापि वे उनके आश्रित नहीं थे। जन-सामान्य में उत्पन्न हुये, जन-सामान्य के बीच पोषण को प्राप्त होने वाले और जनसामान्य से सम्पर्क रखने वाले व्यास जी जनसामान्य की भावनाओं को चित्रित करने में समर्थ उपन्यास नामक काव्यविधा के माध्यम से जन-सामान्य की पीड़ा और आकांक्षा को व्यक्त करने के लिये व्याकुल हो उठे होंगे। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय जनता में साँस्कृतिक चेतना का पुनः जागरण प्रारम्भ हो गया था। पराधीनता और जातीय गौरव का विनाश निश्चित रूप से व्यास जी को विह्वल करता होगा। उस युग में स्वातंत्र्य और जातीय गौरव का सन्देश 'महाराष्ट्रजीवनप्रभात', 'राजसिंह', 'आनन्द मठ' आदि उपन्यासों द्वारा जन-साधारण के बीच प्रसरित होना प्रारम्भ हो गया था। इन्हीं का अनुसरण करते करते हुये व्यास जी ने संस्कृत माध्यम से इस ऐतिहासिक उपन्यास द्वारा जनता को यह सन्देश दिया। व्यास जी के पश्चात् भी अनेक संस्कृत विद्वान् उनका अनुकरण करते हुये संस्कृत भाषा में उपन्यासों की रचना करते रहे हैं। 'चन्द्रमहीपतिः' के लेखक श्रीनिवास शास्त्री ने (१९५३ ई० में) व्यास जी के ऋण को स्वीकार

---

१. 'गद्यकाव्यमीमांसा भाषा' पृ० ४।

२. 'शिवराजविजय' - निर्माण हेतुः।

किया है ।[1]

३. प्रयोग के रूप में इस काव्य की नवीनतायें

संस्कृत-साहित्य की गद्य-परम्परा में व्यास जी ने उपन्यास नामक नवीन काव्य-विधा संस्कृत-प्रेमियों के सम्मुख प्रस्तुत की। यद्यपि व्यास जी प्राचीन परम्पराओं से सर्वथा विमुक्त नहीं हैं, तथापि आपका यह काव्य प्राचीन परम्परा से कुछ भिन्न भी है। अतः इस तथ्य पर विचार करना आवश्यक हो जाता है, कि व्यास जी ने प्राचीन गद्यकाव्य-परम्परा के अन्तर्गत किस सीमा तक नवींनता का प्रवेश कराया है। आधुनिक आलोचनात्मक दृष्टि से उपन्यास के ६ तत्व हैं—कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल, रचना-शैली और उद्देश्य। इन तत्वों को दृष्टि में रख कर यहां विचार किया जा रहा है।

कथानक—

यद्यपि केवल कथानक ही श्रेष्ठता का कारण नहीं होता, तथापि कथानक के भित्ति रूप आधार पर उपन्यास की सम्पूर्ण रचना अवलम्बित होती है। उपन्यास के अन्य तत्व इसी भित्ति के आश्रय से रहते हैं। लेखक अपनी प्रतिभा द्वारा किसी भी कथानक में मौलिकता का आभास दे कर उसे हृदयग्राही बना सकता है। 'शिवराजविजय' की रचना करते समय एक ओर तो व्यास जी के सम्मुख गद्यकाव्य की प्राचीन गौरवमयी परम्परा रही थी जिसकी उपेक्षा करना व्यास जी जैसे प्राचीनता के पुजारी के लिये सर्वथा असंभव था, दूसरी ओर नवीन साहित्यिक प्रवृत्तियां भी उनके लिये अनुपेक्षणीय थीं। इस तथ्य को दृष्टि में रखते हुये व्यास जी ने कथानक में कुछ नवीनता अवश्य रखी।

व्यास जी ने अपनी रचना के लिये एक ऐसा विषय निर्वाचित किया, जो भारतीय हिन्दू-जन के लिये अत्यन्त हृदयग्राही था और शिवाजी देश, जाति और धर्म के एक उद्धारक के रूप में समादृत थे। तथापि यह कथानक प्राचीन संस्कृत ऐतिहासिक गद्य-काव्यों की प्रकृति से भिन्न है। प्राचीन काल में लिखे गये जिन काव्यों को हम ऐतिहासिक काव्य कहते हैं, वे काव्य राजाओं के आश्रय में रहने वाले सभा-पण्डितों द्वारा राजाओं और उनके वंशजों की प्रशंसा में लिखे गये थे। उनको वास्तविक रूप से ऐतिहासिक कहना कठिन है। 'हर्षचरित' की रचना हर्ष के आश्रय में रहने वाले सभापण्डित बाण द्वारा की गई थी। उस गद्यकाव्य से हमें सातवीं शताब्दी की कुछ घटनाओं और सांस्कृतिक अवस्थाओं का परिज्ञान तो अवश्य होता है, पर उसे इतिहास के रूप में ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्राचीन काल के ऐतिहासिक गद्य-काव्यों में आधिकारिक कथा के नायक के चरित्र को ही अधिक विकास प्राप्त

---

१. 'चन्द्रमहीपतिः' (२०१६ वि०) भूमिका-पृ० २३-२४।

हुआ है। 'शिवराजविजय' का कथानक शिवाजी के ऐतिहासिक चित्र को उपस्थित करता है। इसमें शिवाजी के व्यक्तित्व के साथ-साथ काल्पनिक, प्रासंगिक कथा के नायक रघुवीर सिंह का चरित्र भी कम विकसित नहीं है।

प्राचीन गद्य-काव्यों में कथानक की यथार्थता पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। इन काव्यों में अलौकिक उपायों द्वारा समस्याओं को सुलझाकर कथा को गति देने की प्रवृत्ति है। अलौकिक वर्णनों के कारण इनमें कुतूहल और रस तो निश्चय होते हैं, पर यथार्थता नहीं रहती। 'शिवराजविजय' की प्रवृत्ति इस से भिन्न है। व्यास जी ने आधुनिक उपन्यास कला के अनुसार इसमें यथार्थता का समावेश करके संस्कृत-गद्यकाव्यों को नई दिशा दी।

संस्कृत के प्राचीन गद्य-काव्यों में कथा की गति अति मन्द है। 'दशकुमारचरित' के अतिरिक्त संस्कृत के अन्य गद्यकाव्यों में वर्णनों का आधिक्य इतना अधिक है, कि इनमें कथा की गति अवरुद्ध हो कर, अतिमन्थर हो जाती है। 'कादम्बरी' के प्रारम्भ में शूद्रक के विशेषण कथा को नहीं बढ़ने देते। इससे आगे की कथा में और भी अधिक लम्बे विशेषण हैं। 'वासवदत्ता' में बहुत छोटी कथा के आधार पर विशेषणों द्वारा काव्य को अत्यन्त विस्तार दिया गया है। व्यास जी ने कथा की गति का विशेष ध्यान रखा। विशेषणों का बिलकुल त्याग न करते हुये भी आप कथा की गति को अधिक महत्व देते हैं। कथा के प्रारम्भ में सूर्योदय का थोड़े ही शब्दों में वर्णन करके आप कथा सूत्र प्रारम्भ कर देते हैं।

प्राचीन कथानकों में शृंगार रस को अधिक महत्व दिया जाता था। 'वासवदत्ता' और 'कादम्बरी' तो विशुद्ध रूप से शृंगार प्रधान हैं। 'दशकुमारचरित' में भी कथा के मुख्य नायक राजवाहन द्वारा शृंगार-रस का मुख्य रूप से संचार किया गया है। व्यास जी ने 'शिवराजविजय' में रसनारी (रोशनआरा) द्वारा उपन्यास के नायक शिवाजी के प्रति किये जाने वाले और रस-दशा को प्राप्त न होने वाले प्रेम-प्रसंग को अधिक महत्व न दे कर कथा के सहनायक में शृंगार रस का परिपाक करके उसे गौण स्थान दिया है।

कथा प्रारम्भ करने की दृष्टि से भी 'शिवराजविजय' में नवीनता है। प्राचीन गद्यकाव्यों में कथानक का प्रारम्भ इस प्रकार होता था—एक राजा था, उसकी एक राजधानी थी, उसकी एक रानी थी इत्यादि। व्यास जी ने इस पद्धति का परित्याग करके नवीन पद्धति से घटना निर्देश द्वारा कथा प्रारम्भ की—सूर्योदय होने पर एक ब्राह्मण विद्यार्थी अपनी कुटीर से बाहर निकला और उसने पूजा के लिये पुष्पों का चयन प्रारम्भ किया। इससे पूर्व किया गया सूर्योदय-वर्णन, प्रकृति-वर्णन का रूप न होकर देवस्तुति रूप है। किन्तु काव्य की समाप्ति में

विशेष मौलिकता नहीं है। प्राचीन कथानकों के सदृश नायक द्वारा फल-प्राप्ति के अनन्तर उपन्यास की कथा समाप्त हो जाती है।

पात्र—

पात्रों को चरित्रगत विशेषता की दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ पात्र व्यक्तित्व प्रधान होते हैं, जो अपनी निजी विशेषताओं को लेकर कथानक में पदार्पण करते हैं। दूसरे प्रकार के पात्र प्रतिनिधि पात्र कहलाते हैं। इनमें कुछ निजी विशेषताओं के होते हुये भी वर्ग-विशेष की विशेषतायें प्रतिबिम्बित होती हैं। संस्कृत के प्राचीन गद्य-काव्यों में प्रायः व्यक्तित्व को प्रधानता दी गई है। उनके पात्रों की विशेषतायें प्रायः उन्हीं में हैं, किसी वर्ग-विशेष में नहीं। उनके सदृश अन्य व्यक्ति संसार में दृष्टिगोचर नहीं होते। दण्डी के राजहंस, मानसार, राजवाहन, पुष्पोद्भव आदि, सुबन्धु के वासवदत्ता, कन्दर्पकेतु आदि बाण के तारापीड, चन्द्रापीड, वैशम्पायन, महाश्वेता, कादम्बरी, पत्रलेखा आदि पात्रों में वर्ग प्रतिनिधित्व की अपेक्षा उनका निजी व्यक्तित्व अधिक झलकता है। यह नहीं कहा जा सकता कि ये पात्र किसी वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। व्यास जी ने 'शिवराजविजय' में प्रायः प्रतिनिधि पात्रों को प्रस्तुत किया है। इनका उद्देश्य केवल आनन्दप्राप्ति या कुतूहल-वर्धन नहीं है, अपितु हिन्दू जाति में जातीय और धार्मिक गौरव की अभिवृद्धि करना है। अतः व्यास जी ने अपने पात्रों का चयन इसी दृष्टि से किया। शिवाजी तथा उनके सभी साथी वीर, सच्चरित्र, देशप्रेमी, जातिप्रेमी और धर्मप्रेमी हैं, जो इस प्रकार के गुणों से युक्त व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके विपरीत उनके विरोधी मुसलमान सेनापति दम्भी, उत्पीडक, अन्यायी और विश्वासघाती हैं, जो मुसलिम शासनाधिकारियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। ब्राह्मण पात्र सदाचारी, विद्वान् और धर्मपरायण हैं। वे भविष्य कथन की सामर्थ्य रखते हैं। शिवाजी के मुख्य सहायक गौरसिंह और रघुवीरसिंह राजपूत हैं, जो राजपूत जाति की विशेषताओं को व्यंजित करते हैं। जयसिंह का विशेष व्यक्तित्व ऐतिहासिक तथ्य के अनुरूप है। वह मनुष्य सूझ बूझ वाला, स्वामिभक्त राजपूत राजा है। वह हिन्दू होते हुये भी हिन्दुओं पर अत्याचार करने वाले औरंगजेब का सहायक होकर हिन्दुओं को पराधीन करने आया है। तथापि उसका चरित्र वीरता, प्रतिज्ञापालन, शरणागत-वत्सलता आदि राजपूतों की विशेषताओं को भी व्यक्त करता है।

प्राचीन गद्य-काव्यों के पात्र प्रायः कवि-निर्मित हैं। कवि विशेषणों द्वारा उनकी विशेषताओं का वर्णन करता हुआ अपनी इच्छानुसार उनका स्वरूप निर्धारित करता है। व्यास जी के पात्र केवल कवि द्वारा प्रतिपादित विशेषताओं से ही युक्त नहीं है, अपितु उनकी अपनी भी विशेषतायें हैं। ये विशेषतायें उनकी क्रियाओं

द्वारा परिलक्षित होती हैं । स्वतंत्रताप्रिय, नीतिनिपुण, उदारमना और अतुल पराक्रमी शिवाजी की विशेषतायें कवि के प्रतिपादन की अपेक्षा उनकी क्रियाओं से अधिक व्यंजित होती हैं । रघुवीरसिंह के वीरत्व, साहस, स्वामिभक्ति आदि गुणों का बोध पाठक उसकी क्रियाओं और सफलताओं से प्राप्त करते हैं । 'शिवराजविजय' के ऐतिहासिक होने से ऐतिहासिक पात्रों का पूर्णतः कवि-निर्मित होना उपयुक्त भी नहीं होता ।

संवाद—

वर्तमान उपन्यासों के संवादों का रूप प्राचीन गद्यकाव्यों में प्राप्त नहीं होता । प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने गद्यकाव्य में, जो श्रव्यकाव्य का ही एक भेद है, संवाद को आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया । संस्कृत काव्यों में संवाद 'पंचतंत्र' आदि लघु-कथाओं और नाटकों में हैं । आधुनिक मान्यता के अनुसार संवाद तत्व उपन्यास के सबसे अधिक आनन्दायक तत्वों में से है,[1] तथा इसका महत्व कथावस्तु के विकास और चरित्र-चित्रण दोनों दृष्टियों से है ।[2] यह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन गद्यकाव्यों में इस तत्व का नितान्त अभाव है । 'दशकुमारचरित' में राजहंस वामदेव से प्रश्न पूछते हैं और वे उसका उत्तर देते हैं । 'कादम्बरी' की सारी कथा पूछे गये प्रश्नों के उत्तरों में ही लिखी गई है । किन्तु आधुनिक युग में जिसे संवाद कहा जाता है, उसका गद्य-काव्य के आवश्यक उपादान के रूप में समावेश आधुनिक उपन्यासों में ही दिखलाई देता है । व्यास जी ने नाटकीय और प्रभावशाली संवादों के रूप में संस्कृत गद्यकाव्य के लिये यह नवीन दिशा निर्धारित की ।

देशकाल—

प्रत्येक कथानक में पात्रों की क्रिया, संवाद आदि किसी स्थान-विशेष में तथा किसी समय-विशेष में होते हैं । काव्य में इनको देश-काल कहा जाता है । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि देशकाल में मनुष्येतर जगत अर्थात् आचार-विचार, रीति-नीति, रहन-सहन, प्राकृतिक दृश्य, स्थान-वर्णन आदि का

---

१. Dialouge well managed is one of the most delightful element of a novel. It is the part of it in which we seem to get most intimately in to touch with people, and in which the written narrative most nearly approaches the vividness and actually of the actual dream.
डब्ल्यू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ लिटरेचर' १९४९ पृ० १५४ ।

२. डा० शशिभूषण सिंहल कृत 'उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा' पृ० २०५ ।

अन्तर्भाव हो जाता है। प्राचीन गद्यकाव्यों में प्रकृति-वर्णन, स्थान-वर्णन आदि का अत्यन्त विस्तार के साथ अतिरजित रूप में चित्रण किया गया है। महाकवि दण्डी इसके अवश्य अपवाद हैं, जिन्होंने इस वर्णन को कथासूत्र की अपेक्षा अधिक महत्त्व नहीं दिया। व्यास जी ने इन वर्णनों को सीमा के अन्दर रखा है। यद्यपि देशकाल की दृष्टि से व्यास जी ने कोई अधिक विशेषता प्रदर्शित नहीं की, तथापि यह कहा जा जा सकता है कि दण्डी की परम्परा की अवहेलना करके उनके बाद सुबन्धु और बाण का अनुसरण करते हुये संस्कृत में जो अत्यन्त लम्बे स्थान और प्रकृति के वर्णनों की परम्परा व्याप्त हो गई थी, व्यास जी ने उसे नियमित करने का प्रयत्न किया।

देशकाल का महत्व अन्य प्रकार के गद्य-काव्यों(उपन्यासों) की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासों में युग की सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि के रूप में अधिक है। इस वर्णन में वह मनमानी नहीं कर सकता। उसे इतिहास और काव्य-कला का समन्वय करना होता है। व्यास जी ने देश और काल के वर्णनों में इस नियम का अतिक्रमण नहीं किया।

रचना शैली—

भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। व्यास जी की भाषा प्राचीन संस्कृत गद्य-काव्यों की परम्परा से सम्बद्ध होते हुये भी नवीन दृष्टिकोण को अपनाये हुये है। प्राचीन गद्य का आदर्श यह रहा कि कम से कम स्थान में अधिक से अधिक भावों का निवेश किया जावे। उसके लिये मुख्यतः समासों का प्रयोग किया जाता था। समासों का प्रयोग दण्डी की रचनाओं में यद्यपि कुछ कम था, तथापि उसके बाद उत्तरोत्तर यह बढ़ता गया। संस्कृत में इस प्रकार की रचना मिलनी कठिन है, जिसमें समासों का बाहुल्य न हो। 'पंचतन्त्र' आदि सरल कथा-पुस्तकों में भी समास हैं। व्यास जी ने गद्य की इस समास-परम्परा का पालन करते हुये अपनी रचना में समासों का प्रयोग तो अवश्य किया और अनेक स्थानों पर उनकी समास-युक्त भाषा बाण की भाषा का स्मरण दिलाती है, तथापि आपने प्रधानतः वैदर्भी रीति का स्वीकार करते हुये अधिक समासों द्वारा अपने उपन्यास को क्लिष्ट नहीं बनाया। इसके अतिरिक्त आपने अनेक लोकोक्तियों और सुभाषितों द्वारा काव्य की भाषा को सुन्दर बनाया।

सुबन्धु, बाण आदि कवियों में भाषा को अधिक से अधिक क्लिष्ट, कृत्रिम और अलंकृत बनाने की प्रवृत्ति रही। पश्चाद्वर्ती अन्य गद्यकाव्य रचयिताओं ने बाण की इस परम्परा को बहुत अधिक निबाहने में ही गौरव का अनुभव किया तथा विद्वत्ता की सीमा निर्धारित की। वाक्यों को अधिक लम्बा करना, लम्बे लम्बे समासों का प्रयोग, शब्दालंकारों तथा श्लेष मूलक अर्थालंकारों का अत्यधिक प्रयोग

इस काठिन्य के जनक तत्व थे। व्यास जी ने इनको नवीन रूप देने का प्रयत्न किया। यद्यपि प्राचीन परम्परा के मोह का परित्याग करके वे इसे पूर्णतया आधुनिक रूप न दे सके, तथापि सुबन्धु आदि के सदृश लम्बे समासों का प्रयोग करते हुये भी आपने अति दीर्घ समासों का अधिक प्रयोग नहीं किया, शब्दालंकारों का प्रयोग करते हुये भी भाषा में क्लिष्टता नहीं आने दी तथा श्लेष-मूलक-अलंकारों का प्रयोग बहुत कम किया। यद्यपि दण्डी के साथ ही सुबन्धु और बाण भी उनके आदर्श रहे,[1] तथापि अलंकृत और कृत्रिम शैली को आपने बहुत कुछ सरल बनाने का प्रयत्न किया।

व्यास जी ने 'शिवराजविजय' द्वारा संस्कृत गद्यकाव्यों को नवीन नाटकीय प्रयोग दिये। जयसिंह द्वारा शिवाजी के सैनिकों को पारितोषिक दिये जाते समय रघुवीर का अपमानित किया जाना, आगरे में शिवाजी की कृत्रिम रुग्णता के अवसर पर मुरेश्वर का यवन-चिकित्सक के वेश में आना आदि भावात्मक घटनाओं के नाटकीय दृश्य 'शिवराजविजय' की विशेषतायें हैं।

उद्देश्य—

काव्य-रचना के उद्देश्य की दृष्टि से भी व्यास जी के काव्य में कुछ नवीनता दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन संस्कृत काव्य-शास्त्र की दृष्टि से काव्य रचना के ६ उद्देश्य हो सकते हैं—यश की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति दुःख का विनाश, आनन्द की प्राप्ति और उपदेश।[2] इनमें से एक या अधिक प्रयोजनों के लिये कवि काव्य की रचना करता है। काव्य रचना के इन उद्देश्यों के होते हुये भी प्राचीन कवियों ने मुख्यतः आनन्द की प्राप्ति को काव्य का मुख्य प्रयोजन स्वीकार करके इसी को अपने काव्यों में प्रधानता दी। रस का निबन्धन ही उनका प्रधान हेतु रहा। व्यास जी ने इन तत्वों को उद्देश्य बनाते हुये भी धर्म और जातीय गौरव की प्रतिष्ठा करना और इससे जन-मानस को आप्लुत करना अपना मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया।[3] इसके साथ ही आपका यह भी उद्देश्य रहा

---

१. अस्माकं महामान्याः धन्याः सुबन्धु-बाण-दण्डिनो महाकवयो वासवदत्ता - कादम्बरी-दशकुमारचरितानि सुधामधुराणि सदा सदनुभाव्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्यभारतवर्षं सबहुमोदवर्षं व्यधिपत। 'शिवराजविजय'-निर्माण हेतुः।

२. काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे। 'काव्यप्रकाश' १.२।

३. परं मया तु सनातनधर्मधूर्वहशिवराजवर्णनेन रसना पावितैव, प्रसंगतः सदुपदेशनिर्देशैः स्वब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिककाव्यरुचीनि स्वमित्राणि रंजितान्येव, चिरमस्मत् पूर्वजैःपराशरपाराशरादिभिरुपासिता संस्कृतभाषा सेवितैव, चक्षुषी निमील्य सविशेषं साक्षात्कृता पीयूषपूरपूर्णैरिव दृक्पातैः संजीवयन्ती पारिजातकुसुमवर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितैव सद्यः परनिर्वृतिश्च ससामासादितैव। 'शिवराजविजय' निर्माणहेतुः।

कि संस्कृत साहित्य में नवीन, मनोरम और चमत्कारपूर्ण मार्गों का आधान किया जावे ।[१]

४. शिवराजविजय और शिवविजय

'शिवराजविजय' के आलोचनात्मक अध्ययन के प्रारम्भ करने से पूर्व इस शीर्षक का सन्निवेष एक विशेष प्रयोजन से किया गया है । प्रथम अध्याय में लिखा जा चुका है कि व्यास जी की कृतियों की प्राय: सभी पाण्डुलिपियाँ नष्ट हो गईं । किन्तु आपके पौत्र श्री कृष्णकुमार व्यास के पास 'शिवविजय: उपन्यास:' नामक एक पाण्डुलिपि सुरक्षित है । यह पाण्डुलिपि दो जिल्दों में है । प्रथम जिल्द में प्रथम विराम १-४ निश्वास और दूसरी जिल्द में द्वितीय विराम ५-८ निश्वास हैं । वस्तुत: इसे वर्तमान 'शिवराजविजय' का ही पूर्व संस्करण समझना चाहिये । इसका सम्पूर्ण लेख कहीं कहीं कुछ भेद के अतिरिक्त 'शिवराजविजय' का ही है । 'बिहारी-विहार' में व्यास जी द्वारा लिखित विवरणों से ज्ञात होता है कि उन्होंने संस्कृत भाषा में 'शिवराजविजय' नामक उपन्यास की रचना की । यह उपन्यास संवत् १९४५ में लिखा जाना प्रारम्भ होकर संवत् १९५० में पूर्ण हुआ । 'बिहारी-विहार' का प्रकाशन संवत् १९५५ में हुआ था । इस प्रकार यह सिद्ध है कि संवत् १९५५ में व्यास जी के इस संस्कृत उपन्यास का नाम 'शिवराजविजय' ही था । 'शिवराजविजय' तथा 'शिवविजय' का कथानक और भाषा कुछ अक्षरों, शब्दों और वाक्यों में संशोधन-परिवर्तन के अतिरिक्त एक ही है । एक स्थान पर कुछ अंश में कथा का भी परिवर्तन है शब्दों और वाक्यों के परिवर्तन के कुछ उदाहरण अगले पृष्ठ पर दिये जाते हैं:—

१. न वा भाषाकविसमादृतान् नवान् नवान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान् पथोऽनुसर्तुं संस्कृतवैभवेषु च निधीन् वर्द्धयितुं संस्कृतज्ञा एव प्रायशः पारयन्ति, कदाचिद् वृन्दारक वृन्दवाण्यां गद्यकाव्यप्रचारदौर्बल्यस्येदमेव प्रधानं कारणं स्यात् । महदिदमुपहासास्पदं विडम्बनं यद् मण्डूक इव महापारावारमासादयितुं यतमानस्तादृशं-कविकौशलनिरूपायितं गद्यकाव्यं मादृशः क्षोदीयान् जनो रिरचयिषुः संवृत्त इति ।।
'शिवराजविजय'- निर्माण हेतुः ।।

शिव विजयः

(उपन्यासः)

श्री गणेशाय नमः।

प्रथमो निश्वासः।

"विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोह्यते जगत्"
"हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते" भागवते।

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः। एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु, भनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गी-

शिवराज विजय षष्ठ-संस्करण १६४५	शिवविजय
१ काव्य का नाम 'शिवराजविजयः' है।	काव्य का नाम 'शिवविजयः' है।
२ दक्षिणदेशशासकत्वेन शास्तिखाननामा प्रेष्यत इति श्रूयते। प्रथम निश्वास पृ० २३	दक्षिणदेशशासकत्वेन प्रेषितः शास्तिखाननामा पुण्यनगरमधितिष्ठति इति श्रूयते।
३ अथ विजयपुराधीशेन साम्प्रतं प्रवृद्धमस्य वैरम्। प्रथम निश्वास पृ० २४	यह वाक्य नहीं है।
४ अथ किमपि पिपृच्छिषामीति शनैरभिधाय बद्धकरसम्पुटे जटिलमुनौ से लेकर अधित्यकांचारुह्य तक। प्रथम निश्वास पृ० २४-२५	यह वाक्य नहीं है।
५ कुटिलकचान्	कुटिलान् कचान्।
६ कलिकौतुककवलीकृतसदाचारप्रचारस्य पातकपुंजपिंजरितधर्मस्य च यवनगणग्रस्तस्य भारतवर्षस्य च स्मारयन्। द्वितीय निश्वास पृ० ३६	कलिकौतुककवलीकृतं सदाचारप्रचारं पातकपुंजपिंजरितं धर्मं, यवनगणग्रस्तं भारतवर्षं च स्मारयन्।
७ व्यपाटयत्। द्वितीय निश्वास पृ० ७२	समचूर्णयत्।
८ एकं करं तत्पृष्ठे विन्यस्य। तृतीय निश्वास पृ० ७८	तामेकेन करेण वक्षसि धृत्वा।
६ वाजिनो वल्गां गृहीत्वा, सचुचुत्कारं ग्रीवां पृष्ठं चाऽऽस्फोट्य। चतुर्थ निश्वास पृ० १११	वाजिनं सचुचुत्कारं वल्गायां गृहीत्वा।
१० चञ्चलचपलाचमत्कारमिव चपलस्वरुसारेणेव सृष्टकल्पान्तसप्तजिह्वस्येवैकं जिह्वाविशेषं निजकरकलितं महाचन्द्रहासं तथा। षष्ठ निश्वास पृ० १८३	चपलामिव चपलां बज्रसारेणेव निर्मितां कल्पान्तसप्तजिह्वस्येकां जिह्वां निजकरकलितां महासिं तथा।
११ ततोऽहं पंचवर्षदेश्यं रामसिंहं तनयं सह नयन् रामेश्वरदर्शनार्थं	ततोऽहं निश्चितसम्पत्तिनाशः पुरोहितेन सहितो दशवर्षदेश्यं रामसिंहं तनयं सह

प्रचलितः । अष्टमनिश्वास पृ० २६४	नयन् रामेश्वरयात्रां विधातुकामः पूर्वं द्वारकां गतस्ततश्च पोतमारुह्य रामेश्वर-दर्शनार्थं प्रचलितः ।

इसी प्रकार के अन्य अनेक शब्दगत और वाक्यगत परिवर्तन भिन्न भिन्न स्थलों पर प्राप्त होते हैं ।

'शिवविजय' तथा 'शिवराजविजय' के ऊपर लिखे गये विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि व्यास जी ने प्रारम्भ में 'शिवविजय' नाम से यह उपन्यास लिखना प्रारम्भ किया था । आपने इसके मुखपृष्ठ पर उपन्यास शब्द अंकित करके इसे इस संज्ञा से चिह्नित किया । संभवतः इसकी कुछ न्यूनताओं से असन्तुष्ट होकर आपने इसमें स्वयं ही संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करके इसका नाम 'शिवराजविजय' रखा होगा । 'शिवविजय' की न्यूनताओं को दूर करने के लिये आगे चलकर अपनी पाण्डुलिपि में जो संशोधन आदि व्यास जी ने किये, ऊपर दिये गये उद्धरणों के आधार पर उनके संभावित कारण इस प्रकार उपस्थित किये जा सकते हैं ।

१. 'शिवविजय': संज्ञा के शिव शब्द से पाठक भ्रम में पड़ सकते हैं, अतः स्पष्टीकरण के लिये कथानक की दृष्टि से 'शिवराजविजय' नामकरण किया गया होगा ।

२. शाइस्ताखां को औरंगजेब द्वारा दक्षिण का सूबेदार बनाया गया शा । व्यास जी ने शाइस्ताखां के सूबेदार बनाये जाने और उसके पूना नगर पर अधिकार करने का वर्णन किया है । 'शिवविजय' में यह वर्णन शिवाजी द्वारा अफजलखां के वध की घटना से पहिले है, जो इतिहास के विपरीत है । शिवाजी द्वारा अफजलखां का वध अक्टूबर सन् १६५६ में किया गया था ।[1] शाइस्ताखां ने पूना पर अधिकार इस घटना के पश्चात् सन् १६६२ में किया ।[2] इस ऐतिहासिक अनौचित्य को हटाने के लिये व्यास जी ने यहाँ पुण्यनगर शब्द हटा कर वाक्य-योजना करना उचित समझा होगा ।

३. ब्रह्मचारी-गुरु योगी से बीजापुर के साथ होने वाले युद्ध का परिणाम पूछना चाहते थे, अतः बीजापुर के वैर का संकेत देने के लिये यह वाक्य आवश्यक था ।

४. बीजापुर के साथ युद्ध प्रारम्भ हो जाने तथा उसमें विजय प्राप्त होने के बाद शिवाजी को मुगलों के साथ युद्ध की सभावना स्वाभाविक थी । उसके परिणाम का और ब्रह्मचारी-गुरु वीरेन्द्रसिंह के पुत्र रघुवीरसिंह (रामसिंह) के मिलन का संकेत देने के अभिप्राय से व्यास जी ने इन वाक्यों को कथानक में स्थान दिया ।

---

१. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्टी आफ दी मराठाज' १८७८ पृ० ७८ ।
२. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्टी आफ दी मराठाज' १८७८ पृ० ८७ ।

५. इस स्थल पर सभी विशेषणों के समस्त पद होने के कारण 'कुटिलान् कचान्' इस असमस्त पद को समस्त करके 'कुटिलकचान्' करना उपयुक्त था।

६. 'स्मृ' धातु के योग में पाणिनीय नियम के अनुसार षष्ठी विभक्ति होनी चाहिये।[१] इस अशुद्धि का परिमार्जन करके व्यास जी ने द्वितीयान्त शब्दों को षष्ठ्यन्त किया होगा।

७. नखों से चूर्ण करने की अपेक्षा विपाटन अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अतः 'समचूर्णयत्' के स्थान पर 'व्यापाटयत्' पाठ अधिक उपयुक्त है।

८. शिष्टाचार की दृष्टि से युवती कन्या को वक्ष से थामना अनुचित है, अतः "तामेकेन करेण वक्षसि धृत्वा" के स्थान पर "एकं करं तत्पृष्ठे विन्यस्य" पाठ अधिक उपयुक्त है।

९. घोड़े का स्वेद से भीग जाना उस गहन अन्धकार में स्पर्श से ही जाना जा सकता था। अतः 'ग्रीवां पृष्ठं चाऽऽस्फोट्य' पाठ करना अधिक स्वाभाविक है।

१०. असि की अपेक्षा चन्द्रहास में महत्ता और भयंकरता के अधिक द्योतित होने के कारण एक ही प्रहार से चांदखां की असि और कन्धरा के दो टुकड़े करने वाले शस्त्र को चन्द्रहास लिखना अधिक उपयुक्त था।

११. राजपूताना के निवासी वीरेन्द्रसिंह का अम्बर देश से प्रथम द्वारका आना और वहां से जहाज पर चढ़ कर रामेश्वर जाना अधिक उपयुक्त है। प्रासंगिक कथा के नायक रघुवीर सिंह (वीरेन्द्रसिंह के पुत्र रामसिंह) की रक्षा समुद्र में तूफान आने पर पुरोहित द्वारा हुई थी, अतः पुरोहित सहित कहना अधिक उपयुक्त था। इसलिये इस स्थल पर व्यास जी का यह संशोधन अधिक उपयुक्त प्रतीत नहीं होता।

इसी प्रकार से व्यास जी ने अन्य अनेक स्थलों पर भी भाषा, भाव, व्याकरण इतिहास, प्रकरण आदि की दृष्टि से ही संशोधन किये, जिससे 'शिवविजय' की अपेक्षा 'शिवराजविजय' का पाठ अधिक स्वाभाविक और उत्कृष्ट होगया।

कथानक के परिवर्तन का उदाहरण निम्न है :—

शिवराजविजय षष्ठ संस्करण	शिवविजय
तदाज्ञया वस्त्राणि परिधाय च, तत्समीपे समुपविश्य, तेन च समन्त्रजपं कुशजलेनाभ्युक्षितो हनुमदङ्गरञ्जित सिन्दूरेण विहिततिलकौ स्वकीयौ सैन्धवौ समारुक्षव। ततः पंचषान् व्यूढ-वयस्कान् जटिलान् सुपरिणाहान् वाहानारुढान् आवाभ्यां सह गन्तुमाज्ञप्य मन्दिराध्यक्षोऽभाषिष्ट— "कुमारौ! इतः पुण्यनगरपर्यन्तं प्रतिगव्यूत्यन्तरालं	निमज्ज्योन्मज्जय नेत्रे परिमृज्य च दृष्टं यत् न तत्सरो न सा वाटिकान ते मुनयो न स मन्दिराध्यक्षो न तद् वनं न ते हसाः न ते सारसाः न

१. 'अधीगर्थदयेषां कर्मणि' अष्टाध्यायी २. ३. ५२।

महाव्रताश्रमपरम्परा: सन्ति। सर्वत्र कुटीरेषु सन्यासिनो भक्ता विरक्ताश्च निवसन्ति। कियद् दूरपर्यन्तं पंचषा: सहायाः युवयो: सहचरा भविष्यन्ति, परस्ताच्छिथिलिते लुण्ठकभये, एकेनैव केनचिदश्वारोहेण प्रदर्शितमार्गौ, सुखेन यथाभिलषितं देशं यास्यथ:। सहायकपरिवर्तनं स्थाने स्थाने स्वयमेव भविष्यति, न तत्र युवयो: कयापि विचिकित्सया भाव्यम्, श्रान्तैः श्रान्तैराश्रमेषु विश्रमणीयम्, निदिद्रासद्भि: कुटीरेष्वेव निद्रा द्राघणीया, विलेपनाभ्यङ्गस्नानपानाशनसंवाहनादिसौकर्यं सर्वत्र सहायका: साधयिष्यन्ति" इति।

ततस्तं प्रणम्य तथैव ससहायौ आवां प्रचलितौ। सहचरनिर्दिष्टेनैव सर्वैरविज्ञेयेन वन्यद्रुमजालरुद्धेन, गण्डशैलपरिक्रमणाधित्यकाधिरोहणोपत्यकापरिलंघनतटिनीतरणाद्यायासदीक्षादक्षेण पथा प्रचलन्तौ, मध्ये मध्ये कुटीरेषु विश्रमन्तौ तत्र तत्र सुस्वादुभोजनै: सकलसमुचितसामग्रीसाहाय्यै: सुखेन विश्रान्तिसुखमनुभवन्तौ तत्र तत्र परिवर्तितसहायकौ दिनकतिपयैरेकस्या नद्यास्तटमयासिष्व। तत्रैकस्य चिंचावृक्षस्य स्कन्धे प्रलम्बरज्ज्वा निजाजानेयावाबध्य निकटस्थयूपतरुशाखायां च वस्त्रादीनि संलम्बय्य स्नातुं जलमवागाहिष्वहि। अस्मत्सहचरश्च निजाश्वस्य पृष्ठमार्द्रयन्निव तं बल्गायां गृहीत्वा पर्य्यटयितुमारब्ध।

तृतीयनिश्वास पृ० १०३-१०४

तानि कमलानि न वा स तट:।

अथ क्षणमावां परस्परं सचकितमालोकयन्तावेव अ अ अहो किं किं कुत: कुत:, कथम् कथम् इति चकितौ साक्षात् क्रियमाणमेव पश्यन्तौ क्षणं तूष्णीकावभूव।

अथ मया श्यामं सम्बोध्य कथितं—श्याम श्याम ! पश्य पश्य ! इयं कापि नदी न तत्सर:। उपरि च पूगवृक्षाः न सा मल्लीवल्लीपटली। इत: प्रकाण्डस्य चिंचावृक्षस्य स्कन्धे बद्धावावयोरश्वौ एतस्यैव च शाखासु लम्बन्त आवयो: वस्त्रादीनि। किमेतत् किमाश्चर्यं स्वपिवो जागृवो वा। गन्धर्वलोकमायातौ वा मायाविभि: विमोहितौ वा।

कथानक की घटना के परिवर्तन में भी व्यास जी का विशेष उद्देश्य रहा होगा। 'शिवविजय' के अनुसार गौर और श्याम मन्दिराध्यक्ष की आज्ञा से तालाब में डुबकी लगाकर जब बाहर निकले तो दूसरे ही देश में थे। भौतिक जगत् में इस प्रकार की घटना सम्भव नहीं। सम्भवत: इस प्रकार के वर्णन में व्यास जी पर तत्कालीन प्रसिद्ध तिलस्मी उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री का प्रभाव रहा हो और तिलस्म के दृश्य उनके मस्तिष्क में रहे हों। व्यास जी ने इस प्रकार की असम्भव और अयथार्थ तिलस्मी कल्पना को हटाकर दोनों भाइयों को स्वाभाविक रूप से महाराष्ट्र भेजना उचित समझा होगा।

ऊपर के विवेचन से सिद्ध है कि व्यास जी ने इस उपन्यास की रचना पहिले 'शिवविजय' नाम से की होगी। इसमें कुछ न्यूनताओं का अनुभव करके आपने संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन करके उपन्यास का नाम 'शिवराजविजय' रखा। मुद्रण के लिये 'शिवराजविजय' के वर्तमान रूप की ही पाण्डुलिपि प्रेस में गई।

तृतीय अध्याय

शिवराजविजय (२)

कथा वस्तु

आधुनिक आलोचना की दृष्टि से 'शिवराजविजय' एक ऐतिहासिक उपन्यास है। अतः कथावस्तु की आलोचना प्रारम्भ करने से पूर्व ऐतिहासिक उपन्यास नामक काव्य-विधा के सम्बन्ध में कुछ कह कर इस गद्यकाव्य के कथासार, कथावस्तु के संगठन - आधिकारिक कथा, प्रासंगिक कथाओं, अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और संधियों पर विचार करके कथावस्तु के स्रोतों की विवेचना की गई है।

१. ऐतिहासिक उपन्यास

साहित्य में भाषा के माध्यम से कवि जीवन की अभिव्यक्ति उपस्थित करता है। वर्तमान समय में साहित्य में उपन्यास नामक काव्यविधा का महत्व संसार के सभी देशों में स्वीकार किया जा चुका है। इनमें भी ऐतिहासिक उपन्यासों ने सबसे अधिक लोकप्रियता प्राप्त की है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ऐतिहासिक आधार पर कथायें लिखी जाती रहीं,[1] किन्तु यथार्थवादी रूप से औपन्यासिक कला से लिखना आधुनिक युग की ही देन है। ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास और उपन्यास इन दो तत्वों का मिश्रण है। किन्तु इतिहास का सत्य कालविशेष का सत्य है और उपन्यास का सत्य समय की सीमा के बन्धन में नहीं रहता। ऐतिहासिक उपन्यासकार दोनों सत्यों का समन्वय करके अपनी कृति की रचना करता है।

इतिहास का स्वरूप—

इतिहास के स्वरूप के सम्बन्ध में भिन्न भन्न मत हैं। प्राचीन काल में महाभारत, पुराण आदि का समावेश इतिहास में किया जाता था, किन्तु वर्तमान आलोचना के अनुसार उनमें इतिहास की अपेक्षा काव्यत्व की प्रधानता है। इतिहास समय-विशेष की घटनाओं का संग्रह-मात्र होता है, जिनका ज्ञान उस काल के लेखों, पुरातत्व के अवशेषों आदि से किया जाता है। मानव अनुभूतियों की उपेक्षा करते हुये इतिहासकार उस काल की घटनाओं का उल्लेखमात्र करता है। वह इतिहास

१. इतिहासकथोद्भूतमितरद् वा रसाश्रयम्॥ 'काव्यादर्श' १. १५।

के व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ "इति+ह+आस=ऐसा निश्चय से हुआ" को स्वीकार करता है। वह किसी घटना का निर्माण नहीं करता। आधुनिक समय में वैज्ञानिक रूप से इतिहास की रचना करने का आदर्श उसका इतिहासकार के व्यक्तिगत विचारों से रहित होना है। किन्तु इस प्रकार का आदर्श क्रियात्मक नहीं है। इतिहासकार के व्यक्तित्व और विचारों की छाया उसमें पड़ ही जाती है। भिन्न-भिन्न लेखकों की रचनाओं में घटना-साम्य के होते हुये भी कारणों, परिणामों आदि के सम्बन्ध में भिन्नता होने का यही कारण है। इस कल्पना के आदर्श होने पर भी पूर्णतः व्यक्तित्व-शून्य इतिहास उपलब्ध होना असम्भव ही है।[1] शिवाजी का इतिहास ग्रान्ट डफ, खाफीखां, यदुनाथ सरकार आदि विभिन्न व्यक्तित्व के इतिहासकारों द्वारा लिखा जा कर घटनासाम्य के होते हुये भी शिवाजी के व्यक्तित्व को विभिन्न रूप से प्रस्तुत करता है।

उपन्यास का स्वरूप—

उपन्यासकार का दृष्टिकोण इतिहासकार से अनेक अंशों में भिन्न है। वह घटनाओं का निर्माण करता है और उनमें जीवन-रस की धारा प्रवाहित करता है। उपन्यासकार के व्यक्तित्व के माध्यम से मानव-जीवन की अनुभूति प्रकट होती है। उपन्यास में एक शृंखला-बद्ध कहानी होती है, जो ऐतिहासिक रूप से सत्य न होते हुये भी इस प्रकार की हो सकती है। संसार के प्रायः सभी विद्वानों ने इसे मानवजीवन का चित्र स्वीकार किया है, जिसमें मनुष्य-जीवन के रहस्यों को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है।[2] इसमें संसार की प्रत्येक वस्तु, प्रकृति का प्रत्येक रहस्य, जीवन का हर एक पहलू विषय बनाया जा सकता है और इसका महत्व तथा गहराई उपन्यास के सफल होने में सहायक होती है।[3]

---

१. Impartial history being an ideal, is a downright impossibility. In support of this we should point out that every historian looks at the past from a certain point of view which can no more avoid that he can jump out of his own skin.

Introduction to the Philosophy of History by W. H. Walsh p. 20

'आलोचना' (उपन्यास विशेषांक) अक्टूबर १९५४ के पृष्ठ १७५ से उद्धृत।

२. (क) राल्फ फाक्स कृत 'दी नावल एण्ड दी पीपल' १९३७ पृ० २०।

(ख) डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १९३।

(ग) 'साहित्यशिक्षा' (उपन्यास—प्रेम चन्द) पृ० ६३।

३. 'साहित्यशिक्षा' (उपन्यास का विषय—प्रेम चन्द) पृ० ६५।

ऐतिहासिक उपन्यास का स्वरूप—

उपन्यासकार जब ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बना कर अपने कथानक का निर्माण करता है तो वह ऐतिहासिक उपन्यास कहलाता है। इसमें कालविशेष से सम्बन्धित घटनाओं के साथ काल्पनिक घटनाओं का भी समावेश हो सकता है। उस युग के देश-काल को ध्यान में रख कर लेखक ऐतिहासिक पात्रों को उनकी परिधि में तो सीमित रखता ही है, साथ ही काल्पनिक पात्रों को भी उसी सीमा में रखता है। यद्यपि उस काल के व्यक्ति और समाज विलुप्त हो चुके हैं, तथापि उनके कुछ चिह्न अवश्य विद्यमान हैं। अतः ऐतिहासिक विवेक को जागृत रखते हुये लेखक को ऐतिहासिक अनौचित्य से बचना चाहिये।

इतिहास और कल्पना की विभाजक रेखा—

यद्यपि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का भी समावेश होता है, तथापि उसमें तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसके साथ ही ऐतिहासिक उपन्यास-कार अपने व्यक्तित्व की विशिष्ट कल्पनाओं से भूतकाल की चरितगाथाओं, सामाजिक व्यवहारों और रीतिरिवाजों को इस प्रकार से सजीव करता है कि उनको पढ़ कर पाठक का हृदय प्राचीन गौरव से अनुप्राणित हो जाता है। अनेक विद्वान् ऐतिहासिक उपन्यासों में कल्पना का पुट देने वाले लेखकों से रुष्ट हैं। उनके भाव को रवीन्द्रनाथ ने इस प्रकार व्यक्त किया है—

प्रतिवादी कहेंगे कि इसलिये हम कहते हैं कि जितने इच्छा हो उतने उपन्यास लिखो, किन्तु ऐतिहासिक उपन्यास मत लिखो। यद्यपि इस तरह की बात आज हमारे देश में नहीं, किन्तु अंग्रेजी साहित्य में सम्प्रति इसका आभास मिलता है। सर फ्रांसिस पालग्रेव कहते हैं— ऐतिहासिक उपन्यास एक ओर इतिहास का शत्रु है और दूसरी ओर कहानी का भी बड़ा दुश्मन है। अर्थात् उपन्यास लेखक कहानी की खातिर उपन्यास का नाश करते हैं और वह आहत इतिहास कहानी का नाश कर देता है, इस प्रकार बेचारी कहानी के श्वसुरकुल और पितृकुल दोनों नष्ट हो जाते हैं।[1]

वस्तुतः प्रतिवादियों का यह कथन तथ्य के विरुद्ध है। ऐतिहासिक उपन्यास-कार कल्पना द्वारा पुरातत्व और इतिहास की रूखी सूखी बातों को सरस रूप देकर पाठकों के सामने रखता है। वह इधर उधर से प्राप्त बिखरी हुई भिन्न भिन्न सामग्री की सहायता से अपने कौशल द्वारा एक सर्वांगपूर्ण चित्र उपस्थित करता है, जो विशिष्ट काल का सच्चा और जीता जागता होने के साथ साथ

१. 'साहित्य शिक्षा' (ऐतिहासिक उपन्यास—रवीन्द्रनाथ टैगोर) पृ० ८३।

मनोरंजक भी होता है ।[1] कल्पना और इतिहास की विभाजक रेखा की दृष्टि से ऐतिहासिक उपन्यास चार प्रकार के हो सकते हैं—

(क) पूर्ण प्रामाणिक तथा साहित्य से ओत-प्रोत ।

(ख) ऐतिहासिक वातावरण से युक्त तथा कल्पित पात्र और घटनाओं से युक्त ।

(ग) ऐतिहासिक पात्रों से युक्त किन्तु कल्पित घटनाओं से ओत-प्रोत ।

(घ) ऐतिहासिक घटनाओं के सत्य का निदर्शन कराने वाले ।

इनमें अन्तिम तीन रूपों में इतिहास और कल्पना की सीमा स्पष्ट ही है । प्रथम भेद में इतिहास और कल्पना का समन्वय लेखक को करना होता है । 'शिवराजविजय' इसी श्रेणी का उपन्यास है । इसमें कल्पना द्वारा न तो इतिहास को विकृत किया गया है और नाहीं इतिहास की नग्न सत्यता से इसे नीरस अथवा घटना-मात्र का द्योतक बनाया गया है । लेखक ने कल्पना और सत्य का इस प्रकार से सम्मिश्रण किया है कि दोनों का अलग अलग पहिचानना कठिन है । इस उपन्यास में ऐतिहासिक पात्रों का चरित तो युग विशेष के देश-काल के अनुरूप है ही, किन्तु कल्पित पात्रों का चरित भी उसी के अनुरूप है ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ऐतिहासिक उपन्यासों में सत्य की अपेक्षा को विशेष महत्व नहीं दिया । आपका कथन है कि ऐतिहासिक उपन्यासकार को इतिहास के सत्य की विशेष अपेक्षा नहीं होती । यदि कोई व्यक्ति उपन्यास में इतिहास की उस विशेष गन्ध और स्वाद से ही एकमात्र सन्तुष्ट न हो और उसमें से अखण्ड इतिहास को निकालने लगे तो वह साग के बीच में साबुत जीरे, धनियां और सरसों को ढूढ़ेगा ।[2] वे तो यहां तक कहते हैं कि लेखक चाहे इतिहास को अखण्ड रखकर रचना करें या तोड़ फोड़ के, यदि वे ऐतिहासिक रस की अवतारणा कर सकें तो उन्हें अपने उद्देश्य में कृतार्थ समझना चाहिये ।[3] वे व्यक्ति के जीवन में इतिहास और काव्य दोनों को आवश्यक मानते हैं और उनमें काव्य का अधिक महत्व प्रतिपादित करते हैं ।[4]

---

१. It is the business of the historical novelist to bring creative imagination to bear up on the dry facts of the annalist and antiquarian and out of a mass of scattered material gleaned from a variety of sources to evolve a picture having fulness and unity of a people of art.

डब्लू एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६० ।

२. 'साहित्यशिक्षा' (ऐतिहासिक उपन्यास—रवीन्द्रनाथ टैगोर) पृ० ८६ ।

३. 'साहित्यशिक्षा' (ऐतिहासिक उपन्यास—रवीन्द्रनाथ टैगोर) पृ० ८६ ।

४. 'साहित्यशिक्षा' (ऐतिहासिक उपन्यास—रवीन्द्रनाथ टैगोर) पृ० ८७-८८ ।

भारतीय काव्य-शास्त्र की दृष्टि से ऐतिहासिक काव्य में ऐतिहासिक तत्व केवल इतिवृत्त के निर्वाह-मात्र के लिये नहीं होते, अपितु वे कथा के रस अथवा भावों के अनुकूल होते हैं।[१] कवि की कल्पना इतिहास की मर्यादा को भंग नहीं करती, अपितु इतिहास-गत मुख्य कथानक से एकरूप हो जाती है।[२] व्यास जी ने अपने इस ऐतिहासिक उपन्यास (गद्यकाव्य) में इन मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं किया।

ऐतिहासिक उपन्यास का उद्देश्य—

ऐतिहासिक उपन्यासकार अनेक भावनाओं से प्रेरित होकर उपन्यास-रचना की ओर प्रवृत्त होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ऐतिहासिक रस का संचार करना ही इस भावना का मूल प्रतिपादित किया। वे कहते हैं कि अलंकार-शास्त्र में जो मूल नवरस कहे गये हैं, उनके अतिरिक्त बहुत से अनिर्वचनीय नव-रस हैं, जिनके उल्लेख का यत्न नहीं किया गया। इन्हीं समस्त अनिर्दिष्ट रसों के अन्दर एक का नाम ऐतिहासिक रस रखा जा सकता है और यह रस महाकाव्यों का प्राणस्वरूप होता है।[३] लेखक के हृदय में प्राचीनता के प्रति मोह की भावना होती है, उस मोह के वशीभूत हुआ वह अनेक प्रेरणाओं से ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की ओर प्रवृत्त होता है।

वस्तुत: ऐतिहासिक उपन्यास की रचना करते हुये लेखक के हृदय में एक या कई भावनायें संयुक्त होकर उसे प्रेरणा प्रदान करती हैं। प्राचीन काव्य-शास्त्र में काव्य के जो ६ प्रयोजन कहे गये हैं,[४] उनके अन्तर्गत इन सब मान्यताओं का समन्वय किया जा सकता है। प्राचीन उद्देश्यों और नवीन उद्देश्यों में केवल दृष्टिकोण का कुछ भेद है। व्यास जी ने ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के इन प्रयोजनों को 'शिवराजविजय' के भूमिका रूप निर्माण-हेतु में स्पष्ट कर दिया है। इस उपन्यास में व्यास जी ने अतीत की गौरवगाथा, स्वतंत्रता-प्राप्ति और देश,

---

१. यदितिहासादिषु कथासु रसवतीषु विविधासु सतीष्वपि यत्तत्र विभावाद्यौचित्यवत्कथाशरीरं तदेव ग्राह्यं नेतरत्॥ 'ध्वन्यालोक' बालप्रियालोचनटीकासहित चौखम्बा संस्कृत सीरीज १९९७। पृ० ३३४

२. वृत्तादपि कथाशरीरादुत्प्रेक्षिते विशेषतः प्रयत्नवता भवितव्यम्। तत्र ह्यनवधानात् स्खलतः कवेरव्युत्पत्तिसंभावना महती भवति॥ 'ध्वन्यालोक' बालप्रियालोचनटीकासहित चौखम्बा संस्कृत सीरीज १९९७ पृ० ३३४।

३. 'साहित्यशिक्षा' (ऐतिहासिक उपन्यास—रवीन्द्रनाथ टैगोर) पृ० ८४।

४. काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥ 'काव्यप्रकाश' १. २॥

धर्म तथा जाति के लिये सर्वस्व-बलिदान की भावना का भावुक चित्र उपस्थित करके जन जन के मानस में आत्मसम्मान का भाव उत्पन्न करते हुये यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया, कि भारतीय शौर्य, धर्म, सभ्यता और संस्कृति संसार में हीन नहीं, अपितु सर्वश्रेष्ठ स्थान पर प्रतिष्ठित है।

२. कथानक—

'शिवराजविजय' का कथानक तीन विरामों में विभक्त है। प्रत्येक विराम में ४ निःश्वास हैं। संक्षेप से कथानक इस प्रकार है—

दक्षिण में मुसलमानों के आधिपत्य तथा अत्याचारों से खिन्न शिवाजी ने स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष प्रारम्भ किया। उस काल में दो दो कोस पर आश्रम बने हुये थे, जो मुसलमानों की गतिविधि का परिचय रखते थे। शिवाजी की निरन्तर विजयों से उद्विग्न होकर बीजापुर-दरबार ने उनसे युद्ध करने के लिये अफजलखां को भेजा। उस समय शिवाजी प्रताप-दुर्ग में थे। अफजलखां ने भी वहीं भीमा नदी के तट पर शिविर डाल दिया। बीजापुर के शासक सन्धि का धोखा करके शिवाजी को जीवित पकड़ना चाहते थे, किन्तु उनकी इस अभिसन्धि का शिवाजी को पता लग गया। एक यवन-गुप्तचर बीजापुर दरबार का पत्र ले जा रहा था। मार्ग में उसने एक ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया, किन्तु वह कन्या एक आश्रम के अध्यक्ष - ब्रह्मचारिगुरु के शिष्यों - गौरसिंह और श्यामसिंह द्वारा बचा ली गई यवन-गुप्तचर गौरसिंह द्वारा मारा गया तथा बीजापुर का गुप्त सन्देश उसके वस्त्रों में से गौरसिंह को प्राप्त हुआ।

इस गुप्त संदेश को जानकर शिवाजी ने स्वयं अफजलखां को छलने की योजना बनाई। बीजापुर के दरबार से सन्धि-प्रस्ताव लेकर भेजे गये पं० गोपीनाथ द्वारा प्रतापदुर्ग की तलहटी में अफजलखां से मिलने का शिवाजी ने प्रबन्ध किया। गौरसिंह भी एक गायक के वेश में अफजलखां के शिविर में जा कर सम्पूर्ण षड्यन्त्र का भेद निकाल लाया। शिवाजी ने अपनी सेना चारों ओर जंगल में तथा अफजलखां के शिविर के आसपास छिपा दी। प्रातःकाल अफजलखां शिवाजी से मिलने आया। शिवाजी अपने कपड़ों के अन्दर कवच और हाथों में बाघनख नाम का हथियार पहिन कर गये। परस्पर आलिंगन करने पर शिवाजी ने अफजलखां के कन्धों और गर्दन को फाड़ कर उसे पटक दिया तथा उनकी सेना ने मुसलमानी सेना को मार कर भगा दिया।

गौरसिंह द्वारा जिस ब्राह्मण कन्या की रक्षा की गई थी, उसके संरक्षक एक वृद्ध ब्राह्मण थे। उनके आने पर रहस्योद्घाटन हुआ कि वह कन्या गौर

और श्याम की बहिन सौवर्णी है तथा वृद्ध उनके पुरोहित देवशर्मा हैं। तदनन्तर ब्रह्मचारिगुरु के अनुरोध पर गौरसिंह ने अपना वृत्तान्त सुनाया—

वे उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह के पुत्र हैं। माता-पिता की मृत्यु के बाद तीनों बहिन भाई पुरोहित की संरक्षकता में रहते थे। एक बार शिकार खेलने जाकर दोनों भाई लुटेरों द्वारा पकड़े गये। किसी युक्ति से वे घोड़ों पर चढ़ कर निकल भागे और एक हनुमान-मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से महाराष्ट्र पहुँचे। यहां भीमा नदी के किनारे उनकी शिवाजी से भेंट हुई और वे इस आश्रम में रहने लगे।

शाइस्ताखां पूना पर अधिकार करके वहीं शिवाजी के महलों में रहने लगा था। शिवाजी का उससे युद्ध अनिवार्य हो गया। शिवाजी ने सिंहदुर्ग से अपना एक संदेश रघुवीरसिंह द्वारा तोरण-दुर्ग के अध्यक्ष के पास भेजा। आंधी-पानी की उपेक्षा करता हुआ वह तोरण-दुर्ग पहुँच कर दुर्गाध्यक्ष की आज्ञा से हनुमान् मन्दिर में ठहरा इसी मन्दिर में देवशर्मा सौवर्णी को साथ लेकर रहने लगे थे। मन्दिर की वाटिका में गाना गाती हुई सौवर्णी को देख कर रघुवीरसिंह के हृदय में उसके प्रति अनुराग की भावना जागृत हुई। शिवाजी के आदेश के अनुसार रघुवीरसिंह शाइस्ताखां के साथ होने वाले युद्ध के भविष्य को पूछने के लिये देवशर्मा के पास गया। देवशर्मा ने सौवर्णी द्वारा उसे एक मोदक खिला कर गले में एक माला डलवाई और प्रातःकाल आकर रात्रि में देखे गये स्वप्न का वृत्तान्त सुनाने के लिये कहा। प्रातःकाल दुर्गाध्यक्ष से संदेश का उत्तर लेकर वह देवशर्मा के पास गया और यवनों के साथ युद्ध में विजय तथा आर्यों के साथ युद्ध में पराजय यह भविष्य जान कर वाटिका में गया। वाटिका में उसकी पुनः सौवर्णी से भेंट हुई। तदनन्तर वह हनुमान् जी का प्रसाद लेकर सिंहदुर्ग की ओर चल पड़ा।

शाइस्ताखां पूना में और शिवाजी सिंहदुर्ग में थे। एक बार प्रच्छन्न वेष में घूमते हुये शिवाजी की भूषण-कवि से भेंट हुई। शिवाजी ने उसे अपनी राजसभा में बुलाया। उसकी कविता सुनकर पारितोषिक देने के साथ ही उन्होंने उसको अपनी सभा में स्थान दिया। शिवाजी ने शाइस्ताखां पर आक्रमण की योजना बनाई। एक दिन शाइस्ताखां सायंकाल के समय अपने दरबारियों के साथ युद्ध की योजना बना रहा था। महादेव पण्डित का वेश धारण करके शिवाजी वहां दूत के रूप में उपस्थित हुये और सन्धि की अभिलाषा प्रकट की। खां इससे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने दिल्ली के बादशाह की आधीनता स्वीकार करना, जीते हुये दुर्गों को वापिस

करना और सिंह-दुर्ग आदि कुछ दुर्गों को बादशाह को उपहार में देना, ये शर्तें प्रस्तुत कीं। शिवाजी कुछ बातें करके उठ गये और भवन आदि का निरीक्षण करते हुये चले गये। शाइस्ताखां के एक सरदार चांदखां को उन पर कुछ शक हुआ और वह भी उनके पीछे २ चला।

शिवाजी के साथ उनके बाल्यमित्र माल्यश्रीक भी आये थे। वे यवनभिक्षु के वेष में भवनों का निरीक्षण करके राजमार्ग के एक किनारे बैठे हुये भारतवर्ष की दुर्दशा पर आंसू बहा रहे थे। महादेव के आने पर दोनों बहाना करके एक अन्धेरी गली में घुस गये। घूमते हुये शिवाजी एक टूटे शिवमन्दिर में पहुंचे, जहां उनके साथी पहिले ही पहुंच चुके थे। शिवाजी ने बारात के वेश में नगर में प्रवेश करने की योजना बनाई थी। इसी समय पीछा करते हुये चांदखां ने शिवाजी पर आक्रमण किया, किन्तु वह उनके हाथ से मारा गया।

शिवाजी पूना नगर से बाहर निकल कर उसी वेष में यशवन्तसिंह से मिलने गये। अपनी वाग्मिता से उसके हृदय में हिन्दुत्व की भावनाओं को उद्दीप्त करके उन्होंने अनुरोध किया कि क्योंकि वे कल रात में शाइस्ताखां पर आक्रमण करना चाहते हैं, अतः यशवंतसिंह किसी बहाने से पूना से कुछ दूरी पर रहें। शिवाजी का अनुरोध स्वीकार कर लिया गया।

रघुवीरसिंह सौवर्णी से पांच-छः बार मिल चुका था। दोनों के हृदय में एक दूसरे के प्रति अनुराग की भावना उत्पन्न हो गई थी। एक बार वे दोनों वाटिका में परस्पर प्रेमालाप कर रहे थे कि घर में गौरसिंह के आ जाने पर सौवर्णी चली गई। गौरसिंह और देवशर्मा को सौवर्णी के विवाह की चिन्ता थी। गौरसिंह ने देवशर्मा को बताया कि उनके पिता ने आमेर राजघराने के एक जागीरदार वीरेन्द्रसिंह के पुत्र रामसिंह से सौवर्णी का विवाह-सम्बन्ध निश्चित किया था। इसी समय रघुवीरसिंह ने आ कर कहा कि औरंगजेब की पुत्री रोशनआरा गोलकुण्डा आये हुये अपने पिता से मिलने के लिये यहां से दो कोस दूर पश्चिम की ओर से जा रही है। गौरसिंह ने तुरन्त ही रोशनआरा को कैद करने की योजना बनाई और छल से उसे पकड़ कर तोरण दुर्ग में रख कर शिवाजी को सूचना दी। इस समय शिवाजी पूना पर अभियान करने के लिये प्रस्तुत थे। इस शुभ शकुन से सभी उत्साहित हुये। कुछ चुने हुये साथियों सहित शिवाजी पूना के द्वार पर पहुंचे और रात होने पर पूर्व योजना के अनुसार एक बारात के साथ नगर में प्रविष्ट हो गये। उन्होंने रात में शाइस्ताखां के निवास पर आक्रमण किया। इसमें चांदखां के और शाइस्ताखां के पुत्र रघुवीरसिंह द्वारा निहत हुये। शाइस्ताखां के खिड़की से कूद कर भागने पर शिवाजी के एक सैनिक

ने खड्ग फेंक कर मारा, जिससे उसकी दो अंगुलियां कट गईं। अपना कार्य समाप्त करके शिवाजी पूना से निकल कर सकुशल सिंहगढ़ पहुंच गये।

एक दिन शिवाजी रोशनआरा से मिलने के लिये तोरण-दुर्ग गये। रोशनआरा शिवाजी के पराक्रम और सौन्दर्य से उन पर अनुरक्त हो गई। यहां से शिवाजी सिंहदुर्ग की ओर चले ही थे कि मार्ग में उन्हें माल्यश्रीक मिल गये। माल्यश्रीक ने बताया कि आपसे युद्ध करने के लिये आये हुये मुअज्जम को गौरसिंह ने वेश्या का रूप धारण करके छल से अपहृत कर लिया है और ब्रह्मचारिगुरु के आश्रम में रखा है।

शिवाजी मुअज्जम को आदर से रखने का प्रबन्ध करने के लिये आदेश देकर चले ही थे कि सेनापति वीरेन्द्रसिंह के सैनिकों ने चारों तरफ शत्रुओं को जीतने और सूरत की विजय का समाचार दिया। इन समाचारों से प्रसन्न होकर वे सिंहदुर्ग चले गये।

एक समय ब्रह्मचारी-गुरु के आश्रम में गौरसिंह के पराक्रम से प्रसन्न हुये अनेक जन परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। उस समय गौरसिंह द्वारा अनुरोध किये जाने पर गुरुजी ने अपना वृत्तान्त सुनाया—

वे जयपुर के राजघराने के हैं और जयपुर के समीप जितवार ग्राम में रहते थे। खड्गसिंह उनके मित्र थे। कुछ मिथ्या कारणों से राजा जयसिंह के रुष्ट हो जाने से वे अपने पुत्र रामसिंह और पुरोहित को लेकर रामेश्वर की यात्रा के लिये चल पड़े। मार्ग में तूफान आने से जहाज डूब गया। वे किसी प्रकार बच कर महाराष्ट्र पहुंच गये। पुरोहित की पीठ पर बन्धा हुआ उनका पुत्र न जाने कहां बह गया। रामचन्द्र के मन्दिर के एक पुजारी ने बताया है कि विवाह के समय तुम उसे देखोगे। महाराष्ट्र में भीमा के तट पर दो यवन-लुटेरों को मार भगाने की उनकी वीरता से शिवाजी ने प्रसन्न होकर पांच-छः नौकरों को नियुक्त करके उन्हें एक आश्रम का अध्यक्ष नियत कर दिया। उनका नाम वीरेन्द्रसिंह है।

इसी समय वहां रघुवीरसिंह आया। वह गौरसिंह को शिवाजी के पास भेज कर स्वयं तोरणदुर्ग की ओर गया। उसे देखकर सौवर्णी रोने लगी। उससे कहा कि तोरण-प्रान्त का रक्षक क्रूरसिंह उसका अपमान किया करता है। रघुवीरसिंह ने अनेक प्रकार से उसे सान्त्वना दी। इन्हीं दिनों क्रूरसिंह के किसी दूसरे स्थान पर नियुक्त किये जाने से उनका यह कष्ट दूर हो गया।

शिवाजी को सभी व्यक्तियों का ध्यान रहता था। एक दिन आपने मुअज्जम से मिल कर उसे सान्त्वना दी तथा रोशनआरा के आमन्त्रण पर उससे मिलने गये।

रोशनआरा ने अपने हृदय का अनुराग प्रकट किया, किन्तु शिवाजी ने कहा कि पिता द्वारा देने पर ही वे उसे ग्रहण कर सकते हैं। इसी समय उस भवन में आग लग गई। शिवाजी रोशनआरा को उठाकर बाहर ले आये। बाहर आकर उन्हें महाराजा जयसिंह के ससैन्य आने की सूचना मिली। साथियों के साथ विचार-विमर्ष करके, जयसिंह के साथ युद्ध करना व्यर्थ समझ कर उन्होंने सन्धि करने का निश्चय किया। शिवाजी स्वयं जयसिंह के पास गये और उसकी हिन्दुत्व-भावनाओं को उद्दीप्त करने का प्रयत्न किया। परन्तु उनको अपने इन प्रयत्नों में सफलता प्राप्त नहीं हुई। वे सन्धि में मुगलों की आधीनता स्वीकार करने के लिये बाध्य हुये। सन्धि के फलस्वरूप रोशनआरा और मुअज्जम मुगलों के सुपुर्द कर दिये गये।

सन्धि के अनुसार शिवाजी को मुगलों की बीजापुर के विरुद्ध सहायता करनी थी। बीजापुर के एक किले — रुद्रमण्डल पर शिवाजी ने सैनिकों के साथ रात्रि में आक्रमण किया। रघुवीरसिंह की अद्भुत वीरता के कारण शिवाजी किले पर अधिकार करने और किलेदार रहमतखां को जीवित पकड़ने में सफल हुये। अगले दिन सैनिकों को पारितोषिक देते हुये रघुवीर का सन्मान किया गया। रहमतखां स्वतंत्र कर दिया गया। रहमतखां ने शिवाजी को बताया कि आपकी सेना में एक राजद्रोही है। क्रूरसिंह द्वारा यह आरोप रघुवीरसिंह पर लगाया जाने पर शिवाजी ने पारितोषिक छीन कर उसे निर्वासित कर दिया।

अगले दिन जयसिंह द्वारा अन्वेषण करने पर विदित हुआ कि विश्वासघाती वास्तव में क्रूरसिंह था। परन्तु वह इस समय तक कहीं भाग गया था। रघुवीर के पुरोहित गणेशशास्त्री ने जयसिंह से कहा कि रघुवीर तुम्हारे जागीरदार वीरेन्द्रसिंह का पुत्र रामसिंह है, जो तुम्हारे ही दोष के कारण न जाने कहां चला गया है। वीरेन्द्रसिंह का समाचार जान कर जयसिंह स्वयं उनके पास गये और दुःख प्रकट करते हुये क्षमा-याचना की।

अपमान से दुःखित रघुवीर ने राघवस्वामी का वेष धारण कर शिवाजी के प्रति उपकार करके अपने ऊपर लगाये हुये दोष का प्रतिकार करने का निश्चय किया। वह प्रथम सौवर्णी से मिलने गया और सौवर्णी का अपहरण करने का प्रयत्न करते हुये क्रूरसिंह का वध करके शिवाजी की सहायता के लिये चल पड़ा। शिवाजी और जयसिंह के मध्य हुई सन्धि के फलस्वरूप औरंगजेब का आदेश आने पर शिवाजी को देहली जाने के लिये बाध्य होना पड़ा। वे अपने साथियों के साथ संवत् १६६६ की बसन्त के प्रारम्भ में देहली पहुंचे। मार्ग में अनेक बार राघवस्वामी ने उनको देहली जाने से रोकने का प्रयत्न किया, किन्तु शिवाजी ने उसकी सलाह स्वीकार नहीं की।

देहली पहुंचने पर जयसिंह का पुत्र रामसिंह शिवाजी का स्वागत करके उन्हें औरंगजेब के दरबार में ले गया। वहां बादशाह द्वारा अपमानित होने पर भी शिवाजी रामसिंह के रोकने पर शान्त रहे और दरबार समाप्त हो जाने पर अपने लिये निर्दिष्ट महल में ठहर गये। देहली में शिवाजी एक प्रकार से कैदी हो गये। उनके मकान पर पहरा लगा दिया गया और उन्हें दक्षिण जाने से रोक दिया गया। एक बार राघवस्वामी ने पूरी योजना बना कर उन्हें निकाल ले जाना चाहा, परन्तु शिवाजी ने साथियों को छोड़कर जाना स्वीकार नहीं किया। मुअज्जम, रामसिंह और अन्य हितचिन्तकों ने उनको मुक्त कराने के लिये प्रयत्न किये पर वे सफल नहीं हुये। इसी बीच एक दिन रोशनआरा ने अपनी सहचरी द्वारा शिवाजी के पास अपना प्रेम-सन्देश भेजा पर उन्होंने किसी तरह उसे समझा दिया। अब शिवाजी ने स्वयं देहली से निकलने की योजना बनाई।

शिवाजी ने बीमारी का बहाना किया। एक दिन उनके मित्र, सेनापति मुरेश्वर यवन-चिकित्सक का वेष बना कर आये। इसके बाद स्वस्थ होने का बहाना किया गया। चारों ओर नगर भर में मिठाईयां बटवानी शुरु की गईं। इन्हीं दिनों मोहर्रम का उत्सव आ गया। शिवाजी ने यमुना किनारे झोपड़ी बनवा कर उसमें से मिठाईयां वितरित करानी प्रारम्भ कीं। एक दिन सायंकाल के समय अन्धेरा हो जाने पर वे मिठाइयों के टोकरों में बैठ कर झोपड़ी में आ गये। यहां सन्यासी का वेष बनाकर वे गौरसिंह और माल्यश्रीक के साथ घोड़ों पर बैठ कर दक्षिण की ओर चल दिये। मार्ग में यवन-सैनिकों द्वारा रोके जाने पर राघवस्वामी ने शिवाजी की प्राण-रक्षा की। यहीं शिवाजी को विदित हुआ कि राघवस्वामी ही रघुवीर है, जो इस वेष में निरन्तर उनकी सहायता करता रहा है। उन्होंने रघुवीर से अनेक प्रकार से क्षमा-प्रार्थना की।

शिवाजी के महाराष्ट्र पहुंचने पर रघुवीर की निर्दोषिता, पराक्रम और स्वामि-भक्ति का समाचार चारों ओर फैल गया। इस समाचार को जान कर सौवर्णी अत्यधिक आनन्दित हुई। महाराष्ट्र पहुंच कर रघुवीर सबसे पहिले अपनी प्रेयसी सौवर्णी से मिला और तदनन्तर देवशर्मा को प्रणाम करके वह अपने पिता वीरेन्द्र-सिंह और पुरोहित गणेशशास्त्री से मिल कर राजमाता की सेवा में चला गया। इसी समय जयपुर नगर से भी एक दूत कुशल-समाचार और रामसिंह (रघुवीरसिंह) के लिये राजपद का अधिकारपत्र ले कर आया।

महाराष्ट्र लौट कर शिवाजी ने बड़े समारोह के साथ प्रताप-दुर्ग में प्रवेश किया। अगले दिन विशिष्ट साथियों की सभा में गौरसिंह को मण्डलेश्वर-पद प्रदान

किया गया। रघुवीरसिंह को भी यह सम्मान प्राप्त हुआ। पुरोहित देवशर्मा के निवेदन करने पर उस दिन से पाँचवें दिन सौवर्णी और रघुवीरसिंह के विवाह का समय निश्चित किया गया। इसी समय महाराणा उदयपुर का पत्र लेकर एक सन्देशवाहक उपस्थित हुआ। तदनन्तर राजसभा में शिवाजी के दूतों ने आकर सूचना दी कि उनके सैनिकों ने मुगलों को सन्धि में दिये गये सब किले पुनः जीत लिये हैं।

सौवर्णी के विवाह का मंगलमय प्रसंग उपस्थित हुआ। गौरसिंह के प्रासाद में विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। शिवाजी ने स्वयं इस अवसर पर उपस्थित हो कर वर-वधू को आशीर्वाद दिया। अब शिवाजी सतारा नगरी को राजधानी बना कर रहने लगे। एक दिन उन्होंने स्वप्न देखा कि उनके निकल आने से औरंगजेब बहुत उद्विग्न है, रोशनआरा ने पिता से भर्त्सना पाकर छाती में छुरा भोंक कर आत्महत्या कर ली है और औरंगजेब के व्यवहार से पीड़ित जयसिंह मुगल साम्राज्य के विनाश की भविष्यवाणी करता हुआ दिवंगत हो गया है। कुछ ही दिनों में सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर शिवाजी का अधिकार हो गया और औरंगजेब द्वारा भेजा गया सेनापति मोहब्बतखां भगा दिया गया। सम्पूर्ण महाराष्ट्र देश विजय के वाद्यों से गूंजने लगा।

३. कथावस्तु का संगठन

कथावस्तु के ढांचे पर उपन्यास का प्रासाद खड़ा किया जाता है, अतः उसके प्रस्तुत करने के रूप और संघटन द्वारा उपन्यास की रोचकता और उत्कृष्टता में अभिवृद्धि होती है। इस स्थल पर 'शिवराजविजय' के कथानक के संघटन-कौशल पर विचार करना अपेक्षित होगा। संस्कृत काव्यशास्त्र में गद्यकाव्य की कथावस्तु के संघटन पर विशेष विचार नहीं किया गया। यद्यपि इस प्रकार का विस्तृत विचार नाटकों की कथावस्तु के संघटन पर प्राप्त होता है, तथापि प्राचीन काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थों में इस तथ्य का उल्लेख अवश्य है कि महाकाव्यों में कथा का संघटन नाटकों के कथा-संघटन के अनुसार ही होना चाहिये और नाटकों की कथावस्तु के संघटन में जिस प्रकार सन्धियां आदि होती हैं वे अन्य काव्यों की रचना में भी होनी चाहियें।[1] भामह, दण्डी और रुद्रट इन सभी ने महाकाव्यों में सन्धियों की योजना का प्रतिपादन किया है। प्रबन्ध के व्यंजकत्व का प्रतिपादन करने के लिये ध्वन्यालोककार ने जो विवेचना की है उससे भी यह भाव झलकता है कि सभी प्रकार के काव्यों में रसाभिव्यक्ति की अपेक्षा से सन्धि आदि के संघटन होने चाहिये।[2] यद्यपि सन्धि आदि का आयोजन सभी प्राचीन गद्यकाव्यों में पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है तथापि 'शिवराजविजय' की कथा में इनकी योजना परिलक्षित होती है। इस गद्यकाव्य के

---

१. सर्वे नाटकसन्धयः। 'साहित्यदर्पण' ६. ३१७।
२. 'ध्वन्यालोक' तृतीय उद्योत कारिका सं० १०-१४।

कथावस्तु संघटन पर संस्कृत काव्य-शास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार निम्न प्रकार से विचार किया जा सकता है—

(क) कथावस्तु का प्रकार, (ख) आधिकारिक तथा प्रासंगिक इतिवृत्त, (ग) अर्थप्रकृतियां, (घ) कार्यावस्थायें, (च) सन्धियां।

प्राचीन प्रणाली से की गई विवेचना के अतिरिक्त आधुनिक आलोचना प्रणाली से निम्न तथ्यों की दृष्टि से भी विचार किया गया है :—

(छ) कथानक की घटनाओं का संघटन, (ज) कथा कहने का ढंग, (झ) कथा का प्रारम्भ, चरमोत्कर्ष और अन्त।

(क) कथावस्तु का प्रकार—

कथा-वस्तु प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र भेद से तीन प्रकार की होती है।[1] पुनः यह कथावस्तु दो प्रकार की होती है। सम्पूर्ण कथा या तो किसी एक ही घटना से निर्मित होती है, अथवा इसमें अनेकविध घटनाओं का सम्मिश्रण होता है। प्रथम अवस्था में इसे सरल और द्वितीय अवस्था में इसे मिश्रित कहते हैं।[2] 'शिव-राजविजय' में शिवाजी की मुसलमानों से संघर्ष-विषयक घटनायें ऐतिहासिक हैं। अतः इसकी कथावस्तु प्रख्यात है। रघुवीरसिंह आदि की घटनायें काल्पनिक होने से यह उत्पाद्य भी है। प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों प्रकार की घटनाओं से निहित होने के कारण यह कथावस्तु मिश्रित है। कथानक के अनेकविध घटनाओं से संघटित होने के कारण भी यह मिश्रित है। इन सभी घटनाओं को इस प्रकार निबद्ध किया गया है कि सम्पूर्ण कथानक में एकता रहती है।

(ख) आधिकारिक तथा प्रासंगिक इतिवृत्त—

यदि प्रबन्ध में अनेक घटनायें होती हैं तो ये आधिकारिक और प्रासंगिक भेद से दो प्रकार की होती हैं।[3] 'शिवराजविजय' में शिवाजी का कथानक आधिकारिक अर्थात् मुख्य कथा है, जिनके उत्कर्ष की सिद्धि के लिये अन्य—रघुवीरसिंह, गौरसिंह, वीरेन्द्रसिंह आदि की कथाओं का संयोजन किया गया है। ये सब कथायें प्रासंगिक कथायें हैं। ये प्रासंगिक कथायें कथा के नायक शिवाजी के कार्य स्वतन्त्रता की प्राप्ति में सहायक हैं।

---

१. प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात् त्रेधाऽपि तत् त्रिधा। 'दशरूपक' १. १५।

२. The plot of the novel may be simple or compound, that it may be composed of one story only, or of two or more stories in combination.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १४२।

३. तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासंगिकं विदुः। 'दशरूपक' १. ११।

कथावस्तु पांच प्रकार की अर्थप्रकृतियों, पांच प्रकार की कार्यावस्थाओं और पांच प्रकार की संधियों से युक्त हो सकती है। 'शिवराजविजय' में कथावस्तु के ये सभी तत्व उपलब्ध हैं।

(ग) अर्थप्रकृतियां—

अर्थप्रकृतियां पांच प्रकार की होती हैं—बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य।[1] ये पाँचों अर्थप्रकृतियां इस उपन्यास में हैं।

बीज—जिसका पहिले थोड़े में कथन किया जावे और आगे चल कर जो अनेक रूप से विस्तार को प्राप्त हो उसे बीज कहते हैं।[2] प्रथम निश्वास में ब्रह्मचारी-गुरु योगिराज के सम्मुख मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित भारतवर्ष की दशा का वर्णन करके कहते हैं—पूनानगर के समीप ही शिवाजी सिंहदुर्ग में रहते हैं। बीजापुर के साथ उनका वैर बढ़ गया है और "कार्यं व साधयेयं देहं वा पातयेयम्" उनकी यह प्रतिज्ञा है।[3] भारतवर्ष की वे आशा हैं। यह कथन बीज है।

बिन्दु—अवान्तर कथा के द्वारा प्रधान कथा के विच्छिन्न होने पर जो प्रधान कथा के अविच्छेद का कारण हो उसे बिन्दु कहते हैं।[4] 'शिवराजविजय' में अनेक अवान्तर कथायें हैं। उनके समाप्त होने पर प्रधान कथा के अविच्छेद के कारण पुनः उपस्थित होते हैं। द्वितीय निश्वास में अफजलखां को गाना सुनाने की अवान्तर कथा से मुख्य कथा विच्छिन्न होने लगती है। पुनः अफजलखां और तानरंग में शिवाजी विषयक वार्तालाप होने लगता है, उस समय अफजलखां शिवाजी को पकड़ने की अपनी योजना प्रकट कर देता है। जिससे प्रधान कथा अविच्छिन्न होती है। तृतीय निश्वास में गौरसिंह के वृत्तान्त द्वारा प्रधान कथा के विच्छिन्न होने पर लेखक गौरसिंह द्वारा कहलाते हैं—"यथासमयं शिववीरं साक्षात्कृत्यावगतम् यदेष एव महात्मा भटवेषेणास्मन्निकटे भीमानद्यास्तटं गत आसीदिति। तत्कालमारभ्याद्यावधि तस्यैव करकमलच्छायायां वसावः"।[5] इस प्रकार प्रधान कथा को अविछिन्न करने वाले ये तत्व बिन्दु हैं।

पताका—प्रासंगिक कथायें पताका और प्रकरी भेद से दो प्रकार की होती

---

१. बीजबिन्दुपताकाख्यप्रकरीकार्यलक्षणाः।
अर्थप्रकृतयः पंच तास्ताः परिकीर्तिताः॥ 'दशरूपक' १. १८।

२. स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्धेतुर्बीजं विस्तार्यनेकधा। 'दशरूपक' १. १७।

३ 'शिवराजविजय' पृ० सं० २४।

४. अवान्तरार्थविच्छेदे विन्दुरच्छेदकारणम् 'दशरूपक' १. १७।

५. 'शिवराजविजय' पृ० सं० १०५।

हैं। जो कथा आधिकारिक कथा के साथ दूर तक चलती रहे उसे पताका कहते हैं।[1] रघुवीर और सौवर्णी की कथा दूरव्यापी है, अतः यह पताका है।

प्रकरी—जो कथा प्रसंगवश उपस्थित हो कर एक ही प्रदेश में रहे उसे प्रकरी कहते हैं।[2] प्रथम निश्वास में योगी और यवन युवक की घटनायें, द्वितीय निश्वास में तानरंग का अफजलखां के शिविर में गाना सुनाना, तृतीय निश्वास में गौरसिंह द्वारा अपने वृत्तान्त का वर्णन करना, अष्टम निश्वास में वीरेन्द्रसिंह की कथा आदि कथायें प्रकरी हैं।

कार्य—प्रबन्ध में जो साध्य है और जिसकी सिद्धि के लिये सम्पूर्ण उपायों का अवलंबन किया जाता है उसे कार्य कहते हैं।[3] इस उपन्यास में शिवाजी द्वारा महाराष्ट्र की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना कार्य है।

(घ) कार्यावस्थायें—

कार्यावस्थायें पांच प्रकार की होती हैं—आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम।[4] 'शिवराजविजय' में पाँचों अवस्थायें इस प्रकार से हैं :—

आरम्भ—फल की इच्छा के लिये प्रारम्भ किये गये कार्य की पाँच अवस्थाओं में प्रथम अवस्था आरम्भ है। फल की सिद्धि के लिये जो उत्सुकता होती है उसे आरम्भ कहते हैं।[5] द्वितीय निश्वास में वार्तालाप करते हुये शिवाजी और गौरसिंह मुसलमानों को पराभूत करने के लिये उत्सुक दिखाई देते हैं।[6] यह आरम्भ की अवस्था है।

यत्न—फल की प्राप्ति न होने पर जो अत्यन्त त्वरा से कार्य किया जाता है, उसे यत्न कहते हैं।[7] शिवाजी को अपने प्रयत्नों में सफलता मिलती जाती है। किन्तु नवम निश्वास में राजा जयसिंह के आने पर उनके स्वाधीनता के लिये किये गये प्रयास विफल होने लगते हैं, तब वे जयसिंह के पास जा कर उसकी हिन्दू भावनाओं

---

१. सानुबन्धं पताकाख्यम्। 'दशरूपक' १. १३। दूरं यदनुवर्तते प्रासंगिकं सा पताका। इसी कारिका की धनिक - टीका।

२. प्रकरी च प्रदेशभाक्। 'दशरूपक' १. १३। यदल्पं सा प्रकरी। इसी कारिका की धनिक - टीका।

३. अपेक्षितं तु यत्साध्यमारम्भो यन्निबन्धनम्।
समापनं तु यत् सिद्ध्यै तत्कार्यमिति सम्मतम्। 'साहित्यदर्पण' ६. ७०-७१।

४ अवस्था पंच कार्यस्य प्रारब्धस्य फलार्थिभिः।
आरम्भ-यत्न-प्राप्त्याशा-नियताप्ति-फलागमाः। 'दशरूपक' १. १६।

५. औत्सुक्यमात्रमारम्भः फललाभाय भूयसे। 'दशरूपक' १. २०।

६ 'शिवराजविजय' पृ० ४६-४७।

७ प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्वितः। 'दशरूपक' १. २०।

को उद्दीप्त करने का उद्योग करते हैं।[1] यह अवस्था यत्न कही जा सकती है।

प्राप्त्याशा—जिस अवस्था में उपाय और अपाय दोनों की आशंका हो, किन्तु प्राप्ति की सम्भावना रहे, उसे प्राप्त्याशा करते हैं।[2] दशम निश्वास में जयसिंह से सन्धि हो जाने के कारण शिवाजी देहली आते हैं। इस समय जयसिंह के वचनों के कारण उन्हें सफलता की आशा है, किन्तु औरंगजेब की कुटिल नीति से कार्यहानि रूप अपाय की आशंका भी होती है। अन्त में सफलता की सम्भावना से वे देहली जाते हैं, यह अवस्था प्राप्त्याशा कही जा सकती है।

नियताप्ति--अपाय के दूर होने पर जब फल की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है। उस अवस्था को नियताप्ति कहते हैं।[3] एकादश निश्वास में शिवाजी के सफलता-पूर्वक देहली से निकल आने और द्वादश निश्वास में उनके महाराष्ट्र पहुंच जाने से महाराष्ट्र की स्वाधीनता की प्राप्ति सुनिश्चित हो जाती है। अतः यह अवस्था नियताप्ति कही जा सकती है।

फलागम—जब सम्पूर्ण फल की प्राप्ति हो जावे तो उसे फलागम कहते हैं।[4] द्वादश निश्वास के अन्त में महाराष्ट्र की पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति फलागम की अवस्था है।

(च) सन्धियां—

पांच अर्थप्रकृतियां क्रमशः पांच कार्यावस्थाओं के साथ मिलकर पांच सन्धियां बनाती हैं।[5] ये पांच सन्धियां मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और उपसंहृति या निर्वहण हैं।[6] 'शिवराजविजय' में इनकी स्थिति इस प्रकार से है—

मुखसन्धि—यह बीज और आरम्भ के समन्वय से बनती है। इसमें नाना अर्थों से युक्त बीज की उत्पत्ति होती है।[7] 'शिवराजविजय' में प्रथम निश्वास से लेकर द्वितीय निश्वास में "शिवाजी - गौरसिंह" संवाद तक मुखसन्धि की स्थिति कही जा सकती है।

प्रतिमुखसन्धि—जब मुखसन्धि में दिखाये गये बीज का कुछ लक्ष्य और कुछ

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० सं० ३४४-३५३।
२. उपायापायशंकाभ्यां प्राप्त्याशा प्राप्तिसंभवः। 'दशरूपक' १. २१।
३. अपायाभावतः प्राप्तिर्नियताप्तिः सुनिश्चिता। 'दशरूपक' १. २१।
४. समग्रफलसम्पत्तिः फलयोगो यथोदितः। 'दशरूपक' १. २२।
५. अर्थप्रकृतयः पंच पंचावस्थासमन्विताः।
यथासंख्येन जायन्ते मुखाद्याः पंचसन्धयः। 'दशरूपक' १. २२-२३।
६. मुखप्रतिमुखे गर्भः सावमर्शोपसंहृतिः। 'दशरूपक' १. २४।
७. मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरस संभवा। 'दशरूपक' १. २४।

अलक्ष्य रीति से उद्भेद हो और साथ में बिन्दु अर्थप्रकृति और यत्न कार्यावस्था मिल कर कार्य-शृंखला को अग्रसर करें तो वह प्रतिमुखसन्धि होती है।[1] द्वितीय निश्वास में अफजलखां के साथ युद्ध के प्रसंग से आरम्भ करके नवम निश्वास में जयसिंह से शिवाजी के मिलने तक की कथा प्रतिमुख - सन्धि कही जा सकती है।

गर्भसन्धि—पूर्व सन्धियों में कुछ प्रकट हुये और कुछ छिपे बीज का पुनः अन्वेषण किया जावे तो पताका अर्थप्रकृति तथा प्राप्त्याशा कार्यावस्था मिल कर गर्भसन्धि को बनाते हैं।[2] नवम निश्वास में जयसिंह से सन्धि करने पर दशम निश्वास में जब शिवाजी औरंगजेब के दरबार में उपस्थित होने के पश्चात् कैद कर लिये जाते हैं, तब वे निकलने का उद्योग करते हैं। इस स्थल पर्यन्त गर्भसन्धि है। इस सन्धि में जयसिंह के साथ विग्रह समाप्त हो जाने के कारण बीज कुछ प्रकाशित है, परन्तु औरंगजेब द्वारा कैद कर लिये जाने पर वह छिप जाता है। शिवाजी द्वारा निकल जाने के उद्योग से उसका पुनः अन्वेषण किया जाता है। इस अवसर पर पताका प्रासंगिक कथा का नायक निरन्तर शिवाजी के समीप रहता है।

अवमर्शसन्धि—गर्भसन्धि द्वारा बीज के अधिक स्पष्ट होने पर यदि क्रोध आदि द्वारा इसमें विघ्न उपस्थित हों तो इसे अवमर्शसन्धि कहते हैं।[3] यह प्रकरी और नियताप्ति के समन्वय से बनती है। शिवराजविजय में यह सन्धि स्पष्ट नहीं है। शिवाजी देहली से निकल कर अपने साथियों के साथ दक्षिण की ओर चल देते हैं, परन्तु मार्ग में यवन सैनिकों द्वारा रोक दिये जाते हैं। यहां अवमर्शसन्धि हो सकती है, क्योंकि इसके बाद शिवाजी के महाराष्ट्र पहुँच जाने से नियताप्ति की अवस्था होती है। इस स्थल पर प्रकरी नामक किसी प्रासंगिक कथा का सम्बन्ध नहीं है, अपितु पताका का नायक रघुवीरसिंह ही उनकी सहायता करता है।

उपसंहृतिसन्धि—पूर्व कथित चारों सन्धियों में वर्णन किये गये अर्थों द्वारा प्रयोजन की सिद्धि होने पर मुख्य फल की प्राप्ति हो जाती है तो इसे निर्वहणसन्धि कहते हैं। उपन्यास के अन्त में महाराष्ट्र की स्वतन्त्रता का प्राप्त हो जाना निर्वहण-सन्धि है। इसे उपसंहृतिसन्धि भी कहा जाता है।

(छ) **कथानक की घटनाओं का संघठन—**

कथानक में घटनाओं का संघटन दो प्रकार से हो सकता है—असम्बद्ध या

---

१. लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्। बिन्दुप्रयत्नानुगमात्। 'दशरूपक' १. ३०।

२. गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।
द्वादशांगः पताका स्यान्न वा स्यात् प्राप्तिसंभवः। 'दशरूपक' १. ३६।

३. क्रोधेनावमृशेद् यत्र व्यसनाद् वा विलोभनात्।
गर्भनिर्भिन्नबीजार्थः सोऽवमर्शोऽङ्गसंग्रहः। 'दशरूपक' १. ४३।

शिथिल कथनात्मक और सम्बद्ध या संगठित घटनात्मक। यदि उपन्यास में घटनायें एक दूसरे पर आश्रित न रहें और एक घटना दूसरी घटना का आवश्यक परिणाम न हो तो उसका कथानक शिथिल कथनात्मक कहलाता है। यदि घटनायें एक दूसरे से इस प्रकार सम्बद्ध रहती हों कि उन्हें साधारणतः अलग नहीं किया जा सकता तो कथानक संगठित घटनात्मक कहलाता है। 'शिवराजविजय' की अधिकांश घटनायें इस प्रकार की हैं कि वे एक दूसरे का आवश्यक परिणाम नहीं हैं और उनको स्वतन्त्र रूप में रखा जा सकता है। गौरसिंह का वृत्तान्त, वीरेन्द्रसिंह की कथा, रघुवीरसिंह - सौवर्णी की प्रेमगाथा आदि घटनायें पृथक् पृथक् हैं और साधारणतः एक दूसरे से उत्पन्न हुई नहीं कही जा सकतीं। लेखक ने इन सबको एक सूत्र में पिरो भर दिया है। इस कारण इस उपन्यास को शिथिल कथनात्मक कहना चाहिये।

(ज) कथा कहने का ढंग—

उपन्यास की कथा कहने के तीन प्रकार होते हैं।[1] प्रथम तो उपन्यासकार वर्णनीय कथा से स्वयं को अलग रख कर प्रथम पुरुष में कथा कहता है। द्वितीय, वह पात्रों के मुख से कथा कहलाता है, जैसे कि दशकुमारचरित और कादम्बरी में है। तृतीय वह पात्र आदि के द्वारा कथा का उद्घाटन करता है। व्यास जी ने इसमें कथा कहने के लिये प्रधानतः प्रथम प्रकार को उचित समझा है, यद्यपि कुछ घटनायें जैसे कि गौरसिंह और वीरेन्द्रसिंह के वृत्तान्त पात्रों के मुख से भी कहलाये गये हैं।

(झ) कथा का प्रारम्भ, चरमोत्कर्ष और अन्त—

भारतीय परम्परा के अनुसार ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण किया जाता है, जिसमें कवि अपने इष्टदेव की स्तुति करता है और उसके पश्चात् कथा प्रारम्भ होती है। व्यास जी ने इस परम्परा का पालन किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में विष्णु की स्तुति है। उसके बाद सूर्योदय के वर्णन द्वारा सूर्य की स्तुति है। कथा का प्रारम्भ अनेक प्रकार से किया जाता है, यथा—स्थान का वर्णन करके, समय का वर्णन करके, युग का वर्णन करके, मुख्य पात्र का वर्णन करके, किन्हीं व्यक्तियों के सम्वाद द्वारा, आकस्मिक घटना द्वारा अथवा सीधा कथावस्तु को प्रारम्भ करके। अनेक बार कथा को इस प्रकार भी प्रारम्भ करते हैं कि उसका स्पष्टीकरण बाद में होता है। व्यासजी ने कथा आरम्भ करने की प्राचीन प्रणाली का अवलम्बन नहीं किया। 'दशकुमारचरित' में पुष्पपुरी नगरी का वर्णन करके और 'कादम्बरी' में राजा शूद्रक

---

१. The novelist has his choice among three methods — the direct or epic, the autobiographical, and the documentary.
डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १४३।

का वर्णन करके कथा प्रारम्भ की गई है। किन्तु व्यास जी ने प्रथम सूर्योदय के वर्णन द्वारा सूर्य की स्तुति करके कथानक प्रारम्भ करते हुये गौरसिंह, श्यामसिंह, सौवर्णी और ब्रह्मचारी-गुरु को उपस्थित करके घटना का निर्देश किया है। इनके व्यक्तित्व का उद्घाटन आपने कथा के मध्य में यथास्थान किया है।

कथा में एक चरमोत्कर्ष की अवस्था होती है, जब कि कथा की धारा सहसा ही परिवर्तित होती है। अंग्रेजी में इसके लिये क्लाइमेक्स शब्द का प्रयोग किया जाता है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार प्राप्त्याशा की अवस्था चरमोत्कर्ष कही जा सकती है। उपन्यास में रोचकता उत्पन्न करने के लिये यह अवस्था अत्यन्त आवश्यक है। औरंगजेब द्वारा शिवाजी को कैद कर लेना और शिवाजी का दिल्ली से निकल जाना इस उपन्यास में चरमोत्कर्ष की अवस्था है।

साधारणतः कथा का अन्त दो प्रकार का होता है—सुखान्त और दुःखान्त। अधिकारी को फल की प्राप्ति होने पर कथानक सुखान्त होता है और फल की प्राप्ति न होने पर दुःखान्त। 'शिवराजविजय' सुखान्त उपन्यास है। इसमें मुख्य कथा के नायक शिवाजी महाराष्ट्र को स्वतन्त्र करते हैं और पताका-नायक रघुवीरसिंह अपनी प्रेयसी सौवर्णी को प्राप्त करता है।

कथा का अन्त और भी दो प्रकार से हो सकता है—आकस्मिक (ड्रामेटिक या सडेन) अथवा स्थिर (स्टेटिक)। यदि कथा नाटकीय रीति से सहसा समाप्त हो जाती है तो यह आकस्मिक अन्त होता है। यदि पूर्णतः शान्त रूप में अर्थात् परिणाम के विवेक-पूर्ण समर्थन के रूप में समाप्त होती है तो इसका अन्त स्थिर होता है। इस उपन्यास में महाराष्ट्र की स्वाधीनता-प्राप्ति विवेक-पूर्ण समर्थन के साथ हुई है, अतः यह अन्त स्थिर है।

४. शिवराजविजय के कथानक के स्रोत

पहिले लिखा जा चुका है कि ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास के सत्य और कवि की कल्पना का सम्मिश्रण है। 'शिवराजविजय' के ऐतिहासिक उपन्यास होने से यह भी ऐतिहासिक सत्य और कल्पनाओं का सम्मिश्रण है। इसके कथानक के स्रोतों पर विचार करते हुये घटनाओं की सत्यता तथा काल्पनिकता की विवेचना करनी चाहिये। काल्पनिक घटनाओं की विवेचना में यह भी ध्यान रखना चाहिये कि ये कल्पनायें क्या कवि के मस्तिष्क से स्वयं उद्भूत हुई हैं, अथवा उसने अन्य लेखकों की कल्पना के आधार पर उनको संयोजित किया है। व्यास जी द्वारा 'शिवराजविजय' की रचना करने से पूर्व शिवाजी-विषयक दो ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना भारतीय भाषाओं में हो चुकी थी। ये उपन्यास 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' और 'अंगुरीय

विनिमय' बङ्गला भाषा में क्रमशः श्री रमेशचन्द्र दत्त और श्री भूदेव मुखोपाध्याय द्वारा लिखे गये थे। 'शिवराजविजय' की काल्पनिक घटनाओं की विवेचना करते हुये इस तथ्य पर विचार किया गया है कि किन घटनाओं की कल्पना व्यास जी ने स्वयं की और किन कल्पनाओं को उन्होंने ऊपर कहे गये लेखकों की रचनाओं के आधार पर संयोजित किया। सर्व प्रथम ऐतिहासिक घटनाओं पर विचार किया जाता है।

(क) शिवराजविजय के कथानक के ऐतिहासिक स्रोत

'शिवराजविजय' में शिवाजी के जीवन का कुछ ही अंश निबद्ध है। इसकी कथा अफजलखां की पराजय से आरम्भ हो कर शिवाजी के देहली से वापिस आने और स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ समाप्त होती है। इसमें मुख्य रूप से निम्न लिखित ऐतिहासिक घटनायें हैं—

(१) शिवाजी-अफजलखां युद्ध
(२) शिवाजी द्वारा शाइस्ताखां के पूना स्थित निवास स्थान पर आक्रमण
(३) शिवाजी और भूषण कवि
(४) शिवाजी और शाहजादा मुअज्जम
(५) शिवाजी द्वारा सूरत नगर की विजय
(६) शिवाजी-जयसिंह संघर्ष और सन्धि
(७) शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति
(८) शिवाजी का महाराष्ट्र वापिस आ कर मुगलों से सम्बन्ध और सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वाधीन करना।

व्यास जी के समय तक मराठा इतिहास के विषय में जो कुछ भी जानकारी हो सकी थी उसका उन्होंने उपयोग किया होगा। उस समय तक इस सम्बन्ध में ग्रान्ट डफ लिखित 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पुस्तक सबसे अधिक प्रामाणिक थी। जैसे कि ऐतिहासिक घटनाओं के विवेचन से प्रतीत होता है, सम्भवतः व्यास जी ने अधिकांश रूप से इस पुस्तक को आधार बनाया। वर्तमान समय तक मराठा इतिहास के विषय में कई नवीन अन्वेषण किये जा चुके हैं और सरदेसाई, यदुनाथ सरकार आदि इतिहास के विद्वानों ने कई पुरानी धारणाओं का खण्डन करके नये तथ्य प्रतिष्ठापित किये हैं। 'शिवराजविजय' की ऐतिहासिक घटनाओं की विवेचना इस स्थल पर इन इतिहास की पुस्तकों के आधार पर की जा रही है।

(१) शिवाजी-अफजल खां युद्ध—

बीजापुर-दरबार ने शिवाजी को पकड़ने के लिये अफजलखां को भेजा, जिसने धोखे से उन्हें पकड़ने की योजना बनाई। शिवाजी को इस गुप्त योजना का पहिले से

ही पता लग गया। उनकी योजनानुसार दोनों की भेंट प्रतापदुर्ग की तलहटी में हुई। इस भेंट में शिवाजी ने खां को मार डाला और उनकी छिपी हुई सेना ने यवन सेना पर आक्रमण कर उसका शिविर लूट लिया। इस घटना के सम्बन्ध में दो प्रश्न मुख्य रूप से विचारणीय हैं—

(क) क्या अफजलखां की योजना शिवाजी को धोखा देकर पकड़ने की थी ?

(ख) क्या भेंट के समय शिवाजी ने पहिले आक्रमण किया ?

प्रथम प्रश्न के सम्बन्ध में व्यासजी ने 'अफजलखां द्वारा धोखा देने की योजना' का उद्घाटन किया है। गौरसिंह को कन्यापहारक यवन युवक के वस्त्रों में से एक पत्र मिला, जिसके अनुसार बीजापुर दरबार ने शिवाजी को छल से पकड़ने की योजना बनाई थी और इस कार्य के लिये गोपीनाथ पण्डित को भेजा जा रहा था।[1] गौरसिंह ने तानरंग गायक के वेश में स्वयं अफजलखां से भी इस भेद को जान लिया।[2] यद्यपि ग्रान्ट डफ ने इस षड्यन्त्र का उल्लेख नहीं किया, तथापि निम्नलिखित कुछ अन्य विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस घटना के सम्बन्ध में व्यास जी ने डफ का अनुकरण किया—

ग्रान्ट डफ के अनुसार गोपीनाथ पन्त को शिवाजी के पास भेजा गया,[3] जब कि अन्य इतिहासकारों के अनुसार बीजापुर का दूत कृष्णाजी भास्कर था तथा गोपीनाथ पन्त शिवाजी का दूत था।[4] ग्रान्ट डफ के अनुसार शिवाजी ने ही खां पर पहिले आक्रमण किया।[5]

प्रश्न यह है कि व्यासजी ने इस योजना की कल्पना कैसे और क्यों की। संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा के अनुसार नायक की निर्दोषिता प्रकट करनी[6] व्यासजी को अभीष्ट रही होगी, अतः उनके द्वारा किये गये आक्रमण का औचित्य और उनकी नीति निपुणता प्रदर्शित करने के लिये बीजापुर के षड्यन्त्र की कल्पना लेखक ने की। ग्रान्ट डफ सहित अनेक इतिहासकारों का यह मत है कि शिवाजी की सन्धि-प्रार्थनाओं से प्रभावित हुआ उदार हृदय अफजलखां विश्वासघात का शिकार

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ४७।
२. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ६६।
३. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ७६।
४ जे० एन० सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' १९४८ पृष्ठ ६५।
५. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ७८।
६. यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्। 'साहित्य दर्पण' ६. ३०७।

हुआ ।[1] डफ ने तो गोपीनाथ पन्त पर भी विश्वासघात करने का आरोप लगाया है कि वह एक गांव के लालच में शिवाजी से मिल गया था ।[2] किन्तु अब ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि बीजापुर दरबार ने शिवाजी को धोखे से पकड़ने का षड्यन्त्र किया था ।[3] राजापुर, महाराष्ट्र की अंग्रेजी फैक्ट्री के निष्पक्ष विवरण से भी इस कथन की सत्यता प्रमाणित होती है ।[4]

द्वितीय प्रश्न के सम्बन्ध में व्यासजी ने ग्रान्ट डफ का[5] अनुकरण करते हुये लिखा है कि शिवाजी ने खां पर पहिले ही आक्रमण कर उसे मार डाला ।[6] कुछ अन्य इतिहासकारों ने भी इसी प्रकार से लिखा है ।[7] किन्तु इस सम्बन्ध में नवीन गवेषणाओं से यह सिद्ध किया जा चुका है कि प्रथम आक्रमण अफजलखां ने ही किया । तदनन्तर शिवाजी ने उसे अपने गुप्त शस्त्रों से मार डाला ।[8] प्राचीन ग्रन्थ 'शिवभारतम्' से इस

---

१. (क) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्ठाज' पृष्ठ ७६-७७, (ख) खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृष्ठ ४८-४६, (ग) स्टेनले लेन पूले कृत 'औरंगजेब' (ओक्सफोर्ड एट दी क्लेरेण्डन प्रेस) पृष्ठ १५७-१५८, (घ) आर० पी० पटवर्धन एण्ड एच० जी० रौलिसन कृत 'सोर्स बुक आफ मराठा हिस्ट्री' के "निकोलस मनुक्कीज स्टोरिया डो मौंगर" पृ० १७३ ।

२. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्ठाज' पृष्ठ ७७ ।

३. (क) ग्रेट मैन आफ इण्डिया - चार्ल्स किनसिड-"शिवाजी भौंसले" पृष्ठ १६३ ।
(ख) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' १९४८ पृ० ६५ ।
(ग) जदुनाथ सरकार कृत 'ए शोर्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब' १९३० पृष्ठ १६८ ।
(घ) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' वोल्यूम १ पृष्ठ १२४ ।
(च) 'शिवभारतम्' अध्याय २० ।

४. Against Shivaji the queen this year sent Abdulla Khan with an army of 10000 horse and foot, and because she know with that strength he was not able to resist Shivaji, she counselled him to pretend freindship with his enemy, which he did, and the other (i. e. Shivaji) whether through intelligence or suspecion it is not known, dissembled his love towords him. (Revington at Rajapur to Company, 10 Dec. 1659, F. R. Rajapur.
जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' से - निम्न पत्र (रेविंगटन एट राजापुर टु कम्पनी दस दिसम्बर १६५६, एफ० आर० राजापुर) - उद्धृत ।

५. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ७६ ।

६. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ७२ ।

७. खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृष्ठ ४८-४६ ।

८. (क) 'ग्रेट मैन आफ इण्डिया'-चार्ल्स-किनसिड-"शिवाजी भौंसले" पृष्ठ १६३ ।
(ख) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स' पृष्ठ ६७ ।
(ग) जदुनाथ सरकार कृत 'ए शार्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब' पृष्ठ १६६ ।
(घ) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृष्ठ १२६ ।

घटना में अफजलखां ही दोषी प्रतीत होता है ।[१]

(२) **शिवाजी द्वारा शाइस्ताखां के पूना स्थित निवास स्थान पर आक्रमण—**

औरंगजेब द्वारा दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेजे गये शाइस्ताखां ने शिवाजी के विरुद्ध अभियान प्रारम्भ कर पूना में प्रवेश किया और वह चाकरण-दुर्ग को अधिकृत करके पूना स्थित शिवाजी के महल में निवास करने लगा । कुछ सैनिकों के साथ एक रात में शिवाजी ने उस पर आक्रमण करके अनेकों रक्षकों और दासियों को तथा खां के पुत्र को मार दिया । उन्होंने खिड़की के मार्ग से भागते हुये खां पर खड्ग फेंका जिससे उसकी अंगुलियां कट गईं । तदनन्तर वे सुरक्षित सिंहगढ़ पहुँच गये । इस घटना का व्यास जी द्वारा किया गया विवरण ग्रान्ट डफ के मराठा इतिहास से बहुत अधिक मिलता है । निम्नलिखित विवेचना साम्य अथवा वैषम्य को प्रकट करती है—

(क) शाइस्ताखां चाकरण-युद्ध की विभीषका से डर कर मराठों से दुर्गयुद्ध नहीं करना चाहता था ।[२]

(ख) खां ने प्रबन्ध किया था कि बिना उसकी अनुमति के कोई पूना में प्रविष्ट न हो ।[३]

(ग) डफ के अनुसार शिवाजी ने नगर का हाल देखने और प्रवेश की अनुमति प्राप्त करने के लिये दो ब्राह्मणों को भेजा था ।[४] व्यासजी के अनुसार स्वयं शिवाजी ब्राह्मण-वेष में गये ।[५]

---

१. शाहराजात्मजशिशो विहाय स्वां विहस्तताम् । स्पृश हस्तेन मे हस्तमेहि देह्यकपालिकाम् ॥
एवमुक्त्वा स तद्ग्रीवां धृत्वा वामेन पाणिना । इतरेण च तत्कुक्षौ निचखान कटारिकाम् ॥
नियुद्धविच्छिवः सद्यस्तद्धस्तोन्मुक्तकंधरः । ध्वनिना धीरधीरेण प्रतिध्वानितकन्धरः ।
प्रविशन्तीमात्मकुक्षिभागमभ्रान्तमानसः । किंचिदाकुचिताङ्गस्तां शिवः स्वयमवंचयत् ॥
ददाम्येतं कृपाणं ते गृहाण निगृहाण माम् । इदं विनिगदन्नेव धीरः सिंहसमस्वरः ॥
सिंहयायी सिंहकायः सिंहदृक् सिंहकन्धरः । स्वपाणिद्वितयोद्धृतविकोशायुधसुन्दरः ॥
तं निर्यातयितु वैरं प्रवृत्तो सो महाव्रतः । शिवः कृपाणिकाग्रेण कुक्षावेव समस्पृशत् ॥
आपृष्ठं विद्विषत्कुक्षिं तूर्णं तेन प्रवेशिता । आकृष्यान्त्राणि सर्वाणि सा कृपाणी विनिर्गता ॥
'श्री शिवभारतम्' अ० २१ श्लोक ३३-४० ॥

२. (क) 'शिवराजविजय' पृ० १५१, (ख) ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ८७ ।

३. (क) 'शि० वि०' पृ० १४५, (ख) ग्रान्ट डफ कृत 'हि० आफ दी म०' पृष्ठ ८७ ।

४. ग्रान्ट डफ कृत 'हि० आफ दी म०' पृष्ठ ८८ ।

५. 'शि० वि०' पृ० १५५ ।

(घ) शिवाजी ने बारात के माध्यम से पूना-प्रवेश की अनुमति प्राप्त की।[1]

(च) सिंहगढ़ के दोनों ओर सुरक्षा का प्रबन्ध करके शिवाजी बारात के साथ २५ सैनिकों को लिये पूना में प्रविष्ट हुये।[2]

(छ) मराठों ने महल के पीछे रसोई घर की दीवार तोड़ कर मार्ग बनाया। शब्द से कुछ स्त्रियों की आंखें खुल गईं और उन्होंने अपने स्वामी को इसकी सूचना दी। शाइस्ताखां खिड़की से कूद कर भागा, किन्तु खड्ग के एक प्रहार से उसकी अंगुली कट गई। वह तो भाग गया परन्तु उसका पुत्र और अनेक रक्षक मारे गये।[3]

(ज) सैनिकों के साथ शिवाजी निर्विघ्न बाहर निकल गये और पूना से ३-४ मील दूर मशालें जला कर वे सिंह-दुर्ग में प्रविष्ट हो गये।[4]

अनेक इतिहासकारों ने इस घटना को अन्य रूप से लिखा है। उनके अनुसार शिवाजी अंधेरा होने पर अपने सैनिकों को मुगल सैनिकों के वेष में मुगल कैम्प में ले गये। उन्होंने आधी रात के समय खां के महल पर आक्रमण किया।[5]

इस आक्रमण में राजपूत राजा यशवंतसिंह का कुछ हाथ था या नहीं, यह विवादास्पद है। 'शिवराजविजय' के अनुसार यह आक्रमण यशवंतसिंह की सहमति और उसकी जानकारी में किया गया। यद्यपि इस तथ्य की पुष्टि में इतिहास के कुछ विवरण उपलब्ध होते हैं, जैसे—श्री गिफ्फर्ड द्वारा राजापुर की अंग्रेजी फैक्ट्री से सूरत को लिखे गये पत्र द्वारा यशवंतसिंह के शिवाजी से मिले होने की किंवदन्ती झलकती है,[6] तथापि इतिहास के किसी ठोस प्रमाण द्वारा यशवन्तसिंह का विश्वासघात सिद्ध नहीं हो सका है। मुसलमान इतिहासकार खाफीखां ने भी इस सम्बन्ध में

---

१. (क) 'शि० वि०' पृ० १८१, (ख) 'ग्रान्ट डफ' पृष्ठ ८८।
२. (क) 'शिवराजविजय' पृष्ठ २५०-२५२, (ख) ग्रान्ट डफ पृष्ठ ८८।
३. 'शिवराजविजय' पृष्ठ २५२-२६१, (ख) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ट ८८
४. (क) 'शिवराजविजय' पृष्ट २६२, (ख) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ट ८८
५. (क) जदुनाथ सरकार कृत 'ए शोर्ट हिस्ट्री आफ औरंगजेब' पृष्ठ २०३-२०४। (ख) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ट ८७-८८, (ग) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराहठाज' पृष्ट १४३।
६. After all this Shivaji returns, losing but six men (killed) and forty wounded, 10000 horse under Raja Jaswant Singh standing still and never offered to persue him, so it is generally believed it was done with his consent, though Shivaji tells his men his permisra (Parmeshwar the God) bid him to do it.
जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० ८९ से उद्धृत।

सन्देह तो प्रकट किया है पर स्पष्ट रूप से उस पर दोषारोपण नहीं किया।[1] इसके बाद की घटनाओं से भी शिवाजी और यशवन्तसिंह में किसी प्रकार के प्रीतिभाव का संकेत नहीं मिलता।[2] सम्भवतः व्यासजी ने किंवदन्ती का उपयोग करके हिन्दू धर्म और जाति के उद्धार की भावना को उद्दीप्त करने के उद्देश्य से इस घटना को इस प्रकार से संयोजित किया हो।

(३) शिवाजी और भूषण कवि—

भूषण कवि के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वे दिल्ली दरबार से असन्तुष्ट होकर दक्षिण गये। यहाँ उनकी रायगढ़ के बाहर प्रच्छन्न वेषधारी शिवाजी से भेंट हुई। यहां उन्होंने शिवाजी को एक कवित्त १८ बार सुनाया।[3] अगले दिन शिवाजी ने उन्हें १८ लाख रुपया, १८ हाथी और १८ ग्राम पारितोषिक रूप में देकर अपने दरबार में स्थान दिया। इस किंवदन्ती के अनुसार व्यास जी ने शिवाजी के साथ भूषण कवि की भेंट कराई। यह भेंट शाइस्ताखां द्वारा पूना पर अधिकार करने के पश्चात् और शिवाजी द्वारा पूना पर रात्रि अभियान करने से पूर्व हुई। अतः इसका समय सन् १६६१-६२ होना चाहिये।

भूषण कवि और शिवाजी का समकालीन होना विवादास्पद है। प्रसिद्ध मराठा इतिहासकार जदुनाथ सरकार और सरदेसाई ने भूषण को राजा साहू का समकालीन सिद्ध करते हुये उनकी कविताओं के ऐतिहासिक मूल्य को स्वीकार नहीं किया।[4] व्यास जी के वर्णन के अनुसार भूषण शिवाजी के समकालीन थे।

---

१. In the morning Raja Jaswant who was commander of Amirul Umara's supports, came in to see and make apology, but that high born noble spoke not a word beyond saying, "I thought the Maharaja was in his Majesty's service when such an evil befell me."

खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृष्ठ ५६।

२. ग्रान्ट डफ 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ८-६।

३. यह कवित्त इस प्रकार है—

इन्द्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर रावन सदंभ पर रघुकुलराज हैं।
पौन वारिवाह पर संभु रतिनाह पर ज्यों सहस्रबाह पर राम द्विजराज हैं॥
दावा द्रुम-दंड पर चीता मृगझुंड पर भूषन वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलिच्छ बंस पर सेर शिवराज हैं॥

'शिवराज भूषण' पद्य सं० ५६।

४. (क) The Hindi poems of Bhushan have been rejected as totally unhistoric, indeed, Bhushan is now held to have been born two years after the death of Shivaji and to have written to glorify his grand son Raja Sahu.

जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ठ ३७८।

'शिवराजभूषण' के २४ और २५ पद्यों से विदित होता है कि वे रायगढ़ को शिवाजी द्वारा राजधानी बनाये जाने के बाद वहां गये थे।[1] इसके अतिरिक्त उन्होंने 'शिवराजभूषण' के अन्त में अपने ग्रन्थ की समाप्ति का समय सम्वत् १७३० लिखा है,[2] जो ईसवी सन् के अनुसार १६७३ होता है। शिवाजी की मृत्यु ५ अप्रैल १६८० ई० में हुई,[3] अतः शिवाजी और भूषण कवि के समकालीन होने की सम्भावना हो सकती है।

(४) शिवाजी और शाहजादा मुअज्जम—

'शिवराजविजय' के अनुसार औरंगजेब द्वारा भेजे गये शाहजादा मुअज्जम को शिवाजी के सैनिकों ने चतुरता से कैद कर लिया।[4] इतिहास के अनुसार मुअज्जम ने जनवरी १६६४ ई० में शाइस्ताखां का स्थान ग्रहण किया,[5] किन्तु शिवाजी द्वारा उसको कैद करने की पुष्टि किसी ऐतिहासिक प्रमाण द्वारा नहीं होती। सम्भवतः व्यास जी ने नायक की प्रतिष्ठा-वृद्धि, उपन्यास में रोचकता का आपादन और मुसलमानों की विषयलोलुपता का प्रदर्शन करने के लिये इस घटना की योजना की होगी।

(५) शिवाजी द्वारा सूरत नगर की विजय—

शिवाजी ने ५ जनवरी १६६४ ई० को स्वयं सेना लेकर सूरत नगर पर आक्रमण किया और उसे जीता, यह तथ्य इतिहास के विद्वान स्वीकार करते हैं।[6] व्यास जी ने इस घटना में यह परिवर्तन किया है कि शिवाजी सूरत नगर को स्वयं जीतने नहीं गये, अपितु उनके सेनापति धीरेन्द्रसिंह विजयध्वज ने सूरत पर आक्रमण किया।[7] घटना में इस परिवर्तन द्वारा व्यास जी सम्भवतः यह प्रदर्शित करना चाहते थे कि शिवाजी के सेनापति और सैनिक भी वीरता, दक्षता और देशभक्ति में बहुत आगे बढ़े हुये थे।

(ख) Bhushan is now supposed to have visited Sahu and not Shivaji.
सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मरहठाज' पृष्ठ २६८।

१. जहं नृप रजधानी करी जीत सकल तुरकान।
सिव सरजा रुचि दान में कीन्हों सुजन सुजान॥
देसन देसन से गुनी आवत जाचन साही।
तिनमें आयो एक कवि भूषन कहियतु ताही॥ 'शिवराजभूषण' पद्य सं० २४-२५।

२. सुभ सत्रह सैंतीस पर सुचि बदि तेरह भान।
"भूषन" सिवभूषन कियो पढ़ियो सकल सुजान॥ 'शिवराजभूषण' पद्य सं० ३८०।

३. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० १३१।

४. 'शिवराजविजय' पृ० २७५-२७६।

५. जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० ९०।

६. जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० ९१।

७. 'शिवराजविजय' पृ० २८७।

(६) शिवाजी - जयसिंह संघर्ष और सन्धि—

३० सितम्बर १६६४ को राजा जयसिंह और दिलेरखां औरंगजेब द्वारा शिवाजी को दबाने के लिये भेजे गये। इनकी शक्ति से शिवाजी सन्धि करने के लिये बाध्य हुये। उन्होंने अपने पैंतीस किलों में से २३ किले मुगलों को देकर आधीनता स्वीकार की और बीजापुर-युद्ध में मुगलों की सहायता करने का वचन दिया। इसके अतिरिक्त वे जयसिंह के आश्वासन पर विश्वास करके औरंगजेब के दरबार में जाने के लिये भी सहमत हुये।

इस ऐतिहासिक घटना को व्यास जी ने कल्पनाओं से रंग कर इस प्रकार प्रस्तुत किया कि ऐतिहासिक सत्य की भी यथासम्भव रक्षा हुई और उपन्यास के नायक की भी अप्रतिष्ठा नहीं होने पाई। उन्होंने इस घटना में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह किया कि जयसिंह के साथ भेजे गये यवन सेनापति दिलेरखां और उसके द्वारा किये जाने वाले युद्धों का वर्णन नहीं किया। सम्भवतः इसका कारण यह हो, कि वे अपने नायक को किसी यवन सेनापति के सन्मुख नतमस्तक प्रदर्शित करना नहीं चाहते थे। जयसिंह से पराजय स्वीकार करने की शिवाजी की दुर्बलता को भी देवशर्मा की भविष्यवाणी द्वारा ढकने का प्रयास किया गया है[१]। ऐतिहासिकों के अनुसार उस समय यह किम्वदन्ती प्रसिद्ध थी कि शिवाजी को देवी भवानी ने आदेश दिया था कि जयसिंह पर जो हिन्दू राजा है, विजय नहीं प्राप्त की जा सकती।[२]

इतिहास के अनुसार शिवाजी ने रघुनाथ पन्त नामक ब्राह्मण को जयसिंह के पास भेजा था।[३] 'शिवराजविजय' में माल्यश्रीक, वृद्ध पुरोहित और भूषण कवि भेजे गये।[४] इन्होंने आकर यह सूचना दी कि जयसिंह उसी अवस्था में सन्धि के लिये तैयार है, जब कि शिवाजी मुगलों से अपहृत दुर्गों का अधिकार छोड़ दें और कर देना स्वीकार करें। इस सम्बन्ध में शिवाजी को स्वयं आकर मिलना चाहिये।[५] शिवाजी जयसिंह से अकेले ही जा कर मिले।[६] जयसिंह ने उनका स्वागत किया और दोनों में सन्धि हुई। इतिहास के अनुसार यह पुरन्दर की सन्धि कहलाती है, परन्तु 'शिवराजविजय' में इस नाम का उल्लेख नहीं है।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० सं० ३३७।
२. (क) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' (ख) पटवर्धन एन्ड रोलिसन कृत 'सोर्स बुक आफ मराठा हिस्ट्री' (सभासद) पृ० ३६-४४।
३. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ९३।
४. 'शिवराजविजय' पृ० सं० ३३९।
५ 'शिवराजविजय' पृ० सं० ३४१।
६. (क) 'शिवराजविजय' पृ० सं० ३४२, (ख) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० सं० ९३।

'शिवराजविजय' में वर्णित सन्धि की शर्तों और इतिहास में प्रसिद्ध सन्धि की शर्तों में कुछ अन्तर है। इस उपन्यास के अनुसार सन्धि की शर्तें निम्नलिखित थीं—

(क) शिवाजी करप्रदता स्वीकार करें।[1]

(ख) मुगलों से छीने गये किले वापिस करें।[2]

(ग) बीजापुर के साथ युद्ध में मुगलों की सहायता करें।[3]

(घ) शिवाजी रोशनआरा को खोज कर मुगलों के सुपुर्द करें।[4]

(च) शाहजादा मुअज्जम को भी खोज कर मुगलों के सुपुर्द करें।[5]

इनमें से अन्तिम दो शर्तों से सम्बन्धित घटनायें काल्पनिक हैं। इतिहास के अनुसार शिवाजी ने करप्रदता स्वीकार करके अनेक किले मुगलों को दिये थे। कुछ इतिहासकारों के अनुसार उस समय शिवाजी के पास ३२ किले थे, जिनमें से २० किले मुगलों को दिये गये।[6] अन्य इतिहासकार यह संख्या ३५ और २३ कहते हैं।[7] इस सन्धि के अनुसार शिवाजी ने बीजापुर के अनेक किलों को भी मुगलों के लिये जीता।[8] 'शिवराज-विजय' में इस सम्बन्ध में रुद्रमण्डल-दुर्ग की, जो कि बीजापुर के एक सरदार रहमतखां के आधीन था, विजय का उल्लेख किया गया है।[9] किन्तु इतिहास इसकी पुष्टि नहीं करता। सम्भवतः इस कल्पना को व्यास जी ने 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' से ग्रहण किया है।

औरंगजेब ने सन्धि की इन शर्तों को स्वीकार करके[10] शिवाजी को मुगल दरबार में आने के लिये निमन्त्रित किया। शिवाजी औरंगजेब की कुटिलता से आशंकित थे, किन्तु जयसिंह द्वारा जीवन और प्रतिष्ठा की रक्षा का आश्वासन देने पर और यह कहने पर कि उनका पुत्र और प्रतिनिधि रामसिंह मुगल-दरबार में

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ३४१।
२. 'शिवराजविजय' ,, ३४१।
३. 'शिवराजविजय' ,, ३५५।
४. 'शिवराजविजय' ,, ३५४।
५. 'शिवराजविजय' ,, ३५५।
६. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्ठाज़' पृष्ठ ९४।
७. (क) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ट १२२, (ख) खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृष्ठ ६३।
८. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ९४।
९. 'शि० वि०' पृष्ट ३६३।
१०. (क) 'शि० वि०' पृष्ट ३८७, (ख) ग्रान्ट डफ कृत 'हि० आफ दी म०' पृष्ठ ९४।
(ग) जदुनाथ नाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ठ १३१।

शिवाजी की रक्षा और सहायता करेगा[1], वे औरंगजेब से भेंट करने के लिये वहां जाने को सहमत हो गये।

(७) शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में उपस्थिति—

जयसिंह के वचनों से आश्वस्त होकर शिवाजी ने पांच सौ घुड़सवारों और एक हजार पदातियों के साथ देहली के लिये प्रस्थान किया।[2] वे ५ मार्च १६६६ ई० को चल कर ११ मई १६६६ ई० को मुगल-राजधानी के बाह्य आंचल में पहुँचे। उन्होंने अगले दिन रामसिंह के साथ मुगल-दरबार में पहुंच कर बादशाह के सामने भेंट पेश की। उन्हें पंचहजारी सेनापतियों के बीच खड़े होने का आदेश हुआ। इससे वे अत्यधिक व्यथित और क्रोधित हुये। दरबार की समाप्ति पर वे रामसिंह के साथ अपने लिये निश्चित भवन में चले गये, जहां एक प्रकार से वे कैद थे। प्रार्थना करने पर भी उन्हें दक्षिण वापिस जाने की अनुमति नहीं मिली। किन्तु उनके सैनिकों को जाने दिया गया। शिवाजी ने बीमार होने का बहाना किया और वे बांटने के लिये मिठाई के टोकरे भेजने लगे। एक दिन वे मिठाई के टोकरों में बैठ कर निकल गये।

व्यास जी द्वारा इस घटना के वर्णन में अनेक मतभेद हो सकते हैं, जिनकी विवेचना निम्न है—

(क) 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी मुगल-दरबार में उपस्थित होने के लिये देहली गये थे।[3] कुछ इतिहासकारों ने उनका देहली-गमन लिखा है[4], जबकि अन्य इतिहासकार उनका आगरा जाना लिखते हैं।[5] व्यास जी ने ग्रान्ट डफ के अनुसार शिवाजी के देहली-गमन का वर्णन किया है। किन्तु आधुनिक इतिहासकारों ने प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि वे आगरा में ही मुगल-सम्राट् से मिले थे। २२ जनवरी १६६६ के दिन शाहजहां की मृत्यु के बाद १२ मई १६६६ ई० को औरंगजेब का आगरा में जन्म दिवस मनाया गया।[6] क्योंकि इसी दिन शिवाजी ने

---

१. (क) 'शिवराजविजय' पृ० ३८६, (ख) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० १३४।

२. (क) 'शिवराजविजय' पृ० ४०२, (ख) ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ६५।

३. 'शिवराजविजय' ,, ४१२।

४. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ६१।

५. (क) 'ग्रेट मैन आफ इण्डिया'-चार्ल्स-किनसिड-"शिवाजी भौंसले" पृ० १६५।
(ख) जदनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स' पृ० १३५।
(ग) खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृ० ६५।

६. जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० १३८।

मुगल-सम्राट् से भेंट की थी, अतः उनका आगरा जाना ही औचित्यपूर्ण है। सरदेसाई ने इस सम्बन्ध में जयपुर के राजकीय पत्रों के, जो प्रतिदिन आगरे से जयपुर भेजे जाते थे, उद्धरण दिये हैं।[1] आपने इस समय आगरे में उपस्थित एक फ्रेंच यात्री थेवनाट का आंखों देखा विवरण भी उद्धृत किया है।[2] अन्त में आपने धारणा बनाई है कि शिवाजी देहली के किले में नहीं, अपितु आगरे के किले में औरंगजेब से मिले थे।[3] सम्भवतः शिवाजी के देहली जाने की धारणा इसलिए बनी हो कि शाहजहां को आगरे के किले में कैद करने के बाद औरंगजेब वहां नहीं गया तथा मुसलमान सल्तनत का संचालन देहली से ही होता रहा। सम्भवतः व्यास जी द्वारा शिवाजी का देहली-गमन 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' से भी प्रभावित रहा हो।

(ख) 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी के साथ महाराज जयसिंह के १०० अश्वारोही भी दिल्ली तक गये।[4] शिवाजी द्वारा जमना के किनारे शिविर स्थापित कर लेने पर उन्होंने नदी पार करके औरंगजेब को सूचना दी।[5] अगले दिन रामसिंह शिवाजी से मिलने आये।[6] जयसिंह के सवारों के साथ आने की इतिहास से पुष्टि नहीं होती। सम्भवतः कुछ सवार पथ-प्रदर्शक के रूप में साथ आये हों। यह भी नहीं कहा जा सकता कि रामसिंह शिवाजी से किस समय मिले। औरंगजेब ने मुफलिसखां और रामसिंह को शिवाजी के स्वागत के लिये नियुक्त किया था।[7] जदुनाथ सरकार के अनुसार रामसिंह शिवाजी से उनके डेरे पर मिले ही नहीं, अपितु उनकी भेंट शहर के बीच नूरगंज उद्यान में हुई थी।[8]

(ग) इतिहास के अनुसार शिवाजी के साथ उनके पुत्र सम्भाजी भी गये थे, किन्तु व्यास जी ने उनका उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः इसका कारण यह हो, कि पुत्र के साथ होने से रोशनआरा के प्रेम-प्रसंग की रोचकता में कुछ व्याघात होता।

---

१. सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृष्ठ १६८-१६६।

२. ,, ,, ,, ,, १७५।

३. Shivaji was received by the Emperor in the Agra Fort and not at Delhi as is commonly sponsored.

सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृष्ठ १६८।

४. 'शिवराजविजय' पृ० ४०२।

५. ,, ,, ४१२।

६. ,, ,, ४१८।

७. खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृ० ६४।

८. जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० १४०।

वैसे भी व्यास जी ने इस उपन्यास में शिवाजी के सम्बन्धियों को प्रस्तुत नहीं किया है।

(घ) 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी बसन्त के आरम्भ में १६६६ विक्रमी संवत् में देहली पहुंचे।[1] व्यास जी का यह लेख यथार्थ नहीं है। वस्तुतः शिवाजी ११ मई १६६६ ई० को मुगल राजधानी पहुंचे थे।[2] सम्भवतः व्यास जी ने भूल से सन् १६६६ ई० के स्थान पर सम्वत् १६६६ विक्रमी लिख दिया है।

(च) व्यास जी ने लिखा है कि शिवाजी ने औरंगजेब को एक बहुमूल्य अंगूठी भेंट की। अंगूठी की कल्पना उनकी अपनी ही है। ग्रान्ट डफ ने केवल यही लिखा है कि शिवाजी ने नजर भेंट की।[3] 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में भी अंगूठी का उल्लेख नहीं है। वस्तुतः शिवाजी ने १००० मोहरें और २००० रुपये नजर के रूप में और ५००० रुपये न्योछावर के रूप में दिये थे।[4]

(छ) सभी इतिहासकारों के अनुसार शिवाजी का मुगल-दरबार में यथोचित सत्कार नहीं हुआ। शिवाजी को पंचहजारी मनसबदारों के बीच खड़ा होने को कहा गया। इससे शिवाजी अत्यधिक व्यथित हुये। व्यास जी ने इस तथ्य को इसी प्रकार रखा है।

(ज) व्यास जी ने शिवाजी के कैद में रहने की अवधि नहीं लिखी। इतिहास के अनुसार वे १२ मई से लेकर १७ अगस्त तक कैद रहे।[5] बादशाह से दक्षिण जाने की अनुमति प्राप्त न होने[6] और कठोर पहरा लगा देने पर[7] शिवाजी ने एक योजना बनाई। उन्होंने सब साथियों को तो बादशाह की अनुमति प्राप्त करके दक्षिण भेज दिया[8] और अपने रुग्ण होने को अफवाह फैला दी।[9] इसके बाद आपने अपने अच्छे होने के उपलक्ष्य में फकीरों को मिठाइयां बंटवानी प्रारम्भ कीं और एक

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ४१२।
२. जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ठ १३५।
३. ग्रांट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ६५।
४ (क) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० १४०।
(ख) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृष्ट १७०।
५. (क) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ट १५२।
(ख) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ठ ७५।
६. (क) 'शिवराजविजय' पृष्ट ४४८, (ख) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृष्ट ६६
७. (क) ,, ४४७, (ख) ,, ,, ६६
८. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ४४८।
९. ,, ४६३।

दिन स्वयं एक बड़े मिठाई के टोकरे में बैठ कर निकल गये।[1] व्यास जी का यह विवरण प्रायः इतिहास के अनुसार ही है।

(झ) इतिहास के अनुसार शिवाजी के निकलते समय उनका एक भाई हीराजी फरजंद उनकी अंगूठी पहन कर उनकी चारपाई पर प्रातः ८ बजे तक लेटा रहा, जिससे प्रहरी यही समझे कि शिवाजी अन्दर हैं।[2] व्यास जी ने इस घटना का उल्लेख नहीं किया है।

(ट) 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी सन्यासी-वेष में घोड़े पर बैठ कर मथुरा की ओर गये।[3] जिन इतिहासकारों के अनुसार शिवाजी दिल्ली गये थे उन्होंने उनका दक्षिण की ओर जाना तथा दूसरे इतिहासकारों ने उत्तर की ओर जाना लिखा है।

(ठ) शिवाजी को कैद करने में औरंगजेब के उद्देश्य के विषय में व्यास जी ने कुछ विशेष नहीं लिखा। यह अवश्य लिखा है कि वे राजसभा में उद्दण्डता प्रदर्शित करने के कारण कैद किये गये।[4] औरंगजेब के गूढ़ अभिप्रायः के विषय में सरदेसाई ने कुछ संकेत दिये हैं। वे लिखते हैं कि शिवाजी को कैद करने के बाद औरंगजेब के सन्मुख तीन मार्ग थे[5]—

शिवाजी को मरवा देना, शिवाजी को मुसलमान बना कर उनकी सेवायें प्राप्त करना अथवा उन्हें शान्त करके प्रतिज्ञा पूरी करना और वापिस भेज देना। इनमें से दूसरा मार्ग असम्भव था तथा तीसरे मार्ग का अवलम्बन औरंगजेब करना नहीं चाहता था। वह शिवाजी को मरवा देना चाहता था। किन्तु अपने हिन्दू सामन्तों के डर से वह ऐसा न कर सका। औरंगजेब ने आज्ञा दी थी कि शिवाजी को १८ अगस्त को दूसरे मकान में हटा दिया जावे किन्तु वे १७ अगस्त को ही निकल गये। औरंगजेब को अपनी मृत्यु पर्यन्त शिवाजी को तुरन्त ही न मरवा डालने का शोक रहा। इसका संकेत व्यास जी ने भी किया है।[6]

(८) शिवाजी का महाराष्ट्र वापिस आकर मुगलों से सम्बन्ध और सम्पूर्ण महाराष्ट्र को स्वाधीन करना—

देहली से वापिस लौटने के पश्चात् का शिवाजी के जीवन का चित्र व्यास जी

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ट ४७६।

२. (क) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृष्ट १४८, (ख) खाफीखां कृत 'औरंगजेब' पृ० ६८, (ग) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ६६।

३. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ४८६।

४. ,, ४३६, ४५७ और ४६१।

५. सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृ० १७७।

६. 'शिवराजविजय' पृ० ५४६।

ने स्पष्ट रूप से चित्रित नहीं किया है। तथापि कुछ घटनाओं की विवेचना इस प्रकार हो सकती है—

(क) 'शिवराजविजय' में शिवाजी की दक्षिण लौटने पर प्रथम उपस्थिति प्रतापदुर्ग में दिखाई गई है।[1] इतिहास के अनुसार वे सर्वप्रथम रायगढ़ पहुँच कर प्रकट हुये थे।[2]

(ख) 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी ने दक्षिण पहुँच कर शीघ्र ही मुगलों को दिये हुये सम्पूर्ण किले पुनः जीत लिये।[3] यद्यपि इतिहास की कुछ पुस्तकों से इस कथन की पुष्टि होती है[4], तथापि अधिकांश इतिहास लेखकों का यह मत है कि दक्षिण लौटने के पश्चात् प्रथम शिवाजी ने अपने राज्य को संगठित किया और पुरन्दर की सन्धि का पालन किया। तीन वर्ष तक वे शांत रहे। मई १६६७ में जयसिंह के स्थान पर जसवन्तसिंह के साथ शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार बना कर भेजा गया। इन दोनों के शिवाजी के साथ अच्छे सम्बन्ध रहे। किन्तु औरंगजेब की नीति से असन्तुष्ट शिवाजी ने १६६९ ई० में मुगलों के साथ पुनः युद्ध प्रारम्भ करके शीघ्र ही उनको दिये सम्पूर्ण किले वापिस ले लिये।[5]

(ग) व्यास जी ने जयसिंह की मृत्यु का दर्द भरा चित्र खींचा है।[6] इससे पूर्व वे लिख चुके हैं कि अविश्वासी औरंगजेब ने जयसिंह की सहायता के लिये बीजापुर-युद्ध में सेना की सहायता नहीं भेजी।[7] इतिहास बताता है कि साधनों की कमी से जयसिंह बीजापुर को न जीत सका और औरंगाबाद लौट आया। औरंगजेब ने जयसिंह के स्थान पर मुअज्जम को सूबेदार बना कर उसे दिल्ली वापिस आने का आदेश दिया। वापिस लौटते हुए अपमान से व्यथित और निराश जयसिंह की ६२ वर्ष की वृद्धावस्था में बुरहानपुर नामक स्थान पर

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ४९६, ५११-५१३।
२. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृ० ९७।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ५३१-५३२।
४. 'सोर्स बुक आफ मराठा हिस्ट्री' (सभासद्) पृ० ५८-६१।
५. (क) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स' पृ० १७८-१७९, (ख) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृ० १९२, (ग) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृ० ९७।
६. 'शिवराजविजय' पृ० ५५२-५५८।
७. „ „ ४५८-४५९।

२८ अगस्त १६६७ ई० को मृत्यु हो गई।[1] उसकी इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के चित्रण के साथ ही व्यास जी ने तत्कालीन मुगल-साम्राज्य के विनाश के कारणों को उपस्थित करके हिन्दू-जागृति का संदेश भी प्रदान किया है।

(घ) औरंगजेब द्वारा भेजे गये एक सेनापति मोहब्बत खां (मोहावर्तखान) ने मराठों पर आक्रमण किया किन्तु वह हरा कर भगा दिया गया।[2] मराठा इतिहास के अनुसार शिवाजी की विजयों से खिन्न औरंगजेब ने शाहजादा मुअज्जम पर विश्वास न करते हुए २८ नवम्बर १६७० को मोहब्बतखां को दक्षिण की सेनाओं का सेनापति बना कर भेजा था। किन्तु मराठों ने उसे बुरी तरह पराजित किया।[3]

'शिवराजविजय' की ऐतिहासिक घटनाओं के इस विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि व्यास जी ने 'शिवराजविजय' की ऐतिहासिक कथा की योजना अपनी रुचि के अनुकूल निबद्ध करते हुये भी ऐतिहासिक सत्य की रक्षा यथा सम्भव की है। उन्होंने कलाकार के सत्य और इतिहास के सत्य का समन्वय करते हुये राष्ट्रीय और जातीय गौरव की भावनाओं को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न किया है, और इस प्राचीन इतिहास से अपने युग की समस्याओं को हल करने का उद्योग किया है।

(ख) शिवराजविजय के काल्पनिक कथानक के स्रोत

पहिले लिखा जा चुका है कि 'शिवराजविजय' की रचना से पूर्व शिवाजी विषयक दो उपन्यासों—रमेशचन्द्र दत्त कृत 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' और भूदेव मुखोपाध्याय कृत 'अंगुरीयविनिमय' की रचना बंगला भाषा में हो चुकी थी। इन दोनों रचनाओं का प्रभाव शिवराजविजय में स्पष्ट परिलक्षित होता है। कथानक, चरित्र-चित्रण, मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति, संवाद-योजना और देशकाल इन सबके चित्रण में यह प्रभाव विद्यमान है। 'शिवराजविजय' के काल्पनिक प्रसंगों में बंगला की इन रचनाओं के प्रभाव में इन विभिन्न रूपों का इस स्थल पर विश्लेषण करना उचित होगा। इनमें सर्वप्रथम कथावस्तु के प्रभाव का विश्लेषण किया जा रहा है।

'शिवराजविजय' की कथावस्तु के आधिकारिक-कथा और प्रासंगिक-कथायें ये दो विभाग हैं। प्रासंगिक कथायें पताका और प्रकरी दो प्रकार की हैं। इनमें से आधिकारिक और पताका कथा पर इन उपन्यासों का प्रभाव है और प्रकरी-कथाओं

---

१. (क) ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज', (ख) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स' पृष्ठ १७८-१७९, (ग) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृष्ठ १९२।

२. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ५५९।

३. (क) ग्रान्ट डफ कृत 'हि० आफ दी म०' पृष्ठ ११२, (ख) जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एन्ड हिज टाइम्स' पृ० १७८-१७९, (ग) सरदेसाई कृत 'न्यू हिस्ट्री आफ दी मराठाज' पृष्ठ १९५-१९६।

की कल्पनायें व्यास जी की सर्वथा निजी हैं। आधिकारिक तथा पताका कथाओं में भी व्यास जी ने अनेक कल्पनायें स्वयं की हैं। कथावस्तु पर इन उपन्यासों के प्रभाव का विश्लेषण करने के लिये इन कथाओं पर पड़े हुये प्रभाव की क्रमशः परीक्षा की जाती है।

'शिवराजविजय' की शिवाजी विषयक आधिकारिक-कथा के निम्न मुख्य विभाग किये जा सकते हैं :—

(१) अफजलखां का वध।
(२) शिवाजी की भूषण कवि से भेंट।
(३) शिवाजी का पूना में शाइस्ताखां के दरबार में जाना, रात्रि में पूना की गलियों में घूमना और चान्दखां का वध।
(४) शिवाजी-यशवन्तसिंह भेंट।
(५) शिवाजी-रोशनआरा प्रणय।
(६) बारात के वेश में पूना में प्रवेश करके शिवाजी द्वारा रात्रि में शाइस्ताखां पर आक्रमण।
(७) शिवाजी के सैनिकों द्वारा मुअज्जम का अपहरण।
(८) शिवाजी-जयसिंह भेंट और सन्धि।
(९) शिवाजी द्वारा रुद्रमण्डल दुर्ग पर आक्रमण और विजय।
(१०) शिवाजी का देहली जाना, मुगल-दरबार में उपस्थित होना, औरंगजेब द्वारा निवास स्थान पर कैद कर दिया जाना, रोगी होने का बहाना करना और निकल कर दक्षिण पहुंच जाना।
(११) शिवाजी द्वारा स्वप्न में जयसिंह को मरते हुये देखना।
(१२) सेनापति मोहब्बतखां को शिवाजी द्वारा भगा दिया जाना।

इनमें से प्रथम, द्वितीय और अन्तिम घटनायें बहुत कुछ इतिहास से सम्बंधित हैं तथा उनका उल्लेख पूर्वोक्त बंगला उपन्यासों में नहीं है। घटना संख्या सात व्यास जी की निजी कल्पना है। पांचवीं घटना के संकेत 'अंगुरीय विनिमय' से लिये गये हैं तथा शेष पर 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' का प्रभाव है। इन प्रभावों का विश्लेषण नीचे किया जा रहा है।

घटना संख्या ३—शाइस्ताखां के दरबार की अवस्था और दरबारियों के वार्तालाप का वर्णन जिस प्रकार से 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में है, उसका 'शिवराज-विजय' पर पर्याप्त प्रभाव है। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में शाइस्ताखां का खुशामदी अनवरी नामक दरबारी और स्वतंत्र विचारक सेनापति चांदखां सम्मुख-युद्ध और दुर्ग-युद्ध का परामर्श देते हुये जिन युक्तियों को प्रस्तुत करते हैं, वे ही

युक्तियां 'शिवराजविजय' में बदरदीन और महामदगणि नामक खुशामदी दरबारियों और चाँद्रखान सेनापति द्वारा उपस्थित की गयी हैं। दोनों ही उपन्यासों में शिवाजी महादेव पंडित के वेष में उपस्थित होकर वार्तालाप करते हैं। यह वार्तालाप तथा शाइस्ताखां द्वारा प्रस्तुत सन्धि की शर्तें[1] प्रायः समान ही हैं। शिवाजी के पूना की गलियों में घूमने और चांदखां को मारने की घटना एकसी होते हुये भी इसमें थोड़ा सा अन्तर है। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में शिवाजी सम्पूर्ण समाचार को राजमार्ग में ही एक सैनिक से जान लेते हैं और वहीं चांदखां का वध करते हैं, जब कि 'शिवराजविजय' में यह कार्य एक भग्न मन्दिर में हुआ।

घटना संख्या ४—यशवन्तसिंह-शिवाजी भेंट और वार्तालाप दोनों उपन्यासों में प्रायः एकसा है। यशवन्तसिंह की हिन्दू भावनाओं को उद्दीप्त करके शिवाजी अपने अभीष्ट सम्पादन में सफल हो जाते हैं।

घटना संख्या ६—शाइस्ताखां पर आक्रमण के लिये जाते समय जो परिस्थितियां तथा घटनायें 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में प्रस्तुत की गयी हैं, प्रायः वे ही 'शिवराजविजय' में हैं। शिवाजी अपने साथ किसी भी मुख्य सेनापति को नहीं ले जाना चाहते।[2] रघुवीर दौत्य-कार्य के पारितोषिक रूप में शिवाजी के साथ जाने की अनुमति प्राप्त करता है[3] और शिवाजी की रक्षा में विशेष योग देता है।[4] पूना महल पर आक्रमण का दृश्य दोनों उपन्यासों में यद्यपि प्रायः एकसा है, तथापि 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में केवल चाँदखां के पुत्र का वध हुआ है और 'शिवराजविजय' में उसके साथ शाइस्ताखां के पुत्र का भी वध हुआ।

घटना संख्या ८—जयसिंह-शिवाजी भेंट और वार्तालाप दोनों उपन्यासों में प्रायः समान रूप से चित्रित हैं। निःशस्त्र और एकाकी शिवाजी रात्रि में जयसिंह के शिविर में उपस्थित होते हैं। वे उसकी हिन्दू भावनाओं को उद्बुद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु यशवन्तसिंह के सदृश जयसिंह को प्रभावित नहीं कर पाते। उन्हें जयसिंह की ही शर्तों पर सन्धि करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। सन्धि की शर्तें दोनों उपन्यासों में प्रायः समान हैं, किन्तु 'शिवराजविजय' में रसनारी और [illegible]जह्म की कथा की कल्पना के कारण उन दोनों के अन्वेषण की शर्तें अधिक है।

घटना संख्या ९—'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' की कथा के अनुरूप 'शिवराज-

---

१. (क) 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० ३२, (ख) 'शिवराजविजय' पृ० १५८-१५९।
२. (क) ,, ,, ७१, (ख) ,, ,, २४९-२५०।
३. (क) ,, ,, ७३-७४, (ख) ,, ,, २४९-२५०।
४. (क) ,, ,, ७८, (ख) ,, ,, २५८-२५९।

विजय' में रुद्रमण्डल दुर्ग पर आक्रमण कराया गया है। जयसिंह से हुई सन्धि के अनुसार बीजापुर के विरुद्ध मुगलों की सहायता करने के लिये शिवाजी उस दुर्ग को जीतने का निश्चय करते हैं। दुर्ग की स्थिति और युद्ध का वर्णन दोनों उपन्यासों में प्रायः एक सा है और प्रासंगिक कथा के नायक को दुर्ग की विजय तथा किलेदार को कैद करने का श्रेय दिया गया है।

घटना संख्या १०—शिवाजी के मुगल दरबार जाने और वहाँ से वापिस आने के वर्णन में दोनों उपन्यासों में साम्य के साथ कुछ अन्तर भी है। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' के अनुसार शिवाजी के पुत्र शम्भूजी भी मुगल दरबार में उपस्थित हुये थे। 'शिवराजविजय' में शम्भूजी का उल्लेख नहीं है। देहली से निकलने की योजना में 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' के अनुसार माल्यश्रीक यवन-चिकित्सक का वेश बना कर शिवाजी की सेवा में उपस्थित हुये, जबकि 'शिवराजविजय' में यह कार्य मुरेश्वर ने किया। 'शिवराजविजय' में इन अवसरों पर कथा के अनुरूप रसनारी और मायाजिह्म के प्रसंग हैं। इसके अतिरिक्त शेष वर्णन प्रायः समान है।

घटना संख्या ११—'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में जयसिंह का देहावसान कथानक का सामान्य अंश है। शिवाजी उसके अन्तिम समय में वेश बदल कर गये। 'शिवराजविजय' में यह दृश्य शिवाजी के एक स्वप्न के रूप में चित्रित है। इस अवसर पर मुगल-साम्राज्य की समाप्ति तथा हिन्दू स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में लेखकों के विचार दोनों उपन्यासों में प्रायः समान हैं।

घटना संख्या ५—'शिवराजविजय' में शिवाजी और रोशनआरा के प्रणय का चित्रण है। इस प्रणय को प्रमाणित करने वाला कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं प्राप्त होता। सम्भवतः व्यास जी को इस प्रणय की कल्पना भूदेव मुखोपाध्याय कृत 'अंगुरीय विनिमय' नामक ऐतिहासिक उपन्यास से प्राप्त हुई। 'शिवराज-विजय' और 'अंगुरीय विनिमय' दोनों उपन्यासों की इस कल्पना में कुछ साम्य एवं कुछ अन्तर है।

'अंगुरीय विनिमय' के अनुसार शिवाजी ने रोशनआरा का अपहरण करने के लिये एक सुनिश्चित योजना बनायी। जिसके अनुसार शिवाजी के सैनिक पर्वतीय मार्ग से गोलकुण्डा जाती हुई रोशनआरा का अपहरण कर लाये।[१] 'शिवराजविजय' के अनुसार उस योजना में शिवाजी का स्वयं का योग नहीं है। उनके सैनिक एक नाटकीय योजना द्वारा रोशनआरा का अपहरण करने में सफल

१. 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० २८५।

हो गये ।[1] अपहरण की इन योजनाओं में अन्तर होते हुये भी उद्देश्य दोनों उपन्यासों में एक ही दिखाया गया है कि शिवाजी रोशनआरा को आधार बना कर औरंगजेब से सन्धि करना चाहते थे ।[2]

शिवाजी-रोशनआरा में परस्पर प्रणय-भावना की अभिव्यक्ति 'अंगुरीय विनिमय' में अधिक नाटकीय और प्रभावशाली है। दोनों उपन्यासों में यद्यपि वे दोनों एक दूसरे के दर्शन मात्र से अनुरक्त होते हैं, तथापि 'अंगुरीय विनिमय' में एक घटना की योजना इस प्रणय को अधिक औचित्य प्रदान करती है। रोशनआरा की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये शिवाजी अपने एक सेनापति से द्वन्दयुद्ध करते हैं और अत्यधिक घायल हो जाते हैं। रोशनआरा उनकी दिन रात सेवा करती है। इससे दोनों में प्रगाढ़ स्नेह हो जाता है। दोनों उपन्यासों में प्रणय का समान रूप यह है कि प्रणयिनी रोशनआरा की विवाह करने की प्रार्थना के उत्तर में शिवाजी गुरुजनों की अनुमति आवश्यक मानते हैं ।[3]

इस घटना के पश्चात् भी कथानक में अन्तर है। 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी-जयसिंह सन्धि के फलस्वरूप रोशनआरा मुगलों को सौंप दी जाती है,[4] किन्तु 'अंगुरीय विनिमय' के अनुसार शिवाजी के एक सैनिक के विश्वासघात के परिणाम स्वरूप शिवाजी को तोरण दुर्ग छोड़ कर भागना पड़ता है और रोशनआरा मुगलों के अधिकार में आ जाती है ।[5] शिवाजी-जयसिंह सन्धि के परिणामस्वरूप जब शिवाजी को देहली जाना पड़ता है, उस समय 'शिवराज-विजय' के अनुसार उनके हृदय में रोशनआरा का कोई विचार नहीं है। 'अंगुरीय विनिमय' के अनुसार वे रोशनआरा को प्राप्त करने की आशा रखते हैं ।[6] इस

१. 'शिवराजविजय' पृ० २४२-२४५।

२. (क) एवं शिवजी बादसाहेर सहित स्थिर सौहार्द एवं सम्बन्ध करिवार अभिप्रायेई तद्दुहिता के ए स्थाने आनयन करियाछेन । 'भूदेव रचना संभार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० २९०।
(ख) यदि भवतीमाश्रित्य भवत्पाः पित्रा सह सन्धातुं शक्येत, तद्यत्नायैव समानीता मंगलमय्यत्रभवती। 'शिवराजविजय' पृ० २७२।

३. (क) गुरुजनेर असम्मल कर्म परिणामे मंगलवह नहे, किन्तु ताहार कोन उपाय हइले उभयेई सुखी हई। 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० २९६।
(ख) पित्रा अप्रदीयमाना यं कञ्चिदेवांगीकुर्वती व्यभिचारिणी वचनीया च वदावदानाम्। मातापितृभ्यामदत्तामात्मसात्कुर्वंश्च लम्पटः इति निन्द्यते। 'शिवराजविजय' पृ० ३३५

४. 'शिवराजविजय' पृ० ३५४।

५. 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३०१-३०३।

६. औरंगजेब सन्तुष्ट हइले परिणामे रोशनआरा लाभ हइले जो हइते पारे। 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३२६।

प्रणय को जानकर औरंगजेब अत्यधिक रुष्ट होता हैं। इस रोष का परिणाम दोनों उपन्यासों में भिन्न है। 'अंगुरीय विनिमय' के अनुसार वह सम्राट् द्वारा निरुद्ध कर दी जाती है।[1] किन्तु 'शिवराजविजय' के अनुसार वह पिता से तिरस्कार पाकर आत्मघात करती है।[2]

शिवाजी के देहली पहुंचने पर भी इस प्रणय कथा में कुछ अन्तर है। 'अंगुरीय विनिमय' के अनुसार शिवाजी के देहली पहुँचने पर रोशनआरा उसको प्राप्त करने का कोई उद्योग नहीं करती। शिवाजी के मुगल-दरबार में उपस्थित होने पर उसने अन्तःपुर से केवल मात्र उनका दर्शन किया।[3] 'शिवराजविजय' के अनुसार उसने शिवाजी का दर्शन तो नहीं किया किन्तु अपनी सहचरी के द्वारा दो बार प्रणय संदेश भेजा।[4] 'शिवराजविजय' के अनुसार शिवाजी ने देहली पहुँच कर रोशनआरा को प्राप्त करने की कोई चेष्टा नहीं की तथा रोशनआरा की सहचरी से भी मिलने से डरते रहे। 'अंगुरीय विनिमय' के अनुसार वे अपने निकलने की योजना बनाते हुये रोशनआरा के उद्धार की भी चेष्टा करते रहे।[5] उन्होंने अपनी अंगूठी और पगड़ी लेकर एक वारवनिता को रोशनआरा को गुप्त स्थान पर लाने के लिये भेजा,[6] किन्तु उसने पिता की अनुमति पाये बिना स्वेच्छाचारिणी होकर जाना स्वीकार नहीं किया। उसने एक पत्र और अंगूठी वारवनिता को देकर बदले में महाराष्ट्रपति की अंगूठी ले ली।[7] रोशनआरा ने पत्र में लिखा कि अंगूठी के विनिमय द्वारा हमारा आपस में विवाह हो गया है। यद्यपि मेरे आपके साथ रहने से आपको सुख प्राप्त होगा, तथापि उससे आपकी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध हो जायगा, अतः हम आपको अपने सहवास से वंचित कर रही हैं।[8]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि शिवाजी-रोशनआरा प्रणय कथा के संकेत

---

१. 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३२१।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५५१।
३. ये दिवस शिवजी राजसम्भाषणे आइसेन, रोसिनारा अन्यान्य अन्तःपुरवासिनीदिगेर समभिव्यवहारे आसिया सेई प्राचीरेर गवाक्षविवर हइते समुदाय अवलोकन करिते लागिल। 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३३३।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ४१५-४२८ और ४४९-४५४।
५. किन्तु शिवजी एइ कालमध्ये केवल आपनारई प्रस्थानेर उपाय चिन्ता करिते छिलेन एमत नहे, प्रियतमा रोसिनारा उद्धारार्थ ओ सविशेष चेष्टा देखिते छिलेन। 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३३३।
६. 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३३६।
७. ,, ,, ,, ,, ३३८।
८. ,, ,, ,, ,, ३४५-३४६।

'अंगुरीय-विनिमय' से प्राप्त करके भी व्यास जी ने उसमें अपनी कथा की योजनानुसार अनेक परिवर्तन और परिवर्धन किये हैं।

'शिवराजविजय' की आधिकारिक कथा पर इन बंगला उपन्यासों के प्रभाव की समालोचना करने के पश्चात् प्रासंगिक पताका-कथा पर उनके प्रभाव का विश्लेषण करना उचित होगा।

'शिवराजविजय' की 'रघुवीर-सौवर्णी' की प्रासंगिक कथा की योजना पर 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' का पर्याप्त प्रभाव है। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' की 'रघुनाथ हवलदार और सरयू' की प्रासंगिक कथा का अनुकरण करते हुये व्यास जी ने रघुनाथ को रघुवीरसिंह तथा सरयू को सौवर्णी के रूप में उपस्थित किया। रघुनाथ अथवा रघुवीर के दो रूप पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं — प्रणयी रूप और सैनिक रूप। उसके सैनिक रूप की कथा दोनों उपन्यासों में प्रायः समान ही है, जबकि प्रणय कथा में साम्य के साथ कुछ भिन्नता भी है। रघुनाथ की प्रणय कथा संक्षेप में इस प्रकार है —

आमेर के राजा जयसिंह के एक सामन्त रघुनाथ के पिता थे। उनके द्वारा पालित चन्द्रराव नामक युवक ने स्वामी की हत्या कर उनकी पुत्री लक्ष्मी से विवाह कर लिया और वह महाराष्ट्र पहुँच कर शिवाजी की सेना में सेनापति हो गया। जयपुर में आया हुआ जनार्दनदेव नामक ब्राह्मण शिवाजी के आग्रह पर तोरणदुर्ग के समीप भवानी देवी के मन्दिर में रहता था। वह सरयू नामक एक अनाथ राजपूत बालिका का पालन करता था। इधर पिता की मृत्यु के बाद अनाथ रघुनाथ भी महाराष्ट्र आ कर शिवाजी का सैनिक बन गया। एक बार वह दौत्य-कार्य से तोरण-दुर्ग आया, जहां सरयू से उसकी भेंट हुई और दोनों में प्रेम-भाव उत्पन्न हो गया। शिवाजी की आज्ञा से रघुनाथ जनार्दनदेव को रायगढ़ ले आया। रघुनाथ की योग्यता और शील से प्रभावित होकर जनार्दनदेव ने उसको सरयू के साथ विवाह करने का वचन दिया।[1] परिस्थिति-वश रघुनाथ विद्रोही घोषित किया जाकर देशनिष्कासन के दण्ड का भागी हुआ।[2] ईशानी के मन्दिर में उसकी अपनी बहिन लक्ष्मी से भेंट हुई। उसकी प्रेरणा से उसने पराक्रमों के द्वारा अपने ऊपर लगाये गये आरोपों के निराकरण का निश्चय किया।[3] वह सीतापति गोस्वामी का रूप धारण कर और

१. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ ९१।
२. ,, ,, १३३।
३. ,, ,, १५६-१५७।

सरयू को सान्त्वना देकर[1] शिवाजी की सहायता के लिये दिल्ली चला गया। इधर जनार्दन ने सरयू का विवाह दूसरे स्थान पर निश्चित कर दिया।[2] किन्तु सरयू विवाह से पहले ही घर से निकल गई।[3] अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने के बाद रघुनाथ की भेंट पुनः सरयू से हुई और दोनों प्रेमियों का स्थायी मिलन हुआ।[4]

'शिवराजविजय' का रघुवीर भी जयसिंह के एक जागीरदार का पुत्र है। भाग्य-वश रघुवीर जिसका वास्तविक नाम रामसिंह है, बाल्यावस्था में ही पिता से वियुक्त होकर अपने पुरोहित गणेश शास्त्री के साथ महाराष्ट्र पहुँच जाता है और शिवाजी का सैनिक बन जाता है। सौवर्णी, जो वस्तुतः शिवाजी के एक राजपूत सेनापति गौरसिंह की बहिन है, बाल्यकाल में अनाथ होकर अपने पुरोहित द्वारा पालित होती है। शिवाजी का सन्देश तोरण दुर्ग में लाने पर रघुवीर की सौवर्णी से भेंट होती है और दोनों में प्रेम-भाव का उदय होता है। यह प्रसंग दोनों उपन्यासों में यद्यपि प्रायः एकसा ही है, तथापि व्यास जी के वर्णन में अधिक उत्सुकता, सजीवता और रोमांचकता है। रामसिंह, जिसका सौवर्णी के साथ विवाह बाल्यावस्था में ही निश्चित हो चुका था, उसे रघुवीर के रूप में कोई भी पहिचान नहीं पा रहा है। अनेक बार की भेंट में रघुवीर-सौवर्णी का प्रेम दृढ़ हो जाता है। देशद्रोह के अपराध में निष्कासन का दण्ड पाकर रघुवीर राघवस्वामी के वेश में शिवाजी की सहायता के लिये जाता है। जाने से पहिले प्रच्छन्न रूप में आकर सौवर्णी को वह सान्त्वना देता है। सफल होकर वापिस आने पर उसे सौवर्णी प्राप्त होती है। इस उपन्यास में सौवर्णी को घर छोड़ कर जाने की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उसके भाई और पुरोहित पूर्व प्रतिश्रुत वर के साथ ही उसका विवाह करना चाहते हैं।

रघुनाथ और रघुवीर दोनों के सैनिक रूप प्रायः समान हैं। तोरण-दुर्ग के अध्यक्ष के पास सन्देश ले जाने, शाइस्ताखां पर अभियान के समय पराक्रम प्रदर्शित करने, रुद्रमण्डल-दुर्ग के विजय करने, शिवाजी द्वारा तिरस्कृत होने पर भी उनका अहित न सोचने तथा पराक्रम द्वारा अपयश की कालिमा को धोने और गोस्वामी के वेश में अप्रत्यक्ष रूप से निरन्तर शिवाजी की सहायता करने में दोनों उपन्यासों में इनके चरित्र समान हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि व्यास जी ने आधिकारिक और प्रासंगिक कथाओं की कल्पना में अधिकांशतः 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' से प्रेरणा ग्रहण की और उनको शिवाजी-रोशनआरा प्रणय की कल्पना 'अंगुरीय विनिमय' से प्राप्त हुई।

---

१. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १६४-१६५।
२. ,, ,, २३५।
३. ,, ,, २३६।
४. ,, ,, २४९-२५०।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी इन दोनों बंगला उपन्यासों का 'शिवराजविजय' पर प्रभाव स्पष्ट है। शिवाजी के चरित्र की जो दृढ़तायें और कमजोरियां 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में चित्रित हैं प्रायः वे 'शिवराजविजय' में भी हैं। हिन्दू-गौरव के उद्धार की निरन्तर चेष्टा करना, शाइस्ताखां के दरबार में अकेले ही जाकर भेद निकालना, यशवंतसिंह और जयसिंह के सैन्य-शिविरों में अकेले ही जाकर कार्य को सिद्ध करने का प्रयत्न करना, देहली-दरबार में स्वाभिमान का प्रदर्शन, कैद होने पर भी न घबड़ाना, अपने सेवकों का सदैव हित चिन्तन आदि चरित्रगत दृढ़तायें जो 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' के शिवाजी में है, वे सब 'शिवराजविजय' के शिवराज में भी हैं। जिस प्रकार 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में शिवाजी विना विचार किये ही अत्यधिक उत्तेजित होकर रघुनाथ को प्राण दण्ड देने के लिये तैयार हो जाते हैं, जयसिंह के समझाने से देशनिष्कासन का दण्ड देते हैं[1] और वास्तविकता का पता लगने पर व्यथित होते हैं, इसी प्रकार का आचरण का 'शिवराजविजय' में भी शिवराज का है।

रघुनाथ के चरित्र की दृढ़ता, उदात्तता, वीरता, सदाशयता और स्वामिभक्ति का जो चित्रण 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में है, प्रायः वही 'शिवराजविजय' में रघुवीर का है। दोनों ही आंधी पानी के होते हुये भी ठीक समय पर तोरण दुर्ग में शिवाजी का सन्देश पहुँचाते हैं। उनकी वीरता का परिचय रुद्रमण्डल दुर्ग के अभियान में प्राप्त होता है और सदाशयता तथा स्वामिभक्ति का परिचय पूना-अभियान और दिल्ली-यात्रा के समय मिलता है। सरयू अथवा सौवर्णी के कण्ठ में माला पहिनाते हुये उनकी सच्चरित्रता अभिव्यक्त होती है, जबकि वे केवल माला ही पहिनाते हैं, अंगों को स्पर्श नहीं करते।[2] इसी प्रकार से अन्य अनेक स्थलों पर इन दोनों चरित्रों में साम्यता है। अन्य पात्रों—सरयू-सौवर्णी, यशवन्तसिंह, जयसिंह आदि पात्रों का चरित्रगत साम्य भी इन दोनों उपन्यासों में है।

'अंगुरीय विनिमय' और 'शिवराजविजय' के शिवाजी और रोशनआरा के व्यक्तित्व और चरित्र में समानताओं के साथ कुछ भिन्नतायें भी हैं। समानता यह है कि दोनों में ही शिवाजी ने रोशनआरा के प्रयोग द्वारा औरंगजेब से सन्धि करने की

---

१. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १३३।

२. (क) रघुनाथ ने धीरे २ उसी कण्ठमाला को सरयू के गले में डाल दिया, परन्तु कन्या का पवित्र शरीर स्पर्श नहीं किया। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० २३।

(ख) रघुवीरश्च वाचंयमतामप्यंगीकारभंगीमंगीकृत्य, तदन्तिकमागत्य, सौवर्णीचित्रं मानसभित्तिकायामालिख्य, नक्षत्रमालां तत्कण्ठे प्राक्षिपत्, पवित्रतमानि स्फुटतम-यौवनोद्भेदलक्ष्मरहितानि च तदंगानि नास्प्राक्षीत्। 'शिवराजविजय' पृ० १३२।

अभिलाषा प्रकट की ।[१] वे यद्यपि रोशनआरा से विवाह करना चाहते हैं, तथापि उसके लिये माता-पिता की अनुमति आवश्यक मानते हैं ।[२] भिन्नता यह है कि 'अंगुरीय विनिमय' के शिवाजी 'शिवराजविजय' के शिवाजी की अपेक्षा अनुराग करने में अधिक दृढ़ और उत्सुक हैं । एक सच्चे प्रेमी के समान वे रोशनआरा को प्राप्त करने का उद्योग करते हैं । दिल्ली जाते समय उनके हृदय में रोशनआरा को प्राप्त करने की आकांक्षा तथा आशा बनी रहती है । वहां से आते समय वे उसे साथ लाने का भी प्रयत्न करते हैं । 'शिवराजविजय' के शिवाजी अपनी प्रेमिका के प्रति उतने भावविह्वल नहीं होते । उनके कथनों में शिष्टाचार ही अधिक है । वे उसे प्राप्त करने का कोई उद्योग नहीं करते । प्रेमिका द्वारा भेजी गई सहचरी से मिलते हुये भी वे डरते हैं ।[३] 'अंगुरीय विनिमय' की रोशनआरा अधिक उदात्त और गम्भीर है । प्रेम करते हुये भी वह स्वेच्छाचारिणी नहीं होना चाहती । वह अपने प्रेमी की उन्नति के लिये अपने सुख का बलिदान कर देती है । अवसर उपस्थित होने पर भी अपने प्रेमी के पास इस लिये नहीं जाती कि कहीं उसकी उन्नति का मार्ग अवरुद्ध न हो जावे ।[४] 'शिवराजविजय' की रोशनआरा अधिक चंचल है, और वह जिस किसी भी प्रकार से शिवाजी को प्राप्त करना चाहती है ।[५] प्रेम की वेदी पर उसका बलिदान कराकर[६] व्यास जी ने उसके चरित्र को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है ।

मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति में 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात'का प्रभाव 'शिवराज-विजय' के अनेक स्थलों पर परिलक्षित होता है । यह प्रभाव यद्यपि अनेक प्रकार की भावनाओं में है, तथापि मुसलिम अत्याचारों और देश तथा धर्म की रक्षा की भावनाओं में इसकी अभिव्यक्ति सबसे अधिक हुई है । शिवाजी-यशवंतसिंह और शिवाजी-जयसिंह के संवादों में भावनाओं की समानता इस प्रकार परिलक्षित होती है—

जिस दिल्लीश्वर ने हिन्दूगण का नाम काफिर रख छोड़ा है और जजिया जारी किया है, क्या उसके ये कार्य भद्रोचित हैं ? देश देश में जो वह हिन्दू मन्दिरों और देवालयों का अपमान करता है, क्या भद्रोचित है ? काशी जैसी पवित्र नगरी में विश्वनाथ के मन्दिर को भग्न करके उसके पलस्तर से मस्जिद बनवाना क्या

---

१. (क) 'शिवराजविजय' पृ० २७२, (ख) 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० २६०
२. (क) ,, ,, ३३३, (ख) ,, ,, ,, ,, २६६
३. 'शिवराजविजय' पृ० ४१७ और ४५२-४५४ ।
४. 'भूदेव रचना सम्भार' (अंगुरीय विनिमय) पृ० ३३६ ।
५. 'शिवराजविजय' पृ० ३६१ ।
६. ,, ,, ५५१ ।

भद्रोचित हैं ?[1]

केवलमार्यस्वभावानामार्यजनानां क्लेशनार्थमेव गोहिंसनम्, प्रतिमाखण्डनम्, दीनहीनसनातनवैदिकधर्मशरणानामेवास्माकं जीवं-जीवं करग्रहणं महतां कार्यं वा ? वाराणस्यादिदेवतीर्थेषु बलात् पातितानां मन्दिराणां भग्नावशेषैः कपाटदेहली-पाषाणेष्टिकादिप्रचयैरेव स्वमज्जितरचना च महतां कार्यं वा ?[2]

अथवा

मैं जब लड़कपन में कोंकण देश के असंख्य पर्वतों और उपत्यकाओं में भ्रमण कर रहा था, एक दिन भवानी ने मुझे स्वप्न में स्वाधीनता स्थापित करने का आदेश दिया।[3]

महाराज ! बाल्येऽहं चिरं स्वप्नानपश्यम् —यद् दुराचारैर्म्लेच्छैः सह प्रतियोद्धुं स्वदेशस्य स्वातंत्र्यं धर्मं च रक्षितुं मां स्वयं भगवती दुर्गाऽऽदिशतीति।[4]

शिवाजी को युद्ध के लिये उत्तेजित करने की भावना प्रायः समान रूप से उद्‌बुद्ध की गई है—

राजपूत वीराग्रगण्य हैं, परन्तु महाराष्ट्र भी खड्ग चलाने में दुर्बल नहीं।[5]

राजपुत्रदेशीयाः युद्धकुशलाश्चेन्महाराष्ट्रा अपि दुर्बलेन करेण न वहन्ति खड्गम्।[6]

अथवा

हिन्दू को हिन्दू से लड़ा कर पृथिवी को हिन्दुओं के रक्त से रंजित करना क्या मंगल है ? क्या इसे पुण्य कर्म कह सकते हैं ? ······इस पाप का भागी कौन है ? जो स्वजातियों या स्वधर्मियों के साथ युद्ध करे, जो मुसलमानों के लिये स्वजातियों से वैर रखे वही, अन्य नहीं।[7]

यदि भारतीयानां वैदिकधर्मावलम्बिनामेव मांसैर्मांसलीक्रियेत भारतवसुमती, तत् किं न भवति पापम् ? ·········पापं कस्य ? यो विरोधिनां पक्षमवलम्ब्य स्वबन्धून्जिघांसति, यत्कुलजा यवनानां श्यालत्वे श्वशुरत्वे च प्रतिष्ठां मन्वते, तस्य।

१. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० ४८।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २०५।
३. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १०४।
४. शिवराजविजय' पृ० ३५२।
५. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १६६।
६. 'शिवराजविजय' पृ० ४०४।
७. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १७०।

न त्वेतस्य ।[1]

'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' की संवाद-योजना का 'शिवराजविजय' पर स्पष्ट रूप से प्रभाव पड़ा है। संवादों के अनेक अंश प्रायः उसी रूप में संस्कृत में अनुवादित हैं। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में यशवन्तसिंह-शिवाजी का संवाद इस प्रकार आरम्भ होता है—

यशवंतसिंह ने कहा—हमने तुम्हारे स्वामी का पत्र पढ़ा था। उसको भले प्रकार समझ भी लिया है। क्या उसके अतिरिक्त और कुछ कहना है ?

महादेव—हमारे स्वामी ने किसी प्रस्ताव को लेकर नहीं भेजा है। हां केवल खेद प्रकाश करने के लिये अवश्य भेजा है।

यशवन्तसिंह—केवल पूना और चाकनदुर्ग हमारे हस्तगत हो जाने से ही तुम्हारे महाराज ने खेद प्रकट करने को तुम्हें भेजा है ?

महादेव—महाराज ! वे केवल दुर्गों के निकल जाने से ही खिन्न नहीं हैं। उनके पास तो असंख्य दुर्ग हैं।

यशवन्त—तो फिर क्या मुगलों के युद्ध रूपी विपद् में फंस कर खेद कर रहे हैं ?

महादेव—विपद् में पड़ कर उनको खेद प्रकट करने का अभ्यास नहीं है।

यशवन्त—फिर किस लिये खेद है ?[2]

शिवराजविजय में यह संवाद इस प्रकार से है—

यशस्विसिंहः—पण्डितवर ! महाराष्ट्रराजस्य पत्रं तु प्राप्तवानेवास्मि। तत्र तेन यद्यदलेखि तत्तत् पठितवानस्मि। तदधिकं भवतः किं प्रस्तोतव्यमिति निरूप्यताम्।

महादेवपण्डित :—मरुराज ! नाहं तत्रभवता किमपि प्रस्तोतुं प्रेषितोऽस्मि, अपि तु शोकं प्रकाशयितुम्।

यश०—तत् किं पुण्यनगरेण सह प्रधानचिक्कनदुर्गोऽपि हारित इति शोकः ?

महा०—तस्य हस्ते बहवो दुर्गाः सन्ति इति दुर्गार्थं न खिद्यते।

यश०—अथ किं भारतचक्रवर्त्तिना दिल्लीश्वरेण युद्धरूपा महती विपदुपतिष्ठते इति शोकः ?

महा०—क्षत्रियराज ! विपत्समये धीरतात्यागः शिवेन नाभ्यस्तः।

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४०५-४०६।
२. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० ७।

यश०—तत् किमिति शोकः ?[1]

सीतापति गोस्वामी-शिवाजी संवाद और शिवाजी को निकालने की योजना 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में जिस रूप में है, प्रायः वही रूप 'शिवराजविजय' में राघवस्वामी-शिवाजी संवाद का है। उसका कुछ अंश यहां उदाहरणार्थ उद्धृत किया गया है—

सीतापति—अंधेरी रात में आप यों ही छद्मवेश धारण करके यहां से निकल सकते हैं। यद्यपि दिल्ली के चारों ओर शहरपनाह है, परन्तु पूर्व की ओर एक लोहशलाका के स्थापित होने के कारण फसील का कुछ भाग खाली है, जिसे कूद जाना महाराष्ट्रों के लिये कठिन नहीं है। दूसरी ओर नदी के पास आठ मल्लाह तैनात हैं, वह तुरन्त ही नाव पर सवार कराके मथुरा पहुँचा देंगे। वहां आपके सैकड़ों मित्र और बन्धु हैं। सैकड़ों देवालयों में अनेक धर्मात्मा पुजारी हैं। उनके द्वारा आप अनायास ही स्वदेश लौट सकते हैं।

शिवाजी—मैं आपके उद्योग से बड़ा सन्तुष्ट हुआ। आपके समान मित्र कोई दूसरा नहीं है। परन्तु यदि फसील कूदते समय किसी ने देख लिया तो भागना कठिन होगा, फिर तो औरंगजेब के हाथ से मारा जाना निश्चित है।

सीतापति—जहाँ लोहशलाकायें हैं, वहीं आपके दस सिपाहियों का पहरा है। जो कोई आपको रोके टोकेगा, वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होगा।

शिवाजी—यदि नौका चलने पर तीरस्थ कोई प्रहरी सन्देहवश नौका को रोक दे तो ?

सीतापति—आठों मल्लाह आपके ही छद्मवेशी योद्धा हैं। उनका शरीर वर्माच्छादित है। वे सभी तरह से सुसज्जित हैं। भला किसके मुंह में बत्तीस दांत हैं जो नौका रोक दे।[2]

यह संवाद 'शिवराजविजय' में इस प्रकार है—

राघवस्वामी—यद्यपि नगरस्यास्य परित उच्चा भित्तिरस्ति, तथाऽपि पूर्वत एकत्र महान् सशंकुग्रन्थिवंश एकः स्थापितोऽस्ति, तदवलम्ब्य कुड्योल्लंघनमनायाससिद्धं महाराष्ट्रवीराणाम्। परतश्च शृंखलैका संलम्बते, तदालम्ब्य त्रुटिमात्रेण भूमिं स्प्रक्ष्यति। तत्र वृक्षच्छायायां निलीन एकोऽश्वः। तेन क्षणेन किंचिद् गत्वैव द्रक्ष्यते यत् कलिन्दतनयायामेकाल्पीयसी नौकास्ति, तस्यां क्षेपणीहस्ता दश वाहकाः प्रभुमपेक्षन्ते। ते च त्वरया मथुरां प्रापयिष्यन्ति। ततस्तु येन केनापि पथा सुखेन

१. शिवराजविजय' पृ० १९०-९१।
२. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १९५-१९६।

भवान् महाराष्ट्रदेशं प्रयास्यति इति ।

महा०—अत्यन्तं प्रशंसामि भवदुद्योगम्, किन्तु मन्यतां यदि कश्चन मार्गे प्रहरिषु परिचिनुयात् ?

राघ०—एतस्मिन् पथि पंचषा आस्माकीना महाराष्ट्रा एवं कलितयवनवेषा प्रहरितां प्राप्ताः सन्ति । ते च श्रीमतः शुभं चिन्तयन्ति ।

महा०—अथ कोऽपि प्राचीरोल्लंघनसमये परिचिनुयात् ? अन्तरायं च विदध्यात् ?

राघ०—महाराज ! तस्मिन्नेव स्थानेऽन्धकारे द्वादश महाराष्ट्रभटाः खड्गहस्ताश्छद्मवेषिणोऽन्धतमसाच्छन्नाश्च सन्ति । यदि कश्चिद् विघ्नमाचरेत्, तस्य ध्रुवं मरणम् ।

महा०—नौकारोहणसमये चेदापत्तिः ?

राघ०—वाहकाः अपि योद्धारः शस्त्रपूर्णा च नौका । यमुनातटेऽपि कपटभिक्षुकाः भावत्काः सजृम्भारम्भं स्वापमिवानुकुर्वन्ति ।[1]

इसी प्रकार से शाइस्ताखां के दरबार के संवाद और अन्य अनेक संवादों पर 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' का प्रभाव 'शिवराजविजय' में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है ।

देशकाल की योजना में व्यास जी ने यद्यपि अपनी ही कल्पनाओं को मूर्त रूप दिया, तथापि 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' के भी अनेक अंश उनमें ग्रथित हैं । इसका मुख्य कारण घटनाओं की समानता है । शाइस्ताखां की मन्त्रणा का समय दोनों उपन्यासों में दिया जलने के पश्चात् का है तथा उस समय वाटिका की सुगन्ध से युक्त वायु बह रही है ।[2] दोनों उपन्यासों में शिवाजी रात के समय पूना की गलियों में घूमते हैं, रात में शाइस्ताखां के महल पर आक्रमण करते हैं और रात के समय रुद्रमण्डलदुर्ग को विजय करते हैं । शिवाजी १६६६ के वसन्त ऋतु में देहली[3]

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४४०-४४१ ।

२. (क) चारों ओर उज्ज्वल दीपावली जल रही है । जंगलों के भीतर से वाटिका की सुगन्ध में सनी हुई मन्द मन्द वायु चल रही है । 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० २६ ।

(ख) परितो दीपामाला चकास्ति । पुष्पवाटिकाभ्यश्च प्रस्फुटदतिमुक्तकुसुमसौरभमादाय धीरः समीरः प्रवहति । 'शिवराजविजय' पृ० १४४ ।

३. (क) १६६६ के वसन्तकाल में शिवाजी........दिल्ली के पास पहुँच गये । 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० १७४ ।

(ख) अंगतुरसेन्दुमितवैक्रमाब्दस्य वसन्तारम्भे दिल्लीनिकटं प्रापुः । 'शिवराजविजय' पृ० ४ २ ।

पहुँचते हैं। इस स्थल पर भिन्नता भी है। वह यह है कि 'शिवराजविजय' में यह समय १६६६ विक्रमी है और 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में १६६६ ई० है। शिवाजी के दिल्ली से निकलने में सम्पूर्ण योजना के स्थान और समय प्रायः एक से ही हैं। घटनाओं की इस देशकाल विषयक समानताओं के अतिरिक्त कहीं कहीं कुछ प्रकृति-वर्णन और स्थान वर्णनों में सादृश्य है। 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' में आंधी पानी का निम्न वर्णन है—

थोड़े ही समय बाद वायु का वेग बढ़ गया। आकाश के एक ओर से दूसरी ओर तक विद्युत्-लता कौंधने लगी। मेघों के गर्जन से पर्वतसमूह गरजने लगे। हठात् वायु का वेग प्रचंड हो उठा और ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों पर्वतसमूह उखड़ जायेंगे। वायु के चलने के कारण पर्वत से जंगलों में भयानक शब्द होने लगे। ·········क्षण क्षण में बिजली के चमकने से बहुत दूर तक स्वाभाविक घोर विप्लव दिखाई देने लगा और बीच बीच में बादलों का गर्जन जगत को कम्पित करने और खलबलाने लगा।[1]

इस वर्णन का शिवराजविजय पर इस प्रकार प्रभाव पड़ा है—

तावदकस्माद् उत्थितो महान् झञ्झावातः। ······तावदारब्धश्चंचच्चंलचामी-कररेखाकाराभिश्चंचलाभिरपि स्वचमत्कारः। यावदेकस्यां दिशि नयने विक्षिपन्ती, चपला चमत्करोति, तावदन्यस्यामपि ज्वालाजालेनेव बलाहकानावृणोति। स्फुरणोत्तरं स्फुरणं गर्जनोत्तरं गर्जनमिति परःशतशतघ्नीप्रचारजन्येनेव कन्दरिकन्दरप्रतिध्वनिभि-श्चतुर्गुणितेन महाशब्देन पर्यपूर्यत सा अरण्यानी।[2]

रुद्रमण्डल दुर्ग की अवस्थिति दोनों उपन्यासों में प्रायः समान ही है—

उसके बीच एक उच्च शृंग पर रुद्रमण्डलदुर्ग बना हुआ है। सीधी ऊपर की चढ़ाई है।······ रास्ता तो है ही नहीं, केवल जंगल और शिलाओं से दुर्ग वेष्टित है। शिवाजी ने इसी मार्ग से चलने की आज्ञा दी। जैसे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर बन्दर चढ़ते हैं, उसी भांति उस पर्वत पर शिवाजी की सेना चढ़ने लगी। कहीं रुक कर, किसी स्थान पर खड़े होकर, कहीं पेड़ों की डालियां पकड़ कर और किसी स्थान पर कूद कर सेना आगे बढ़ने लगी।[3]

आसीदासन्नमेव विजयपुराधीशस्य गिरिशिखरस्थमेकं रुद्रमण्डलाभिधानं महद् दुर्गम्। महानेष उच्चागिरिः, अन्धतमसं व्याप्तम्, अविदितचराः पन्थाः, तथापि

१. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० ८।
२. 'शिवराजविजय' पृ० १०६-११०।
३. 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' पृ० ११२।

पुस्तकालय
परिग्रहण सं० 11713
दि०........
नई दिल्ली

क्वचिदुत्प्लुत्य क्वचिच्छाखा अवलम्ब्य, क्वचिदुपविश्य, क्वचिन्निर्झरजलान्तः प्रविश्य, क्वचिल्लताजालान्यपसार्य, क्वचिद् विद्धान् कण्टकानपनीय कथंकथमपि दुर्गस्य नेदीयस्यामधित्यकायामायातः ।[1]

इस प्रकार प्रकृति वर्णन की समानतायें दोनों उपन्यासों में कुछ स्थलों पर हैं। परन्तु 'शिवराजविजय' में स्थान, प्रकृति और ऋतु आदि के वर्णनों में आधुनिक उपन्यास परम्परा की अपेक्षा प्राचीन संस्कृत काव्य परम्परा का प्रभाव अधिक है। देश-काल योजना पर 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' के प्रभाव का कारण कथानक के अंशों में समानता है।

इससे स्पष्ट है कि 'शिवराजविजय' में शिवाजी विषयक ऐतिहासिक घटनाओं के साथ ही कल्पनाओं के गुम्फन द्वारा एक विशेष ऐतिहासिक रस निष्पन्न हुआ है। व्यास जी ने स्वकीय कल्पनाओं के साथ पूर्ववर्ती बंगला उपन्यासकारों की कल्पनाओं को स्वीकार किया।

———

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३६३।

चतुर्थ अध्याय

शिवराजविजय(३)

चरित्र–चित्रण

कथा यदि उपन्यास का शरीर है तो चरित्र-चित्रण उपन्यास का प्राण है। कवि कल्पना के अनुसार पात्रों का स्वरूप कथा में प्रस्तुत करता है। कथावस्तु के सरल, स्वाभाविक और उत्कृष्ट होने पर भी जब तक कलाकार पात्रों की महत्ता से पाठकों को प्रभावित नहीं करता, तब तक कथा श्रेष्ठ नहीं कही जा सकती। कलाकार का अमर पात्र उसके अमरतत्व का द्योतक होता है।

१. पात्र और चरित्र-चित्रण

संस्कृत काव्यसमीक्षा के अनुसार काव्य के तीन अंग होते हैं—वस्तु, नेता और रस।[1] इस विभाजन में नेता शब्द का प्रयोग मुख्यत: कथा के नायक के लिये होने पर भी सभी पात्रों का सन्निवेश इसके अन्तर्गत समझना चाहिये। इसलिये चरित्रों की विवेचना में नायक और उसके सहायक, प्रतिनायक और उसके सहायक, नायिका और उसकी सहायिकायें आदि सभी पात्रों के चरित्रों का आलोचन यहां किया जा रहा है।

पात्र—कथा के पात्र कवि की अपनी ही रचनायें होते हैं। प्राचीन कथाओं में जब कि दिव्यता का समावेश बहुत अधिक था, कथाओं के पात्र केवल इस भूतल के न होकर मानवोत्तर भी होते थे। उनके सम्बन्ध में कवि अनेक सम्भव और असम्भव कल्पनायें करने में स्वतन्त्र था। वर्तमान यथार्थवादी युग में वह इतना स्वतन्त्र नहीं है। कथाओं के पात्र जो इसी भूतल के निवासी हैं, तभी सजीव और स्वाभाविक हो सकते हैं, जब पाठक उनके साथ साधारणीकरण का अनुभव कर सके, और उनसे प्रेम, सहानुभूति या घृणा कर सके।[2] अलौलिक और निर्जीव पात्रों के साथ पाठक का पूर्ण साधारणीकरण सम्भव नहीं।

पात्र दो प्रकार के होते हैं। प्रथम, जो किसी विशिष्ट वर्ग या श्रेणी का प्रतिनिधित्व करते हों। इनको प्रतिनिधि-पात्र कहा जाता है। कुछ पात्र व्यक्तित्व-प्रधान होते हैं, जो केवल अपना ही प्रतिनिधित्व करते हैं। इनको व्यक्तिगत-पात्र

१. वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः। 'दशरूपक' १. ११।

२. डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १४५।

कहा जाता है।

चरित्र—पात्रों का चरित्र दो प्रकार का हो सकता है—बाह्य और आन्तरिक। बाह्य चरित्र में पात्रों की वेष-भूषा, आकार-प्रकार, आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-ढाल और कार्यकलापों का वर्णन किया जाता है। आन्तरिक चरित्र में उनके आन्तरिक गुणों की व्यंजना की जाती है। मानव के व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष उसके बाह्यरूप में छिपा रहता है। कथाकार अपने वर्णन-कौशल से उस पक्ष के चित्र को उपस्थित करके पाठकों के सम्मुख प्रकाशित करता है। कथानक के पात्रों की कार्यशक्ति की एक निश्चित सीमा होती है। कथाकार पात्रों के चरित्र में उन सीमाओं का अवश्य ध्यान रखता है, जिससे उनके कार्य सीमाओं का उल्लंघन नहीं करते।

चित्रणविधि—पात्रों का चरित्र कवि मुख्यतः दो प्रकार से प्रस्तुत कर सकता है—प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक प्रणाली से अथवा अप्रत्यक्ष या अभिनयात्मक प्रणाली से। प्रथम प्रणाली के अनुसार लेखक स्वयं वर्णन द्वारा पात्रों का चरित्र-चित्रण करता है और उनके गुण दोषों के सम्बन्ध में अपना अभिमत प्रकट करता है। द्वितीय प्रणाली में कवि पात्रों के विषय में स्वयं कुछ नहीं कहता, किन्तु पात्रों की स्वयं अपनी ही क्रियाओं से अथवा दूसरे पात्रों द्वारा टीका-टिप्पणी करा कर उनका चित्र उपस्थित करता है। मुख्य कथा के साथ की प्रासंगिक कथायें भी पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति कर सकती हैं।

आदर्श और यथार्थता—संस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुसार नायक आदर्श और सर्वगुणसम्पन्न होना चाहिये। यदि कथा के नायक का कोई अनुचित या विरुद्ध आचरण है, तो उसका या तो परित्याग कर देना चाहिये या उसकी दूसरे प्रकार से कल्पना करनी चाहिये।[1] केवल इतना ही नहीं, यदि कथा के प्रसंग में कोई स्थिति गुण के अनुरूप न हो तो उसका परित्याग करके रसोचित कथा की कल्पना करनी चाहिये।[2] भाव यह है कि संस्कृत काव्य-शास्त्र में यथार्थ-चित्रण की अपेक्षा आदर्श का अधिक महत्व है। वर्तमान युग में यथार्थवाद को अधिक महत्व दिया गया है, परन्तु यह यथार्थता काव्य के रूप को विकृत कर देने वाली अथवा समाज पर कुत्सित प्रभाव डालने वाली नहीं होनी चाहिये।

२. ऐतिहासिक काव्यों में चरित्र-चित्रण

ऐतिहासिक गद्य-काव्य की कथा में जिस प्रकार इतिहास और कल्पना का

---

१. यत्स्यादनुचितं वस्तु नायकस्य रसस्य वा।
विरुद्धं तत्परित्याज्यमन्यथा वा प्रकल्पयेत्॥ 'साहित्यदर्पण' ६.५०।

२. इतिवृत्तवशायातां त्यक्त्वाननुगुणां स्थितिम्।
उत्प्रेक्ष्याप्यन्तराभीष्टरसोचितकथोन्नयः॥ 'ध्वन्यालोक तृतीय उद्योत' पृ० ३२६।

मिश्रण है, उसी प्रकार पात्र भी ऐतिहासिक और काल्पनिक होते हैं। कवि ऐतिहासिक पात्रों के ऐतिहासिक रूपों के अतिरिक्त अन्य रूपों को भी उपस्थित करता है। वस्तुतः विशुद्ध ऐतिहासिक पात्र इतिहास के कठपुतले मात्र होते हैं। उनमें जीवन का स्पन्दन नहीं होता, मृत्यु की जड़ता होती है। कथाकार इन पात्रों में जीवन का स्पन्दन भरता है। वह ऐतिहासिक पात्रों के ऐतिहासिक रूपों को सुरक्षित रखते हुये, उनका एक अन्य रूप भी प्रस्तुत करना है, जो इतिहास का नहीं, अपितु वास्तविक जीवन का सत्य होता है। इतिहास द्वारा हमें शिवाजी के जीवन की अफजलखां-विजय, शाहस्ताखां पर आक्रमण, दिल्ली-यात्रा आदि घटनाओं का तो बोध होता है, किन्तु उनके वैयक्तिक प्रेम आदि अन्तर्भावनाओं का मार्मिक चित्रण कवि ही कर सकता है। कवि ही कह सकता है कि शिवाजी की कैद में रहते हुये रोशनआरा ने उनसे प्रेम किया और उनके देहली-प्रवास में अपना प्रेम संदेश भेजा। परन्तु इस प्रकार ऐतिहासिक पात्रों के काल्पनिक रूप को प्रस्तुत करते हुये कवि को औचित्य की रक्षा अवश्य करनी चाहिये।

३. शिवराजविजय में चरित्र-चित्रण की विशेषतायें

कथा-वस्तु के संगठन के सदृश 'शिवराजविजय' का चरित्र-चित्रण भी प्रभावशाली है। इसके पात्र सरल, स्वाभाविक, गतिशील तथा संवेदनशील हैं और इसी लोक के वासी हैं। उन पात्रों के साथ पाठक साधारणीकरण का अनुभव करते हुये शिक्षा और आनन्द प्राप्त करते हैं। 'शिवराजविजय' के ऐतिहासिक होने के कारण इसमें ऐतिहासिक और काल्पनिक दोनों प्रकार के पात्र हैं। ऐतिहासिक पात्र केवल इतिहास के कठपुतले ही नहीं हैं, इनमें प्राणों का स्पन्दन भी है। इनके केवल राजनीतिक और अधिक से अधिक धार्मिक और सामाजिक पक्षों को ही उपस्थित नहीं किया गया, अपितु उनकी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक भावनायें भी अभिव्यंजित की गई हैं। शिवाजी की मुसलमानों से युद्ध करने की क्या मूल भावना थी, यशवन्तसिंह और जयसिंह किन भावनाओं के साथ शिवाजी के विरुद्ध युद्ध करने के लिये गये, रोशनआरा शिवाजी पर किस प्रकार मुग्ध हुई आदि आन्तरिक भावनाओं को अभिव्यक्त करके कवि ने इन पात्रों में प्राणों का स्पन्दन सम्भृत किया है। इस चित्रण को प्रस्तुत करते हुये भी कवि ने ऐतिहासिक पात्रों के ऐतिहासिक रूप को विकृत नहीं किया।

व्यास जी ने पात्रों के आन्तरिक और बाह्य दोनों चित्र उपस्थित किये हैं। चरित्र-चित्रण करते हुये कभी तो आप बहुत थोड़े शब्दों में पात्र की पूरी विशेषताओं को अभिव्यक्त कर देते हैं और कहीं विशेषणों की लम्बी पंक्ति से भी आपका मन नहीं भरता। भयंकर आंधी और वर्षा के बीच तोरण दुर्ग की ओर जाते हुये

रघुवीरसिंह के लिये "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम् इति कृतप्रतिज्ञोऽसौ शिववीरचरो न निजकार्यान्निवर्तते"[१] कह कर रघुवीर के साथ शिवाजी की भी स्वकार्यसाधनतत्परता व्यास जी ने व्यंजित की है, किन्तु शिवाजी के बाह्य-स्वरूप को प्रदर्शित करने के लिये आपने विशेषण पर विशेषण दिये हैं।[२]

व्यास जी ने जिन पात्रों से जिन कार्यों को कराया है, वे पात्र उन कार्यों को करने की क्षमता रखते हुये अपनी शक्ति की सीमाओं का उल्लंघन नहीं करते। आपके पात्र प्राय: प्रतिनिधि-पात्र हैं और वर्ग-विशेषों का प्रतिनिधित्व करते हैं। शिवाजी उस युग के स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने वाले हिन्दुओं की, शिवाजी के सहयोगी स्वामी और देश के लिये बलिदान देने को आतुर राजपूत वीरों की, यशवन्तसिंह और जयसिंह मुसलमानों की सहायता करने वाले हिन्दू राजाओं की तथा अफजलखाँ और शाइस्ताखाँ हिन्दुओं का उत्पीडन करने वाले मुसलमान सरदारों की मनोवृत्तियों का परिचय देते हैं। यद्यपि इन पात्रों में अपनी व्यक्तिगत विशेषतायें भी हैं — गौरसिंह बहुत सुन्दर है, उत्तम गायक हैं, रूप परिवर्तन करने में कुशल है, तथा ये विशेषतायें उसके वर्ग के अन्य व्यक्तियों में नहीं है, तो भी शूरत्व, वीरत्व, स्वामिभक्ति, देशाभिमान, धर्मानुराग आदि गुणों द्वारा वह वर्ग-विशेष का प्रतिनिधित्व करता है।

व्यास जी ने चरित्र-चित्रण में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों विधियों का आश्रय लिया। एक ओर आपने रघुवीरसिंह (रामसिंह) के सौन्दर्य का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण किया[३], दूसरी ओर उसकी चरित्रगत विशेषताओं को उसके साहसिक कार्यों[४] और काव्य के अन्य पात्रों द्वारा अभिव्यक्त किया[५]।

काव्य के उद्देश्य और रसाभिव्यक्ति की दृष्टि से पात्रों का चरित्र कथानक के अनुरूप है। जिस कार्य के लिये जिस पात्र को नियुक्त किया गया है, वह पात्र उस कार्य को दृढ़ता और निष्ठा के साथ पूरा करता है। देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिये संकल्प करने वाले शिवाजी अपनी वीरता, चातुर्य और साहस से महाराष्ट्र को स्वतन्त्र कर लेते हैं, गौरसिंह और रघुवीरसिंह पूरी निष्ठा के साथ उनके उद्देश्य में सहायक होते हैं। विपक्षी भी अपने अभिनय को पूरी तरह से निबाहते हैं। औचित्य और अनौचित्य का ध्यान रखते हुये कथावस्तु और पात्रों के

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ११०।
२. ,, ,, ४२-४४।
३. ,, ,, ५४१-५४२।
४. ,, ,, १०८, ११४-११५ और ४३७।
५. ,, ,, ५३८।

उचित समन्वय से यह काव्य संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

४. शिवराजविजय के पात्रों का वर्गीकरण

'शिवराजविजय' में पात्रों की संख्या प्रचुर है। इन पात्रों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है — कथानक में दो प्रकार के पात्र हैं—

(क) ऐतिहासिक पात्र — जैसे शिवाजी, औरंगजेब, जयसिंह आदि।

(ख) काल्पनिक पात्र — जैसे गौरसिंह, रघुवीरसिंह आदि।

क— ऐतिहासिक पात्र दो प्रकार के हैं—

(अ) शिवाजी के पक्ष के ऐतिहासिक पात्र जैसे — शिवाजी, माल्यश्रीक आदि।

(ब) शिवाजी के विपक्षी ऐतिहासिक पात्र जैसे — जयसिंह, औरंगजेब आदि।

ऐतिहासिक पात्रों को पुनः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) वे ऐतिहासिक पात्र जिनका व्यक्तित्व इतिहास के अनुकूल है, जैसे— शिवाजी, जयसिंह, औरंगजेब आदि।

(२) वे ऐतिहासिक पात्र जिनका कवि ने काल्पनिक चरित उपस्थित किया है, जैसे रोशनआरा और मुअज्जम।

ख— काल्पनिक पात्र भी दो प्रकार के हैं—

(अ) शिवाजी के पक्ष के पात्र जैसे — गौरसिंह, रघुवीरसिंह आदि।

(ब) शिवाजी के विपक्षी पात्र जैसे — चांदखां, रहमतखां आदि।

पात्रों के चरित्र का विवेचन निम्न क्रम से किया जा रहा है—

(अ) शिवाजी का चरित्र

(ब) शिवाजी के सहायकों का चरित्र

(स) शिवाजी के विपक्षियों का चरित्र।

(द) नारी-चरित्र

(इ) अन्य चरित्र

५. शिवाजी का चरित्र

शिवाजी इस गद्य-काव्य के नायक हैं, जो भारत में यवनों के अत्याचार तथा राज्य-प्रसार को रोकने एवं धर्म की रक्षा के लिये कृत-संकल्प हैं। वे भारतवर्ष की आशा हैं।[1] संस्कृत काव्यशास्त्र में कहे गये नायक के गुणों[2] से वे विभूषित हैं।

१. 'शिवराजविजय' पृ० २४।

२. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षो प्रियंवदः। रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः। शूरो दृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।
'दशरूपक' २.१-२।

शिवाजी विनीत हैं— स्त्रियों[1] ब्राह्मणों[2] और आदरणीय व्यक्तियों के प्रति सदा विनय प्रकट करते हैं। उनका स्वभाव बहुत मधुर है— शत्रु भी उनके मधुर व्यवहार की प्रशंसा करते हैं।[3] औरगंजेब की पुत्री और पुत्र को भी अपने आधीन करके, वे उनसे कठोर या अनुचित व्यवहार नहीं करते। शिवाजी त्यागी और दानी हैं,— भूषण की कविता से प्रसन्न होकर २० हाथी देते हैं[4], देवशर्मा को १००० सोने की दीनारें देते हैं[5] तथा राज्यसिंहासन पर बैठ कर तुलादान करते हैं।[6] अपने सेवकों को पारितोषिक देने में उन्हें प्रसन्नता होती है। रघुवीर की वीरता से प्रसन्न होकर उसे सौ अश्वारोहियों का नायक बनाते हैं, और पुनः मण्डलेश्वर पद प्रदान करते हैं। वे दक्ष हैं— हर तरह से अपना प्रयोजन सिद्ध करने का उद्योग करते हैं। गोपीनाथ पण्डित को मनाने में, अफजलखां का वध करने में, शाइस्ताखां पर आक्रमण करने में और दिल्ली से निकल आने में आपकी दक्षता व्यंजित होती है। वे प्रिय भाषी हैं— उनके प्रिय कथनों से व्यक्ति वशीभूत हो जाता है।[7] प्रजायें उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यार करती है।[8] उनका अनिष्ट होने पर दक्षिण में दावानल भड़क सकता है। केवल हिन्दू प्रजा ही नहीं यवन भी उनके राज्य में सुख से रहते हैं।[9] उनका राज्य प्रजा के अन्तःकरण में है। उनके साथी अपने प्राणों की अपेक्षा न करके उनका हितचिन्तन करते हैं। उनका आचरण अत्यन्त पवित्र है। अपने हाथ में आई हुई, अपने प्रति अनुरक्त हुई और प्रणय-भिक्षा मांगती हुई रोशनआरा की ओर आप वासना की दृष्टि से न देख कर उसे सुरक्षित औरंगजेब के पास भिजवा देते हैं। शिवाजी की वाणी में बहुत शक्ति है। इस के प्रभाव से गोपीनाथ आपके कार्य के लिये तत्पर हो जाते हैं और यशवन्तसिंह कार्य में बाधा न डालने का वचन देते हैं। वे उत्तम कुल में उत्पन्न हुये हैं और अपने कार्यसाधन में शिथिल नहीं होते।

शिवाजी की बुद्धि तीक्ष्ण है— विपत्ति में कोई न कोई रक्षा का उपाय आपको सूझ जाता है। चांदखां के मारे जाने पर आप तुरन्त सोच लेते हैं कि

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २५९।
२. ,, ,, ६७, ३३८।
३. ,, ,, ३३५।
४. ,, ,, १४३।
५. ,, ,, ५१९।
६. ,, ,, ५५९।
७. ,, ,, ४४।
८. ,, ,, ४३८।
९. ,, ,, २७२।

दरबार में अपमानित होने के कारण दो चार दिन तक उसे कोई नहीं पूछेगा। उनका उत्साह शाइस्ताखां पर रात्रि-अभियान में, रुद्रमण्डल दुर्ग पर आक्रमण करने में और दिल्ली से निकल जाने में प्रकट हुआ है। यद्यपि वे पढ़े लिखे नहीं है,[1] तथापि उनकी स्मरण शक्ति तीव्र है। अपने प्रति किये गये उपकारों को वे नहीं भूलते। यथासमय उनकी विलक्षण प्रज्ञा प्रकट होती है। देहली में कैद कर लिये जाने पर विलक्षण योजना बना कर निकल जाने में वे सफल होते हैं। वे कला-पारखी हैं— भूषण की कविता का आदर करते हैं।

उनका मान अपने देश में तो है ही, राजपूताने में भी उनके गीत गाये जाते हैं,[2] दिल्ली की जनता उनके शौर्य से परिचित है।[3] वे शूर हैं— अकेले ही अफजलखां का वध करते हैं और सिंह को अकेले ही छुरी से मार देते हैं।[4] उनका नाम सुन कर ही यवन रमणियों के गर्भ गिर जाते हैं।[5]

शिवाजी में चरित्र और मन दोनों की दृढ़ता है। वे तेजस्वी हैं— औरंगजेब भी उनके तेज को सहन न कर सकने के कारण उन्हें राजदरबार में बुलाने से डरता है और निवासस्थान पर ही उनको कैद कर देता है। शास्त्रों के प्रति उन्हें श्रद्धा है— विद्वान् पण्डितों का वे आदर करते हैं और वेदादि शास्त्रों को नष्ट करने वाले यवनों को कोप की दृष्टि से देखते हैं। वे धार्मिक हैं— संध्यावन्दनादि नित्यकर्म करके अपना दैनिक कार्य सम्पन्न करते हैं,[6] यवनों के हाथ की स्पर्श की हुई वस्तु ग्रहण नहीं करते।[7] कन्या के पिता की अनुमति प्राप्त किये बिना कन्या के साथ विवाह को वे अनुचित समझते हैं[8] और किसी युवती का एकान्त स्थान में घूमना आपत्ति-जनक मानते हैं।[9]

शिवाजी धीरोदात्त नायक की श्रेणी में रखे जा सकते हैं।[10] वे अत्यधिक शक्तिसम्पन्न हैं— अफजलखां जैसे विशालकाय पुरुष को कटि से ऊपर उठा कर

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ २८५।
२. ,, पृष्ठ ३५२।
३. ,, ,, ४२४।
४. ,, ,, ४०८।
५. ,, ,, ४०७।
६. ,, ,, ५१४।
७. ,, ,, ४६७, ४६८।
८. ,, ,, ३३३।
९. ,, ,, ३२२।
१०. महासत्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः॥ 'दशरूपक' २. ४-५।

पटक देते हैं और उनके एक ही प्रहार से चाँदखां की असि तथा कन्धरा के दो टुकड़े हो जाते हैं। साहसी इतने हैं, कि शाइस्ताखां के दरबार में, यशवन्तसिंह के शिविर में और जयसिंह के सेनासन्निवेश में अकेले ही चले आते हैं। मनोबल से सम्पन्न उनका स्वभाव अत्यन्त गम्भीर है—चंचल प्रकृति वाली रोशनआरा की भावनाओं का सम्मान करते हुये भी स्वयं उच्छृङ्खल नहीं हो जाते, अपितु उसे अनेक प्रकार से समझा कर सम्मान के साथ पिता के घर भेज देते हैं। सहनशील और क्षमा से युक्त वे रहमतखां की वीरता के कारण उसे मरने नहीं देते, क्षमा कर देते हैं।[1] उनके अन्दर आत्मश्लाघा की प्रवृत्ति नहीं है। वे अपने साथियों के वीरता-पूर्ण कार्यों का आदर करते हैं।

शिवाजी जिस कार्य के करने का निश्चय कर लेते हैं, उसे पूरा करने के लिये तत्पर रहते हैं। विपत्तियां पड़ने पर भी देश और धर्म की रक्षा के व्रत पर दृढ़ रहते हैं। यद्यपि वे आत्मश्लाघा नहीं करते, तथापि उनका देशाभिमान और आत्माभिमान अवसर उपस्थित होने पर प्रकट हो जाता है। जयसिंह द्वारा राजपूत वीरों की प्रशंसा करने और मराठों के छल की निन्दा करने पर आपका स्वदेशाभिमान व्यक्त होता है। वे महाराष्ट्रों की वीरता और राजपूतों की मुगल-सेवा-जनित-हीनता को तुरन्त प्रकट कर देते हैं।[2]

व्यास जी ने शिवाजी के बाह्यरूप का भी उत्तम चित्रण किया है। वे छोटे कद, श्यामवर्ण, दृढशरीर, विशालमस्तक, दाढ़ीमूंछ से युक्त, लम्बी भुजाओं वाले, सूक्ष्मदर्शी पुरुष हैं।[3] बहुमूल्य वस्त्राभूषणों को धारण करके कमनीय प्रतीत होते हुये[4] भी वे राजनीति में निष्णात, घुड़सवारी में निपुण, तलवार चलाने में पटु, मल्लविद्या के मर्मज्ञ, बाण चलाने में चतुर, पण्डितों का सत्कार करने वाले, वीर, वीरों को पहचानने वाले, दीनों के दुःखों को दूर करने वाले, धर्म की रक्षा करने वाले, और अत्यन्त बुद्धिमान हैं।[5] रत्नजटित उष्णीष, सुवर्णखचित कंचुक और रेशमी दुपट्टा डाले, कटि में हीरकजटित चन्द्रहास लटकाये और गले में बहुमूल्य माला को धारण किये उनकी सुन्दर आकृति को देख कर रोशनआरा उन पर मुग्ध हो जाती है।

शिवाजी की राजनीति राजपूतों की राजनीति नहीं है कि अपनी प्रतिज्ञा के

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३६८।
२. ,, ,, ३४८-३४६।
३. ,, ,, ४३।
४. ,, ,, २६८।
५. ,, ,, ६४।
६. ,, ,, २७४।

पालन के लिये वे मुसलमानों की आधीनता स्वीकार किये रहें तथा अपनी ही धर्म-भूमि म्लेच्छों को समर्पित करते रहें, अपने धर्मस्थानों को तुड़वाते रहें और गौ और ब्राह्मणों का वध कराने में सहायक हों। वे तो बल से और छल से भी आततायियों को दण्ड देना परम पुण्य समझते हैं। यदि यवन पक्ष के व्यक्ति उनको चोर, डाकू या पहाड़ी चूहा कहते हैं,[1] तो वे उन्हें दिल्लीकलंक कहते हैं।[2]

शिवाजी योजना बनाने में अति निपुण हैं। अफजलखां के वध की, शाइस्ताखां पर आक्रमण की, रुद्रमण्डल दुर्ग को विजय करने की, दिल्ली से बच कर निकलने की उनकी कोई भी योजना विफल नहीं होती। वे स्वतंत्र महाराष्ट्र की स्थापना करने में सफल होते हैं।[3] शिवाजी को व्यक्ति की उत्तम पहिचान है। वे लोक-संग्रह करना जानते हैं और योग्य व्यक्ति का निर्वाचन करते हैं। उनके सभी सहकर्मी—गौरसिंह, रघुवीरसिंह, माल्यश्रीक, मुरेश्वर आदि उनके प्रति भक्ति रखने वाले हैं और कार्य को सिद्ध करने में समर्थ हैं। छोटे कर्मचारियों की भी उनको परख है। उनका द्वारपाल कर्तव्यपरायण है।[4] उनके चर "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयं" प्रतिज्ञा को धारण करते हैं।[5] स्वामी द्वारा तिरस्कृत होने पर भी रघुवीर शिवाजी की सेवा द्वारा ही अपने पर लगाये दोषों का निराकरण करता है। शिवाजी के साथियों के अन्दर केवल क्रूरसिंह ही ऐसा है, जो विश्वासघाती है।

शिवाजी की देश, जाति और धर्म के स्वातंत्र्य की भावना अत्यन्त प्रबल है। भारतवर्ष में हिन्दुओं के ऊपर किये जाने वाले मुसलमानों के अत्याचार से वे अत्यन्त दुःखी हैं और इसके प्रतिकार के लिये दृढ़प्रतिज्ञ हैं। उन्हें राज्य का लोभ नहीं है। उनका यही अभिप्राय है कि यवनों की प्रबलता से धर्म का लोप न हो।[6]

अनेक गुणों से युक्त होते हुये भी शिवाजी में मानव-सुलभ कुछ कमजोरियां भी हैं। जयसिंह की बुद्धि और शक्ति के सम्मुख उनकी सम्पूर्ण चातुरी तथा वाग्मिता व्यर्थ हो जाती है। जयसिंह शिवाजी की किसी भी युक्ति से प्रभावित नहीं होता। शिवाजी को जयसिंह की ही शर्तों पर सन्धि करने के लिये बाध्य होना पड़ता है। शिवाजी यद्यपि मनुष्य के स्वभाव को पहिचानने में कुशल हैं, तथापि वे क्रूरसिंह को नहीं पहिचान पाते। स्वभाव के अत्यन्त गम्भीर होने, प्रत्येक कार्य को सोच समझ

---

१. 'शिवराजविजिय' पृष्ठ २००।
२. ,, ,, २७१।
३. ,, ,, ५६०।
४. ,, ,, ४०।
५. ,, ,, ११०।
६. ,, ,, २००।

कर करने का स्वभाव होने पर भी वे रघुवीरसिंह पर देशद्रोहिता का आक्षेप सुन कर अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाते। उस समय रघुवीरसिंह की वीरता और स्वाभिभक्ति उन्हें विस्मृत हो जाती है। उसे मारने के लिये वे शक्ति उठा लेते हैं। इस भूल के लिये उन्हें बहुत अधिक मानसिक दुःख उठाना पड़ता है।

शिवाजी के चरित्र को प्रस्तुत करने में व्यास जी का लक्ष्य एक ऐसे पात्र को उपस्थित करना है, जो हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति और हिन्दू-राष्ट्र का रक्षक तथा निर्माता है। जन-जन में हिन्दू-गौरव के अभ्युत्थान का मन्त्र जगाना ही जिसका परम लक्ष्य है।

६. शिवाजी के सहायकों के चरित्र

इस गद्यकाव्य के कथानक में नायक के मुख्य सहायक रघुवीरसिंह तथा गौरसिंह हैं। उनके अतिरिक्त वीरेन्द्रसिंह, माल्यश्रीक, मुरेश्वर आदि भी शिवाजी के सहायक हैं। इनके चरित्रों का क्रमशः निरूपण किया जाता है—

रघुवीरसिंह—रघुवीरसिंह को इस कथानक में सहनायक का स्थान प्राप्त है। वह शिवाजी का मुख्य सहायक होने के साथ ही इस काव्य की मुख्य प्रेम गाथा का नायक भी है। यद्यपि शिवाजी के साथ भी एक प्रेम कथा निबद्ध है, तथापि न तो उसका परिपाक हुआ और नाहीं काव्य के रस तथा उद्देश्य की दृष्टि से उसका अधिक महत्व है। शृंगार रस के परिपोष की दृष्टि से रघुवीरसिंह और सौवर्णी का प्रेम रसदशा को प्राप्त हो सका है। अतः रघुवीरसिंह की स्थिति दो प्रकार की है। वह शिवाजी का सैनिक है और उनके उद्देश्य की पूर्ति में सहायक है तथा उपन्यास की प्रासंगिक कथा, प्रेम कथा का नायक है।

रघुवीरसिंह का वास्तविक नाम रामसिंह है। जयपुर के जागीरदार वीरेन्द्रसिंह का वह पुत्र है। महाराजा जयसिंह के रुष्ट हो जाने पर वीरेन्द्रसिंह पुत्र को साथ लिये हुए जहाज पर सवार होकर रामेश्वर की यात्रा पर चल पड़े। मार्ग में तूफान से जहाज के डूब जाने पर पिता और पुत्र अलग हो गये। पुरोहित गणेशशास्त्री रामसिंह को बचा कर महाराष्ट्र ले आये। रामसिंह रघुवीरसिंह के नाम से शिवाजी की सेवा में भरती हो गया।

सर्वप्रथम रघुवीरसिंह आंधी-पानी की उपेक्षा करता हुआ शिवाजी का पत्र लेकर प्रताप-दुर्ग की ओर आता हुआ दिखाई देता है। वह सुदृढ़ शरीर का १६ वर्ष का नवयुवक है।[१] उसके घुंघराले बाल, भीगती हुई मसें, अतिकोमल क़पोल, ऊंचा

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ १०८।

कंधा, लम्बी भुजायें, माधुर्यवर्षिणी नेत्र, विनययुक्त कन्धरा, तेजस्वी गौरवर्ण और ऊंचा मस्तक उसकी दृढ़ता की अपेक्षा कोमलता के अधिक अभिव्यंजक हैं।[1] तोरणदुर्ग का अध्यक्ष उसकी कार्यक्षमता के विषय में सन्देहशील है। किन्तु रघुवीर बालक होते हुए भी अबालहृदय है। दुर्गाध्यक्ष को उसकी शक्ति पर विश्वास करना ही होता है। अल्प आयु में ही शारीरिक विकास के साथ उसका मानसिक विकास भी हो गया है। वह परिश्रमी, साहसी, आपत्तियों को न गिनने वाला, संकल्प को सिद्ध करने वाला और स्वामी का विश्वास पात्र है।[2] अवस्था की वृद्धि के साथ-साथ उसकी स्वामिभक्ति और साहस भी बढ़ता जाता है। वह तोरण-दुर्ग के सफल दौत्य के पुरस्कार में पूना अभियान में जाने की स्वीकृति प्राप्त करता है[3] और वहां चान्दखां तथा शाइस्ताखां के पुत्रों के आक्रमण से शिवाजी की रक्षा करता है।[4] इस वीरता के फलस्वरूप उसे १०० अश्वारोहियों का नायकत्व प्राप्त होता है।[5] उसके साहस का अतिशय रुद्रमण्डल-दुर्ग के अभियान में व्यंजित हुआ है, जहां शस्त्रों की धाराओं के बीच वह गढ़ की दीवार पर सर्वप्रथम चढ़ कर अन्दर कूद जाता है और दुर्गाध्यक्ष रहमतखां को जीवित पकड़ लेता है। शिवाजी के आदेश पर केवल २०० सैनिकों को लेकर आती हुई दुर्ग-सेना को रोक कर वह विजय का मुख्य कारण बनता है।[6]

रुद्रमण्डल-दुर्ग की विजय का सर्वोच्च सम्मान प्राप्त होने पर भी विश्वास-घातकता के आरोप में उसे निर्वासित कर दिया जाता है। इस स्थल पर रघुवीरसिंह के चरित्र की महती उज्ज्वलता प्रकट होती है। वह क्रोधित होकर न तो शिवाजी का अपकार करने की इच्छा करता है और न दुःखित व निराश होकर आत्महत्या का प्रयत्न। वह शिवाजी की गुप्तरूप से सेवा करके अपने ऊपर लगाये गये आरोपों के निवारण का उद्योग करता है।[7] सन्यासी-वेष धारण करके शिवाजी को देहली जाने से रोकने का उसने यत्न किया।[8] सन्यासी-वेष में उसकी अद्भुत शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमता व्यक्त होती है। वह अप्रत्यक्ष रूप से शिवाजी के साथ रहता हुआ उनकी रक्षा करने में यत्नशील रहता है। औरंगजेब की गुप्त अभिसन्धियों को जान कर शिवाजी को कैद से निकालने के लिये वह यवनभिक्षु के वेष में उनके प्रासाद में

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ११४-११५।
२. ,, ,, ११०।
३. ,, ,, २४६।
४. ,, ,, २५८,२५६।
५. ,, ,, ३१५।
६. ,, ,, ३६५-३६८।
७. ,, ,, ३८५,३६५।
८. ,, ,, ४००-४०६।

पहुँच जाता है।[1] योजना के पूरा न हो सकने पर भी शिवाजी के निकलने की दूसरी योजना में वह सहायता करता है। अपने गुणों, उच्चकुल तथा साहसिक कार्यों द्वारा शिवाजी और सम्पूर्ण महाराष्ट्र से उसे भरपूर प्रेम और आदर प्राप्त होता है। शिवाजी द्वारा मण्डलेश्वर का पद दिये जाने के साथ ही जयसिंह भी उसे राजपद देते हैं।

वीर और साहसी होते हुये भी वह विनय-सम्पन्न है। अतुल कीर्ति और अधिकार प्राप्त करके भी उसमें अभिमान जागृत नहीं होता। देवशर्मा, गणेश शास्त्री और पिता वीरेन्द्रसिंह सभी के सम्मुख वह विनीत है। मण्डलेश्वर होने पर भी वह शिवाजी के चरणों की ही सेवा करना चाहता है।[2] उसके गुणों का वर्णन कवि ने शिवाजी द्वारा ही कराया—

वत्स रघुवीर ! स्मारं स्मारं तव परं पराक्रमम्, परां भक्तिम्, परं सौजन्यम्, परां स्वच्छताम्, परमुत्साहम्, परां वीरताम्, परं सौहार्दम्, परांच प्रतिज्ञताम्, महापरिणाहमिव सम्पद्यते मे हृदयम्। बहुवारमहं प्रत्यर्थिखड्गालीढप्रायो भवता रक्षितोऽस्मि, भवान् मां नारक्षिष्यत् चेच्छास्तिखानं नाजेष्यम्। भवानेव साहाय्यं न व्यधास्यच्चेद् यवनकारागारान्धकारकूपान्न निरयास्यम्। रुद्रमण्डलविजयस्य च भवानेव...... ।[3]

वीर, पराक्रमी, साहसी और स्वामिभक्त रघुवीर के चरित्र का दूसरा पक्ष भी है। वह कोमल-हृदय और स्निग्ध-प्रेमी है। हनुमान् के मन्दिर की वाटिका में सौवर्णी का गाना सुन कर और उसे देख कर वह उस पर मुग्ध हो जाता है।[4] परिस्थितियां दोनों को निकट ले आती हैं। किन्तु कर्तव्य के प्रति वह सावधान है।[5] उसका आचरण संयत है। अवसर मिलने पर भी वह सौवर्णी के अंगों का स्पर्श नहीं करता।[6]

तोरणदुर्ग की ओर जाने पर उसे सौवर्णी से मिलने के अवसर प्राप्त होते हैं। उससे दोनों का अनुराग दृढ़ हो जाता है।[7] अपनी क्षुद्र अवस्था तथा सौवर्णी के भाई गौरसिंह की उच्चपदस्थता का विचार करते हुये भी[8] उसका दृढ़ निश्चय

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४३७-४४२।
२. ,, ,, ५१७।
३. ,, ,, ५१६।
४. ,, ,, १२३।
५. ,, ,, १२६।
६. ,, ,, १३२।
७. ,, ,, २३४।
८. ,, ,, ३०४।

सौवर्णी के साथ विवाह करने का है ।[1] सौवर्णी के प्रेम में वह इतना डूबा हुआ है कि सिंहदुर्ग की ओर जाते हुये भी तोरणदुर्ग की ओर चला जाता है ।[2] क्रूरसिंह उसके प्रेम में विघ्न है। उसके कारण उसे शिवाजी से अपमानित भी होना पड़ता है, तो भी उसका प्रेम दृढ़ है । सौवर्णी उसे प्राणों से भी प्रिय है । सन्यासी का रूप रख कर वह सर्व प्रथम सौवर्णी को सान्त्वना देता है और क्रूरसिंह का वध करता है । सौवर्णी के सब समाचार उसे विदित रहते हैं ।[3] महाराष्ट्र लौटने पर वह सर्वप्रथम विरहपीड़िता सौवर्णी को अपने आगमन से आनन्दित करता है[4] और अन्त में अपनी दृढ़ निष्ठा से उसको पत्नी के रूप में प्राप्त करता है ।[5]

रघुवीरसिंह के रूप में व्यास जी ने एक दृढनिश्चयी, साहसी, कुलीन, स्वामिभक्त, वीर राजपूत को प्रस्तुत किया है ; जिसने अपनी उन्नति दृढ़ परिश्रम और साहस द्वारा की है । वह एक साधारण चर की स्थिति से मण्डलेश्वर-पद प्राप्त करता है । वीरता के साथ उसकी बुद्धि भी विलक्षण है, जिसका परिचय शिवाजी के देहली से निकलने के समय मिलता है । वह केवल पराक्रमी और साहसी ही नहीं, अपितु भावुक और स्निग्ध भी है । उसका प्रेम एकनिष्ठ है, जो बाधाओं से विचलित नहीं होता । इस काव्य में शिवाजी के पश्चात् रघुवीरसिंह का महत्व है ।

गौरसिंह— शिवाजी का दूसरा मुख्य सहकारी गौरसिंह, विप्रवटु के वेष[6] में आश्रम में निवास करता हुआ स्वतन्त्रता-संग्राम में मुख्य भाग लेता है । वह उदयपुर के जागीरदार खड्गसिंह का पुत्र है । शिकार खेलते हुये एक बार भाई सहित उसको यवन लुटेरों ने पकड़ लिया[7] । किन्तु उनको धोखा देकर वह निकल भागा । एक हनुमान् मन्दिर के अध्यक्ष की सहायता से वह महाराष्ट्र पहुँचा और शिवाजी की सेना में प्रविष्ट हुआ ।

गौरसिंह नाम से ही गौरसिंह नहीं, अपितु स्वरूप से भी गौरसिंह है । आकृति से सुन्दर, गौरवर्ण, सुन्दर ग्रीवा, आयत ललाट, मनोहर बाहु और बड़ी बड़ी आंखों

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ २३७ ।
२. ,, ,, ३०६ ।
३. ,, ,, ४४५ ।
४. ,, ,, ४६५ ।
५. ,, ,, ५४५ ।
६. ,, ,, ४ ।
७. ,, ,, ८६ ।

वाला लगभग १६ वर्ष की आयु का यह किशोर[1] गुरू-सेवा करने का और मुसलमानों के उत्पीडन से हिन्दुओं की रक्षा का व्रत धारण किये हुये हैं।[2]

गौरसिंह अनेक विद्याओं में निपुण, शूरवीर, साहसी तथा स्वामी का परम विश्वासपात्र है। उसमें इतनी शक्ति है कि वह अकेला ही अफजलखां द्वारा दास बनाये गये पांच ब्राह्मण पुत्रों को छुड़ा लाता है[3], यवनों के गुप्तचर का द्वन्द्व-युद्ध में वध करता है[4] और अफजलखां के भारी शरीर को भी बांस पर लटका कर उठा सकता है[5]। वेष-परिवर्तन करने की उसमें अद्भुत क्षमता है। सन्यासी का वेष धारण करके वह द्वारपाल की परीक्षा लेता है,[6] गायक का वेष धारण करके अफजलखां से भेद निकाल लाता है,[7] युवती वेश्या का रूप धारण करके मुअज्जम को उसको शिविर से पकड़ लाता है।[8] पहिले अनुचर का वेष धारण कर,[9] पुनः सन्यासी के वेष में शिवाजी को दिल्ली से निकाल लाने में सहायक होता है।[10] उसकी अनेक विद्याओं की निपुणता स्थान स्थान पर प्रकट होती है। वह फारसी भाषा का ज्ञाता है—यवन गुप्तचर के वस्त्रों से प्राप्त फारसी में लिखे पत्र को शिवाजी को सुनाता है।[11] संगीत के प्रभाव से वह अफजलखां को मोहित करता है[12] और मुअज्जम को वशीभूत करता है।[13] वह भारतवर्ष के भूगोल का ज्ञाता है और प्रत्येक प्रान्त की विशेषताओं से परिचित है[14]। योजना बनाने में भी वह चतुर है और उनकी पूर्ति के लिये शिवाजी की अनुमति की भी प्रतीक्षा नहीं करता। रोशनआरा और मुअज्जम को पकड़ने की उसकी योजनायें अद्भुत हैं।

मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के उत्पीड़न के कारण उसकी मुस्लिम-विरोधी

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५।
२. ,, ,, २५।
३. ,, ,, २५।
४. ,, ,, २६।
५. ,, ,, ७४।
६. ,, ,, ३७।
७. ,, ,, ४६।
८. ,, ,, २७७।
९. ,, ,, ४६४।
१०. ,, ,, ४७९।
११. ,, ,, ४६।
१२. ,, ,, ६३।
१३. ,, ,, २८०।
१४. ,, ,, ५८-५९।

भावनायें प्रबल हैं। वह समझता है कि ये दुष्ट म्लेच्छ, दुराचारी, स्वच्छन्द, उच्छृंखल और शील से रहित होते हैं।[१] बलात्कार में प्रवृत्त यवनों के उच्छेद के लिए वह सदा तत्पर रहता है।[२] यवन युवक द्वारा सौवर्णी के हरण करने के कारण वह औरंगजेब को भी परवधू या कन्या के हरण के दुःख का अनुभव करा देना चाहता है।[३]

शिवाजी के प्रति उसकी असामान्य भक्ति है और उनके कार्यों के लिए वह सदा तत्पर रहता है। शिवाजी के पूना आने, यशवन्तसिंह से मिलने और देहली पहुँचने पर वह पास रह कर उनकी सहायता करता है। शिवाजी के प्रति उसकी भक्ति उसके और अफजल खां के संवाद से प्रकट होती है।[४] अपने पराक्रम और योग्यता के कारण वह शिवाजी से परम आदर और मण्डलेश्वर का पद प्राप्त करता है।[५]

गौरसिंह स्नेहशील भाई है। श्यामसिंह को वह सदा साथ रखता है। सौवर्णी की उसे सदा चिन्ता रहती है।[६] बहिन के मिल जाने से उसे अनिर्वचनीय आनन्द होता है।[७] गुरु का वह पिता से भी अधिक आदर करता है।[८]

गौरसिंह के रूप में व्यास जी ने एक उच्चकुलप्रसूत, स्वाभिमानी, वीर, पराक्रमी, साहसी, स्वधर्मप्रेमी, स्वामिभक्त और पारिवारिक उत्तरदायित्व को वहन करने वाले सुन्दर राजपूत युवक को प्रस्तुत किया है।

श्यामसिंह—गौरसिंह का भाई श्यामसिंह गुणों में भाई के सदृश है, केवल वर्ण से वह श्याम है। रूप, आकार, आयु, लम्बाई, स्वभाव, स्वर सभी गुणों में वह गौरसिंह के समान है।[९]

वीरेन्द्रसिंह—शिवाजी के सहकारियों में वीरेन्द्रसिंह (ब्रह्मचारिगुरु) का महत्वपूर्ण स्थान है। मुनि वेष धारण करके वह एक आश्रम के अध्यक्ष के रूप में धर्म की रक्षा करने में तत्पर है[१०] और आश्रम में रहने वाले वटुओं को शस्त्रशिक्षा देता है।[११]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४४।
२. ,, ,, ८१।
३. ,, ,, २४१।
४. ,, ,, ६३-६५
५ ,, ,, ५१५।
६. ,, ,, ९२।
७. ,, ,, ७६।
८. ,, ,, ९०।
९. ,, ,, ८६।
१०. ,, ,, २४।
११. ,, ,, २८६।

जयपुर के एक जागीरदार वीरेन्द्रसिंह पुत्र सहित रामेश्वर की यात्रा को गये। मार्ग में जहाज के डूब जाने से पुत्र अलग हो गया। वे किसी प्रकार बच कर सूरत पहुँचे। यहां रामचन्द्र मन्दिर के अध्यक्ष द्वारा उनकी चिकित्सा हुई। भीमा नदी के किनारे दो यवन लुटेरों को उन्होंने मार भगाया। यहां उनकी शिवाजी से भेंट हुई। शिवाजी ने प्रसन्न होकर उनको एक आश्रम का अध्यक्ष बनाया।

वीरेन्द्रसिंह को संसार में दो ही चिन्तायें हैं। प्रथम यह कि मुसलमानों के उत्पीडन से देश को किस प्रकार स्वतन्त्र किया जावे और दूसरी यह कि उनका पुत्र उनको कैसे प्राप्त हो। योगीराज के सम्मुख मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित भारत की दुर्दशा का वर्णन करते हुये उनका हृदय विह्वल हो जाता है।[1] वे ऐसे आश्रम के अध्यक्ष हैं, जिसमें शस्त्रों का संग्रह है और जिनमें रहने वाले देशभक्त यवनों की हरेक गतिविधि का पता रखते हैं।[2]

वीरेन्द्रसिंह पुत्र के वियोग से दुःखी हैं। भाग्य की कैसी विडम्बना है कि पुत्र के सामने रहते हुये भी वे उसे पहिचान नहीं पाते, और जब उनको उसका परिचय मिलता है तब वह निर्वासित है। पुत्र के विरह में उनको कुछ अच्छा नहीं लगता। महाराजा जयसिंह द्वारा पुनः राज्य संभालने की प्रार्थना करने पर वे पुत्र को राज्य देने और स्वयं काशीवास की इच्छा प्रकट करते हैं।[3] कुमार रामसिंह के मिलने पर उसे वे चरणों से उठा लेते हैं। आंसू बहने के कारण उनके मुख से वाणी भी नहीं निकलती।[4]

वीरेन्द्रसिंह के रूप में व्यास जी ने एक वीर, जातिप्रेमी, धर्मप्रेमी, स्वाभिमानी, योद्धा तथा स्नेहशील पिता का चित्र अङ्कित किया है।

शिवाजी के सहायकों के रूप में व्यास जी ने राजपूत वीरों को प्रधानता दी है। इतिहास की दृष्टि से शिवाजी के मुख्य सहायक उनके अपने देश के वासी थे। व्यास जी का राजपूताने विशेषकर जयपुर रियासत का होना कवि की इस प्रकार की कल्पना का सम्भावित कारण हो सकता है। राजपूती वीरता का अंकन कवि ने महाराष्ट्र में किया। यद्यपि व्यास जी ने कुछ महाराष्ट्रीय वीरों को भी कथा में स्थान दिया, तथापि उनका भाग अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। महाराष्ट्रीय सहायकों का चरित्र संक्षेप से यहाँ निरूपित किया जा रहा है—

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ १७।
२. ,, ,, ४५।
३. ,, ,, ३८६।
४. ,, ,, ५०२।

माल्यश्रीक—वह शिवाजी का बाल्यकाय से प्रिय मित्र है।[1] नीति-निष्णात, वीरवर, परम साहसी खड्ग-संचालन में चतुर माल्यश्रीक अनेक युद्धों में शिवाजी के साथ रहा।[2] शाइस्ताखां के अभियान की योजना में उसका प्रमुख हाथ है। मुसलमानों के अत्याचारों का विचार करते हुए वह अत्यन्त व्यथित होता है और उसके नेत्र आँसुओं से भर जाते हैं।[3] उसे विश्वास है कि औरंगज़ेब शिवाजी की कुछ भी हानि नहीं कर सकता,[4] अतः वह शिवाजी को देहली जाने के लिए उत्साहित करता है[5] और उनके साथ स्वयं भी देहली जाता है।

सुरेश्वर—वह शिवाजी का अन्यतम सेनापति होने के साथ बाल्यमित्र भी है, उसे उनके साथ परिहास करने का भी अधिकार प्राप्त है। चिकित्सक के वेष में वह शिवाजी के पास आता है और देहली से निकल जाने की योजना बताता है।[6] स्तन्यजीव (तानाजी), आन्यजीव (अन्ना जी दत्ता) शिवाजी के मित्र तथा सहायक हैं और आभा जी स्वर्णदेव प्रधान सेनापति हैं।

क्रूरसिंह—शिवाजी का एक सेनापति क्रूरसिंह है। इसका प्रथम परिचय सौवर्णी द्वारा मिलता है कि वह ५०० अश्वारोहियों का नायक और तोरणदुर्ग प्रान्त का रक्षक है। वह किसी न किसी बहाने सौवर्णी को छेड़ता रहता है।[7] क्रूरसिंह का दूसरा परिचय रुद्रमण्डलदुर्ग के अभियान के बाद मिलता है। वह रघुवीरसिंह पर विश्वासघात का आरोप लगाता है, किन्तु स्वयं विश्वासघाती है। अपना भेद खुलने के डर से वह घर से भाग जाता है।[8] तीसरी बार वह सौवर्णी का बलपूर्वक अपहरण करता हुआ दिखाई देता है और राघवस्वामी का वेष धारण किये रघुवीरसिंह द्वारा मारा जाता है।[9] व्यास जी ने एक व्यभिचारी और विश्वासघाती के रूप में उसका चित्रण करते हुये अभिव्यंजना की है कि दुष्टता का फल मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है।

शिवाजी के सहायकों में गौरसिंह और रघुवीरसिंह के पुरोहितों—देवशर्मा और गणेशशास्त्री का भी उल्लेख अप्रासंगिक न होगा।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४८।
२. ,, ,, २६१।
३. ,, ,, १७६।
४. ,, ,, ४१९।
५. ,, ,, ४०८।
६. ,, ,, ४६९-४७१।
७. ,, ,, ३०६।
८. ,, ,, ३८१।
९. ,, ,, ३९६-३९८।

देवशर्मा—उदयपुर के जागीरदार खड्गसिंह के पुरोहित देवशर्मा ने यजमान की मृत्यु के पश्चात् उसके बालकों का पालन किया। गौर और श्याम के यवन लुटेरों द्वारा अपहरण कर लिए जाने के बाद यजमान की पुत्री को लेकर वह महाराष्ट्र आया। वृद्ध होने से कन्या की पूरी तरह रक्षा करने में वह असमर्थ रहा। एक यवन युवक द्वारा कन्या के अपहरण की घटना से गौर और श्याम से उसका मिलन हुआ। अब वह निश्चिन्त होकर सौवर्णी को साथ लेकर हनूमन्मंदिर में रहने लगा।

देवशर्मा विद्वान् और भविष्यवक्ता है। छात्र उसके पास विद्याध्ययन के लिए आते हैं।[1] शिवाजी उससे भविष्य पूछते हैं।[2] उसके भविष्यकथन प्रायः सत्य सिद्ध होते हैं। यवनों के साथ युद्ध में विजय और आर्यों के साथ युद्ध में पराजय यह उसका भविष्य-कथन है।[3] शिवाजी शाइस्ताखाँ पर विजय प्राप्त करते हैं, किन्तु जयसिंह से उन्हें पराजय स्वीकार करनी पड़ती है।

देवशर्मा का अपना कोई स्वार्थ नहीं है, केवल यजमान-कन्या का हित उनको स्पृहणीय हैं। शिवाजी द्वारा कुछ माँगने की प्रार्थना करने पर वह सौवर्णी के सुख के लिए ही प्रार्थना करते हैं।[4]

गणेश शास्त्री— वीरेन्द्रसिंह का पुरोहित गणेशशास्त्री यजमान की तीर्थ-यात्रा में साथ जाता है। समुद्र में तूफान आने पर यजमान के पुत्र रामसिंह को पीठ पर बांध कर वह उसकी रक्षा करता है।[5] वीरेन्द्रसिंह से अलग होकर वह महाराष्ट्र पहुँचता है और यजमानपुत्र का रघुवीरसिंह नाम से पालन करता है। लांछित होकर उसके घर से निकल जाने पर उसको अत्यधिक दुःख होता है और वह महाराज जयसिंह को भी खरीखोटी सुनाने से नहीं डरता।[6] वीरेन्द्रसिंह के मिलने और रामसिंह के वापिस आने पर उसे अत्यधिक प्रसन्नता होती है और वह यजमान को पुनः राजवेष धारण कराता है।[7]

देवशर्मा और गणेश शास्त्री के रूप में व्यास जी ने भारतीय पुरोहितों का चरित्र प्रदर्शित किया है। वे विद्वान् निष्ठावान्, ज्योतिषज्ञ और यजमान की हित-

१. 'शिवराजविजय' पृ० १२७।
२. ,, ,, १२८।
३. ,, ,, १३१।
४. ,, ,, ३३६।
५. ,, ,, २६६।
६. ,, ,, ३८३।
७. ,, ,, ५०४।

कामना करने वाले हैं।

अन्य सहायक—शिवाजी के अन्य कर्मचारी भी दृढ़, कर्तव्यनिष्ठ और सावधान हैं। तोरण-दुर्ग का अध्यक्ष अपने कार्य के प्रति अति सजग है।[1] प्रताप दुर्ग का दौवारिक कर्त्तव्य-परायण और सत्यनिष्ठ है। स्वामी की अनुमति के बिना और परिचय दिये बिना किसी को दुर्ग में प्रविष्ट नहीं होने दे सकता। स्वामी के हित के लिये वह ब्रह्मा के आदेश की भी अवहेलना कर सकता है। बड़ी से बड़ी उत्कोच भी उसे अपने कर्तव्य से नहीं डिगा सकती।[2]

७. शिवाजी के विरोधियों का चरित्र-चित्रण (मुसलमान)

प्रस्तुत गद्यकाव्य में शिवाजी के विरोधियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है— मुसलमान और हिन्दू।

मुसलमान वर्ग में औरंगजेब, शाइस्ता खां, मुअज्जम, अफजलखां आदि हैं।

औरंगजेब— मुगल-सम्राट् औरंगजेब को इस गद्यकाव्य का प्रतिनायक कहा जा सकता है। उसका ध्येय हिन्दुओं का उत्पीडन है। व्यासजी ने औरंगजेब के बाह्य रूप, शारीरिक आकृति और वस्त्रादि का वर्णन नहीं किया, केवल उसकी आन्तरिक भावनाओं को दिखाया है। औरंगजेब मूर्तिमान कलियुग और अधर्म का अवतार होकर आलमगीर उपाधि धारण किये हुये है।[3] सम्पूर्ण भारत पर अधिकार कर लेने पर भी वह दक्षिण पर अधिकार स्थापित नहीं कर सका।[4] वह शाइस्ताखां को दक्षिण का सूवेदार बनाकर भेजता है और उसके असफल होने पर जयसिंह को।

औरंगजेब अत्यन्त स्वार्थी और नीच प्रकृति का है। उसके कार्य राक्षसोचित हैं। उसने वृद्ध पिता को तिरस्कृत करके कारागार में डाल दिया, बाल्यावस्था में साथ खेलने वाले भाईयों का क्रूरता से वध कराया, आर्यों को कष्ट पहुँचाने के लिये ही गो-हिंसा तथा मूर्तिखण्डन करवाया, जजिया लगाया और वाराणसी आदि स्थानों के मन्दिरों को तोड़कर मसजिदें बनवाईं।[5]

औरंगजेब की राजनीति अद्भुत है। वह किसी पर विश्वास नहीं करता। अपने हिन्दू सेनापतियों पर तो उसे और भी विश्वास नहीं है। शाइस्ताखां की सहायता के लिये भेजे गये यशवन्तसिंह के विनाश में उसने अपना हित देखा।[6]

१. 'शिवराजविजय' पृ० ११२।
२. ,, ,, ३८।
३. ,, ,, २२।
४. ,, ,, २३।
५. ,, ,, २०४-२०५।
६. ,, ,, २०५।

प्रतिज्ञा की रक्षा करते हुए औरंगजेब की राज्य-समृद्धि के लिए पूर्ण प्रयत्न करने और सब प्रकार से हिन्दुओं को दबाने वाले जयसिंह पर संकट पड़ने पर भी उसने सहायता नहीं भेजी। उसने चाहा कि जयसिंह वहीं मर जावे।[1] जयसिंह द्वारा शिवाजी को दिये गये आश्वासन को उसने पूरा नहीं किया। रामसिंह के यह कहने पर कि—"शिवाजी पर यदि दिल्ली में कोई विपत्ति आई और वे कुशल पूर्वक नहीं लौटे तो पिता ने आत्म वध की प्रतिज्ञा की है"—औरंगजेब उत्तर देता है कि दूसरों के अधिकार में उसे हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं।[2]

औरंगजेब विश्वासघाती है। सन्धि के लिये देहली बुलाकर धोके से वह शिवाजी को कैद कर लेता है। किन्तु उसकी यह अभिसन्धि सफल नहीं होती और शिवाजी उसकी कैद से निकल जाते हैं। शिवाजी के निकल जाने से औरंगजेब को जो अवस्था हुई होगी उसकी कल्पना व्यास जी ने शिवाजी के स्वप्न द्वारा की है[3]।

औरंगजेब की हिन्दू-विरोधी नीति ने ही मुगल-साम्राज्य का विनाश किया। औरंगजेब के जितने हिन्दू सेनापति थे, उसके विरोधी होते गये। अनेक मुसलमान राज्य भी उसके विरोधी थे। औरंगजेब की तत्कालीन अवस्था का चित्र व्यास जी ने शिवाजी के स्वप्न में इस प्रकार प्रस्तुत किया है—

यदि भवता सह मैत्री स्वच्छेन निश्छद्मना च हृदा समरक्षिष्यद् दिल्लीपतिः, तदखण्डस्तस्य प्रतापो दक्षिणदेशेऽपि बद्धमूलः प्राज्वलिष्यत्, भवत्खड्गमाश्रित्य स विजयपुरादिमहाराजानपि व्यजेष्यत्, प्रासारयिष्यच्च स्वप्रतापं सिंहलद्वीपेऽपि। एवं मत्प्रतिज्ञारक्षणसक्षणंचावलोक्याहमपि द्विगुणतरोत्साहेन मैत्र्युचितकार्याणि निरवक्ष्यम्। मयि भवति च तथाऽनुगते, शेषाः सर्वेऽपि महाराजास्तं सममानयिष्यन्। आवयोर्मन्त्रणामुररीकृत्य यदि स वैदिकधर्मविरोधमत्यक्ष्यत्, तत् सर्वा अपि प्रकृतयः पितरमिवैनमपूजयिष्यन्। एवं स्ववशीकृताखिलभारतवर्षस्य वर्षीयसोऽप्यस्य प्राज्यं राज्यं वर्षाणां सहस्राण्यप्यभेद्यं समपत्स्यत। परमधुना दुराचारैरेतस्य न कोऽपि भारतीय एनं स्निह्यति—इति सत्स्वपि वीरसहस्त्रेषु, अचिराद्विलयं यास्यति यवनराज्यम्, विजयपुरगोलखण्डनगराद्यधीशाः प्रसिद्धाः शत्रवोऽस्य। चिरशत्रुरुदयपुराधीशः, नन्दकसम्प्रदायाऽऽचार्यतिरस्कारिणोऽस्य पांचालवीराः सर्वेऽपि शिक्ष्या विपक्षाः। भारतचन्द्रादिमहामान्यजनावहेलनेन बंगदेशे

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४५८।
२. ,, ,, ४५६।
३. ,, ,, ५४६।

न कोऽप्यस्य मित्रम्। भवान् जगद्विदितस्तस्य सपत्नः। मामकाश्च रामसिंहादयोऽप्येतस्य विश्वासघातकतां स्मारं स्मारं सन्धिबन्धं शिथिलीकृतवन्तः—इति न चिरमवतिष्ठते यवनराज्यम्।[1]

व्यास जी ने औरंगजेब को पिता को कैद करने वाले, भाईयों का वध कराने वाले, हिन्दुओं के उत्पीडक, सहायकों का भी विनाश चाहने वाले, विश्वासघाती और, अन्य अनेक दोषों से युक्त प्रतिनायक के रूप में चित्रित किया है।

औरंगजेब के सदृश ही उसके अनुचर भी स्वार्थी, लालची और उत्पीडक हैं। रोशनआरा को ले जाने वाले शिविका-वाहक रास्ता चलते वृद्ध को लूट लेते हैं।[2] प्रहरी अधिक मिठाई प्राप्त करने के लोभ में आने जाने वालों को अधिक नहीं रोकते।[3]

शाईस्ताखां— इसे औरंगजेब ने दक्षिण का शासक बनाकर भेजा था,[4] जो पूना पर अधिकार करके शिवाजी के महल में रहने लगा[5]। शाईस्ताखां विलासी प्रकृति का है।[6] मराठों से हुए चाकण-दुर्ग के युद्ध की भयंकरता से डरा हुआ वह दुर्ग युद्ध नहीं करना चाहता।[7] उसके खुशामदी दरबारी उसका समर्थन करते हैं। खुशामदियों को वह पसन्द करता है और नीति-युक्त कहने वालों का उपहास करता है।[8] महादेव पण्डित से संधि-वार्ता को सुनकर वह प्रसन्न होता है और इसी प्रसंग में चतुर सेनापति चादखां को अपमानित करता है।[9] उसके अन्दर न तो दूरदर्शिता है और नाहीं व्यक्ति को परखने की सामर्थ्य। शिवाजी महादेव पण्डित के वेष में उसके दरबार में पहुँच जाते हैं, पर चादखां के अतिरिक्त अन्य किसी को जरा सा, भी सन्देह नहीं होता। शिवाजी सबको मूर्ख बनाकर चले आते हैं। शाईस्ताखां ने अपने महल तथा नगर की रक्षा का भी यथेष्ट प्रबन्ध नहीं किया। इसने मराठों को सहज ही आक्रमण का अवसर मिल गया। वह कायर है। आक्रमण का समाचार सुनते ही वह घबरा गया और शीघ्र ही एक खिड़की से

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५५६-५५७।
२. ,, ,, २४२।
३. ,, ,, ४७६।
४. ,, ,, २३।
५. ,, ,, १३५।
६. ,, ,, १४५।
७. ,, ,, १५१।
८. ,, ,, १५०, १५७।
९. ,, ,, १५७।

स्त्रियों को उतारकर भागने लगा। किन्तु शिवाजी के एक सैनिक द्वारा फेंके गये खड्ग से उसकी दो अंगुलियां कट गईं।

बदरुद्दीन, मोहम्मद गनी और चाँदखां उसके तीन सरदार हैं। बदरुद्दीन और मोहम्मद गनी दोनों खुशामदी हैं। वे शाइस्ताखां के रुख को देखकर बात करते हैं। उनका अपना कोई मन्तव्य नहीं है, स्वामी की हां में हां मिलाना ही उनका ध्येय है।[१]

चांदखां— यह शाईस्ताखां का बुद्धिमान और नीतिज्ञ सरदार है।[२] मराठों के आश्रय दुर्गों को जीतना उसकी युद्धनीति है। शाईस्ताखां द्वारा दुर्गयुद्ध का विरोध करने पर भी वह अपना अभिमत प्रकट करने से संकोच नहीं करता।[३] चांदखां की दृष्टि तीक्ष्ण है। महादेव पण्डित को देखकर और उसकी बातें सुनकर उसे सन्देह हो जाता है कि यह या तो स्वयं शिवाजी है या उसका कोई भाई। वह उसका पीछा करता है[४] और टूटे हुए शिवमन्दिर तक पहुँच जाता है। षड्यन्त्र की गन्ध पाकर शिवाजी पर वह प्रथम बाण से और उसके बाद शक्ति से प्रहार करता है,। किन्तु दुर्भाग्य से शिवाजी द्वारा मारा जाकर कुएं में फैंक दिया जाता है।[५]

शाईस्ताखां के समान उसके प्रहरी भी लापरवाह हैं। नगर में पहरा देते हुए या तो वे सोते हैं,[६] अथवा सोने के समय की प्रतीक्षा करते हैं।[७] शाईस्ताखां पर आक्रमण के समय शिवाजी को सभी प्रहरी सोते हुए मिले।[८]

मुअज्जम— यह इस काव्य के प्रतिनायक औरंगजेब का पुत्र है। लम्पट का पुत्र होने से वह स्वयं भी लम्पट है। महाराष्ट्र में आकर सर्वप्रथम वह वेश्याओं की अभिलाषा प्रकट करता है।[९] शिवाजी के गण इन परिस्थितियों का लाभ उठाते हैं। गौरसिंह पद्मिनी वेश्या का रूप रखकर मुअज्जम के शिविर में पहुँच जाता है। मुअज्जम में तीक्ष्ण दृष्टि और समझ कम है। गौरसिंह को वेश्या

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १५३।
२. ,, ,, १८४।
३. ,, ,, १५४।
४. ,, ,, १५६!
५. ,, ,, १८४।
६. ,, ,, १७६।
७. ,, ,, १८१।
८. ,, ,, २५४।
९. ,, ,, २७६।

समझ कर वह उस पर आसक्त होता है। इस अवसर का लाभ उठाकर पद्मिनी सुला देने वाली दवा से युक्त पान खिलाकर उसे उठा ले जाती है।[1] मुअज्जम में कुछ गुण भी हैं। उसमें औरंगजेब जैसी स्वार्थपरता, क्रूरता और कट्टरता नहीं है। शिवाजी से मुगल-परम्परा के प्रतिकूल स्नेह और आदर प्राप्त करने पर वह पिता की तुलना में उनकी प्रशंसा करता है।[2] वह शिवाजी के उपकारों का बदला देना चाहता है। और जयसिंह से युद्ध रुकवाने तथा पिता से सन्धि कराने का संकल्प करता है। शिवाजी के देहली में कैद हो जाने पर उनसे मिलने के बाद[3] वह पिता से शिवाजी को छोड़ देने की प्रार्थना करता है। किन्तु औरंगजेब उसकी प्रार्थना की अवहेलना ही करता है।[4]

अफजलखां— यह बीजापुर का एक सेनापति है, जो शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिये प्रतापदुर्ग से थोड़ी दूर शिविर लगाये है।[5] वह शिवाजी को मारने या जीवित पकड़ने की प्रतिज्ञा करके आया है[6] और शिवाजी को सन्धि के बहाने धोखा देकर पकड़ना चाहता है।[7] वह बहुत अधिक घमण्डी और विलासी है। शिवाजी के साथ युद्ध करना है, इसकी अपेक्षा न करते हुये नाच, गान मदिरा और वेश्याओं में आसक्त होकर समय गंवाता है।[8] दूसरों को परखने की उसमें योग्यता नहीं है। शिवाजी का सहचर गौरसिंह उसके दरबार में आकर सम्पूर्ण भेद निकाल लेता है।[9]

अफजलखां का पहरे का प्रबन्ध अच्छा नहीं है। गायक और वादक उसके दरबार में अबाध प्रवेश पा सकते हैं।[10] उसके सैनिक शिवाजी से युद्ध करने में डरते हैं। वे योजना को गुप्त न रखते हुए जोर २ से बातें करते हैं। यवन युवक के वस्त्रों से प्राप्त पत्र से षड्यन्त्र की गन्ध पा जाने वाला गौरसिंह अफजलखां के शिविर से अपने सन्देह की पुष्टि कर लाता है।

अफजलखां इतना घमण्डी तथा असावधान है कि शिवाजी से मिलने

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ २८१-२८२।
२. ,, ,, ३५९।
३. ,, ,, ४५४।
४. ,, ,, ४६१।
५. ,, ,, ३४।
६. ,, ,, ५४।
७. ,, ,, ५५।
८. ,, ,, ५४।
९. ,, ,, ६६।
१०. ,, ,, ५०।

जाते समय किसी प्रकार की सावधानी नहीं रखता। "यदाऽहमेनं साक्षात्कृत्य, करताडनमेकं कुर्याम्, तदैव तालिकाध्वनिसमकालमेवामुकामुकैः श्येनैरिवाभिपत्य पाशैरेष बन्धनीयः, सेनया च क्षणात् तत्सेना झंझया घनघटेवापनेया[1]" इस प्रकार कहकर वह शराब पिये हुये, सजधज कर, शिविका पर चढ़कर पटमण्डप की ओर जाता है, किन्तु स्वयं ही मारा जाता है[2]।

८. शिवाजी के विरोधियों का चरित्र-चित्रण (हिन्दू)

इस गद्य काव्य में शिवाजी का विरोध करने वाले दो हिन्दू राजपूतों का का उल्लेख है— यशवन्तसिंह और जयसिंह। यद्यपि दोनों के हृदय शिवाजी के प्रति सौहार्द से भरे हैं, तथापि औरंगजेब के आदेश से वे शिवाजी को पराजित करने के लिये आये हैं।

यशवन्तसिंह— मारवाड़ देश का राजा यशवन्तसिंह औरंगजेब का एक सेनापति है। यद्यपि उसका पहिले औरंगजेब से विरोध रहा[3], तथापि परिस्थितियों ने उसे उसकी सेवा के लिये बाधित किया। मुसलमानों के आधिपत्य से उनके द्वारा हिन्दुओं के इष्टदेवों की निन्दा करने, मन्दिरों को तोड़ने, तीर्थों को मदिरालय बनाने, कुलीन कन्याओं को दूषित करने और विद्वानों के रक्त से भूमि को लाल करने से उसका हृदय व्यथित है। उसे मुसलमानों की जो सहायता करनी पड़ती है,[4] इसका दोष वह अपने पूर्वजों को देता है।[5] शिवाजी का उद्देश्य प्रिय लगने पर भी प्रतिज्ञा करने के कारण उनसे युद्ध के लिये प्रस्तुत है।[6]

यशवन्तसिंह वीर क्षत्रिय । उसकी पत्नी उदयपुर के राणा प्रताप के वंश से है, वीर राजपूतों से अलंकृत मरुदेश का वह स्वामी है, शिप्रा नदी पर उसके पराक्रम से औरंगजेब भी विस्मित हो गया था। ऐसे व्यक्ति को यवनपक्ष का अवलम्बन करके अपने ही भाईयों के सिर काटने को उद्यत देखकर शिवाजी दुःखित हैं।[7]

शिवाजी के उद्देश्य से सहमत होने पर भी यशवन्तसिंह उनके द्वारा अपनाये गये तरीकों को उपयुक्त नहीं समझता। किन्तु शिवाजी की वाग्मिता से

१. 'शिवराजविजय' पृ० ७१।
२. ,, ,, ७२।
३. ,, ,, २०१।
४. ,, ,, १८७-१८८
५. ,, ,, १८६।
६. ,, ,, २०२, २४०।
७. ,, ,, १६३-१६५।

प्रभावित होकर वह उनकी सहायता के लिये सहमत हो जाता है।[1] शिवाजी यशवन्तसिंह से केवल यही चाहते हैं कि वह पूना-अभियान के समय पूना से कुछ कोस की दूरी पर रहे और उनकी इस प्रार्थना को वह स्वीकार कर लेता है।[2]

कुछ इतिहासकारों ने यशवन्तसिंह पर विश्वासघात का आरोप लगाया है, किन्तु व्यास जी के अनुसार वह प्रत्यक्ष रूप से विश्वासघात या वचनभंग का अपराधी नहीं।

जयसिंह— आमेर का राजा जयसिंह शिवाजी से युद्ध करने के लिये प्रस्तुत हुआ।[3] जयसिंह अनेक गुणों से विभूषित है। वह शिल्प-कला में निपुण है— उसने नवीन जयपुर नगर का निर्माण कराया। वह ज्योतिष का विद्वान है— वाराणसी आदि स्थानों पर उसने ज्योतिर्यन्त्रालय बनवाये।[4] वह शास्त्रों का पण्डित है— शास्त्र सुनते-सुनते उसके बाल पक गये।[5] उसे अपनी सत्यवादिता और स्पष्टवादिता पर बहुत गर्व हैं। औरंगजेब से की गई प्रतिज्ञा पर वह दृढ़ है।

शिवाजी जयसिंह की भावनाओं को उद्दीप्त करने के लिये हिन्दुओं की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हैं, किन्तु जयसिंह शिवाजी के कथन से प्रभावित नहीं होता। उसका स्पष्ट मत है कि राजपूत क्षत्रिय विद्रोहाचरण नहीं करते। जब तक यवनों के साथ वैरभाव रहा, वे युद्ध करते रहे। किन्तु आधीनता स्वीकार करने पर उनकी आज्ञा का पालन करेंगे।[6] वह यशवन्तसिंह को हेय दृष्टि से देखता है, जो शिप्रा के तट पर हार जाने से औरंगजेब से अन्दर ही अन्दर द्वेष करता है।[7]

जयसिंह राजनीति का पण्डित है। शिवाजी को सन्धि की प्रेरणा देते हुये वह कहता है "यदि भवान् मामपि युद्धे हन्यात् तत् सम्राजा कश्चन परः सेनानीः प्रेषयिष्यते, तस्मिन्नपि च दैवाद्धते, अपरोऽपरः समायास्यति। इत्येवं न सम्भवत्यन्तो महाराष्ट्रदेशदुर्दशायाः। यत्र च चिरं युद्धानि भवन्ति, तत्रैव प्रायशो रोगा आपतन्ति, तत्रैव दरिद्रता पदमादधाति, तत्रैव च क्रमशः सर्वं महर्घतामाप्नुवद् भयानकं

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ २०७।
२. ,, ,, २०८।
३. ,, ,, ३३६।
४. ,, ,, ३४०।
५. ,, ,, ३४६।
६. ,, ,, ३४६।
७. ,, ,, ३४८।

दुर्भिक्षं जनयति—इति चिरयुद्धहतोत्साहाः प्रजाः भटाश्च हतोत्साहा भवन्ति-इतीदृशेष्वे-वावसरेषु सन्धी राजधर्मः" ।[1]

जयसिंह कुलाभिमानी है । रामसिंह का वृत्तान्त सुनकर वह कहता है—"यतो नास्मत्कुले जाता मूढयोषित इवाऽऽत्मानं घ्नन्ति । सोऽपि निश्चयेन गूढपौरुषं प्रदर्श्य समये पुनरात्मानं परिचाययिष्यतीति प्रमाणीकरोति मे हृदयम्" ।[2]

जयसिंह युद्ध-विद्या में निपुण है । महाराष्ट्र की परिस्थितियों को देखकर वह सम्मुख युद्ध को व्यर्थ समझता हुआ एक-एक दुर्ग को जीतकर विजय प्राप्त करने की योजना बनाता है । उस पर अफजलखां, शाइस्ताखां अथवा यशवन्त-सिंह के समान विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं ।[3] जयसिंह में व्यक्ति को पहचानने की शक्ति है । ब्राह्मण का वेश बनाकर आये हुये ताना जी और माल्यश्रीक को वह पहिचान लेता है । इस कारण शिवाजी को लज्जित भी होना पड़ता है ।[4]

जयसिंह ने औरंगजेब को समझने में भूल की । उसका विश्वास था कि औरंगजेब के पिता के पास चिरकाल तक युद्ध करने से उसका दरबार में सन्मान है । इसी विश्वास से वह शिवाजी को दिल्ली भेज देता है । उसे यह विश्वास है कि शिवाजी के रुद्रमण्डल-दुर्ग को विजय करने और सम्राट के पुत्र और पुत्री को ससन्मान वापिस करने से उनका मुगल दरबार में आदर होगा ।[5] किन्तु जिस औरंगजेब ने पिता और भाईयों की भी परवाह न की वह शिवाजी या जयसिंह को क्या समझता । औरंगजेब ने शिवाजी को तो कैद किया ही साथ ही विपद्ग्रस्त जयसिंह के पास सहायता भेजने का भी निषेध कर दिया ।

जयसिंह औरंगजेब की नीति से दुःखित होने पर भी अपनी प्रतिज्ञा से विमुख होना नहीं चाहता । जयसिंह के हृदय की भावनायें कवि ने शिवाजी के स्वप्न द्वारा की व्यक्त हैं ।[6]

जयसिंह प्रत्येक कार्य को सोच समझ कर करना पसन्द करता है, विशेष-कर दण्ड देने में उसे शीघ्रता पसन्द नहीं ।[7] निरपराध वीरेन्द्रसिंह को दण्ड देने में शीघ्रता करने का उसे गहरा पश्चात्ताप है । रघुवीर सिंह को दण्ड देते हुये

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३५१ ।
२. ,, ,, ३८५ ।
३. ,, ,, ३४१ ।
४ ,, ,, ३४३ ।
५. ,, ,, ३८८ ।
६. ,, ,, ३५३-३५८ ।
७. , ,, ३७६ ।

शिवाजी को वह समझाता है। जयसिंह में मिथ्याभिमान नहीं है। वीरेन्द्रसिंह का समाचार जानकर वह स्वयं उनके पास जाकर क्षमा मांगता है[1] और रामसिंह के लिये राजपद प्रस्तुत करता है।[2]

रामसिंह— जयसिंह का पुत्र रामसिंह पिता के प्रतिनिधि के रूप में औरंगजेब के दरबार में रहता है। रामसिंह पिता का आज्ञाकारी पुत्र है, पिता के आदेश से शिवाजी का स्वागत करके उनको दरबार में ले जाता है। उसे विश्वास है कि सम्राट उसके पिता के लेख के विरुद्ध आचरण नहीं करेंगे।[3] उसका यह विश्वास बहुत शीघ्र नष्ट हो जाता है, जबकि औरंगजेब रामसिंह के कहने से भी शिवाजी को नहीं छोड़ता और जयसिंह के लिये सैन्य-सहायता भेजने का निषेध कर देता है।[4]

६. नारी चरित

'शिवराजविजय' में नारी पात्रों की संख्या बहुत कम है। सौवर्णी और रसनारी ये दो नारी पात्र अपनी सखियों के साथ इस उपन्यास में प्रस्तुत किये गये हैं। दोनों पात्र फल की प्राप्ति में नायक की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायता नहीं करते। इन दोनों में से किसी को मुख्य फल की प्राप्ति भी नहीं होती। इस अवस्था में इस काव्य में नायिका का निर्धारण करना सरल नहीं है। प्रत्येक उपन्यास में नायक और नायिका दोनों का होना अनिवार्य भी नहीं है।[5] प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' उपन्यास के सदृश 'शिवराजविजय' को भी नायक-प्रधान उपन्यास कहा जा सकता है। रसनारी यद्यपि शिवाजी से प्रेम करती है तथापि शिवाजी की उसके प्रति उत्सुकता नहीं दिखाई देती। वह कथानक के फल की तो अधिकारिणी है ही नहीं, फल की प्राप्ति में भी उसकी कोई उत्सुकता, प्रयत्न और सहायता नहीं है। सौवर्णी का कथानक के मुख्यफल से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है और वह प्रासंगिक कथा के ही फल की स्वामिनी होने तक सीमित रहती है। इन अवस्थाओं में यही कहा जा सकता है कि इस उपन्यास में नायिका की योजना नहीं है। इस विवेचना के अनन्तर नारी पात्रों के चरित्रों का अनुशीलन किया जा रहा है।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३८५।
२. ,, ,, ४०८।
३. ,, ,, ४१६।
४. ,, ,, ४५६।
५. रणवीर रांग्रा एम० ए०, पी० एच० डी० कृत 'हिन्दी उपन्यास में चरित्र-चित्रण का विकास' (भारतीय साहित्य मन्दिर फव्वारा दिल्ली) पृ० ५६।

रोशनआरा—(रसनारी)— मुगल-सम्राट की पुत्री रोशनआरा का पिता से मिलने के लिए गोलकुण्डा जाते समय गौरसिंह अपहरण करता है। काव्यशास्त्र के अनुसार नायिकाओं के जो तीन भेद—स्वीया, परकीया और साधारण स्त्री परिगणित किये गये हैं[1], वे अन्य स्त्री पात्रों के विषय में भी निर्धारित किये जा सकते हैं। नायिकाओं की आठ अवस्थाओं में से[2] परकीया की विरहोत्कण्ठिता, अभिसारिका तथा खण्डिता ये तीन अवस्थायें हो सकती है। रसनारी की इनमें से विरहोत्कण्ठिता और खण्डिता ये दो अवस्थायें अभिव्यक्त हुई हैं। शिवाजी के विरह में उनके प्रति उत्कण्ठित होने के कारण वह विरहोत्कण्ठिता है तथा शिवाजी द्वारा विवाह के लिये निषेध कर देने से वह खण्डिता है। यद्यपि शिवाजी ने स्पष्ट रूप से विवाह का निषेध तो नहीं किया, तथापि उनके कथन का अभिप्राय यही है।

रोशनआरा अपहृत होकर तोरणदुर्ग में रखी गई है। उसे सब प्रकार की सुविधायें दी गई हैं।[3] यहां उसकी कोमल भावनाओं का परिचय मिलता है। प्राकृतिक शोभा देखती हुई वह विचार करती है कि किस पुरुष ने उसे कैद कर रखा है। शिवाजी को देखकर प्रथम तो उसे लुटेरा समझकर वह कुछ भीत, स्तब्ध, खिन्न, क्षुब्ध और उद्विग्न होती है, किन्तु अन्दर आने पर उनके सौन्दर्य से मोहित होती है।[4] पहले वह शिवाजी को पहाड़ी चूहा कहती है, परन्तु सारी परिस्थितियां जानने के बाद उनकी महत्ता का अनुभव करके अनुरक्त होती है।[5] किन्तु शील और आर्जव उसे अपना अनुराग प्रकट करने से रोकते हैं। व्यथित होकर वह सहचरी द्वारा शिवाजी के पास विरह-सन्देश भेजती है। शिवाजी उससे मिलने आते हैं। शिवाजी को देखकर सात्विक भावों से भरी वह कुछ कह नहीं पाती।[6] महाराष्ट्रराज के पुनः पुनः आग्रह करने पर लज्जा का परित्याग करके वह अपना प्रेम प्रकट करती है कि उनके बिना वह जीवित नहीं रह सकती।[7] इसी समय आग लग जाने के कारण भय से दोनों भुजाओं से शिवाजी को प्रगाढ़ आलिंगन में बांध लेती है। बाहर आने पर जनसमुदाय को देखकर लज्जित होकर वह घर में घुस जाती है।[8]

---

१. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। 'दशरूपक' २.१५।
२. आसामष्टाववस्थाः स्युः स्वाधीनपतिकादिकाः। 'दशरूपक' २.२३।
३. 'शिवराजविजय' पृ० २६४।
४. ,, ,, २६८-२७०।
५. ,, ,, २७४।
६. ,, ,, ३२८।
७. ,, ,, ३३२।
८. ,, ,, ३३५।

इस स्थल पर व्यास जी ने रोशनआरा को चल प्रकृति और अगम्भीर स्वभाव आदि विशेषण दिये हैं। किन्तु इस प्रकार के विशेष लक्षण उसमें दिखाई नहीं देते। उसका शिवाजी के प्रति प्रगाढ़ प्रेम दिल्ली जाने पर भी नष्ट नहीं होता। शिवाजी के दिल्ली पहुंचने पर वह दो बार अपनी सहचरी को उनके पास भेजती है। काव्य के अन्त में भी कवि ने शिवाजी के प्रति रोशनआरा के प्रेम की उत्सुकता और स्थिरता व्यंजित की है। वह पिता द्वारा प्रेम की अवहेलना को सहन न कर छुरी से आत्मघात कर लेती है।[1]

रोशनआरा का माता-पिता और भाईयों के प्रति सहज स्नेह है। माता का नाम सुनकर वह 'हा मातः! हा मातः!' कहकर रोती है।[2] भाई से मिलकर प्रेम विभोर हो जाती है।[3] वह बहुत भोली है और समझती है कि उसके कहने से जयसिंह युद्ध बन्द कर देगा।

व्यास जी ने इस काव्य में शिवाजी के परम शत्रु औरंगजेब की म्लेच्छ कन्या को शिवाजी के प्रति अनुरक्त प्रदर्शित करके कुतूहल का वर्धन तो अवश्य किया, किन्तु इस प्रेम को सफल बनाने का साहस वे नहीं कर सके। उन्होंने रोशनआरा द्वारा आत्महत्या कराकर इस प्रेम की समाप्ति कर दी।

रोशनआरा की सहचरी— यह उपन्यास की एक मनोरंजक पात्र है। रोशनआरा का संदेश लेकर वह तीन स्थानों पर उपस्थित होती है। प्रथम प्रताप दुर्ग में वह शिवाजी से मिलती है। इस समय वह १८ वर्ष की साहसी, सुन्दर, यवन-कामिनी है जो अकेली निर्जन स्थान में कांटों के बीच भी अपना रास्ता बना सकती है। वह सुन्दर है— भ्रमर उसके मुख को खिला हुआ कमल समझ लेते हैं। उसके अधर पानेच्छा को उत्पन्न करते हैं। वह अति विनयी है और जानती है कि राजाओं के साथ किस प्रकार बात करनी चाहिये। रोशनआरा का सन्देश वह कौशल से शिवाजी से कह देती है।[4]

दूसरी बार वह शिवाजी के दिल्ली आगमन पर उनसे देहली के बाहर ही मिलती है। रात के समय नीले वस्त्र से अपने को ढके हुए वह यमुना नदी के किनारे शिवाजी को रोशनआरा का प्रणय-सन्देश देती है।[5] तीसरी बार वह अधिक

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५५१।
२. ,, ,, ३५८।
३. ,, ,, ३५६।
४. ,, ,, ३२०-३२४।
५. ,, ,, ४१५-४१८।

नाटकीय रूप से शिवाजी से मिलती है। वह मालन का रूप धरके फूल बेचते हुए शिवाजी के महल में प्रविष्ट हो जाती है। शिवाजी से उसका पहिले भी परिचय हो चुका है। अतः उनसे परिहास करने में उसे संकोच नहीं। रोशनआरा की यह सहचरी सुन्दर, साहसी, परिहासप्रिय और स्नेहशील म्लेच्छ कन्या है।

सौवर्णी— काव्य की दूसरी मुख्य स्त्री पात्र सौवर्णी है। वह काव्य के सहनायक रघुवीरसिंह की प्रेयसी है। नायिका की दृष्टि से वह प्रथम तो विरहोत्कण्ठिता-कन्या परकीया है, बाद में रघुवीर के साथ विवाह हो जाने पर स्वीया हो जाती है। सौवर्णी का कथा में प्रमुख स्थान है। कवि प्रथम निःश्वास में ही उसे प्रस्तुत करता है।

सौवर्णी उदयपुर के एक जागीरदार खड्गसिंह की पुत्री और गौरसिंह की बहिन है। बचपन में माता-पिता के दिवंगत हो जाने से पुरोहित देवशर्मा ने उसका पालन किया। गौर और श्याम के जाने के बाद देवशर्मा उसे लेकर महाराष्ट्र चले आये। सौवर्णी बाल्यावस्था से ही बहुत सुन्दर है। मानों चन्द्रमा की कलाओं से अथवा नवनीत से उसकी रचना हुई है। मृणाल के समान उसका गौर वर्ण है और कुन्द की कलियों के सदृश उसके दांत है।[1] भाईयों से मिलने के बाद वह पुरोहित के साथ तोरण-दुर्ग के हनूमन्मन्दिर में रहने लगती है।

सौवर्णी धीरे-धीरे किशोरावस्था को लांघ कर युवती होती है। ११ वर्ष की अवस्था में उसका शरीर सौन्दर्य से भर जाता है। प्रथम दर्शन में ही रघुवीर उसके पुष्पित सौन्दर्य से आकर्षित हो जाता है। उसका वर्ण सोने से भी उज्ज्वल है, स्वर कोयल से भी मधुर है, केश भ्रमरों से भी काले हैं, ललाट चन्द्रकला से भी सुन्दर है, नेत्र खंजनों से भी मनोहारी हैं और अधर बन्धुजीव के पुष्प से भी अधिक रक्त हैं। उसके हास से ज्योत्स्ना तिरस्कृत होती है। श्वेत चित्तियों से युक्त लाल रंग के वस्त्र की चोली पहिने, गले में एक लड़ की मुक्ता-माला धारण किये, सिन्दूर-रहित माँग से कुमारी अवस्था को सूचित करती हुई, एक हाथ से पुष्प गुच्छ को हिलाते हुए धीरे २ मधुर स्वर में गाती हुई वह किसका चित्त हरण नहीं कर सकती।[2] ऐसी सुन्दरी के राग-ताल से विहीन भी गान को सुनकर यदि रघुवीर अपने आपको भूल जावे तो इसमें आश्चर्य क्या ?[3]

सौवर्णी में नारी-सुलभ लज्जा है। देवशर्मा द्वारा रघुवीर को माला पहिनाने और मोदक देने के लिए कहने पर लज्जा से उसकी गर्दन झुक जाती है। बड़ी

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ८।
२. ,, ,, १२१।
३. ,, ,, १२२।

कठिनाई से दायें हाथ को फैलाकर, मोदक देकर तथा माला पहिना कर वह चली जाती है। अगले दिन रघुवीर को पुनः वाटिका में देखकर स्तब्ध होती है।[1]

किशोरावस्था को पारकर वह पूर्ण युवती होती है। उसका शरीर यौवन की शोभा से भर जाता है। सिर पर जूड़ा बांधे, माथे पर बिन्दी और आंखों में काजल लगाये, अधर को पान से लाल किये, अभिनव यौवन से मांसल वक्ष पर सोने के तारों से कढ़ी हुई काले रेशम की कंचुकी धारण किये उस सुन्दरी ने कुचों के नीचे तक मोतियों की माला लटका रखी है, जो भूलने से उछल उछल कर उसके स्तनों पर गिरती है। वह मानो शरीरधारी शोभा, मूर्तिमयी प्रेमपरम्परा अथवा अवतीर्ण हुई रति ही है।[2] भूला भूलने के परिश्रम से उत्पन्न पसीने से भीग जाने के कारण उसकी शोभा और भी बढ़ जाती है।

प्रथम मिलन के बाद सौवर्णी को रघुवीर से मिलने के पांच-छः अवसर प्राप्त हो चुके हैं। तोरणदुर्ग की ओर आने पर रघुवीर हनूमन्मन्दिर का चक्कर लगाते हुये सौवर्णी से अवश्य ही मिलता है।[3] सौवर्णी के हृदय में रघुवीर के प्रति अनुराग उत्पन्न हो जाता है। उसे रघुवीर के विना कुछ भी अच्छा नहीं लगता। भूला भूलते समय, हास-परिहास करते समय वह उदास ही रहती है। उसकी सखियां उसे हर प्रकार ये सान्त्वना देती है, परन्तु प्रिय के विरह में उसका मन व्यथित ही रहता है।

सौवर्णी एक भारतीय रमणी है। जिसे उसने अपना प्राणनाथ मान लिया है, उसकी पात्रता, व्यक्तित्व और परिणाम का विचार न करते हुये और अनेक मासों तक कोई समाचार न मिलने पर भी वह उसी का चिन्तन करती है,[4] उसका चित्र बना कर मन बहलाती है।[5] रघुवीर निर्धन है, पराधीन है, गृहहीन है, तथापि अपना हृदय उसको अर्पित करके वह उसी को अपने प्राणों का आधार मानती है। वह क्षत्रिय कन्या है—रघुवीर की कलंक-कथा और निर्वासन का दण्ड सुनने के बाद भी उसे विश्वास है कि उसके जैसे सुन्दर आकृति वाले इस प्रकार का कलंक का काम नहीं कर सकते। उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा है कि या तो वह रघुवीर का ही वरण करेगी या ब्रह्मचर्य द्वारा शरीर को सुखा देगी।[6] राघवस्वामी द्वारा

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १३२।
२. ,, ,, २१७-२१९।
३. ,, ,, २३४।
४. ,, ,, २३१।
५. ,, ,, २३३।
६. ,, ,, ३६१।

रघुवीर की निर्दोषिता का ज्ञान हो जाने पर वह तपस्या में और शिव की आराधना में समय व्यतीत करती है। रघुवीर के प्रकट होने के वृतान्त को जान कर भी उसे देखे बिना तपस्विनी के वेष का परित्याग नहीं करती।[१]

रघुवीर को देख कर उसके हृदय में अनिर्वचनीय भाव प्रकट होते हैं। वह मुदित, मोहित, कम्पित, भीत और ह्रीत होती है।[२] उसे हर समय रघुवीर का ही ध्यान बना रहता है। वह आराधना के समय शिव द्वारा रघुवीर को पति रूप में प्रदान किया जाता हुआ देखती है।[३] यद्यपि वह लज्जाशीला है, तथापि रघुवीर को देखने पर पैरों पर गिर कर रोती है और रघुवीर के आलिंगन में सान्त्वना पाती है।[४]

बहुत समय तक विरह-वेदना का अनुभव करने के बाद सौवर्णी का रघुवीर से विवाह निश्चित हो जाता है। विवाह के समय वह लज्जा से हिल नहीं सकती, मन की चंचलता से उसका शरीर कांपने लगता है, उद्वेग से सारे शरीर में पसीना आने लगता है और कपोल लाल हो जाते हैं। सखियां उसे बलपूर्वक ले आती हैं और वह रघुवीरसिंह की पत्नी बन जाती है।

सौवर्णी के रूप में कवि ने एक लज्जाशीला, पतिपरायणा, दृढ़प्रतिज्ञ, सहिष्णु, स्नेहशील, आदर्श भारतीय क्षत्रिय कन्या को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

सौवर्णी की सखियां—चारुहासिनी और विलासिनी महाराष्ट्रीय महिलायें हैं। विलासिनी हनूमन्मन्दिर के अध्यक्ष की पुत्रवधू और चारुहासिनी पुत्री है। दोनों ननद भावज आपस में बहुत प्रेम करती हैं। वे सौवर्णी के प्रति भी बहुत अधिक स्नेहशील हैं। दोनों ही हास-परिहास में कुशल हैं। विलासिनी कुछ अधिक समझदार है। वह जो बात कहती है, चारुहासिनी उसका समर्थन करती है।[५] परिहास में भी वे दूसरों को दुःख पहुँचाना नहीं चाहतीं। अपने परिहास से सौवर्णी को दुःखी होते देख कर वे उसे हर प्रकार की सान्त्वना देती हैं। उन्हें हर समय सौवर्णी के सुख का ध्यान रहता है और वे रघुवीरसिंह का समाचार देकर उसके दुःख को दूर करने का प्रयत्न करती हैं।[६]

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ४६३।
२. ,, ,, २३४।
३. ,, ,, ४६४।
४. ,, ,, ४६५।
५. ,, ,, २२४।
६. ,, ,, ४६२।

१०. अन्य चरित्र

'शिवराजविजय' में इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त कुछ अन्य पात्र भी हैं। यद्यपि इनका कथानक में महत्वपूर्ण स्थान नहीं है, तथापि उनमें कुछ अपनी चारित्रिक विशेषतायें हैं।

योगिराज—व्यास जी ने पहले ही निःश्वास में योग-विद्या का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए इस पात्र की सृष्टि की। योगिराज लम्बी समाधि के बाद शिवाजी के समय में उठे हैं।[1] वे त्रिकालदर्शी और आत्मदर्शन के प्रेमी हैं। ब्रह्मचारि-गुरु से सारा वृत्तान्त सुन कर और भविष्य का कथन करके[2] वे पुनः समाधि लगाने के लिए कन्दरा में चले जाते हैं। शिवाजी की विजय से महाराष्ट्र में होने वाले आनन्दोत्सव से उनकी पुनः समाधि टूटती है शिवाजी के विस्तृत राज्य को देखते हुये वे पुनः कन्दरा में प्रविष्ट होते हैं।[3]

यवन युवक—यवन युवक के रूप में व्यास जी ने सामान्य मुसलिम चरित्र और स्वभाव को अभिव्यंजित किया है। यवन किसी सुन्दर हिन्दू-कन्या को देख कर उसे उठा ले जाना अपना अधिकार समझते हैं। पर स्वभाव से वे कायर होते हैं। यवन-युवक सौवर्णी को उठा कर तो ले गया, किन्तु भालू को देख कर डर के कारण उसे छोड़ कर पेड़ पर चढ़ गया।[4] यवनों में साधारणतः कर्तव्य के प्रति गहन निष्ठा नहीं होती। यह युवक बीजापुर के दरबार से अफजलखां के लिए गुप्त पत्र लेकर चला, किन्तु मार्ग में कन्याहरण में प्रवृत्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ और पत्र शत्रुओं के हाथ लग गया।[5] यवनों का व्यवहार हिन्दुओं के प्रति उद्दण्डतापूर्ण तथा अपमानजनक है। यवन-युवक हरण की हुई ब्राह्मण-कन्या पर अपना पूर्ण अधिकार समझता है और हिन्दुओं को बिना सींग पूँछ का पशु, मानता है।[6] इसी मनोवृत्ति के कारण वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

गोपीनाथ—बीजापुर दरबार की ओर से गोपीनाथ नाम का पण्डित सन्धि-प्रस्ताव लेकर शिवाजी के पास आता है।[7] यद्यपि शिवाजी के कार्यों के प्रति उसकी सहानुभूति है, तथापि बीजापुर का नमक खाने के कारण वह अपने स्वामी की

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ १६।
२. ,, ,, २४।
३. ,, ,, ५६१।
४. ,, ,, १३।
५. ,, ,, ३१।
६. ,, ,, ३०।
७. ,, ,, ६७।

आज्ञा का पालन करता है ।[१] वह धर्म के विपरीत कोई कार्य नहीं कर सकता। केवल सन्धि करवाने के लिए शिवाजी की प्रार्थना से तोरणदुर्ग के नीचे अफजलखां और शिवाजी के मिलने का प्रबन्ध कर देता है ।[२]

हनूमत्पूजक—वह एक आदर्श हिन्दू पुजारी है। नियम से नित्य-कर्म करने वाला, गले में तुलसी की माला को धारण करने वाला, भुजा और वक्षस्थल पर रामचन्द्र जी के चिह्नों को धारण करने वाला[३] वह पुजारी अतिथि-पूजन को अपना धर्म समझता है। हनुमान जी के प्रति उसे हार्दिक श्रद्धा है ।[४] वह भूत, भविष्य और वर्तमान का कथन कर सकता है। यन्त्र के एक कोष्ठ में सुपारी रखवा कर वह गौरसिंह को देश की परिस्थिति बताता है कि तुम्हारे पुरोहित कन्या सहित कोंकण देश चले गए हैं[५] और उदयपुर की ओर उपद्रव होने के कारण तुम्हें भी वहीं जाना चाहिये। उसका शिवाजी के कार्यों से भी सम्बन्ध प्रतीत होता है। उसके मन्दिर से लेकर पूना तक प्रति दो कोस की दूरी पर आश्रम हैं, जहां सन्यासी, भक्त और विरक्त रहते हैं। इन्हीं की सहायता से वह गौरसिंह और श्यामसिंह को शिवाजी की सेवा में भेज देता है ।[६]

भूषण कवि—वीर रस की कविता करने वाले भूषण एक प्रसिद्ध कवि हैं। पहिले वे दिल्लीश्वर की सेवा में थे, परन्तु उसके अभिमान को सहन न कर सकने के कारण किसी वीर पुरुष को ढूँढते हुए दक्षिण की ओर आये ।[७] उन्हें अपने कवित्व पर बहुत अधिक अभिमान है और वे किसी के क्रीतदास नहीं हो सकते। भूषण वीर रस की कविताओं को सुना कर शिवाजी से बहुत अधिक प्रशंसा और पारितोषिक प्राप्त करते हैं ।[८] शिवाजी भूषण कवि को अपने आश्रय में रखते हैं और वे वीर रस की कविता द्वारा सैनिकों का उत्साह बढ़ाते हैं ।[९] दिल्ली आने के प्रसंग पर वे शिवाजी को उत्साहित करके स्वयं भी साथ जाते हैं।

रहमत खां—वह बीजापुर-दरबार का एक सेनापति और रुद्रमण्डल दुर्ग का अध्यक्ष है। वह वीर, स्वामिभक्त और उपकार को न भूलने वाला है। दुर्ग के

१. 'शिवराजविजय' पृ० ६८ ।
२. ,, ,, ६६ ।
३. ,, ,, १०३ ।
४. ,, ,, ६६ ।
५. ,, ,, ६३-६४ ।
६. ,, ,, १०३-१०४ ।
७. ,, ,, १४१ ।
८. ,, ,, १४३ ।
९. ,, ,, २४५ ।

शत्रुओं द्वारा छीन लिए जाने पर भी वह कायरतापूर्ण मृत्यु का वरण नहीं करता, अपितु खड्ग खींच कर अकेला ही युद्ध के लिए तत्पर हो जाता है।[1] उसकी वीरता से प्रभावित होकर शिवाजी उसे स्वतन्त्र कर देते हैं। बीजापुर का नमक खाने के कारण वह शिवाजी की सेवा स्वीकार नहीं कर सकता। शिवाजी द्वारा किये गये उपकार के बदले में वह उन्हें सूचित करता है कि आपकी सेना में कुछ ऐसे भी द्रोही हैं, जो छल से अपने को राज-भक्त दिखाते हुये विद्रोहाचरण करते हैं।[2]

मौलवी—यह अरबी भाषा का एक वृद्ध कवि है, जो औरंगजेब को कविता सुनाया करता है।[3] उचित और अनुचित आचरण की मर्यादा को ध्यान में रख कर वह औरंगजेब द्वारा शिवाजी को कैद करने को उचित नहीं समझता। वह शिवाजी को मुक्त करने के लिए औरंगजेब से प्रार्थना करता है, परन्तु औरंगजेब उसके कथन की अवहेलना कर देता है।[4]

'शिवराजविजय' में व्यास जी ने विविध चरित्र प्रस्तुत किये। उन्होंने प्रदर्शित किया कि यदि हमारे देश और समाज में शिवाजी जैसे पराक्रमी, नीतिनिपुण, देशभक्त, धर्म और जाति के लिए जीवन उत्सर्ग करने वाले वीर पुरुष, रघुवीरसिंह के सदृश सरल-हृदय, स्नेही, स्वामिभक्त और अपमानित होकर भी स्वामी तथा देश का हित साधने वाले सैनिक, गौरसिंह जैसे अनेक विद्याओं में निष्णात, सफल योजनाओं के निर्माता, जिस किसी प्रकार कार्य को सिद्ध करने वाले, पराक्रमी और स्वामिभक्त सेनापति हों, तो हमारा समाज और देश उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। इसकी उन्नति को औरंगजेब जैसे पराक्रमी सम्राट् तथा जयसिंह जैसे वीर और नीतिनिपुण सेनापति भी नहीं रोक सकते। इन वीरों के चरित्रों को पढ़ कर प्रत्येक हिन्दू का हृदय गौरव की प्रेरणा और पूर्वजों के प्रति सम्मान की भावना से भर जाता है।

———

१. शिवराजविजय पृ० ३६७।
२. ,, ,, ३७५।
३. ,, ,, ४५५।
४. ,, ,, ४५६-५७।

पंचम अध्याय

शिवराजविजय–४

संवाद - देशकाल - उद्देश्य

संवाद, देशकाल और उद्देश्य ये तीन तत्व उपन्यास के महत्वपूर्ण अंग होते हैं। यहाँ इन पर विचार किया जा रहा है।

१. संवाद

पात्रों के पारस्परिक वार्तालाप को संवाद या कथोपकथन कहा जाता है। संवाद कवि के कौशल को अभिव्यक्त करते हैं और चमत्कार के परिचायक हैं। संवादों का उचित प्रयोग पाठक को पात्रों के व्यक्तित्व के सामीप्य का अनुभव कराता है। यद्यपि उच्च कोटि के प्राचीन गद्य लेखकों—दण्डी, बाण और सुबन्धु—ने संवादों को विशेष महत्व नहीं दिया, तथापि प्राचीन लघु कथाओं—पंचतन्त्र और हितोपदेश आदि में संवादों के उत्तम उदाहरण प्राप्त होते हैं।

कथा में संवादों का महत्व—संवाद प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कथावस्तु के विकास में और पात्रों की विशेषताओं को व्यंजित करने में सहायक होते हैं। चरित्र के विकास के लिए संवादों का उपयोग अधिक होता है।[1] इन कार्यों में असमर्थ होने पर मनोरंजक, स्वाभाविक और सरस संवाद भी उपन्यास की दृष्टि से महत्वहीन हैं। संवाद कथा-वस्तु के ही एक भाग होने चाहिये, अन्यथा वे विजातीय प्रतीत होंगे। संवादों द्वारा राजनीतिक, साहित्यिक, सामाजिक अथवा धार्मिक सिद्धान्तों के विवादों का निर्णय करना कुछ आलोचक उचित नहीं मानते।

संवादों की विशेषतायें—संवादों में स्वाभाविकता, सार्थकता और नाटकीयता ये तीन गुण होने चाहिये। संवादों का पात्र के व्यक्तित्व के अनुकूल होना उनकी

---

१. Investigations show that while dialogue may frequently be employed in the evolution of the plot—the action moving (as often in the drama) beneath conversation—it's principal function is in direct connection with character.

डब्लु० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १५४।

स्वाभाविकता है। साधारण बौद्धिक योग्यता और असाधारण बौद्धिक योग्यता वाले, अथवा विभिन्न स्तर के पात्रों की भाषा और भावों की अभिव्यक्ति में निश्चित रूप से अन्तर होता है। अतः भाषा, वाक्य संगठन, कला और भावों की दृष्टि से संवाद पात्र के व्यक्तित्व के अनुकूल होने चाहिये। परिस्थिति के अनुरूप कथावस्तु से सम्बन्धित होना संवादों की सार्थकता है। संवादों का सरल, स्पष्ट और रोचक होना, परिस्थितियों के अनुसार उनसे भावों तथा आवेगों की अभिव्यक्ति होना, उनमें स्फूर्ति, प्रत्युत्पन्नमतित्व और पाठकों को प्रभावित करने की सामर्थ्य होना उनकी नाटकीयता है। ये अभिनेय भी हो सकते हैं। उपन्यास में संवादों का केवल यही अर्थ नहीं है कि स्त्री-पुरुषों के दैनिक प्रयोग में आने वाले कथनोपकथनों को निबद्ध कर दिया जावे, किन्तु उनमें नाटकीय गति, शक्ति और पैनेपन का सन्निवेश होना चाहिये। इस परीक्षा की कसौटी पर 'शिवराजविजय' के संवादों की परीक्षा प्रस्तुत की जा रही है।

२. शिवराजविजय में संवादों का महत्व

'शिवराजविजय' में कथा-वस्तु के विकास और चरित्रचित्रण दोनों दृष्टियों से संवादों का महत्व है। कथावस्तु को प्रगति देने के साथ ही संवाद पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को अभिव्यक्त करते हैं। गौरसिंह और यवनयुवक के निम्न संवाद द्वारा—

गौरसिंहः—कुतो रे यवनकुलकलंक !

यवनयुवकः—आः ! वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः ? भारतीयकन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृंगलांगूलविहीनानां हिन्दूपदव्यवहार्याणां च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटक्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः—(सक्रोधं विहस्य) वयमपि तु त्वांकागतसत्त्ववृत्तयः शिवस्य गणा अत्रैव निवसामः, तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव त्वं दीर्घदावदहने पतंगायितोऽसि।

यवनयुवकः-अरे रे वाचाल ! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समायातां ब्राह्मणतनयां सपदि प्रयच्छत, तत्कदाचिद्दयया जीवतोऽपित्यजेयम्, अन्यथा मदसिभुजंगिन्या दष्टाः क्षणात् कथावशेषाः संवत्स्यर्थ।[1]

कथा के सूत्र—"इसी यवन युवक ने ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया था और इसके हाथ से छूट कर कन्या ब्रह्मचारि-गुरु के आश्रम में गई थी, अब वह पुनः इसको बलपूर्वक छीनना चाहता है"—के विकास के साथ गौरसिंह और यवनयुवक की चरित्रगत विशेषतायें भी व्यञ्जित होती हैं।

द्वितीय निश्वास में सन्यासी और दौवारिक के मध्य मनोरंजक संवाद है।

१. 'शिवराजविजय' पृ० २७-२८।

सन्यासी-वेष-धारी गौरसिंह दौवारिक की धार्मिक भावनाओं को उकसा कर और पुनः उत्कोच देकर उसकी परीक्षा लेने का उद्योग करता है। दौवारिक भी अपनी कर्तव्य-निष्ठा का परिचय देता है—

सन्यासी—सत्यं क्षान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि सन्न्यासिनः, ब्रह्मचारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्याः, आत्मानमपरिचाययन्तोऽपि च प्रवेष्टव्याः।

दौवारिकः—सन्न्यासिन्! सन्न्यासिन्! बहूक्तम्, विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिकधर्मरक्षाव्रती, यश्च सन्न्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनांच सन्न्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोंकणदेशभूमिः, तस्यैव महाराजशिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः।[1]

सन्यासी—तद् यदि त्वं मां प्रविशन्तं न प्रतिरुन्धेस्तदधुनैव परिष्कृतं पारदभस्म तुभ्यं दद्याम्, यथा त्वं गुंजामात्रेणापि द्वापंचाशत्संख्याकतुलापरिमितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः।[2]

दौवारिकः—हंहो! कपटसन्न्यासिन्! कथं विश्वासघातं स्वामिवञ्चनं च शिक्षयसि? ते केचनान्ये भवन्ति जारजाताः, य उत्कोचलोभेन स्वामिनं वंचयित्वाऽऽत्मानमन्धतमसे पातयन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः सन्न्यासिनो हस्तं धृत्वा) इतस्तु सत्यं कथय, कस्त्वम्? कुत आयातः? केन वा प्रेषितः?[3]

इस संवाद से एक ओर लेखक ने दौवारिक की स्वामिभक्ति और कर्तव्य-निष्ठा अभिव्यक्त की है तथा दूसरी ओर शिवाजी की राजनीति-निपुणता, धर्म-निष्ठा और योग्य व्यक्ति को परखने की समर्थता प्रकट की है।

संवादों द्वारा चरित्र-चित्रण का विकसित रूप "यशवन्तसिंह—शिवाजी", "जयसिंह - शिवाजी", "औरंगजेब - आरब्यकवि", 'औरंगजेब - मुअज्जम" और "औरंगजेब - रामसिंह" आदि सम्वादों में प्राप्त होता है। "यशवन्तसिंह - शिवाजी" संवाद से शिवाजी की धर्म, जाति और देश के प्रति उत्कट प्रेम भावना, संकल्प, दृढ़ता, वीरता और वाग्मिता का परिचय मिलता है। वे मुगलों की दासता स्वीकार करके अपने ही देश–वासियों को मुगलों के अधिकार में समर्पित कर देने की प्रतिज्ञा करके आये यशवन्तसिंह के हृदय में. जाति और देशप्रेम की भावना भर देने में सफल होते हैं। शिवाजी यशवन्तसिंह की वीरता की और उसके धर्मप्रेम की प्रशंसा

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३७-३८। २. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ३६।
३. " " ४०।

करते हैं, मुसलमानों के अत्याचारों का वर्णन करते हैं, किन्तु साथ ही यह भी कहते हैं कि यशवन्तसिंह ही इन अत्याचारियों की सहायता कर रहा है। शिवाजी के उद्देश्य से सहमत होता हुआ भी यशवन्तसिंह प्रतिज्ञा के बन्धन में बंधा हुआ कहता है—

यशवन्तसिंहः —दूतप्रवर ! दिल्लीश्वरं महाराष्ट्रैः सह योत्स्ये—इति कथयित्वा समायातोऽस्मि, तद् योत्स्ये ।[1]

शिवाजी इस उत्तर से उत्तेजित होकर कहते हैं—

महादेवः —सत्यं योत्स्यते, स्ववंशजातानामेव क्षत्रियबालकानां वक्षश्छुरिकाभिर्विदारयिष्यते सद्यश्छिन्नब्राह्मणकन्धरविगलद्रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते । यवनहस्तेष्वधिकारं समर्प्य महामांसदिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते ।[2]

"जयसिंह-शिवाजी" संवाद में शिवाजी के तेज और वाक्पटुता को अभिव्यक्त करके भी कवि ने उनकी वाग्मिता व्यर्थ कर दी। शिवाजी से प्रभावित होकर जयसिंह कहते हैं—

जयसिंहः—वीर ! अस्मेदेशे स्त्रियोऽपि तव गीतीर्गायन्ति, भारतस्य सुपुत्रोऽसि, भारतस्य रत्नमसि, आर्यवंशस्य ध्वजोऽसि । सत्यास्ते स्वप्नाः । अनुपमं तवोद्देश्यम् । भगवती सफलयतु तव मनोरथान् ।[3]

किन्तु इस प्रकार शिवाजी के उद्देश्य से सहमत होकर भी वे सहायता के लिये तत्पर नहीं होते और स्पष्ट कह देते हैं—

जयसिंहः—वीर ! वर्धस्व ! शास्त्रश्रवणैरेव केशाः श्वेतिताः सन्ति न त्वातपतापेन । तत्र न बहु वचनीयम् । किन्तु प्रवञ्चनं नांगीचिकीर्षत्येष वृद्धः ।[4]

इन संवादों से शिवाजी, यशवन्तसिंह और जयसिंह की चरित्रगत विशेषताओं की अभिव्यक्ति के साथ ही उनके स्वभाव की विभिन्नताओं की भी प्रतीति होती है।

संवादों द्वारा ही लेखक ने औरंगजेब के व्यक्तित्व को स्पष्ट किया कि वह अपनी प्रतिज्ञा से पलट जाने वाला, तरह तरह के बहाने उपस्थित करने वाला, पुत्र के भी अनुरोध को ठुकरा देने वाला[5], प्रियजनों और उपकार करने वालों के भी विनाश की कामना करने वाला है।[6]

'शिवराजविजय' के संवाद चरित्रगत विशेषताओं को व्यक्त करके कथा को आगे बढ़ाने में समर्थ हैं। और कथा-वस्तु के अभिन्न अंग हैं।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २०२ । २. 'शिवराजविजय' पृ० २०३ ।
३. ,, ,, ३५२ । ४. ,, ,, ३४६ ।
५. ,, ,, ४५६ । ६. ,, ,, २०१, ४५८ ।

३. शिवराजविजय के संवादों की विशेषतायें

पहले कहा जा चुका है कि उत्तम संवाद स्वाभाविकता, सार्थकता और नाटकीयता के गुणों से युक्त होते हैं। 'शिवराजविजय' के संवादों में ये तीनों गुण हैं।

स्वाभाविकता—यद्यपि पात्र के व्यक्तित्व के अनुसार भाषा का प्रयोग संवादों में स्वाभाविकता का आपादन करता है, तथापि भाषा की यह स्वाभाविकता एक सीमा तक ही हो सकती है। लोक-भाषा की रचनाओं में कुछ सीमा तक अवश्य ही पात्रों की भाषा की बौद्धिक सीमा निश्चित की जा सकती है तथा कुछ शब्दों अथवा रीतियों के प्रयोग द्वारा स्वाभाविकता निहित हो सकती है। किन्तु संस्कृत भाषा जो लेखक के युग की जनभाषा नहीं है, उसमें इस प्रकार की पूर्ण स्वाभाविकता का समावेश करना कठिन है। इस कारण विभिन्न स्तरों के पात्रों—राजा, सेनापति, अनुचर, महाराष्ट्रीय, राजपूत, हिन्दू, मुसलमान आदि की भाषा में स्वाभाविक भेद के होते हुये भी व्यास जी 'शिवराजविजय' में उनकी भाषागत विभिन्नता को प्रदर्शित नहीं कर सके। इस काव्य में सभी पात्रों की भाषा का स्तर प्रायः एक सा है। देवशर्मा और गणेशशास्त्री जैसे विद्वान्, ब्राह्मण तथा संस्कृतज्ञों की उक्तियों का तो कहना ही क्या, लिखना पढ़ना न जानने वाले शिवाजी की भाषा में भी कलात्मकता, प्रांजलता और माधुर्य का अभाव नहीं है, जिसकी प्रशंसा संस्कृत के मर्म को न समझने वाले मुसलमान पात्र भी करते हैं—

> शास्तिखानः —साधु, साधु, पण्डित साधु, तव पाण्डित्येऽतितरां प्रसीदामि।
> चाटुकाराः —आम् आम्, साधु, साधु, महानेष पण्डितः।
> शास्तिखानः — अहो माधुर्यं संस्कृतभाषायाः।
> चाटुकाराः —ओः अपूर्वमेव माधुर्यमिदम्।[1]

मुसलमानों के संवादों की संस्कृत भी प्रौढ़, प्राञ्जल तथा अलंकृत है। यथा —

शास्तिखानः —तत्किं प्रधानचिक्कणदुर्गं कोंकणदेशरत्नमिव च पुण्यनगरं हस्तीकृतवत्यपि मयि शिवोऽधुना मया सह युयुत्सते? युद्धेन वा महारोगस्यैतस्योपायं चिकीर्षति? एवं चेज्जम्बुकस्य बुभुक्षितकेसरिखरनखराक्रान्तोरणजिघृक्षा विफला।[2]

भावों की दृष्टि से इस काव्य के संवाद अधिक स्वाभाविक हैं। पात्रों के भाव उनके स्तर के अनुरूप हैं। सन्यासी के उपस्थित होने पर दौवारिक कठोर शब्दों का प्रयोग करता है, किन्तु गौरसिंह का परिचय प्राप्त होने पर अपने व्यवहार से लज्जित होकर क्षमा-प्रार्थना करता है। शिवाजी जिस स्तर के व्यक्ति से वार्ता

१. शिवराजविजय' पृ० १५७। २. 'शिवराजविजय' पृ० १५८।

करते हैं, उनका भाव तदनुरूप होता है। देवशर्मा आदि ब्राह्मण या अन्य आदरणीय व्यक्ति से वार्ता करते हुये उनकी विनम्रता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। युवती रोशनआरा से वार्ता करते हुये नारीजन के प्रति विनय और शिष्टाचार प्रकट होता है। मुअज्जम से वार्ता करते हुये वात्सल्य व्यञ्जित होता है। भावाभिव्यंजना की दृष्टि से "शिवाजी-यशवन्तसिंह" और "शिवाजी-जयसिंह" संवाद उत्कृष्ट और शक्तिशाली हैं। शिवाजी राज्यलोभ से रहित होकर केवल धर्मरक्षा के लिए तत्पर हैं और यशवन्तसिंह को राज्य देने के लिये तैयार हैं। यशवन्तसिंह भी राज्यलोभ से रहित है। वह शिवाजी के पराक्रम से प्रसन्न होते हुये भी उनकी चौर और लुण्ठक-वृत्ति को पसन्द नहीं करता। इससे शिवाजी के हृदय की भावनायें स्फुटित होती है।

महादेव: —महाराज ! मैवम्। किं कुत्रापि कुतश्चिदपि समश्रौषीच्छ्रीमान्, यन्निरपराधान् पथिकान् लुण्ठति महाराष्ट्रराजः? आहोस्वित् कस्यापि भित्तिं भित्वा, धनमपजहार श्रीमान् ? किन्तु लुण्ठकानामेषामत्याचारमसहमानो लुण्ठका यथा न लुण्ठेयुस्तथैतान् दण्डयति। सन्ति प्रबलाः परिपन्थिनः, भवादृशाश्च तेषामेव दत्तहस्तावलम्बनाः। धर्मो हि सर्वथा रक्षणीयः। सतीत्वध्वंसनमन्दिरावपातादिरूपो घोरतरो दुराचारः सर्वथा प्रतिरोद्धव्यः। आततायिनश्चावश्यमेव दण्डनीयाः—इति क्वचन परवशतया नीतिविशेषस्याप्याश्रयोऽपेक्ष्यते—इति किमियं लुण्ठकता ?[1]

संवादों की सार्थकता—"शिवराजविजय" के संवाद सार्थक हैं। इनका प्रयोग परिस्थिति और प्रकरण के अनुरूप किया गया है। सम्पूर्ण काव्य में एक भी इस प्रकार का संवाद नहीं है जिसे हम निरर्थक या अप्राकरणिक कह सकें। शाइस्ताखां की तथा उसके दरबारियों की मनोवृत्तियों का ज्ञान पंचम निश्वास में हुये उनके संवाद से होता है और उससे शिवाजी के अभियान की सफलता व्यंजित होती है। शिवाजी के देहली में कैद हो जाने पर उनकी मुक्ति के लिये किये गए प्रयत्नों और उनकी निष्फलता का वर्णन "औरंगजेब-आरब्यकवि", "औरंगजेब-रामसिंह" और "औरंगजेब-मुअज्जम" के संवादों में किया गया है। इन प्रयत्नों की निष्फलता तथा औरंगजेब की कुटिल मनोवृत्ति[2] को प्रदर्शित करके कवि ने शिवाजी के देहली से निकल जाने के औचित्य की रक्षा की है।

संवादों की नाटकीयता—'शिवराजविजय' के संवादों में नाटकीयता है। नाटकीयता का अभिप्राय है कि जिस प्रकार नाटक के संवाद रोचक और सजीव होते हैं, उसी प्रकार इस काव्य के संवाद भी रोचक और सजीव हैं। नाटकीय

---

१. 'शिवराजविजय' पृष्ठ २००-२०१।

२. अस्तु, जयसिंहो शिवश्च द्वावेव भारते दुर्दमनीयौ वीरौ, तदेकः कारागारे बद्धः अपरश्च तत्र विनश्येच्चेत्, साधु भवेत्। 'शिवराजविजय' पृ० ४५८।

संवादों के सदृश अनेक संवाद अभिनेय हैं। व्यास जी ने अनेक स्थानों पर अभिनयोचित अंग-संचालन के निर्देश दिये हैं—

दुर्गाधीशः —मन्ये क्षत्रियोऽसि।

सादी—आम्, श्रीमन्।

दु०—(स्मित्वा) नान्येषामपत्यान्येवं तेजस्वीनि दृढहृदयानि प्रभुभक्तानि च भवन्ति। (पुनः सम्मुखमवलोक्य) किं ते नाम ?

सा०—(अञ्जलिं बद्ध्वा) आर्य ! मां रघुवीरसिंह इति वदन्ति जनाः।

दु०—चिरंजीव ! (क्षणं विरम्य), अस्तु सम्प्रति दुर्गाद् बहिरेव साम्मुखीने हनूमन्मन्दिरे रात्रिमतिवाह्य, श्वस्तु किंचिदुदञ्चति मरीचिमालिनि, अत्रागत्य, पत्रादिकं गृहीत्वा महाराजनिकटे यातासि।

रघुवीरः —बाढम्।[1]

संवादों में रोचकता और सजीवता के साथ सरलता और स्पष्टता भी निहित है। कुछ संवादों के दीर्घ और विवादात्मक होते हुये भी अधिकांश संवाद रोचक और संक्षिप्त हैं। दीर्घ संवादों में भी रोचकता है। "शिवाजी-यशवन्तसिंह" संवाद दीर्घ होने पर भी प्रवाह, तीक्ष्णता, सजीवता, प्रत्युत्पन्नमतित्व और भावाभिव्यक्ति द्वारा हृदय को प्रभावित करने में समर्थ होता है।

४. शिवराजविजय के संवादों का वर्गीकरण

'शिवराजविजय' में संवादों की प्रचुरता है। उनका अनेक प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है। इस स्थल पर भावाभिव्यक्ति के आधार पर वर्गीकरण किया जा रहा है।

(क) देश, जाति और धर्म की गौरव भावना को अभिव्यंजित करने वाले संवाद —

इस काव्य में इस प्रकार के संवादों का प्राचुर्य है। प्रथम निश्वास में "ब्रह्मचारिगुरु-योगिराज" के संवाद द्वारा और द्वितीय निश्वास में "शिवाजी-गौरसिंह" तथा "शिवाजी-गोपीनाथ" के संवादों द्वारा यह भावना व्यक्त हुई है। तानरंग गायक का वेष धारण किए हुये गौरसिंह की अफजलखां के साथ होने वाली वार्ता से भी यही भाव ध्वनित होता है। इस भावना को व्यंजित करने वाले "शिवाजी-यशवन्तसिंह" तथा "शिवाजी-जयसिंह" संवाद सबसे अधिक महत्वपूर्ण और ओजस्वी हैं। शिवाजी के ओजपूर्ण शब्द निश्चय ही पाठकों के हृदयों को इन भावनाओं से तरंगित करने में समर्थ होते हैं। इन संवादों से वीर रस की अभिव्यंजना भी होती है।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ११६-११७।

(ख) क्रोधावेश अभिव्यक्त करने वाले संवाद—

इस प्रकार के संवाद इस काव्य में कम हैं। प्रथम निश्वास में "गौरसिंह-यवनयुवक" संवाद में क्रोध अभिव्यक्त हुआ है, नवम निश्वास में रघुवीर-सिंह-शिवाजी संवाद में रघुवीरसिंह को विश्वासघाती समझते हुए शिवाजी क्रोध से भर जाते हैं। दशम निश्वास में "राघवस्वामी–क्रूरसिंह" संवाद में भी क्रोध की अभिव्यञ्जना है। एकादश निःश्वास में "यवनभिषक्-शिवाजी" संवाद में यद्यपि यवनभिषक् के व्यवहार से शिवाजी कुपित होते हैं, तथापि इसकी समाप्ति हास्य के साथ हुई है।

(ग) प्रणय-संवाद—

वीररस प्रधान इस गद्यकाव्य में प्रणय के अनेक प्रसंग हैं। "शिवाजी-रोशनआरा" और "रघुवीर-सौवर्णी" के प्रणय प्रसंगों में प्रणय-संवादों की रचना हुई है। यह प्रणय "शिवाजी-रोशनआरा" के प्रसंग में परिपाक को प्राप्त नहीं हुआ। रोशनआरा के शिवाजी के प्रति अनुरक्त होने पर भी शिवाजी उसके प्रति अनुरक्त नहीं हैं। अतः इनके संवादों में वह मार्मिकता नहीं, जो "रघुवीर-सौवर्णी" के संवादों में है। "शिवाजी-रोशनआरा" के तीन संवाद इस काव्य में हैं। प्रथम संवाद अष्टम निश्वास के आरम्भ में है, जबकि परस्पर अपरिचित शिवाजी और रोशनआरा का प्रथम साक्षात्कार होता है और दोनों में पूर्व अनुराग की भावना उत्पन्न होती है।[1] द्वितीय संवाद नवम निश्वास के प्रारम्भ में है।[2] रोशनआरा की प्रणय भावनाओं को जान कर शिवाजी उसके पास आते हैं। इस संवाद में प्रणय की एकांगी भावना है। शिवाजी को देख कर अनेक भावनाओं से अभिभूत रोशनआरा प्रथम तो शब्दों का उच्चारण ही नहीं कर पाती, किन्तु शिवाजी द्वारा बार-बार अनुरोध करने पर अपनी प्रणय-भावनाओं को व्यक्त करती है। रोशनआरा के कथन से शिवाजी के प्रति उसका तीव्र अनुराग, सतत ध्यान और मिलन की उत्कट उत्कण्ठा अभिव्यञ्जित होती है। लेखक ने छोटे-छोटे स्वाभाविक, संक्षिप्त, प्रवाहपूर्ण और मार्मिक वाक्यों द्वारा रोशनआरा के उद्‌गार प्रकट किए हैं।[3] तृतीय संवाद भी नवम निश्वास में है। कवि ने रोशनआरा की प्रेम-भावना का इसमें आदर नहीं किया। शिवाजी रोशनआरा को देहली भेजते समय केवल औपचारिकता का प्रदर्शन करते हैं। इस प्रकार रोशनआरा के भावों की गम्भीरता और महत्व को समाप्तप्राय सा कर दिया गया है।[4]

प्रणय की मार्मिकता रघुवीर-सौवर्णी के संवादों में अधिक है। चतुर्थ

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २७०-२७४। २. 'शिवराजविजय' पृ० ३२९-३३३।
३. " " ३३१-३३२। ४. " " ३६१।

निश्वास में दो भोले किशोरों का परस्पर दर्शन उनमें पूर्वराग उत्पन्न करता है। सप्तम निश्वास में दोनों की परस्पर वार्ता से विदित होता है कि दोनों का भविष्य अन्धकारमय है। कहां तो निर्धन अकिंचन रघुवीर और कहां सेनापति गौरसिंह की बहिन सौवर्णी। दोनों के हृदय एक दूसरे के प्रति इतने अनुरक्त हैं कि सौवर्णी की प्रेमभावनाओं से प्रभावित रघुवीर प्रतिज्ञा करता है —"या तो वह सौवर्णी से ही विवाह करेगा या ब्रह्मचारी ही रहेगा।"[1] "सौवर्णी-रघुवीर" का प्रणय वियोग में और भी पुष्ट होता है, जिसकी पुष्टि लेखक ने अगले संवादों द्वारा की है। देहली से लौटने पर रघुवीर द्वारा प्रणय की अभिव्यक्ति करने पर भावनाओं से अभिभूत सौवर्णी कुछ बोल नहीं पाती। कई स्थानों पर प्रेम की अभिव्यक्ति मूक संवादों द्वारा है और उनके प्रणय का उद्‌भाव कविकृत वर्णनों द्वारा होता है।[2]

(घ) युवती-वार्तालाप—

व्यास जी ने युवतियों के वार्तालाप के भी कुछ सरस प्रसंग प्रस्तुत किए हैं। इन संवादों में यौवन का अल्हड़पन लिए हुए परस्पर छेड़ छाड़ है। किन्तु जब यह छेड़-छाड़ असह्य हो जाती है, तो उसका अन्त भी परस्पर सद्‌भाव में होता है। भूला भूलने के बाद चारुहासिनी, विलासिनी और सौवर्णी के संवाद में ये विशेषतायें हैं—

विलासिनी—अस्माकं सौवर्णी न किमपि वेत्ति।
चारुहासिनी—(समन्दस्मितम्) आम् न किमपि। यतो मुग्धा।
विला०—अज्ञातयौवना च।
चारु०—(सहासम्) सत्यं दुग्धमुखीयम्।
(उभे सौवर्णीमालोकमालोकं जहसतुः)
सौवर्णी—(सकपट-कोपम्) भवतीभ्यामेव रोचन्ते भवत्योः क्ष्वेलनानि।
विला०—मैवं, मैवं, क्षमस्व, त्वं सर्वं वेत्सि।
चारु०—इयं रासपंचाध्यायीं पठन्त्यात्मानमपि विस्मरति। गीतगोविन्दस्य च "उरसि मुरारेरुपहितहारे"—इत्यादिगीतानि गायन्त्येव बाष्प-प्रवाहेणांजनम्, अधररागम्, वक्षः, रोमराजीं च क्षालयति, तत् किं न वेत्ति? किन्त्वस्मदग्र, आत्मानं मुग्धतममेव परिचाययति। (पुनरुभे जहसताम्)।
सौवर्णी—सख्यौ! यदि मामेवं, ह्रेपयथस्तदहं गच्छामि। युवमेवात्र विहरतम्। (इत्युदतिष्ठत्)।

---

१. शिवराजविजय' पृ० २३७। २. 'शिवराजविजय' पृ० ४६६-४६७।

विला० – (सौवर्ण्या बाहुं गृहीत्वा) उपविश उपविश। नाऽऽवामेवं परस्तादालपिष्याव:।[1]

(च) हास्य-संवाद—

इस काव्य में हास्य-संवाद बहुत कम हैं। इस सम्बन्ध में दो संवाद उल्लेखनीय हैं। रोशनआरा की सहचरी मालिन के वेष में शिवाजी को एकान्त में ले जा कर उन पर सुन्दर युवतियों को भ्रष्ट करने का आरोप लगाती है और शिवाजी के स्तम्भित हो जाने पर अपना स्वरूप प्रकट करके रोशनआरा का सन्देश देती है।[2] इस स्थल पर शिवाजी की अवस्था की अनुभूति से पाठक अवश्य ही हास्य में निमग्न हो सकते हैं।

हास्य का दूसरा संवाद यवन भिषक् के वेष में आये हुये मुरेश्वर और शिवाजी का है। भिषक् के कथनों से कुपित शिवाजी चपत लगा कर उसकी दाढ़ी खींच लेते हैं। कृत्रिम दाढ़ी के अलग हो जाने पर मुरेश्वर प्रकट होता है और हास्य का वातावरण उपस्थित हो जाता है।[3]

(छ) चाटु-संवाद—

व्यास जी ने शाइस्ताखां और उसके दरबारियों के मध्य एक चाटु-संवाद भी दिया है। शाइस्ताखां के दरबारियों में बदरुद्दीन और मोहम्मदगनी हरेक बात में शाइस्ताखां की हां में हां मिलाते है और नीतिपूर्ण कथन करने वाले चांद खां की हँसी उड़ाते हैं। स्वामी की चाटुकारिता में लगे हुये वे दोनों चांदखां के उचित कथन का भी समर्थन नहीं करते—

चान्द्रखान: —मैवम्, किन्त्वल्पाऽपि परिपन्थिसेना, द्वैगुण्येनैवाऽऽक्रमणीया इत्येषोऽस्माकमभ्यास:। तेषां च द्विगुणाऽपि चतुर्गणाऽपि च शत्रुसेना कतिपयैरेव सादिभिर्योद्धव्या, निरोद्धव्येति च विलक्षणो वीरस्वभाव:।

शास्तिखान: —(धूममाकृष्य हसित्वेव) चान्द्रखानो वयोवृद्ध इति साम्प्रतं पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्योऽपि बिभेति। (चान्द्रस्तु कोष्णकिरातस्वरसमिव क्रोधमवगीर्य, तूष्णीक एव तस्थौ)।

महामदगणि: —आम्, आम्, आम्, सम्यगाज्ञप्तमार्यैः। उन्दुरव इवैव ते गिरिकुहरेषु निवसन्ति।

बदरदीन: —हुं हुं हुम्, अन्धकारेषु बहिर्भवन्ति, ताड्यमानाश्च पलायमाना: पुन: कुहराणि श्रयन्ते।[4]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २२४-२२५। २. 'शिवराजविजय' पृ० ४५१-४५२।
३. ,, ,, ४३६। ४. ,, ,, १५०-१५१।

उपर्युक्त विवेचन से 'शिवराजविजय' के संवादों की विशेषतायें स्पष्ट हैं। इनसे कथावस्तु के विकास के साथ चरित्र-चित्रण भी हुआ है। ये संवाद कथानक के ही अंश हैं। संवादों में स्वाभाविकता, सार्थकता और नाटकीयता के तत्व हैं। यद्यपि भाषा की दृष्टि से दो संवाद पूर्ण स्वाभाविक नहीं हैं, तथापि भावों की दृष्टि से वे स्वाभाविक हैं। संवादों में निरर्थक तथा अप्राकरणिक वाक्यों का समावेश नहीं है। संवाद सरल, स्पष्ट, रोचक और मार्मिक हैं। यद्यपि ये साधारणतः संक्षिप्त हैं, तथापि कहीं कहीं लम्बे हो जाने पर भी इनकी रोचकता क्षीण नहीं होती। कवि ने संवादों के अनेक रूप इस उपन्यास में दिये हैं। संवादों की दृष्टि से यह उपन्यास एक सफल और उत्कृष्ट कृति है।

५. देशकाल

उपन्यासों, विशेषकर ऐतिहासिक उपन्यासों में स्वाभाविकता और सजीवता उत्पन्न करने के लिए देश तथा काल की योजना पर विशेष ध्यान देना होता है। कथानक के देश विशेष और काल विशेष में बँधे होने से उनकी उपयुक्त योजना होनी चाहिये। देशकाल के अन्तर्गत ही आचार-विचार, वातावरण, रीतिरिवाज रहन-सहन, राजनीतिक, और सामाजिक विचारधारा, प्रकृतिचित्रण आदि का समावेश होता है।[१] इस दृष्टिकोण से 'शिवराजविजय' की आलोचना निम्न रूप में प्रस्तुत की गई है—

(अ) काल योजना।

(ब) भौगोलिक विवरण—विभिन्न राज्य, नगर और ग्राम, दुर्ग, पर्वत. नदियां, समुद्र।

(स) राजनीतिक वातावरण।

(द) रणनीति, सैन्य-योजना, युद्ध और शस्त्र।

(इ) सामाजिक विचारधारा—

क. समाज का संगठन और वर्णाश्रम।

ख. धर्म, देवी देवता और पूजा।

ग. लोक-विश्वास।

घ. प्रणय और विवाह।

---

१. In this term we include the entire milieu of a story—the manners, customs, ways of life, which enter in to it's composition as well as it's natural background or environment.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १५८।

ङ. खानपान ।

च. वस्त्राभूषण ।

छ. उत्सव ।

ज. शिक्षा और कला ।

झ. क्रीडा-विनोद ।

ञ. यातायात के साधन ।

(फ) प्रकृति चित्रण ।

(अ) काल योजना

'शिवराजविजय' की कथा ब्रह्मचारि-गुरु के आश्रम-वर्णन से प्रारम्भ होकर शिवाजी के देहली से वापिस आ कर सम्पूर्ण महाराष्ट्र पर अधिकार कर लेने के साथ समाप्त होती है। गद्यकाव्य के ऐतिहासिक होने के कारण इसकी काल-योजना का पूरा विवरण दिया जा सकता है।

शिवाजी-अफजलखां युद्ध इस गद्यकाव्य की प्रथम ऐतिहासिक घटना है। शिवाजी ने १० नवम्बर १६५९ ई० को अफलजखां का वध किया था। कथा के अनुसार इससे पहले दिन पण्डित गोपीनाथ शिवाजी से मिलने आए। इसी दिन गौरसिंह यवन युवक के वस्त्रों से प्राप्त बीजापुर दरबार का गुप्त पत्र शिवाजी के पास लाये। यवन युवक से प्राप्त पत्र को गौरसिंह शीघ्र से शीघ्र शिवाजी के पास लाये होंगे। अतः यवन युवक का वध उससे पहले दिन अर्थात् ८ नवम्बर १६५९ ई० की सायंकाल में होना चाहिए। इसी दिन प्रातःकाल गौरसिंह पुष्पचयन करते हुए दिखलाये गए हैं। इस प्रकार उपन्यास का प्रारम्भ ८ नवम्बर १६५९ ई० से है।

उपन्यास की अन्तिम ऐतिहासिक घटना मोहब्बतखां को हरा कर भगाया जाना है। औरंगजेब ने १८ नवम्बर १६७० ई० को मोहब्बतखां को दक्षिण का सेनापति बना कर भेजा था।[1] सन् १६७२ ई० में मोहब्बतखां ने मराठों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया, किन्तु इस युद्ध में उसकी पराजय हुई और वर्षाकाल के बाद उसे वापिस बुला लिया गया।[2] अतः इस उपन्यास की कथा का अन्त सन् १६७२ ई० के मध्य तक निर्धारित होता है। अब प्रत्येक निश्वास की काल-योजना पर विचार किया जाता है।

ऊपर की विवेचना के अनुसार प्रथम निश्वास का समय ८ नवम्बर १६५९ ई० की प्रातः से सायंकाल तक है और द्वितीय निश्वास का समय ९ तथा १० नवम्बर १६५९ ई० है। तृतीय निश्वास यवन युवक से रक्षा की गई बालिका

१. जदुनाथ सरकार कृत 'शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स' पृ० १७८-१७९।

२. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ११३।

के अभिभावक देवशर्मा पुरोहित के आगमन से प्रारम्भ होकर गौरसिंह द्वारा स्ववृत्तान्त वर्णन पर समाप्त होता है। ८ नवम्बर को यवन युवक के वध के पश्चात् कन्या के अभिभावक की खोज प्रारम्भ की गई होगी तथा गौरसिंह को अफजलखां के वध के बाद ११ नवम्बर को विश्राम मिला होगा। अतः इस निश्वास का समय ११ नवम्बर १६५६ ई० होना चाहिए। चतुर्थ निश्वास की कथा रघुवीरसिंह के तोरण दुर्ग जाने से प्रारम्भ होकर सौवर्णी को नक्षत्र-माला पहिनाने के साथ समाप्त होती है। रघुवीर शाइस्ताखां द्वारा पूना पर अधिकार किए जाने का समाचार लेकर आया है।[1] शाइस्ताखां ने पूना पर अधिकार ९ मई १६६२ ई० को किया तथा शिवाजी ने १२ अप्रैल १६६३ की रात को खां पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का निश्चय करके शिवाजी ने इसके कुछ ही पूर्व भविष्य जानने के लिए रघुवीरसिंह को भेजा होगा। यदि इसका समय अनुमान से सात दिन पहिले का स्वीकार कर लिया जावे तो रघुवीर ५ अप्रैल १६६३ ई० की सायंकाल तोरणदुर्ग जाकर ६ अप्रैल १६६३ ई० की प्रातःकाल लौट आया होगा।

पंचम निश्वास शिवाजी के वेष बदल कर घूमने से प्रारम्भ होकर शाइश्ताखां के दरबार से उनके लौटने के साथ समाप्त होता है। शिवाजी आक्रमण करने से पहले दिन शाइस्ताखां के दरबार में गये, अतः वे ११ अप्रैल १६६३ ई० को वहां गये होंगे। इससे पहिले शिवाजी प्रच्छन्न वेष में घूमते हुये भूषण कवि से मिले। यह मिलन चतुर्थ अंक की घटना के बाद ६ से १० अप्रैल तक किसी भी दिन हो सकता है। अतः इस निश्वास का समय ६ अप्रैल से लेकर ११ अप्रैल १६६३ ई० तक का होना चाहिये। षष्ठ निश्वास यवनभिक्षु के वेष में माल्यश्रीक के राजमार्ग पर बैठने से प्रारम्भ होकर उसी रात में शिवाजी की यशवन्तसिंह से भेंट के साथ समाप्त होता है। शिवाजी के खां के दरबार में जाने पर माल्यश्रीक राजमार्ग पर बैठ गए हैं, अतः इसका समय ११ अप्रैल की सायं से लेकर रात्रि तक है। षष्ठ निश्वास में पाठकों को पूना की अन्धकारपूर्ण गलियों में घुमाने के बाद कवि सप्तम निश्वास में उन्हें तोरणदुर्ग की उपत्यकाओं के उद्यान में युवतियों के सरल संवाद सुनाता है। इसी निश्वास में शिवाजी द्वारा शाइस्ताखां पर अभियान करने से पूर्व रोशनआरा पकड़ कर लाई जाती है और शिवाजी रात में खां के महल पर आक्रमण करके कुशलतापूर्वक लौट आते हैं। इस आधार पर इस निश्वास का समय १२ अप्रैल की प्रातः से लेकर रात्रि पर्यन्त होना चाहिये। अष्टम निश्वास तोरणदुर्ग में कैद रोशनआरा की अवस्था के प्रदर्शन से प्रारम्भ होकर मुअज्जम के महाराष्ट्र भ्रमण के साथ समाप्त होता है।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १२८।

इस अंक में मुअज्जम के सेना सहित दक्षिण आने और शिवाजी के सेनापति द्वारा सूरत पर अधिकार किये जाने का वर्णन है। शाइस्ताखां की पराजय के बाद औरंगजेब ने मुअज्जम को दक्षिण भेजा था अतः वह १६६३ ई० के अन्त में आया होगा। शिवाजी ने सूरत को ५ जनवरी १६६४ ई० को लूटा था। रोशनआरा से मिलकर आते हुये शिवाजी को सूरत की विजय तथा मुअज्जम के अपहरण का समाचार प्राप्त हुआ। सूरत से सैनिकों के लौटने का सम्भावित समय सात दिन हो सकता है। इस आधार पर शिवाजी और रोशनआरा की भेंट १२ जनवरी १६६४ ई० को और मुअज्जम के अपहरण का समय इससे पहिले दिन ११ जनवरी १६६४ ई० को हो सकता है। शिवाजी ने अगले ही दिन मुअज्जम से भेंट करके उसके महाराष्ट्र-भ्रमण का प्रबन्ध किया, अतः मुअज्जम-शिवाजी भेंट १३ जनवरी तथा मुअज्जम का महाराष्ट्र-भ्रमण १४ जनवरी का होना चाहिए। इस प्रकार इस निश्वास का समय १२ जनवरी से १४ जनवरी १६६४ ई० का है।

नवम निश्वास शिवाजी-रोशनआरा मिलन से प्रारम्भ होकर रुद्रमण्डल-दुर्ग-विजय के पारितोषिक वितरण के साथ समाप्त होता है। इसकी मुख्य कथा शिवाजी-जयसिंह सन्धि है। औरंगजेब के आदेश से जयसिंह दिलेरखां के साथ ३० सितम्बर १६६० ई० को दक्षिण भेजा गया। जुलाई १६६५ ई० में जयसिंह से मिलने के लिये शिवाजी उसके पास गये। सन्धि के अनुसार शिवाजी ने मुगलों की सहायता करते हुये नवम्बर १६६५ ई० में बीजापुर के फाल्टन तथा टट्टौर क़िलों को जीता।[1] शिवाजी जिस समय रोशनआरा से मिले वह शरद्ऋतु थी।[2] रोशनआरा से मिलने के बाद उन्हें जयसिंह के आने का समाचार मिला।[3] अतः यह समय अक्टूबर १६६४ ई० होना चाहिए। कवि ने रुद्रमण्डलदुग-विजय का वर्णन सम्भवतः फाल्टन या टट्टोर दुर्ग के विजय के लिए किया होगा। इस प्रकार इस निश्वास का समय अक्टूबर १६६४ से प्रारम्भ होकर नवम्बर १६६५ ई० तक होना चाहिये। दशम निश्वास की कथा रुद्रमण्डल-दुर्ग की विजय के पारितोषिक वितरण के अगले दिन से प्रारम्भ होकर शिवाजी के मुगल दरबार में उपस्थित होने के साथ समाप्त होती है। शिवाजी ५ मार्च १६६६ ई० को मुगल दरबार के लिये प्रस्थान करके ११ मई १६६६ ई० की सायंकाल वहां पहुँचे और १२ मई १६६६ ई० को औरंगजेब के सामने दरबार में उपस्थित हुये। अतः इस निश्वास का समय नवम्बर १६६५ से लेकर १२ मई १६६६ ई० तक का होना चाहिये।

---

१. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ६४।

२. 'शिवराजविजय' पृ० ३१८।

३. 'शिवराजविजय' पृष्ठ ३३६।

एकादश निश्वास शिवाजी के देहली में कैद कर लिए जाने से प्रारम्भ होकर उनके देहली से निकल जाने के साथ समाप्त होता है। शिवाजी को मुगल-दरबार में उपस्थित होने के अगले दिन कैद कर लिया गया और वे १७ अगस्त १६६६ ई० को निकल गये। इस प्रकार इस निश्वास का समय १३ मई १६६६ ई० से लेकर १७ अगस्त १६६६ ई० तक का है। द्वादश निश्वास के प्रारम्भ में सौवर्णी और चारुहासिनी की वार्ता से ज्ञात होता है कि शिवाजी शीघ्र ही आने वाले हैं।[1] शिवाजी दिसम्बर १६६६ ई० में महाराष्ट्र पहुंचे थे। अन्तिम घटना मोहब्बतखां के पलायन की है, अतः इस निश्वास का समय दिसम्बर १६६६ ई० से प्रारम्भ होकर १६७२ ई० के मध्य तक होना चाहिये।

(ब) भौगोलिक विवरण

'शिवराजविजय' में व्यास जी ने कुछ भौगोलिक स्थितियों का उल्लेख किया है। महाराष्ट्र के अतिरिक्त अन्य अनेक राज्यों, नगरों, नदियों, पर्वतों और समुद्रों का उल्लेख उनकी विशेषताओं के सहित है। शिवाजी के कार्य-क्षेत्रों— दुर्गों की स्थिति भी प्रदर्शित की गई है। कुछ स्थलों पर भौगोलिक स्थिति का उल्लेख यथार्थ नहीं है। यथा—ब्रह्मपुत्र नदी ब्रह्मदेश को विभक्त करती है,[2] जबकि ब्रह्मपुत्र नदी का ब्रह्मदेश (बर्मा) की सीमा से कोई सम्बन्ध नहीं। शिवाजी यमुना नदी को पार करके दूसरे तट पर आकर देहली में प्रविष्ट हुये[3], जबकि दक्षिण देश से देहली आने वालों को यमुना नदी पार नहीं करती पड़ती। दिल्ली में घूमते हुये जामा मस्जिद के पास से शिवाजी को जयसिंह द्वारा बनवाया गया ज्योतिर्यन्त्रालय दिखाई दिया,[4] जामा मस्जिद के पास घोड़े पर चढ़े व्यक्ति को सुदूर स्थित ज्योतिर्यन्त्रालय दिखलाई देना सम्भव नहीं। शिवाजी के दुर्गों के विषय में भी स्थिति पूर्णतः तथ्य के अनुकूल प्रतीत नहीं होती। शिवाजी के राज्य की सीमाओं का विवरण भी अतिरंजित है। 'शिवराजविजय' के भौगोलिक विवरण कवि के वर्णन के अनुसार इस प्रकार हैं—

विभिन्न राज्य— कथा का क्षेत्र महाराष्ट्र होते हुये भी लेखक ने शिवाजी को भारतवर्ष की आशा प्रकट करते हुये[5] भारत के अन्य राज्यों का उल्लेख किया। शिवाजी के समय में दक्षिण के कुछ भागों को छोड़ कर सभी पर मुसलमानों का अधिकार था। औरंगजेब का राज्य बंग, कलिंग, अंग, मगध, मत्स्य, मैथिल, काशी, कोशल, कान्यकुब्ज, चोल, पांचाल, कांची, शौरसेन, सिन्धु

१. शिवराजविजय पृ० ४६२।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५८।
३. ,, ,, ४२३।
४. ,, ,, ४२५।
५. ,, ,, २४।

और सौराष्ट्र सभी राज्यों में विस्तृत हो चुका था।[1] राजपूताना के अनेक राज्यों ने मुगलों की आधीनता स्वीकार कर ली थी। दक्षिण में बीजापुर और गोलकुन्डा दो स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य थे। आमेर और मरुदेश (मारवाड़) के राजा औरंगजेब के सेनापति थे। महाराष्ट्र राज्य के कोंकण, खानदेश और कल्याण तीन मुख्य भाग थे।[2] भारत के बाहर के भी अनेक देशों का लेखक ने उल्लेख किया है। गजनी[3] से आकर महमूद गजनवी और गोरदेश[4] से आकर मोहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण किये। काम्बोज देश के लुटेरे राजपूताने में आकर मनुष्यों का अपहरण करते थे।[5] शिवाजी के पराक्रम की गाथा हीरात, काम्बोज, गान्धार, और समरकन्द तक फैली थी।[6] उनके भेरीनाद पारसीक, आरब्य, काम्बोज, त्रिवृत्त, चीन, बर्मा, और सिंहल तक गूँजते थे।

नगर और ग्राम—यमुना के किनारे बसी हुई दिल्ली भारत की राजधानी[7] थी। काशी के विश्वनाथ तथा बिन्दुमाधव मन्दिरों का औरंगजेब ने विनाश किया था।[8] पूना नगर पहिले शिवाजी का निवास था पर उस पर शाईस्ताखां ने अधिकार कर लिया था।[9] बीजापुर के बादशाह से शिवाजी का पहला युद्ध हुआ था।[10] भोजपुर, पाटलिपुत्र, मुद्गलपुर और वर्द्धमान पूर्वी-भारत के प्रसिद्ध नगर थे।[11] उदयपुर मेवाड़ की राजधानी थी, जहाँ के राजा ने औरंगजेब को भी कैद कर लिया था। आमेर राज्य की राजधानी आमेर थी। राजा जयसिंह ने जयपुर नगर की स्थापना की थी।[12] सूरत पर शिवाजी के सेनापति स्वर्णदेव ने आक्रमण किया था।[13] द्वारका से तीर्थयात्री जहाज द्वारा मुम्बापुरी होकर रामेश्वर की यात्रा के लिए जाते थे। जोधपुर मारवाड़ की राजधानी थी। अयोध्या के क्षत्रिय पूर्णतया पराजित हो चुके थे। महाराष्ट्र से देहली के मार्ग में अहमदनगर, बरार, इन्दौर, उज्जैन, वृन्दावन और मथुरा पड़ते थे।[14] शिवाजी ने राज्य-स्थापना के बाद सतारा नगरी को अपना निवास-स्थान बनाया था।[15]

दुर्ग—उस काल में राज्यों की दृढ़ता दुर्गों से थी। व्यास जी ने अनेक दुर्गों का उल्लेख किया है। दुर्गों के इतिहास और निर्माण के विषय में आपका दिया

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १८७। २. 'शिवराजविजय' पृ० २८६।
३. ,, ,, १६। ४. ,, ,, २१।
५. ,, ,, ८६। ६. ,, ,, ४१३।
७. ,, ,, ४१२। ८. ,, ,, १७५।
९. ,, ,, १३५। १०. ,, ,, २४।
११. ,, ,, १४, ५८। १२. ,, ,, २६३।
१३. ,, ,, २८५। १४. ,, ,, ४१२।
१५. ,, ,, ५४६।

गया विवरण ऐतिहासिक तथ्यों से कुछ भिन्न है। उपन्यास में तीन दुर्ग मुख्य रूप से शिवाजी के कार्य क्षेत्र हैं।

प्रतापदुर्ग को नीरा नदी के किनारे सन् १६५६ ई० में शिवाजी ने एक ऊँची चट्टान पर बनवाया था।[१] व्यास जी ने इसकी स्थिति भीमा नदी के तट पर प्रदर्शित की है।[२] इस किले से शिवाजी ने अफजलखां को पराजित किया और देहली से आकर सर्व प्रथम उसी दुर्ग में प्रवेश किया।[३] तोरणदुर्ग नीरा नदी के उद्गम पर पूना से दक्षिण-पश्चिम दिशा में २० मील पर अवस्थित था तथा सर्वप्रथम उसी पर शिवाजी ने अधिकार किया था।[४] तोरणदुर्ग में शिवाजी का दुर्गाध्यक्ष रहता था। इसी दुर्ग में शिवाजी ने रोशनआरा को रखा।[५] सिंह-दुर्ग सह्याद्रि पर्वतमाला के पूर्व में पूना से ८ मील दक्षिण में अवस्थित था। पहिले इसका नाम कोन्डाना था, पर शिवाजी ने इस पर अधिकार करके सिंह-गढ़ नाम रखा।[६] यह शिवाजी का निवास-स्थान था।[७] शिवाजी शाईस्ताखां पर आक्रमण करने के लिए इसी दुर्ग से गये और आक्रमण करके पुनः यहीं आ गए।[८] इन दुर्गों के अतिरिक्त कल्याण प्रदेश के दुर्ग, राजदुर्ग, रायगढ़, चाकण, पनाला आदि दुर्गों का उल्लेख है। रुद्रमण्डलदुर्ग सम्भवतः एक काल्पनिक नाम है। जयसिंह से सन्धि करने के उपरान्त शिवाजी ने बीजापुर के फाल्टन और टट्टोर नामक किलों को विजय किया था। सम्भवतः व्यास जी ने इनके लिए ही रुद्रमण्डल-दुर्ग नाम लिया हो।

पर्वत और समुद्र—कथास्थान के पर्वत बहुल होने पर भी व्यास जी ने किसी पर्वत का नाम नहीं दिया। शिवाजी के राज्य-विस्तार का उल्लेख करते हुए विन्ध्य पर्वत का नाम आता है तथा इसी प्रसंग में पूर्व और पश्चिम समुद्र का उल्लेख मात्र है।[९]

नदियाँ—कवि ने भारत की अनेक नदियों का उल्लेख किया है। गंगा नदी के किनारे वाराणसी नगर है।[१०] यमुना के किनारे देहली बसी है।[११] सिन्धु नदी भारत की सीमान्त है। इसे पार करके महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया था।[१२] शिप्रा नदी के किनारे "यशवन्तसिंह-औरंगजेब" युद्ध हुआ था।[१३]

---

१. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ६७-६८।
२. शिवराजविजय पृ० ३३-३४।
३. शिवराजविजय पृ० ५०८।
४. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० ५६।
५. ,, ,, २६३।
६. ग्रान्ट डफ कृत 'हिस्ट्री आफ दी मरहट्टाज' पृ० २७।
७. ,, ,, २४।
८. शिवराजविजय पृ० २६२।
९. ,, ,, ५६०।
१०. ,, ,, ५८।
११. ,, ,, ४१२।
१२. ,, ,, २१।
१३. ,, ,, १६४।

गंगा और गण्डक के संगम पर विष्णु और शिव के मन्दिर हैं।[1] पद्मा और ब्रह्मपुत्र पूर्व-बंग में बहती हैं।[2] भीमा नदी पश्चिम समुद्र की ओर से निकल कर पूर्व समुद्र की ओर बहती है जिसके किनारे प्रताप-दुर्ग है।[3] सिंह दुर्ग से पूर्व दिशा में नीरा नदी बहती है।[4]

(स) राजनीतिक वातावरण

'शिवराजविजय' में कवि ने तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का सम्यक् निरूपण किया है। मुहम्मद गोरी द्वारा भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के अनन्तर इस देश में प्राधान्यतः मुसलमानों का ही राज्य रहा। शिवाजी के समय लगभग सारा देश मुसलिम आधिपत्य में था। उस समय की राजनीतिक स्थिति इस प्रकार से थी—

शिवाजी द्वारा स्वाधीनता के प्रयत्न—शिवाजी के समय में महाराष्ट्र का बहुत सा प्रदेश बीजापुर के मुसलमान राजा के अधिकार में था, अतः स्वाधीनता के लिए प्रयत्न करते हुये शिवाजी की बीजापुर रियासत से शत्रुता बढ़ गई।[5] बीजापुर की ओर से शिवाजी से युद्ध करने के लिए अफजलखां नामक सेनापति भेजा गया, किन्तु वह मारा गया।[6] इसके बाद औरंगजेब ने शाईस्ताखां को दक्षिण प्रदेश का सूबेदार बना कर भेजा। वह चाकन-दुर्ग पर अधिकार करके और पूना को जीत कर पूना में शिवाजी के ही महल में रहने लगा।[7] उसकी सहायता के लिए औरंगजेब ने यशवन्तसिंह को भी भेजा, किन्तु शिवाजी ने उससे मिल कर शाईस्ताखां पर रात्रि में सफल आक्रमण किया। शाईस्ताखाँ को औरंगजेब ने वापिस बुला लिया और शाहजादा मुअज्जम को दक्षिण का शासक बना कर भेजा। शिवाजी के सैनिकों ने छल से उसे कैद कर लिया। अब आमेर के राजा जयसिंह शिवाजी से युद्ध करने के लिए आये।[8] इनकी शक्ति के सामने शिवाजी को सन्धि के लिए विवश होना पड़ा। सन्धि के अनुसार शिवाजी ने अनेक किले यवनों को दे दिये तथा बीजापुर के युद्ध में उनकी सहायता की। सन्धि के उपरान्त शिवाजी को दिल्ली बुलाया गया। दिल्ली में मुगल-दरबार में शिवाजी को अपमान का घूँट पीना पड़ा।[9] औरंगजेब ने शिवाजी को उनके निवास स्थान पर ही कैद कर लिया।[10] शिवाजी किसी प्रकार दिल्ली से निकल कर दक्षिण पहुँचे। दक्षिण पहुँच कर उन्होंने मुगलों को दिए हुए सम्पूर्ण किले जीत

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५८।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५८।
३. ,, ,, ३३-३४।
४. ,, ,, २४६।
५. ,, ,, २४।
६. ,, ,, ७२।
७. ,, ,, १३५।
८. ,, ,, ३३६।
९. ,, ,, ४३०।
१०. ,, ,, ४३५।

लिए।[1] औरंगजेब ने मोहब्बत-खां को सेनापति बनाकर भेजा। वह महाराष्ट्रों द्वारा भगा दिया गया।[2] इस प्रकार शिवाजी ने महाराष्ट्र को पूर्ण रूप से स्वाधीन कर लिया।

मुसलिम अत्याचार—व्यास जी ने मुसलमानों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों का विस्तृत और ज्वलन्त वर्णन किया है। यद्यपि मुसलमान अल्प संख्या में थे, तथापि शासक होने के कारण वे हिन्दुओं पर नानाविध अत्याचार करते थे। वे हिन्दुओं की लड़कियों को उठाकर ले जाते थे, वेदों और धर्मशास्त्रों को नष्ट करते थे, मन्दिरों को तोड़ते थे,[3] गायों की हत्या करते थे। मुसलमान दस्यु हिन्दुओं को दास बना कर बेच देते थे।[4] ब्राह्मणों का तिरस्कार करना उनकी स्वाभावगत विशेषता थी।[5] औरंगजेब विशेष रूप से हिन्दुओं पर अत्याचार करता था। उसने काशी के विश्वनाथ और बिन्दुमाधव मन्दिरों तथा वृन्दावन के गोविन्ददेव मन्दिर को नष्ट करवा दिया।[6] देवतीर्थों में गिराये गये मन्दिरों के सामान से उसने मस्जिदों की रचना करवाई और केवल हिन्दुओं को पीड़ित करने के लिए ही गोहिंसा, मूर्तिखण्डन, जजिया कर लगाना आदि अत्याचार किये।[7] मुसलमानों के इन भयंकर अत्याचारों से स्वाभिमानी हिन्दुओं के हृदय विद्रोह की भावना से प्रदीप्त होने स्वाभाविक ही थे।

हिन्दुओं में एकता का अभाव—हिन्दुओं में वीरता का अभाव नहीं था, किन्तु परस्पर ऐक्य न होने के कारण उन्हें विदेशियों और विजातीयों की आधीनता स्वीकार करनी पड़ी। राजपूत राजा ही हिन्दू स्वतन्त्रता के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने वाले शिवाजी को औरंगजेब की आधीनता में लाने के लिए उद्यत थे।[8] राजपूत राजाओं ने अपनी कन्यायें यवनों को देकर, और उनसे सम्बन्ध स्थापित करके अपने आपको यवनों के अर्पित कर दिया था।[9]

राजपूतों की नीति—राजपूत राजाओं ने यद्यपि अपने आपको यवनों के अर्पित कर दिया था तथापि उनके अन्दर स्वाधीनता की भावना विद्यमान थी। उनकी सबसे बड़ी राजनीति अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहना था। यशवन्तसिंह अपने देश की परतन्त्रता और मुसलिम अत्याचारों की पीड़ा का अनुभव करते हुये भी[10] और जयसिंह शिवाजी के उद्देश्य के सहमत होते हुये भी[11] प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए ही शिवाजी से युद्ध करने के लिए तत्पर हुये थे।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५३१। २. 'शिवराजविजय' पृ० ५५९।
३. ,, ,, १४। ४. ,, ,, ८६।
५. ,, ,, १६८। ६. ,, ,, १७५।
७. ,, ,, २०५। ८. ,, ,, १७१।
९. ,, ,, ४००। १०. ,, ,, १८७-१८६।
११. ,, ,, ३५२।

औरंगजेब की नीति—औरंगजेब किसी पर विश्वास नहीं करता था। विशेष रूप से हिन्दुओं पर तो उसका बिल्कुल ही विश्वास नहीं था। यशवन्तसिंह से वह प्रच्छन्न रूप से द्वेष रखता था[1] और जयसिंह के विनाश की कामना करता था।[2] उसकी नीति से उसके बन्धु-बान्धव भी विपरीत हो गए थे।[3]

शिवाजी और औरंगजेब की राजनीति की तुलना—शिवाजी और औरंगजेब दोनों ही अपने अधिकृत राज्यों के स्वामी थे, किन्तु दोनों की नीति में बहुत अन्तर था। औरंगजेब के राज्य में स्त्रियों का अपहरण, मन्दिरों का निपातन, तीर्थों का भ्रशंन होता था, जिससे उसकी प्रजायें दोनों हाथ उठा कर उसे शाप देती थीं। शिवाजी का राज्य बाहर ही नहीं, अपितु प्रजाओं के अन्त:करण में भी था। उनके राज्य में जाति आदि का विचार किए बिना सब समान रूप से आनन्द से रहते थे।[4] औरंगजेब के राज्य में हितैषी व्यक्तियों से भी विश्वासघात किया जाता था, उनका लुंठन, हत्या और दाह हो सकता था। शिवाजी के राज्य में मुअज्जम जैसा शत्रु भी स्वतन्त्रता से घूम सकता था।[5] शिवाजी ने औरंगजेब के अनेक उपकार किए—उसके पुत्र और पुत्री को सुरक्षित रूप से ससम्मान वापिस किया, बीजापुर के युद्ध में उसकी सहायता की और सन्धि करके उसका विश्वास किया। औरंगजेब ने विश्वासी तथा उपकारी शिवाजी को कैद करके हीन आचरण किया।

आशा का सन्देश—व्यास जी ने पराधीन हिन्दू जाति की इस दुरवस्था में आशा का सन्देश दिया। औरंगजेब की नीति के कारण उसका शासन शिथिल हो गया था। दक्षिण में बीजापुर और गोलकुन्डा उसके शत्रु थे, शिवाजी से उसका बैर प्रत्यक्ष था, राजपूताने में उदयपुर राज्य उसका बैरी था, जोधपुर तथा जयपुर राज्य तिरस्कृत होकर उसके विरोधी बन गए थे और पंजाब में सिख उसके विरुद्ध थे। सम्पूर्ण परिस्थितियाँ हिन्दू-स्वातन्त्र्य के अनुकूल थीं। यदि सब मिल कर औरंगजेब का विरोध करते तो दिल्लीश्वर के प्रासाद टूट जाते तथा उसकी देह का भी पता न चलता।[6]

व्यास जी द्वारा प्रस्तुत इस राजनीतिक वातावरण में एक दोष का अनुभव होता है। महाराष्ट्रों के इस स्वाधीनता-संग्राम में व्यास जी ने दो कल्पित राजपूत सेनापतियों को ही शिवाजी की विजयों का श्रेय प्रदान किया। कवि इस कल्पना में स्वतन्त्र थे, किन्तु यदि वे माल्यश्रीक आदि महाराष्ट्रीय सेनापतियों को कुछ अधिक महत्व प्रदान कर सकते तो यह अधिक स्वाभाविक होता।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १६६। २. 'शिवराजविजय' पृ० ४५८।
३. ,, ,, ५५७। ४. ,, ,, २७१-२७२।
५. ,, ,, ३१२। ६. ,, ,, ५५७।

(द) रणनीति, सैन्ययोजना, युद्ध और शस्त्र

शिवाजी की रणनीति और सैन्य-योजना बिल्कुल स्पष्ट है। वे कूटनीति द्वारा शत्रु को वश में करते थे और युद्ध का आश्रय सबसे अन्त में लेते थे। दुर्गों की रक्षा का वे समुचित ध्यान रखते थे। शिवाजी की रणनीति में उनकी गुप्तचर-योजना आवश्यक अंग थी। शत्रु की प्रत्येक गतिविधि और योजना का उनको पता लग जाता था। महाराष्ट्र में प्रत्येक दो कोस पर आश्रम बने हुये थे। इनमें सैनिक-शिक्षा प्रदान की जाती थी और गुप्तचरों को रखा जाता था।[1] बीजापुर दरबार की गुप्त योजना का परिचय पाकर शिवाजी ने 'शठे शाठ्यं समाचरेत्" नीति का आश्रय लेकर अफजलखां को फंसा लिया, गुप्त रूप से उसके शिविर के चारों ओर सेना नियत करके उसका वध किया और मुसलिम सेना को मार कर भगा दिया। शिवाजी शत्रु के भेदों का पता लेने के लिये केवल गुप्तचरों पर ही भरोसा नहीं रखते थे, अपितु स्वयं भी वेष बदल कर घूमा करते थे। वे वेश बदल कर शाईस्ताखां के दरबार में गये तथा शत्रु पर आक्रमण की योजना बनाई।

शिवाजी की युद्ध-योजना में नीति और साहस दोनों का स्थान था। यशवन्तसिंह को पक्ष में करके उन्होंने केवल २५ सैनिकों के साथ रात्रि में पूना पर सफल आक्रमण किया। शिवाजी दुर्ग-युद्ध के लिये सदा तैयार रहते थे। जयसिंह के आगमन का समाचार पाकर तोरण-दुर्ग से तोप की ध्वनि का संकेत हुआ, तदनन्तर सभी किलों से तोप की ध्वनि हुई और युद्ध की तैयारी की सूचना प्रसारित हो गई।[2] दुर्ग-युद्ध में शिवाजी अत्यन्त कुशल थे। रुद्रमण्डल-दुर्ग की विजय में उनकी रणनीति-निपुणता का परिचय मिलता है।[3] युद्ध के लिये प्रस्थान करने से पूर्व वे मांगलिक आयोजन करते थे[4] तथा विजय के उपरान्त सैनिकों को पुरस्कार देते थे।

शिवाजी की सेना और रक्षा-व्यवस्था उत्तम थी। 'शिवराजविजय' के अनुसार प्रत्येक दुर्ग की व्यवस्था के लिए एक अध्यक्ष होता था।[5] दुर्ग प्रान्त की रक्षा के लिए ५०० अश्वारोहियों पर एक नायक था।[6] १०० अश्वारोहियों पर एक अध्यक्ष[7] और ५००० सैनिकों पर सेनापति होता था।[8] कोटपाल, सैनिक, दौवारिक और सन्देशहर होते थे। राज्य-शासन के लिए सामन्तों और मण्डलेश्वरों की नियुक्ति की जाती थी।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४५।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ३३६।
३. ,, ,, ३६४-३७०।
४. ,, ,, २५१।
५. ,, ,, ११४।
६. ,, ,, ३०६।
७. ,, ,, ३१५।
८. ,, ,, २४८।

मुसलमानों की रणनीति देश पर पूर्ण प्रभुत्व स्थापित करना थी। देश के शासक होने के कारण वे विलास-प्रिय हो गए थे। उनके सैन्य-शिविरों में भी विलास की सामग्रियाँ रहती थीं।[1] उनके शिविरों की रक्षा का उत्तम प्रबन्ध नहीं था। गौरसिंह गायक के वेष में अफजलखां के शिविर में, पद्मिनी के वेष में मुअज्जम के शिविर में और शिवाजी महादेव पण्डित के वेष में शाईस्ताखां के दरबार में अनायास ही प्रविष्ट हो गये। वहां इनको कोई भी नहीं पहचान सका और वे सरलता से अपना कार्य पूरा करके सुरक्षित चले आये। मुसलमान सैनिक शिवाजी से युद्ध करने में डरते थे। अफजलखां ने युद्ध न करके धोखे से शिवाजी को पकड़ने का उद्योग किया और शाईस्ताखां ने दुर्ग-युद्ध की भीषणता से डर कर सम्मुख युद्ध की नीति स्वीकार की। यवनों की सेना में अश्व सेना और पैदल सेना का महत्व था।

मुगल-सेना में जयसिंह रणनीति-कुशल थे। महाराष्ट्र जैसे प्रदेश को जीतने के लिए उन्होंने एक एक करके सभी दुर्गों को जीतने की योजना बनाई।[2] उनकी रणनीति में प्रतिज्ञा की रक्षा का महत्व भी बहुत अधिक था। वे युद्ध की हानियों को भी खूब समझते थे।[3]

दुर्ग-युद्ध और सम्मुख-युद्ध सेनाओं द्वारा लड़े जाते थे। 'शिवराजविजय' में रुद्रमण्डलदुर्ग के युद्ध का वर्णन है। दो सेनाओं के सम्मुख-युद्ध का वर्णन प्रायः नहीं है। शिवाजी के सैनिकों द्वारा अफजलखां के शिविर पर हमला करना यद्यपि सम्मुख-युद्ध कहा जा सकता है, तथापि वह भी पूर्ण रूप से सम्मुख-युद्ध नहीं है। कवि ने द्वन्द्वयुद्धों का भी वर्णन किया है। गौरसिंह-यवनयुवक और रघुवीरसिंह-क्रूरसिंह के द्वन्द्वयुद्धों का उल्लेख काव्य में है।

व्यास जी ने अनेक प्रकार के शस्त्रों का उल्लेख किया है। किलों पर आक्रमण का प्रतिरोध करने[4] तथा युद्ध की सूचना देने के लिए[5] तोपों का प्रयोग किया जाता था। सैनिक कन्धे पर बन्दूक रख कर पहरा दिया करते थे।[6] दूर से प्रहार करने के लिए धनुष से बाण फेंका जाता था और ये बाण तूणीर में रखे जाते थे।[7] असि या खड्ग फेंक कर भी प्रहार किया जाता था। सम्मुख युद्ध के लिए असि, खड्ग, शक्ति, चन्द्रहास, रिष्टि, तोमर, मुद्गर, भाला, प्रास, गदा आदि शस्त्रों का प्रयोग होता था। द्वन्द्व-युद्ध में असि का प्रयोग किया गया था। कुछ शस्त्र गुप्त रूप से रखे जा सकते थे। गुप्त-चछुरिका ऊपर से सामान्य डण्डी

१. 'शिवराजविजय' पृ० ११४-११५। २. 'शिवराजविजय' पृ० ३४१।
३. ,, ,, ३४१। ४. ,, ,, १४६।
५. ,, ,, ३५६। ६. ,, ,, ८७।
७. ,, ,, ४८७।

प्रतीत होती थी, परन्तु उसमें तेज छुरी छिपी रहती थी। हाथ में सिंहनख नामक हथियार पहिना जाता था जो दिखाई नहीं देता था। युद्ध में शरीर की रक्षा के लिए लौह-कवच और शिरस्त्राण पहिने जाते थे।

(इ) सामाजिक विचार धारा

व्यास जी ने सामाजिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी इस उपन्यास में कराया है। सम्भवतः उन्होंने इन स्थितियों का वर्णन अपने आदर्शों तथा विचारों के अनुरूप किया होगा, अथवा महाराष्ट्र से तीर्थयात्रा के लिए काशी आये व्यक्तियों के स्वरूप आदि को देखकर उनके विचार बने होंगे। 'शिवराजविजय' में महाराष्ट्र में हनुमान् जी के मन्दिरों को व्यास जी ने अधिक महत्व दिया। महाराष्ट्र में प्रचलित गणपति-पूजन और शिवाजी की आराध्य भवानी के किसी मन्दिर का उल्लेख नहीं है। भगवान एकलिंग के उपासक उदयपुर के राणाओं से आपने दुर्गा की आराधना कराई है। तथापि इस स्थल पर व्यास जी द्वारा प्रदर्शित स्थितियों का ही निरूपण किया जा रहा है।

क. समाज का संगठन और वर्णाश्रम—

हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण थे।[1] राज्य पहले तीनों वर्णों का रक्षक था।[2] हिन्दुओं में ब्राह्मणों का सबसे अधिक आदर और महत्व था। ब्राह्मणों का कार्य शिक्षा प्रदान करना,[3] राजकीय सन्देशों को ले जाना, पौरोहित्य, भगवान् का भजन और अध्ययन था। ब्राह्मण-वध से सामान्य जन डरते थे।[4] क्षत्रिय सैनिक होते थे। वे दूसरों की रक्षा करने वाले, पराक्रमी और युद्ध-कुशल होते थे। राजपूत क्षत्रिय इन गुणों में सबसे बढ़े हुये थे।[5] वैश्यों का कार्य तराजू लेकर दूकानदारी करना था।[6] समाज में उच्च कुलों का महत्व बहुत अधिक था।[7] काव्य में आश्रम-व्यवस्था का शुद्ध रूप नहीं दिया गया। कोई भी व्यक्ति सन्यासी हो सकता था। ये सन्यासी अलौकिक शक्तियों से युक्त होते थे।[8] इनकी वेषभूषा - काषायवस्त्र, तुम्बीपात्र, मस्तक पर राख का लेप और गले में रुद्राक्ष की माला होती थी।[9] उच्च वर्ग के सन्यासी सुन्दर घोड़े और शस्त्र रखते थे।[10] गुरुओं के आश्रम में विद्या पढ़ने वाले छात्र वटु होते थे।[11] वृद्धावस्था में उच्च-वर्ग के व्यक्ति काशी में रहने की इच्छा करते थे।[12] मुसलमानों में यवनभिक्षुओं का बहुत अधिक आदर था और उनको कहीं आने जाने की रोक नहीं थी।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३०६।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २४।
३. ,, ,, १२७।
४. ,, ,, ३६७।
५. ,, ,, १६८।
६. ,, ,, ४२३।
७. ,, ,, ३८२।
८. ,, ,, ४१४।
९. ,, ,, ३७।
१०. ,, ,, ४८४।
११. ,, ,, २।
१२. ,, ,, ३८६।

ख. धर्म, देवी देवता और पूजा—

हिन्दू और मुसलमान दो धर्मों का मुख्य रूप से प्रचार था। शिवाजी वैदिक सनातन धर्म के रक्षक थे।[1] इस उपन्यास में अनेक देवताओं का तथा महादेव, हनुमान् और रामचन्द्र के मन्दिरों का वर्णन है। सूर्य, काल, इन्द्र, वरुण, कुबेर, बलराम, यम, भवानी आदि हिन्दुओं के अनेक देवताओं का उल्लेख है। हनूमत्स्तोत्र-पाठ से कार्य की सिद्धि होती है[2] और हनुमान जी सब कार्यों को सिद्ध करते हैं।[3] हनुमान का प्रसाद विजय प्राप्त कराता है।[4] अद्भुत स्वरूप वाली दुर्गा ब्रह्माण्ड की रचना करने वाली जगदम्बिका हैं।[5] विष्णु क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ सोते हैं और भक्तों की रक्षा के लिए अवतार लेते है।[6] योगीजन समाधि लगाकर भगवान् का साक्षात्कार करते हैं तथा समाधि में उन्हें समय का वेग परिलक्षित नहीं होता।[7] मुसलमानों में शिया और सुन्नी दो मत हैं। इनमें सुन्नी मोहर्रम नहीं मनाते।[8]

ग. लोक-विश्वास—

अनेक प्रकार के लोक-विश्वासों का परिचय व्यास जी ने दिया है। भविष्य-कथनों में सामान्य जन का विश्वास था। योगीजन भूत और भविष्य को जान सकते थे।[9] हनूमत्पूजक ने गौरसिंह को भविष्य बताया।[10] देवशर्मा की शाईस्ताखां के साथ युद्ध में विजय की[11] और जयसिंह के साथ युद्ध में पराजय की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई।[12] रामचन्द्र-मन्दिर के अध्यक्ष ने वीरेन्द्रसिंह को पुत्र के कुशल से होने और भविष्य में मिलने का संकेत दिया।[13] यह विश्वास किया जाता था कि स्वप्न में किसी की वीर-गति देखना दीर्घायु का सूचक है।[14] युद्ध के लिए प्रस्थान करने से पूर्व मांगलिक कार्य किये जाते थे। शिवाजी ने शाईस्ताखां पर आक्रमण के लिए जाने से पूर्व देवशर्मा द्वारा भेजी गई माला धारण की और मांगलिक कार्य कराया।[15] आकस्मिक रूप से आग लग जाना और असमय में फूल खिलना अमंगल के सूचक थे। इनकी शान्ति हवन, विप्र-पूजन और दान से होती थी।[16] बायें नेत्र का फड़कना अमंगल का सूचक था।[17] हिन्दुओं में विश्वास

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५६०।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ३६२।
३. ,, ,, ३६१।
४. ,, ,, १३१।
५. ,, ,, ५२३-५२६।
६. ,, ,, १७३-१७५।
७. ,, ,, १५-१६।
८. ,, ,, ४७०।
९. ,, ,, २४।
१०. ,, ,, ६३-६४।
११. ,, ,, १२६-१३१।
१२. ,, ,, ३३७।
१३. ,, ,, ३००-३०१।
१४. ,, ,, ४६६।
१५. ,, ,, २५१।
१६. ,, ,, ३३७।
१७. ,, ,, ४०४।

था कि युद्ध में प्राणों को छोड़ने के पश्चात् मार्तण्ड-मण्डल में प्रवेश प्राप्त होता है और विजय प्राप्त होने पर कीर्ति तथा धर्म-रक्षा का पुण्य मिलता है।[1]

घ. प्रणय और विवाह—

इस विषय में व्यास जी ने अपने आदर्श उपस्थित किये हैं। उन्होंने स्वच्छन्द प्रणय का समर्थन न करके विवाह की मर्यादायें निर्धारित कीं। 'शिवाजी-रोशनआरा' प्रणय-प्रसंग में म्लेच्छ कन्या के साथ शिवाजी का विवाह कराने के लिए व्यास जी सहमत नहीं हो सके। रोशनआरा के स्वच्छन्द प्रणय का अन्तिम परिणाम रोशनआरा की मृत्यु हुई।[2] 'रघुवीरसिंह-सौवर्णी के स्वच्छन्द प्रणय को कवि ने मर्यादा में बांधा। खड्गसिंह, सौवर्णी का विवाह रामसिंह से निश्चित कर गए थे। यद्यपि प्रणययुगल को इस तथ्य का बोध नहीं था, तथापि व्यास जी ने पाठकों को इसका परिचय अवश्य दिया। दोनों समान-कुल के क्षत्रिय थे अतः उनका प्रणय योग्य था।[3] परस्पर प्रेम होने पर स्त्री और पुरुष को अन्य पुरुष या स्त्री का विचार मन में नहीं लाना चाहिये, अतः व्यास जी ने दोनों को प्रतिज्ञा-बद्ध कराया।[4] विवाह का उत्तरदायित्व माता पिता पर होता है। शिवाजी ने यह बात रोशनआरा से तथा रघुवीर ने सौवर्णी से कही। अभिभावकों को कन्या के विवाह की चिन्ता करनी ही चाहिये। कवि ने विवाह संस्कार का भी यत्किंचित् वर्णन किया है। विवाह से पूर्व लगन देखा जाता है। बारात के साथ वर कन्या-पक्ष के द्वार पर आता है। कन्या का घर और मार्ग सजाये जाते हैं। वाद्य बजते हैं। मंगलगान गाये जाते हैं। कन्यायें प्रासाद से फूल बरसाती हैं। लज्जा से शिथिलित कन्या को उसकी सखियां वर के समक्ष लाती हैं।

ङ. खानपान—

व्यास जी ने भोजन सम्बन्धी पदार्थों का विस्तार के साथ वर्णन किया है। कुछ द्रव्यों का विशेष सम्बन्ध मुसलमानों से और कुछ का हिन्दुओं से दिखाया गया है। मुसलमानों के आहार-द्रव्य प्रायः राजस और तामस हैं, हिन्दुओं के सात्विक हैं। यवन युवक के मुख से लहसन की गन्ध आती है[5] और वह ताम्रचूड़ (मुर्गे) का भक्षण करता है। द्वितीय निश्वास में मुसलमानी रसोईघर का वर्णन

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४०५।   २. 'शिवराजविजय' पृ० ५४१।

३. ,, ,, २३७।

४. (क) कौमार ब्रह्मचर्यव्रतेनैव गात्राणि जर्जरयिष्यामि त्वामेव वा परिणेष्यामीति सुदृढो मे निश्चयः। 'शिवराजविजय' पृ० २३७।

(ख) क्षत्रियकन्याहं, दृढा मे प्रतिज्ञा, तमेव वरयिष्यामि, ब्रह्मचर्येणैव वा शरीरहतकं शोषयिष्यामि। 'शिवराजविजय' पृ० ३६१।

५. शिवराजविजय पृ० २७।

हैं। वहां हरिद्रा, लशुन, मरिच, चुक्र, सौंफ, अदरक, हींग, राव, मुर्गे के अण्डों और मांस का बाहुल्य से प्रयोग होता है। उस स्थान पर मांस का कबाब बनाया जाता है, गरम यवागू थाली में परोसे जाते हैं, हींग से छोंके हुये व्यंजनों में इमली का रस मिलाया जाता है, पीसी हुई चटनी में जम्बीरी का रस निचोड़ा जाता है और कलई किए हुये ताम्बे के पात्रों में काँजी डाली जाती है।[1] मुसलमान तम्बाकू का प्रयोग बहुत अधिक करते हैं।[2] शिवाजी ने यह सुविधा रोशनआरा के लिए भी प्रदान की।[3] यवनों को बटेर, तीतर, कबूतर, सारस, बाज तथा उनके अण्डे पसन्द आते हैं। ये कबाब बहुत पसन्द करते हैं[4] और शिविर में तथा मार्गों पर जाते हुये भी मद्यपान करते हैं।[5]

हिन्दुओं के सात्विक आहार-द्रव्यों में दूध और दूध के बने हुए पदार्थों का प्राधान्य है। एलादि-मिश्रित भैंस का दुग्ध[6] नवनीत, कूर्चिका (दूध और दही मिला कर पकाया हुआ द्रव्य) वे पसन्द करते हैं।[7] शिवाजी ने देहली में मोदक, पूआ, पेड़ा[8] आदि मिष्टान्नों, पूरियों, समोसों, बड़ों आदि नमकीन पदार्थों का वितरण कराया।

पान-इलायची का प्रयोग हिन्दू-मुसलमान सभी करते थे। व्यास जी ने अनेक प्रकार के फलों का उल्लेख किया है। पूर्वबंग में नारंगी, जम्बीर, आम, ताल, नारियल, और खजूर बहुतायत से होते हैं।[9] पूना के बाजारों में अंगूर, आम, अनार, जम्बीर, कटहल, केला, नारियल आदि बेचे जाते हैं।[10] गर्मी शान्त करने के लिए अनार का रस तथा मिश्री मिला हुआ शीतल जल पिया जाता है।[11]

च. वस्त्राभूषण—

वस्त्राभूषणों के प्रयोग का उल्लेख व्यास जी ने विस्तार से किया है। विभिन्न पात्रों को उन्होंने विभिन्न वस्त्र पहनाये हैं। अधिकांश पुरुष उष्णीष और कंचुक का प्रयोग करते हैं। शिवाजी उष्णीष, कंचुक और प्रावारक का प्रयोग करते थे।[12] उनके ये वस्त्र रत्नजटित तथा सुवर्णसूत्रों से खचित थे। अफजलखां बारीक कपड़े पहिने, माथे पर मोतियों की माला धारण किये, हीरे से जड़ी पगड़ी पहिने और गले में पद्मराग की माला डाले हुये शिवाजी से मिलने आया था।[13] साधारण मुसलमान सिर पर हरा वस्त्र बांधते थे, हरा कंचुक पहिनते थे, और

१. 'शिवराजविजय' पृ० ५१-५२।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५१, १४४।
३. ,, ,, २६५।
४. ,, ,, २४३।
५. ,, ,, २४३।
६. ,, ,, ६७।
७. ,, ,, ४७३।
८. ,, ,, ४६४।
९. ,, ,, ५६।
१०. ,, ,, १६६।
११. ,, ,, ४३५।
१२. ,, ,, २६८।
१३. ,, ,, ७२।

काला अधोवस्त्र धारण करते थे।[1] बीजापुर के सैनिक लाल पगड़ी, काला अंगरखा और चितकबरा अधोवस्त्र पहिन कर बीजापुर के नाम की पट्टी वक्ष पर लगाते थे।[2] मुगल सैनिक दिल्लीश्वर की मुद्रांकित पट्टिका धारण करते थे।[3] यवन चिकित्सक हरी रेशमी पगड़ी, हरा कंचुक और लम्बा सफेद अधोवस्त्र पहनते थे।[4] भूषण कवि बड़ी पगड़ी और पैरों तक लटकने वाला कंचुक पहिने हुये थे। यवन भिक्षु लम्बा नीला कंचुक पहिनते थे।[5] पण्डितों की वेष-भूषा माथे पर चन्दन का लेप, कुछ लाल गोल पगड़ी, सुन्दर श्वेत कंचुक और कन्धे पर पीला उत्तरीय होता था।[6] महात्माओं के वेष में माथे पर विशाल तिलक, गले में तुलसी, रुद्राक्ष या कमलाक्ष की माला और ऊनी या रेशमी वस्त्र होते थे।[7] महाराष्ट्रीय सैनिक अन्दर लोह-कवच पहिन कर ऊपर पीला अंगरखा बांध कर, सिर पर लोह शिरस्त्राण रख कर उस पर अपने देश की गोल टोपी पहिनते थे।[8]

यवन कामिनियाँ हरा परिधान धारण करके उस पर दुपट्टा ओढ़ती थीं।[9] मालनें नीले धागे से कढ़े सफेद वस्त्र, कानों में चाँदी के आभूषण, लाल चोली और नाक में चाँदी की लौंग पहिनती थीं।[10] साधारण हिन्दू कन्यायें काला रेशमी वस्त्र पहिन कर चोली पहिनती थीं और गले में एकाध माला डाल लेती थीं। कुमारी कन्याओं की मांग में सिन्दूर नहीं होता था।[11] महाराष्ट्रीय रमणियों का शृंगार अद्भुत होता था। संवारे हुये केश, उन पर लाल पीले रेशमी धागों से गुंथी हुई कबरी, सुनहरे पुष्पों से अलंकृत माला, मोड़ कर बनाई गई वेणी, मांग में सिन्दूर की रेखा, नाक में मोतियों का आभूषण, लाल रेशमी वस्त्र की चोली, ग्रीवा में कण्ठाभरण, वक्ष पर कण्ठी, लांघ लगा कर पहिना हुआ परिधान, नूपुर, रशना और कंकण उनके अंगों को सौन्दर्य प्रदान करते थे।[12]

छ उत्सव—

व्यास जी ने उत्सवों का अधिक उल्लेख नहीं किया। आपने हिन्दुओं के कुछ त्यौहारों के नाम दिये हैं और शिवाजी के विजयोत्सव का वर्णन किया है। शिवाजी की विजय के उपलक्ष में घर घर में गीत गाये गये, द्वार द्वार पर केले लगे थे, आँगनों में माणिक्य के दीपक तथा शामियाने थे, नवीन वस्त्र पहिने नागरिक अलंकृत हाथी और घोड़ों पर घूम रहे थे, घरों पर पताकायें फहरा रही थीं और

१. 'शिवराजविजय' पृ० २६।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५०।
३. ,, ,, ४८६।
४. ,, ,, ४६६।
५. ,, ,, १६१।
६. ,, ,, १५४।
७. ,, ,, १६६।
८. ,, ,, २४५-२४६।
९. ,, ,, ३२०।
१०. ,, ,, ४४६-४५०।
११. ,, ,, १२१।
१२. ,, ,, २१५।

भेरी, पटह, झर्झर आदि वाद्यों की ध्वनि हो रही थी।[1] मुसलमानों के त्योहारों का कुछ विस्तार से वर्णन है। रमजान में रास्तों और चौराहों पर भेरी का स्वर, घर घर की सजावट, मार्गों पर पैदलों और सवारियों की भीड़, स्थान स्थान पर केलों के खम्भों की रचना और प्यासों को हिम-शीतल शरबत का पिलाया जाना[2] ईद के त्योहार का द्योतक था। मोहर्रम का त्योहार सुन्नी नहीं मानते। इसमें विलाप होता है, घर घर में शोक प्रकट करने के विए जन एकत्रित होते हैं, मर्सिया होता है और मुसलमान हरे वस्त्र धारण कर बाहर निकलते हैं।[3]

ज. शिक्षा और कला—

शिक्षा के विषय में व्यास जी ने विशेष वर्णन नहीं किया है। कहीं कहीं संकेतमात्र हैं। विद्यार्थी गुरुओं के समीप रहते हुये शिक्षा प्राप्त करते और उनकी सेवा में रत रहते थे।[4] शस्त्र और शास्त्र दोनों का अभ्यास विद्यार्थियों को कराया जाता था। ब्राह्मण तर्क, वेदान्त आदि शास्त्रों का अध्ययन करते थे। साधारणतः जनता में शिक्षा का अधिक प्रचार नहीं था और बिना पढ़े हुये भी काम चल जाता था। शिवाजी के पढ़े न होने पर भी[5] उनका कोई कार्य नहीं रुका। पुस्तकें ताड़ के पत्तों पर लिखी होतीं थीं। लिखने के लिए मसीपात्र और लेखनी का प्रयोग होता था।[6] अनेक भाषायें प्रयोग में आती थीं। मुसलमान सैन्य-शिविरों में उर्दू का प्रयोग होता था।[7] पत्र आदि फारसी में लिखे जाते थे।[8] मौलवी अरबी भाषा का ज्ञान रखते थे।[9] ब्राह्मणों में संस्कृत भाषा का प्रचार अधिक था और इसके माधुर्य की प्रशंसा मुसलमान भी करते थे।[10]

अनेक कलाओं का उल्लेख है। सन्यासी रसायन क्रिया जानते थे।[11] चिकित्सक के लिए मुसलमान हकीम का संकेत है।[12] कविता तथा कवियों का आदर था। भूषण कवि बहुत स्वाभिमानी थे।[13] कार्यसिद्धि के लिए वेष बदलने की कला में निपुण होना आवश्यक था। स्वर्णकला, चित्रकला, सिलाई की कला और माला बनाने की कला जीविकोपार्जन का साधन थीं।[14] वास्तु-कला में केवल जयसिंह के ज्योतिर्यन्त्रालय बनाने का वर्णन है।[15] हलवाई अनेक प्रकार के पक्वान्न

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३१३-३१४। २. 'शिवराजविजय' पृ० ४६३।
३. ,, ,, ४७७। ४. ,, ,, १२७।
५. ,, ,, २८५। ६. ,, ,, १२७।
७. ,, ,, ५०। ८. ,, ,, ४६।
९. ,, ,, ४५५। १०. ,, ,, १५७।
११. ,, ,, ३६। १२. ,, ,, ४६१।
१३. ,, ,, १४०-१४१। १४. ,, ,, ४२३।
१५. ,, ,, ४२६।

बनाने में निपुण होते थे। व्यास जी ने संगीत का विशद वर्णन किया है। मूर्च्छना-प्रधान और तान-प्रधान दो प्रकार का संगीत होता है।[१] नृत्य भी संगीत का अंग है। गायक दोनों घुटने मोड़ कर बैठते हैं। वे तानपूरा, मृदंग, वीणा, कोण, वंशी नूपुर, तन्त्री, खड़ताल आदि वाद्यों का उपयोग करते हैं।[२] अनेक प्रकार के राग होते हैं और अनेक रागों को मिला कर बना गान रागमालागीति कहाता है।[३]

झ. क्रीडा-विनोद—

क्रीडा-विनोदों के सम्बन्ध में कम संकेत हैं। हिन्दू-मुसलमान दोनों मनोविनोद करते थे। राजा मेष, महिष आदि के युद्ध देखते थे।[४] नागरिक नदियों में नाव चलाते, तैरते और मछलियों का शिकार करते थे।[५] युवकों के मन बहलाने के लिये वारांगनायें होती थीं,[६] जो अनेक प्रकार के इङ्गितों से उनके मनों में काम-विकार उत्पन्न करती थीं।[७] क्षत्रियों का मनोविनोद मृगया थी।[८] कन्यायें कलियों के गुच्छों के खिलौनों से मन बहलाती थीं[९] और युवतियाँ फूलों के गुच्छे हाथ में पकड़ती थीं।[१०] हिन्दू[११] और मुसलमान[१२] दोनों जातियों की स्त्रियों को बारात देखना बहुत अच्छा लगता था। महिलाओं के लिये झूला झूलना उत्तम विनोद था। उन्हें पति के साथ झूलने में विशेष आनन्द आता था।[१३]

ञ. यातायात के साधन—

यातायात के अनेक साधनों का उल्लेख व्यास जी ने किया है। उच्च श्रेणी के व्यक्ति पुष्प रथों पर बैठ कर घर के बाहर जाते थे।[१४] रमणियां शिविकाओं में बैठ कर बाहर जाती थी।[१५] उच्च वर्ग के सेनापति और सम्राट भी शिविकाओं का प्रयोग करते थे।[१६] साधारण जन घोड़ों, ऊँटों, बैलों, शकटों, रथों आदि का प्रयोग यातायात के लिये किया करते थे।[१७] विवाह आदि विशिष्ट अवसरों पर हाथियों का प्रयोग किया जाता था।[१८] वीर पुरुष घोड़े की सवारी पसन्द करते थे। नदियों में भ्रमण करने के लिये तरणियों[१९] और नदी-मार्ग से जाने के लिये

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ६० । २. 'शिवराजविजय' पृ० ५६ ।
३. ,, ,, ६०-६१ । ४. ,, ,, ४६१ ।
५. ,, ,, ४८१ । ६. ,, ,, १४८ ।
७. ,, ,, २७७ । ८. ,, ,, ८६ ।
९. ,, ,, ७७ । १०. ,, ,, १२१, ३२१ ।
११. ,, ,, ५३६ । १२. ,, ,, २५३ ।
१३. ,, ,, २२२-२२३ । १४. ,, ,, १४७ ।
१५. ,, ,, ४२६ । १६. ,, ,, २४१, १७८ ।
१७. ,, ,, ७२-४६८ । १८. ,, ,, ४२० ।
१९. ,, ,, ५०६ ।

नौकाओं का उपयोग किया जाता था।[1] नदियों को पार करने के लिये पुल थे। पुलों के दोनों ओर नौकायें रहती थीं।[2] समुद्रों की यात्रा पोतों द्वारा की जाती थी।

फ **प्रकृति-चित्रण**—

प्रकृति का शिशु मानव प्रकृति की गोद में खेलता हुआ आनन्द प्राप्त करता है। मानवीय भावनाओं को कथा के रूप में उपस्थित करने वाले महाकवि प्रकृति को मानव-चरित्रों के साथ एक रूप में अनुभव करते हुये उसका वर्णन करते हैं। कालिदास की महत्ता निसर्ग-कन्या शकुन्तला को प्रस्तुत करने में है। व्यास जी ने प्राकृतिक दृश्यों के वर्णनों में कल्पना का उपयोग करके अनेक स्थानों पर अपने पात्रों को प्राकृतिक रूप देने का प्रयास किया है। बालिका सौवर्णी[3] और यवन कामिनी[4] प्रकृति की अंग-भूत प्रतीत होती हैं। प्रकृति के साथ पात्रों की यह एक रूपता केवल नारी पात्रों के साथ ही नहीं, अपितु सेनाओं[5] और पशुओं[6] के साथ भी अभिव्यक्त हुई है। प्रकृति की सुषमा न केवल वनों, पर्वतों और घाटियों में ही है, अपितु प्रासादों में भी प्रवेश करके हृदय का अनुरंजन करती है।[7]

संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा का पालन करते हुये[8] व्यास जी ने यद्यपि

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४८०। २. 'शिवराजविजय' पृ० ४४०।

३. चन्द्रकलयेव निर्मितां, नवनीतेनेव रचितां, मृणालगौरीं, कुन्दकोरकाग्रदतीम्...
'शिवराजविजय' पृ० ११-१२।

४. अकस्मात् परस्परग्रथितं कुसुमभारनिबिडं मिलिन्दव्याप्तं लताप्रताननिचयं हस्ताभ्यामुभयतोऽपसार्य निविशमानाम्, अष्टादशवर्षदेशीयाम्, धारितहरितपरिधानाम्, कण्टाकर्षश्लथद्वसनदरीदृश्यमानमीषदुन्मिषितमुरोजयुगलमंचलेनाऽऽच्छादयितुं यतमानाम्, प्रफुल्लकमलभ्रमेणेव वदनमभिपततो मधुकरान् ससम्भ्रमं सभ्रूभंगमीक्षमाणाम्, कपोलपालिलग्नपरागरागेण होलिकामहोत्सवनेपथ्येनेवावतरन्तीम्, मल्लीवल्लीसंघर्षोन्मथितेनाधररागेणाधिकमधिकं तर्षमिव जनयन्तीम्, शुकशावकरावानुकारिमंजुमंजीरमन्दशिञ्जिताम्, गृहीतकुसुमस्तबकां कामपि यवनकामिनीमद्राक्षीत्।
'शिवराजविजय' पृ० ३२०-३२१॥

५. कमलेष्विव विकचतामासादयत्सु वीरवदनेषु भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीष्वसिपंक्तिषु चाटकैरचकचकायितेषु कवचचकत्कारेषु ···। 'शिवराजविजय' पृ० ७१।

६. महता हिमगिरिखण्डेनेव, कर्पूरपूरनिर्मितेनेव चन्द्रचन्द्रिकाचयरचितेनेव···।
'शिवराजविजय' पृ० २७४।

७. पुष्पवाटिकाभ्यश्च प्रस्फुटदतिमुक्तकुसुमसौरभमादाय, धीरः समीरः प्रवहति।
'शिवराजविजय' पृ० १४४।

८. संध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः। प्रातर्मध्याह्नमृगया शैलर्तुवनसागराः।
'साहित्यदर्पण'-६. ३२८।

प्रकृति के विविध अंगों का चित्र खींचा है, तथापि वे सुबन्धु और बाण के समान लम्बी और दुरूह कल्पनाओं में पाठकों को फंसा कर उन्हें मुख्य कथा से अलग नहीं कर देते, अपितु प्रकरण के अनुरूप थोड़े ही कलात्मक शब्दों में प्राकृतिक सौन्दर्य दिखाकर कथा को आगे बढ़ाते हैं। आपने अनेक स्थानों पर प्रकृति को आलम्बन-विभाव के रूप में यद्यपि उपस्थित किया है, तथापि अधिकांश प्रकृति-चित्रण उद्दीपन विभाव के रूप में हैं। सायंकाल के समय महाराष्ट्र प्रदेश की अरण्यानी में विद्युत् का चमत्कार और मेघों का गर्जन भयानक रस के आलम्बन विभाव के रूप में है।[1] ब्रह्मचारि-गुरु के आश्रम की वन्य प्रकृति शान्त रस[2] का और हनूमन्मन्दिर की वाटिका शृंगार रस का उद्दीपन करती है।[3] प्रकृति के अनेक रूप आपने प्रस्तुत किये हैं जिनका वर्णन नीचे किया जा रहा है।

देश —विभिन्न प्रसंगों में व्यास जी ने विभिन्न देशों की प्राकृतिक विशेषतायें प्रस्तुत की हैं। दक्षिण देश पर्वत-बहुल और अरण्यानी-संकुल है।[4] राजस्थान और कोंकण के मध्य में विकट वन, पर्वत श्रेणियां और तेज धारा वाली नदियां हैं। कदम कदम पर भयानक भालुओं, भयंकर नासिका वाले सुअरों, जलाशयों में लोटने वाले भैंसों, नर मांस के भूखे चीतों, हाथियों को फाड़ देने वाले सिंहों, पहाड़ों को खण्ड कर देने वाले गैंडों और दान-वारि बहाने वाले हाथियों के दर्शन संभव हैं।[5] पूर्व बंग में पद्मा नाम की नदी बहती है, जिसके किनारे कमल उगे हुये हैं। ब्रह्मपुत्र नद इसे प्रक्षालित करता है। यहां उत्पन्न लाल रंग की नारंगियां, जम्बीर, अनार, आम, ताल, नारियल और खजूर सब स्थानों पर प्रशंसित होते हैं। यहां की भयंकर नदियों में काले रंग के मछुओं के बालक निर्भयता से नौका चलाते हैं।[6]

ग्राम्य प्रदेश —संस्कृत काव्यों में ग्राम्य-प्रकृति का वर्णन बहुत कम है। व्यास जी ने देहली यात्रा में इसका वर्णन किया है—गेहूँ, जौ, अरहर, मसूर, अलसी, सरसों एवं चनों से हरे रंग के, पके हुये धानों से कपिश वर्ण के, घने गन्नों से दुर्गम और मूंगे तथा उड़द जिनसे काट लिया गया है ऐसे खेतों को देखते हुये, तत्काल निकाले गये गन्ने के रस को पीते हुये, नई बालियों को खाते हुये, काटे हुये धान के पूलों पर, बैलों को चलाकर दंवड़ी करते हुये और खाट को छोड़कर महाराष्ट्रवीर-मण्डल को देखते हुये खेत के बीच में स्थित किसानों के निरीक्षण कौतूहल का अवलोकन करते हुये, सुई की नोक से निर्यास के लिये अफीम के डोड़ों

१. 'शिवराजविजय' पृ० ११०।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५-६।
३. ,, ,, ११६-१२०।
४. ,, ,, २३।
५. ,, ,, ६५-६६।
६. ,, ,, ५८-५६।

को चीरती हुई, धान्यों को काटती हुई, जंगली सूखे गोबर को चुनती हुई ग्राम्य चेटियों के शिवराजविषयक यशोमय गीतों को सुनते हुये दिल्ली पहुंचे।[1]

वन्य तथा पर्वतीय प्रदेश :—व्यास जी ने वन तथा पर्वतीय प्रदेशों का अधिक वर्णन नहीं किया। जहां किया भी वहां अन्य प्रदेशों के वर्णनों के साथ उन्हें मिला दिया। यथा—राजपूताना और कोंकण के मध्यवर्ती प्रदेश का वर्णन करते हुये वनों की भयंकरता दिखाई है।

आश्रम और मन्दिर :—भारतीय संस्कृति के प्रतीक आश्रमों और मन्दिरों के प्रति व्यास जी का सहज स्नेह है। आपने इनको पूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य दिया है। ब्रह्मचारि-गुरु के आश्रम की कुटीर कदली के दलों की कुंज सी बनी है। चारों ओर पुष्प वाटिका है। पूर्व की ओर पवित्र जल से युक्त, हजारों श्वेत कमलों से सुशोभित, पक्षियों से कूजित जलाशय है और दक्षिण की ओर झरनों से दिशाओं को ध्वनित करता हुआ, फलों को चखने के लिये पक्षियों के बैठने से झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्षों से व्याप्त, सुन्दर कन्दरा से युक्त पर्वत खण्ड है।[2] हनूमन्मन्दिर की उत्तर दिशा में छोटा सा पर्वत खण्ड, पूर्व दिशा में गहन वन और पश्चिम दिशा में छोटा सा सरोवर है। पर्वत यद्यपि अत्यन्त भयानक नहीं है, तथापि अनेक प्रकार के गण्डशैलों से आवृत, झरनों की झर्झर ध्वनि से युक्त, वृक्षों के समूह से आवृत होकर ऊँची चोटियों से अनेक कन्दराओं की सूचना दे रहा है। चांदनी की चमक में उसकी उपत्यका स्पष्ट दिखाई देती है।[3]

महासर :—हनूमन्मन्दिर की पश्चिम दिशा में महासर है। उसमें हंसनियों से अनुगम्यमान राजहंस विहार करते हैं, मल्लिकाक्ष चंचल चोंचों से पंखों को खुजाते हैं, सारस सारसनियों के कण्ठाश्लेष से आनन्दित और रोमांचित होते हैं, घूमते हुये भ्रमरों की झंकार से कारण्डवों की निद्रा भंग हो जाती है और उसके किनारे मुनिजन तपस्या करते हैं। इस सरोवर का नाम अमृतोद है।[4]

सरोवर के वर्णन में व्यास जी की कुछ असावधानता प्रकट होती है। हनूमन्मन्दिर के वर्णन में आपने उसे छोटा सा पल्वल कहा किन्तु वर्णन करते हुये महासर लिखा।

सरिता :—व्यास जी ने 'शिवराजविजय' में अनेकों नदियों का उल्लेख करके भी केवल नीरा और भीमा नदियों का स्वल्प प्राकृतिक चित्र प्रस्तुत किया है। सिंहदुर्ग की पूर्व-दिशा में तरंगों के आघात से किनारों को तोड़ती हुई,

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४१०-४१२। २. 'शिवराजविजय' पृ० ५-६।
३. ,, ,, ८८-९०। ४. ,, ,, १०२।

वायु को शीतल करती हुई, धलद्-धलद् ध्वनि करती हुई नीरा नदी बहती है।[१] पूना नगर के समीप ही पर्वत-खण्डों को प्रक्षालित करती हुई, झरनों के जल से प्रवृद्ध होती हुई, पश्चिम-समुद्र के समीपवर्ती पर्वतों से निकलकर पूर्वसमुद्र तक बहने वाली, चंचल लहरों से उत्पन्न होने वाली सैकड़ों भंवरों से भयंकर भीमा नदी के किनारे अफजलखां का शिविर था।[२]

वाटिका :—प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रेमी व्यास जी ने मनुष्य-निर्मित स्थानों पर वाटिकाओं का वर्णन किया है। तोरणदुर्ग के हनूमन्मन्दिर की पूर्व दिशा में विशाल पुष्पवाटिका है। उसमें माधवी की लतायें सुगन्ध से आकाश को भी मत्त करती हैं, जूही के पुष्प दिशाओं के भी हृदयों को हरते हैं, पाढल के पुष्प भ्रमरों की रसना को चंचल बना देते हैं। मालती से गिरे पुष्परस की बूंदों से पृथ्वी सुगन्धित होती है। वाटिका में मन्दिर के पूर्व द्वार की ओर एक बहुत सुन्दर और चाँदनी के स्पर्श से द्विगुणित चमक वाली तीन सीढ़ियों से युक्त सफेद पत्थर की बनी वेदिका है। आगन्तुकों के बैठने के लिये कुछ पत्थर के मंच बने हुये हैं।[३]

तोरण दुर्ग के कुछ पूर्व में एक पुष्पवाटिका है। इसमें मल्लिकायें भ्रमरों द्वारा चुम्बित होती हैं, वासन्ती लतायें समीप स्थिति द्रुमों को स्पर्श करती हैं, कोयलें कुहू कुहू करती हैं और सारिकायें महाराष्ट्रराज का यशोगान करती हैं। इस वाटिका में पुष्पभार से लतायें परस्पर गुंथ गई हैं तथा हाथों से उनको हटा कर मार्ग बनाना पड़ता है। लताओं में कांटे भी हैं, जो वस्त्रों को खींच कर कामिनियों के उरोजों को उन्मिषित करते हैं। वाटिका में उड़ते हुये भ्रमर कामिनी-मुख को कमल समझ कर उन पर मंडराते हैं। पराग की लालिमा होली के रंग का रूप लेती है। मालती की लताओं के सम्मर्द से युवतियों के अधर लाल हो जाते हैं। शुक-शावक और सारिकायें घूमती हुई युवतियों की मंजीर ध्वनि का अनुसरण करती हैं।[४]

औरंगजेब के प्रासाद में भी पुष्पवाटिका है। उसके मध्य में मालती कुंज है, जिसमें मरकतमणि के पादों से बनी चौकी है। चारों ओर मणिमय पात्रों में पुष्पगुच्छ आयोजित हैं। समीप ही एक बालभवन में शुक, पिक, सारस, कलविंक, चकोर, चातक आदि पक्षी कूज रहे हैं, उछल रहे हैं, उड़ रहे हैं, पूँछ हिला रहे हैं, पंख फड़फड़ा रहे हैं, चोंचों से पंख खुजा रहे हैं, प्रणय-कलह कर रहे हैं और नाच रहे हैं, समीप ही पान के पत्ते के आकार की एक पुष्करिणी में कारण्डव के आकार की पांच छः नौकायें तैर रही हैं। एक ओर कपोत-भवन में हजारों कबूतर उड़कर तारों के समान फैल गये।[५]

१. 'शिवराजविजय' पृ० २४०।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ३२-३३।
३. ,, ,, ११९-१२०।
४. ,, ,, ३१९-३२०।
५. ,, ,, ४५४-४५५।

व्यास जी का समय वर्णन सुन्दर है । सूर्य, चन्द्र, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, सूर्योदय, रात्रि आदि के मनोहर चित्र काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं ।

सूर्य :—सूर्य आकाश-मण्डल का मणि, खेचरों का चक्रवर्ती, पूर्व दिशा का कुण्डल, ब्रह्मांड का दीपक, कमलों का प्रियतम, चकवों का दुःखहर्ता, भ्रमरों का अवलम्ब, कार्यों का प्रवर्तक और दिन का प्रभु है । वही दिन-रात उत्पन्न करता है, १२ महीनों तथा ६ ऋतुओं का कारण है और दक्षिणायन तथा उत्तरायण में गति करता है [1]

सूर्योदय :—सूर्योदय के दो प्रसंग हैं । प्रथम – समुद्र पर और दूसरा – पृथिवी पर । समुद्र में सूर्योदय होने पर तारों का समूह मानों समुद्रफेन में लीन हो जाता है, चन्द्रमा पश्चिम में लीन हो जाता है, समुद्र की तरंगों से उछलते हुये जल-कण माणिक्य की तरह प्रतीत होते हैं और पूर्व दिशा केसर से रंगे मेघों से आक्रान्त हो जाती है ।[2]

पृथिवी पर उदय होता हुआ सूर्य मनोहर दृश्य उपस्थित करता है । पूर्व दिशा लाल हो जाती है । उस समय यह मानों ६० हजार बालखिल्यों के वस्त्रों से काषाय, मन्देह नाम के रांक्षसों के रक्त से लाल, वरुण की लालिमा से रंजित, हर्ष से नाचते हुये मुर्गों की चूड़ा से संवलित, आकाशगंगा के खिले हुये कमलों से व्याप्त, भक्तों की भक्ति से प्रकट छिन्न मस्ता विद्या की कन्धरा से उछलते हुये रक्त से स्नात अथवा वसन्तोत्सव में उड़ाये हुये सिन्दूर से भरी हुई होती है । उस समय इसकी शोभा तपे हुये ताम्बे की कान्ति को चुराये हुये होती है ।[3]

सूर्योदय से पूर्व रात्रि का अन्धकार आकाश को पूर्णरूप से नहीं छोड़ता, स्वच्छ भी पूर्व-दिशा लालिमा को अंगीकार नहीं करती, शोर करते हुये भी पक्षी घोंसले छोड़कर नहीं उड़ते, दिखाई देते हुये भी वृक्ष अपनी जाति प्रकट नहीं करते, रोती हुई भी तित्तरी वृक्ष से नीचे नहीं उतरती और प्रकाश के दर्शन से कुछ मन्द शोक वाला भी चकवा चकवी के समीप नहीं जाता ।[4]

प्रातः समीर :—प्रातः काल का समीर स्पर्श करता हुआ सुख प्रदान करता है । वह कुन्द-कलाप को कम्पित करता है, खिली हुई मालती के मकरन्द को चुरा लेता है, पाढल के पुष्पों के पराग से पिंजरित हो जाता है, धीरे २ फड़कते हुये शुक, पिक आदि पक्षियों के पंखों से प्रवृद्ध होता है और वृक्षों के पत्तों की नोकों पर लोटते हुये ओस के कणों का अपहरण कर लेता है ।[5]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २-३ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २९९ ।
३. ,, ,, १००-१०१ ।
४. ,, ,, ९९ ।
५. ,, ,, १०० ।

सूर्यास्त :—अस्त होता हुआ सूर्य किरणों को समेट कर, कमलों को मूंद कर, चकवों को शोकाकुल करके, सम्पूर्ण जगत् की दृष्टि को शिथिल करके, कुण्डल सदृश अपने वलय से पश्चिम दिशा को अलंकृत करता हुआ, मानों पश्चिम दिशा रूपी वारुणी से लाल हुआ, निरन्तर भ्रमण से थक कर सोने का अभिलाषी, म्लेच्छों के दुराचार से खिन्न पृथिवी की वेदना को विष्णु से कहने के लिये उत्सुक, वैदिक धर्म के विनाश से दुःखी होकर तपस्या करने का इच्छुक, गर्मी के सन्ताप से दुःखी होकर स्नान करने की कामना वाला और सायंकाल का समय जान कर मानों संध्या करने की अभिलाषा वाला होकर, तीक्ष्ण किरणों को छोड़कर क्रमशः श्वेत होकर, पीला होकर, लाल होकर और अन्डाकृति होकर संसार को अन्धकार में गिराता हुआ आंखों से ओझल हो गया।[1]

संध्या-काल :—सूर्यास्त होने पर सूर्य पश्चिम दिशा में स्थित लाल बादलों के बीच में चला जाता है। पक्षी अपने २ घोंसलों में लौट जाते हैं। वन प्रतिक्षण अधिक श्याम होते जाते हैं।[2] आश्रमों में छात्र सायंकालीन क्रियाओं का सम्पादन करके गुरु के चारों ओर बैठ जाते हैं। मन्द पवन के स्पर्श से लतायें हिलने लगती हैं, रात्रिरूपी कामिनी का चन्दनबिन्दु रूप चन्द्रमा उदित होने लगता है और आकाश में ज्योत्स्ना बरसने लगती है।[3]

चन्द्रोदय :—चन्द्रमा के उदय होने पर प्राची दिक् मानों दुग्ध की धाराओं से प्रक्षालित हो जाती है, भस्म से लिप्त हो जाती है, चन्दन से चर्चित हो जाती है, और वहां मानों कुन्द के पुष्प बिखर रहे होते हैं। उस समय यह चन्द्रमा मानों आकाश रूपी सागर का मत्स्य, कामदेव का सुन्दर हंस, विरहियों को काटने का चांदी का कुन्त, लक्ष्मी के हाथ का कमल, सूर्य के घोड़े के खुर से गिरा चांदी का नाल, सौन्दर्यरूपी महिला का ललाट, कामदेव की कीर्तिलता का अंकुर, प्रजाओं के नेत्र का कपूर और रात्रि के अन्धकार को काटने वाला खड्ग प्रतीत होता है।[4]

रात्रि की निस्तब्धता :—व्यास जी ने निस्तब्ध रात्रि का मनोहारी चित्र उपस्थित किया है। वनप्रान्त में स्थित हनूमन्मन्दिर में रात्रि के प्रारंभ होने पर झिल्ली-झंकार के सदृश विलक्षण किसी अनाहत-नाद से पृथिवी भर गई। यह वन-रात्रि-ध्वनि हजारों तानपूरों के षड्ज स्वरों के सदृश थी। इसको ध्यान से सुनने पर भ्रमरों का झंकार सुनाई दिया, पुनः एकाग्र होकर सुनने पर स्रोतों के बहने का अनुभव हुआ, और भी ध्यान देने पर वायु के हिलते हुये पत्तों का स्वर सुनाई

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३५-३६। २. 'शिवराजविजय' पृ० १०७।
३. ,, ,, १०-११। ४. ,, ,, ८६।

दिया, इसमें भी ध्यान स्थिर होने पर अमृत के प्रवाह को भी तिरस्कृत करता हुआ, वीणा की ध्वनि को भी न गिनता हुआ, शहद से अधिक मधुर, मन्द स्वर से युक्त, अव्यक्त मधुर काकलीकूजित कोयल का कूजन प्रत्यक्ष हुआ और तदनन्तर मधुरकण्ठी वन्य पक्षियों के मन्द स्वर सुनाई दिये ।[1]

व्यास जी ने काव्य शास्त्र की परम्परा के अनुरूप ६ ऋतुओं का भी चित्रण किया है ।

ग्रीष्म :—ग्रीष्म-ऋतु के दिन का वर्णन न होकर रात्रि का वर्णन हुआ है । ग्रीष्म-ऋतु में आधी रात को भी वायु नहीं बहती । घर घर में बच्चों के रुदन और पंखों के चलने की ध्वनि निद्राकुल व्यक्तियों को व्याकुल करती है । इस समय जल, वायु, अनार का रस, खस, गुलाबजल, चन्दनचूर्ण, गर्मी को दूर करने के उपाय हैं । इस काल में मच्छर और खटमल बहुत होते हैं । खुजली और पसीना बहुत आता है ।[2] खस के पंखे की हवा और अनार के रस से मिला मिश्री का ठंडा जल आनन्द देता है ।[3]

वर्षा :—आषाढ़ के महीने में वर्षा प्रारम्भ हो जाती है । इस समय आकाश कभी मेघाच्छन्न हो जाता है और कभी स्वच्छ । कहीं मोर नाचते हैं, कहीं चातक शब्द करते हैं, कहीं जल का प्रभाव होता है और कहीं वीरबहूटियों से सुन्दर हरे प्रदेश शोभायमान होते हैं ।[4] वर्षा ऋतु में नवीन मेघों के जल से भरी हुई हजारों नदियां अजगरों की तरह बहती हैं और इनका जल दूषित हो आता है ।[5]

कवि ने मेघमालाओं का भी चित्र खींचा है । अचानक ही पर्वत श्रेणियों की तरह मेघमालायें प्रादुर्भूत हो जाती हैं, जो कभी सूक्ष्म और कभी विस्तृत होती हैं, कभी पर्वतों के शिखर के सदृश और कभी लम्बी सूंडों वाले हाथियों के समान भयानक आकार की होती हैं । वे परस्पर मिलकर महान्धकार को उत्पन्न करती हुई समस्त आकाश को व्याप्त कर लेती हैं ।[6]

शरद् :—व्यास जी ने शरद् ऋतु का वर्णन नहीं किया । नवम निश्वास के प्रारम्भ में "ऋतुरेष शरत्" लिख कर असमय में वसन्त के वर्णन प्रस्तुत किये ।[7]

हेमन्त :—हेमन्त ऋतु का बहुत संक्षिप्त विवरण है । इस समय ठंडी वायु बहती है और दोहरे किये गये वस्त्र अच्छे लगते हैं ।[8]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ६०-६१ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ४३४ ।
३. „ „ ४३५ ।
४. „ „ २१३ ।
५. „ „ ४६० ।
६. „ „ १०७ ।
७. „ „ ३१८ ।
८. „ „ ३६० ।

शिशिर :—शिशिर-ऋतु में विपुल प्रालेय रहता है। दिनों की विशालता, रात्रियों की लघुता, कमलों की प्रसन्नता, जलों में सुख पूर्वक स्नान करना इस ऋतु द्वारा चुरा लिये जाते हैं। भगवान सूर्य दक्षिणायन होते हैं। आकाश प्राय. कोहरे से आच्छन्न रहता है। इस समय तेल, ताप, तूलिका (रजाई), तरुणी और ताम्बूल प्रिय लगते हैं। संसार के प्राणियों को स्तब्ध करता हुआ पवन वेग से बहता है। वन्य-जन्तु भी सूर्य की कोमल मरीचियों के सेवन की इच्छा रखते हैं। वीर पुरुष भी सीत्कार करने लगते हैं, उनके अधर व्रणित, रोमांचित और कम्पित होते हैं।[1]

वसन्त :--वसन्त का उल्लेख व्यास जी ने दो स्थानों पर किया है। प्रथम तो शरद्-ऋतु के समय वसन्त-कालीन लक्षण देकर तथा दूसरे— शिवाजी के वसन्त के प्रारम्भ में देहली पहुँचते समय। पहला वर्णन इस प्रकार है— पिकों के काकली-कलकल दिशाओं में व्याप्त हो रहे हैं, दक्षिण-पवन से चंचल लवंगलतायें हिल रहीं हैं, मधुगन्ध से मत्त भ्रमर आम्रमंजरियों पर गिर रहे हैं, पाटल-पुष्प-समूह जलते अंगारों के सदृश शोभायमान हो रहा है, जो विरहियों के हृदय को जलाने वाला है। फूलों के पराग और पीले मकरन्द के बिन्दु-समूह से आर्द्र, कुसुमित लताओं के आलिंगन से शीतल तथा कुंजों के सम्पर्क से मन्द पवन वह रहा है।[2]

प्रकृति यदि सौम्य आकर्षक और आनन्दप्रद है तो भीषण तथा त्रासदायक भी है। व्यास जी ने सौम्य प्रकृति द्वारा आनन्द-रस की धारा प्रवाहित करके उसकी भयानकता भी दिखाई है। प्रकृति की भयंकरता के चार चित्र हैं—अग्नि की प्रचण्डता, वन की भयंकरता, आंधी और वर्षा का ताण्डव और समुद्र का तूफान। वन की भयंकरता का वर्णन देश के प्रकरण में किया चुका है, शेष का वर्णन नीचे है—

अग्नि की प्रचण्डता :—अग्नि की प्रचण्डता का वर्णन द्वितीय निश्वास में अफजलखां के शिविर में लगाई गई अग्नि के प्रसंग में है। अग्नि की ज्वालायें आकाश को चूमने लगीं, दिगन्तों को प्रकाशित करने लगीं, कड़कड़ ध्वनि से प्रजाओं को डराने लगीं, उड़कर जलते हुये हजारों पटखण्डों से स्वर्णपक्षियों के भ्रम को उत्पन्न करने लगीं, जुगनुओं की तरह प्रतीत होते हुये करोड़ों स्फुलिंगों से प्रान्तों को पिंगल करने लगीं, बढ़ते हुये धुंये के समूह से गिरती हुई राख के द्वारा वृक्षों को श्वेत करने लगीं और उस समय कलकल ध्वनि करते हुये पक्षी पलायन करने लगे।[3]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४०६-४१०। २. 'शिवराजविजय' पृ० ३१८-३१९।
३. ,, ,, ७३।

आंधी और वर्षा का ताण्डव :—आंधी और वर्षा का ताण्डव तोरण दुर्ग जाते हुये रघुवीर सिंह को सहना पड़ा। अचानक ही महान् झंझावात उठ खड़ा हुआ। एक तो सायंकाल का स्वाभाविक अंधेरा, वह भी मेघमालाओं से दुगना हो गया। पुन: झंझावात से उठी धूल, शीर्णपत्रों, कुसुमपरागों और सूखे फूलों से द्विगुणित हो गयी। चारों ओर हड़हड़ शब्द करके हिलते हुये वृक्षों के, वायु के आघात से गिरते हुये पाषाणों से युक्त प्रपातों के और महान्धकार से ग्रस्त होते पशुओं के क्रन्दन के भयानक शब्द से आकाश पूर्ण हो गया। तभी विजली की चंचल रेखाओं ने चमकना प्रारम्भ किया। यदि एक दिशा में आँखों को विक्षिप्त करती, कानों को फोड़ती, देखने वालों को कंपाती, वन्य शिशुओं को डराती, आकाश को काटती, बादलों पर आघात करती और अन्धकार को जलाती विद्युत् चमकती है, तो दूसरी दिशा में मेघों को ज्वाला-जाल से आवृत करती है। चमकने के बाद चमकने, गर्जन के बाद गर्जन से सैकड़ों तोपों के चलने के सदृश उत्पन्न शब्द पर्वतों की कन्दराओं में प्रतिध्वनित होने से चतुर्गुण हो गया और वह भयानक जंगल उस ध्वनि से व्याप्त हो गया। तभी अचानक पूर्व दिशा में अति लम्बी और अति भयानक बिजली कड़कड़ शब्द के साथ चमकी और सुपारी के सदृश मोटी बूंदों के साथ वर्षा होनी प्रारम्भ हो गयी।[1]

समुद्र का तूफान :—समुद्र के तूफान का वर्णन वीरेन्द्रसिंह की रामेश्वर-यात्रा के प्रसंग में है। अचानक ही हड़हड़ शब्द के साथ आंधी चलने लगी, समुद्र में जल के पर्वतों के समान लहरें उठने लगीं और जहाज ने झूले की तरह हिलना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण यात्री महान् क्रन्दन करने लगे। तभी एक प्रबल तरंग के आघात से जहाज न रहा।[2]

इस उपन्यास में देश-काल की सृष्टि स्थान तथा प्रकरण के अनुरूप है। यद्यपि तथ्य की दृष्टि से अनेक स्थल पुस्तकीय से प्रतीत होते हैं, तथापि वे रस और आनन्द का व्याघात नहीं करते। व्यास जी ने अनेक भौगोलिक स्थितियों का उल्लेख किया है। हिन्दू तथा मुसलमानों के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था, वेषभूषा खानपान, शिक्षा और कला आदि को प्रस्तुत किया है। आपके प्राकृतिक वर्णन अवसर के अनुरूप हैं। प्रकृति के विभिन्न चित्र विभिन्न भावों को संचरित करने में समर्थ हैं। घटना-स्थल के भौगोलिक रूप तथा जन-जीवन की पृष्ठभूमि को अभिव्यक्त करने वाले प्रकृति चित्रण आपने प्रस्तुत किये हैं। आपकी प्रकृति कभी तो मानवीय भावनाओं के प्रति सदय, कभी क्रूर और कभी संवेदन-रहित है। व्यास जी में प्रकृति का निरीक्षण करने वाली भावनाशील

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १०९-१११। २. 'शिवराजविजय' पृ० २६५-२६७।

अनुभूति है । यद्यपि आपने बाण आदि कवियों के सदृश प्रकृति के अति विस्तृत और अतिरंजित चित्र अंकित नहीं किये, तथापि आपके चित्रण घटनाओं और स्थानों के वर्णनों के साथ एक-रूप हैं । वे पाठकों को लम्बे वर्णनों और क्लिष्ट कल्पनाओं में उलझा कर कथा सूत्र से अलग नहीं करते । इन वर्णनों से पाठक निःसन्देह काव्य सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करता है ।

६. उद्देश्य

प्राचीन तथा आधुनिक काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य की रचना का कोई उद्देश्य होना चाहिये । प्राचीन विचारधारा तथा आधुनिक विचारधारा में अधिक अन्तर नहीं है । संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार काव्य रचना के ६ प्रयोजन हैं—यश की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति अनर्थ का निवारण, आनन्द की अनुभूति और उपदेश ।[1] इन प्रयोजनों में आनन्द की अनुभूति प्रधान प्रयोजन है ।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार लेखक अपनी रचना में अपने विशेष विचारों और जीवन-दर्शन को उपस्थित करता है । लेखक की विचारधारा के अनुसार उपन्यास के पात्र किसी आदर्श से प्रभावित होते हैं, उसी के लिये वे प्रसन्न होते हैं, दुःखी होते हैं, संघर्ष करते हैं और सफल या विफल होते हैं । रचनाकार का जीवन दर्शन उसकी रचना में प्रस्तुत होता है ।[2] किन्तु कथाकार का प्रथम प्रयोजन कथा की रचना करना है, अतः उसके उपदेश या जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति कथा का ही एक भाग होती है । कथा-वस्तु से पृथक् होकर यह कथा के सौन्दर्य और रोचकता को नष्ट कर देती है । यह जीवन-दर्शन कथा में दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है । या तो लेखक उपन्यास के पात्रों के क्रिया-कलापों द्वारा इन भावों को अभिव्यक्त करता है,[3] अथवा पात्रों के चरित्र-चित्रण में

---

१. काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे । 'काव्यप्रकाश' पृ० १, २ ।

२. Since, then, the novelist's theme in life, is one or several of it's innumerable aspects; it is impossible for him not to give, expressly or by implication, some suggestion at least, if nothing more than a suggestion, of the impression which life makes up on him.

डब्लू० एच० हडसन-'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६३ ।

३. He selects certain materials out of the mass which life offers him; by his arrangement of these he brings certain facts and forces in to relief; he exibits character and motive under certain lights; and in the conduct of his plot indicates his view of the moral balance among the things which make up our human experience.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६५ ।

उनके गुण-दोष की आलोचना करता हुआ अपने आदर्श उपस्थित करता है ।[१] इस प्रकार कथा के प्रयोजन उपदेश और आनन्द प्राप्ति दोनों होते हैं ।

उद्देश्य की दृष्टि से प्राचीन और आधुनिक दृष्टिकोण अधिक भिन्न नहीं हैं । काव्य-रचना से कवि को यश और धन की प्राप्ति होती ही है । उसे तथा पाठकों को लोकव्यवहार का ज्ञान होता है । अनर्थ का निवारण भी हो सकता है । अन्तिम दो उद्देश्यों में परस्पर साम्य स्पष्ट है ।

व्यास जी का यह उपन्यास (गद्यकाव्य) उद्देश्य की दृष्टि से सफल है । व्यास जी ने इस काव्य के लिखने के प्रयोजनों का संकेत स्वयं किया है और वे प्रयोजन आधुनिक विचारधारा के अधिक समीप हैं । व्यास जी ने आनन्दानुभूति के अतिरिक्त एक जीवन-दर्शन उपस्थित किया है, जो ऊपर कही गई दोनों विधियों से प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के पात्र एक विशेष आदर्श को लक्ष्य में रख कर अपने कार्य की ओर अग्रसर होते हैं तथा कवि स्वयं भी उन पात्रों के चरित्र की आलोचना करता हुआ उन आदर्शों को व्यक्त करता है ।[२]

ऐतिहासिक काव्य का उद्देश्य कुछ अधिक विलक्षण है । ऐतिहासिक काव्यों का लेखक प्राचीन काल के महापुरुषों को कथानक में बाँधकर उनके द्वारा विशेष प्रकार के वातावरण की सृष्टि करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील होता है ।

'शिवराजविजय' की रचना का उद्देश्य कवि ने स्वयं इसकी भूमिका के रूप में "निर्माणहेतुः" लिखकर स्पष्ट किया है । इस लेखन से उनके निम्न उद्देश्य परिलक्षित होते हैं—

(क) संस्कृत भाषा में उपन्यास की रचना ।

---

१. He becomes interpreter of the mimic world he has called in to existance, and therefore of life at large, thus anticipating the critic in the task of systematising and formulating his thought.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६५ ।

२. पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दति, महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्मघर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि, सिंहसंघेष्वपि, वारणवारेष्वपि, चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति । तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत आर्यवंशीया, वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः ।

'शिवराजविजय' पृष्ठ ४५-४६ ।

(ख) सनातन धर्म के रक्षक शिवाजी का वर्णन ।

(ग) हिन्दू धर्म पर होने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन और जातीय तथा राष्ट्रीय गौरव के अभ्युत्थान का प्रयत्न ।

(घ) सदुपदेश ।

(ङ) आनन्द की प्राप्ति ।

(क) **संस्कृत भाषा में उपन्यास की रचना :**—व्यास जी के युग में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से सर्वप्रथम बंगला और उसके बाद अन्य भारतीय भाषाओं में उपन्यासों के लेखन की प्रणाली आरम्भ हो चुकी भी । व्यास जी बंगला के ऐतिहासिक उपन्यासों से बहुत प्रभावित थे । संस्कृत-गद्य-साहित्य में इस शैली के अभाव को अनुभव करके आप ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिये प्रवृत्त हुये ।

(ख) **सनातन धर्म के रक्षक शिवाजी का वर्णन करना :**—सनातन धर्म के प्रति आस्था रखने वाले व्यास जी ने इतिहास के पृष्ठों में से मुसलमानों के अत्याचारों से धर्म और जाति की रक्षा के लिये आग्रही शिवाजी को खोज कर[1] इस उपन्यास का नायक बनाया । बाल्यकाल में ही स्वप्नों में भगवती दुर्गा से देश की स्वतन्त्रता और धर्म की रक्षा का आदेश लेने वाले,[2] और मृत्यु के पश्चात् भी भारत की स्वाधीनता और धर्म-रक्षा के लिये चिन्तित होने वाले[3] शिवाजी के अतिरिक्त आपका आदर्श नायक कौन हो सकता था । अतः व्यास जी ने इन गुणों से विशिष्ट शिवाजी के वर्णन द्वारा अपनी रसना पवित्र की ।[4]

(ग) **हिन्दू धर्म पर होने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन और जातीय तथा राष्ट्रीय गौरव के अभ्युत्थान का प्रयत्न :**—व्यास जी ने भारतवर्ष तथा हिन्दू जाति की दुर्दशा का प्रधान कारण मुसलमानों द्वारा इस देश पर अधिकार करके

---

१. कश्चन प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माग्रहग्रहग्रहिलः शिव इव धृतावतारः शिववीरः...... सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्यार्यकुलस्य, धर्मस्य, भारतवर्षस्य चाशासन्तानवितानस्यायमेवाश्रयः ।
'शिवराजविजय' पृ० २३-२४ ।

२. महाराज ! बाल्येऽहं चिरं स्वप्नानपश्यम्—यद् दुराचारैर्म्लेच्छैः सह प्रतियोद्ध स्वदेशस्य स्वातंत्र्यं धर्मं च रक्षितुं मां स्वयं भगवती दुर्गादिशतीति ।
'शिवराजविजय' पृ० ३५२ ।

३. दैवाद् वीरगतिं गतश्चेद् भवत्सु कुशलिषु पुनरपि स्वतंत्रमेव महाराष्ट्रराज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्मः, पुनरपि च कम्प एव वक्षःसु भारतप्रत्यर्थिपत्नीनाम् । युष्मासु मया सह भारतभुवं विरहयत्सु च कस्मिन् धुरं धारयिष्यति धर्मः ।
'शिवराजविजय' पृ० २४७-२४८ ।

४. मया तु सनातनधर्मधुर्वहशिवराजवर्णनेन रसना पावितैव ।
'शिवराजविजय' (निर्माणहेतुः) पृ० २ ।

हिन्दुओं पर नानाविध अत्याचार किया जाना निर्धारित किया । व्यास जी को जहां भी अवसर मिला उन्होंने इन अत्याचारों का जलता हुआ रूप उपस्थित किया । मुसलिम आधिपत्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुये आपने सशक्त भाषा में मुसलिम बर्बरता प्रदर्शित की है —

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रं च पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमानमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकमकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमंगीचकार । तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः, रिंगत्तरंगभंगा गंगाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परः सहस्राणि देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि ।[1]

भारत की दुरवस्था का वर्णन करते हुये आप लिखते हैं—

अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते । क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपात इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः ।[2]

देश और धर्म की दुरवस्था का अनुभव करके व्यास जी का हृदय विगलित हो उठा । आपकी लेखनी से करुणा प्रवाहित होने लगी—

हा ! भारत ! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे ? हा ! वसुन्धरे ! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि ? हा ! सनातनधर्म ! किं विलयमेव यास्यसि ? हा ! चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि ? हा ! मन्दिरवृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा ! सांगवेद ! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? अहह !! धिग् ! धिग् ! रे ! कलिकाल ! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि ।[3]

तीर्थ-स्थानों पर मुसलमानों द्वारा तोड़े गये मन्दिर आपके हृदय को निश्चित रूप से उद्वेलित करते होंगे । मन्दिरों की मुसलमानों द्वारा की गई गति का वर्णन करने से आप कैसे रुक सकते थे—

हा ! विश्वम्भर ! काश्यां विश्वनाथमन्दिरं धूलीकृतमेतैः । हा ! माधव ! तत्रैव बिन्दुमाधवमन्दिरस्य बिन्दुमात्रमपि चिन्हं न प्राप्यते । हा ! गोविन्द ! तव विहारभूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्ददेवमन्दिरस्यापीष्टिकावृन्दं स्वच्छन्दं भषकैराक्रम्यते ।[4]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २१-२२ । २. 'शिवराजविजय' पृ० १४ ।
३. ,, ,, १७२ । ४. ,, ,, १७५ ।

शिशिर :—शिशिर-ऋतु में विपुल प्रालेय रहता है। दिनों की विशालता, रात्रियों की लघुता, कमलों की प्रसन्नता, जलों में सुख पूर्वक स्नान करना इस ऋतु द्वारा चुरा लिये जाते हैं। भगवान सूर्य दक्षिणायन होते हैं। आकाश प्राय. कोहरे से आच्छन्न रहता है। इस समय तेल, ताप, तूलिका (रजाई), तरुणी और ताम्बूल प्रिय लगते हैं। संसार के प्राणियों को स्तब्ध करता हुआ पवन वेग से बहता है। वन्य-जन्तु भी सूर्य की कोमल मरीचियों के सेवन की इच्छा रखते हैं। वीर पुरुष भी सीत्कार करने लगते हैं, उनके अधर व्रणित, रोमांचित और कम्पित होते हैं।[1]

वसन्त :--वसन्त का उल्लेख व्यास जी ने दो स्थानों पर किया है। प्रथम तो शरद्-ऋतु के समय वसन्त-कालीन लक्षण देकर तथा दूसरे— शिवाजी के वसन्त के प्रारम्भ में देहली पहुँचते समय। पहला वर्णन इस प्रकार है— पिकों के काकली-कलकल दिशाओं में व्याप्त हो रहे हैं, दक्षिण-पवन से चंचल लवंगलतायें हिल रहीं हैं, मधुगन्ध से मत्त भ्रमर आम्रमंजरियों पर गिर रहे हैं, पाटल-पुष्प-समूह जलते अंगारों के सदृश शोभायमान हो रहा है, जो विरहियों के हृदय को जलाने वाला है। फूलों के पराग और पीले मकरन्द के बिन्दु-समूह से आर्द्र, कुसुमित लताओं के आलिंगन से शीतल तथा कुंजों के सम्पर्क से मन्द पवन बह रहा है।[2]

प्रकृति यदि सौम्य आकर्षक और आनन्दप्रद है तो भीषण तथा त्रासदायक भी है। व्यास जी ने सौम्य प्रकृति द्वारा आनन्द-रस की धारा प्रवाहित करके उसकी भयानकता भी दिखाई है। प्रकृति की भयंकरता के चार चित्र हैं—अग्नि की प्रचण्डता, वन की भयंकरता, आंधी और वर्षा का ताण्डव और समुद्र का तूफान। वन की भयंकरता का वर्णन देश के प्रकरण में किया चुका है, शेष का वर्णन नीचे है—

अग्नि की प्रचण्डता :—अग्नि की प्रचण्डता का वर्णन द्वितीय निश्वास में अफजलखां के शिविर में लगाई गई अग्नि के प्रसंग में है। अग्नि की ज्वालायें आकाश को चूमने लगीं, दिगन्तों को प्रकाशित करने लगीं, कड़कड़ ध्वनि से प्रजाओं को डराने लगीं, उड़कर जलते हुये हजारों पटखण्डों से स्वर्णपक्षियों के भ्रम को उत्पन्न करने लगीं, जुगनुओं की तरह प्रतीत होते हुये करोड़ों स्फुलिंगों से प्रान्तों को पिंगल करने लगीं, बढ़ते हुये धुंये के समूह से गिरती हुई राख के द्वारा वृक्षों को श्वेत करने लगीं और उस समय कलकल ध्वनि करते हुये पक्षी पलायन करने लगे।[3]

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४०९-४१०। २. 'शिवराजविजय' पृ० ३१८-३१९।
३. ,, ,, ७३।

आंधी और वर्षा का ताण्डव :—आंधी और वर्षा का ताण्डव तोरण दुर्ग जाते हुये रघुवीर सिंह को सहना पड़ा। अचानक ही महान् झंझावात उठ खड़ा हुआ। एक तो सायंकाल का स्वाभाविक अंधेरा, वह भी मेघमालाओं से दुगना हो गया। पुनः झंझावात से उठी धूल, शीर्णपत्रों, कुसुमपरागों और सूखे फूलों से द्विगुणित हो गयी। चारों ओर हड़हड़ शब्द करके हिलते हुये वृक्षों के, वायु के आघात से गिरते हुये पाषाणों से युक्त प्रपातों के और महान्धकार से ग्रस्त होते पशुओं के क्रन्दन के भयानक शब्द से आकाश पूर्ण हो गया। तभी बिजली की चंचल रेखाओं ने चमकना प्रारम्भ किया। यदि एक दिशा में आँखों को विक्षिप्त करती, कानों को फोड़ती, देखने वालों को कंपाती, वन्य शिशुओं को डराती, आकाश को काटती, बादलों पर आघात करती और अन्धकार को जलाती विद्युत् चमकती है, तो दूसरी दिशा में मेघों को ज्वाला-जाल से आवृत करती है। चमकने के बाद चमकने, गर्जन के बाद गर्जन से सैकड़ों तोपों के चलने के सदृश उत्पन्न शब्द पर्वतों की कन्दराओं में प्रतिध्वनित होने से चतुर्गुण हो गया और वह भयानक जंगल उस ध्वनि से व्याप्त हो गया। तभी अचानक पूर्व दिशा में अति लम्बी और अति भयानक बिजली कड़कड़ शब्द के साथ चमकी और सुपारी के सदृश मोटी बूंदों के साथ वर्षा होनी प्रारम्भ हो गयी।[1]

समुद्र का तूफान :—समुद्र के तूफान का वर्णन वीरेन्द्रसिंह की रामेश्वर-यात्रा के प्रसंग में है। अचानक ही हड़हड़ शब्द के साथ आंधी चलने लगी, समुद्र में जल के पर्वतों के समान लहरें उठने लगीं और जहाज ने झूले की तरह हिलना प्रारम्भ कर दिया। सम्पूर्ण यात्री महान् क्रन्दन करने लगे। तभी एक प्रबल तरंग के आघात से जहाज न रहा।[2]

इस उपन्यास में देश-काल की सृष्टि स्थान तथा प्रकरण के अनुरूप है। यद्यपि तथ्य की दृष्टि से अनेक स्थल पुस्तकीय से प्रतीत होते हैं, तथापि वे रस और आनन्द का व्याघात नहीं करते। व्यास जी ने अनेक भौगोलिक स्थितियों का उल्लेख किया है। हिन्दू तथा मुसलमानों के अनुरूप सामाजिक व्यवस्था, वेषभूषा खानपान, शिक्षा और कला आदि को प्रस्तुत किया है। आपके प्राकृतिक वर्णन अवसर के अनुरूप हैं। प्रकृति के विभिन्न चित्र विभिन्न भावों को संचरित करने में समर्थ हैं। घटना-स्थल के भौगोलिक रूप तथा जन-जीवन की पृष्ठभूमि को अभिव्यक्त करने वाले प्रकृति चित्रण आपने प्रस्तुत किये हैं। आपकी प्रकृति कभी तो मानवीय भावनाओं के प्रति सदय, कभी क्रूर और कभी संवेदन-रहित है। व्यास जी में प्रकृति का निरीक्षण करने वाली भावनाशील

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १०६-१११। २. 'शिवराजविजय' पृ० २६५-२६७।

अनुभूति है। यद्यपि आपने बाण आदि कवियों के सदृश प्रकृति के अति विस्तृत और अतिरंजित चित्र अंकित नहीं किये, तथापि आपके चित्रण घटनाओं और स्थानों के वर्णनों के साथ एक-रूप हैं। वे पाठकों को लम्बे वर्णनों और क्लिष्ट कल्पनाओं में उलझा कर कथा सूत्र से अलग नहीं करते। इन वर्णनों से पाठक निःसन्देह काव्य सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करता है।

६. उद्देश्य

प्राचीन तथा आधुनिक काव्यशास्त्र के अनुसार काव्य की रचना का कोई उद्देश्य होना चाहिये। प्राचीन विचारधारा तथा आधुनिक विचारधारा में अधिक अन्तर नहीं है। संस्कृत काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार काव्य रचना के ६ प्रयोजन हैं—यश की प्राप्ति, धन की प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति अनर्थ का निवारण, आनन्द की अनुभूति और उपदेश।[1] इन प्रयोजनों में आनन्द की अनुभूति प्रधान प्रयोजन है।

आधुनिक विचारधारा के अनुसार लेखक अपनी रचना में अपने विशेष विचारों और जीवन-दर्शन को उपस्थित करता है। लेखक की विचारधारा के अनुसार उपन्यास के पात्र किसी आदर्श से प्रभावित होते हैं, उसी के लिये वे प्रसन्न होते हैं, दुःखी होते हैं, संघर्ष करते हैं और सफल या विफल होते हैं। रचनाकार का जीवन दर्शन उसकी रचना में प्रस्तुत होता है।[2] किन्तु कथाकार का प्रथम प्रयोजन कथा की रचना करना है, अतः उसके उपदेश या जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति कथा का ही एक भाग होती है। कथा-वस्तु से पृथक् होकर यह कथा के सौन्दर्य और रोचकता को नष्ट कर देती है। यह जीवन-दर्शन कथा में दो प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है। या तो लेखक उपन्यास के पात्रों के क्रिया-कलापों द्वारा इन भावों को अभिव्यक्त करता है,[3] अथवा पात्रों के चरित्र-चित्रण में

---

१. काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे। 'काव्यप्रकाश' पृ० १, २।

२. Since, then, the novelist's theme in life, is one or several of it's innumerable aspects; it is impossible for him not to give, expressly or by implication, some suggestion at least, if nothing more than a suggestion, of the impression which life makes up on him.

डब्लू० एच० हडसन-'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६३।

३. He selects certain materials out of the mass which life offers him; by his arrangement of these he brings certain facts and forces in to relief; he exibits character and motive under certain lights; and in the conduct of his plot indicates his view of the moral balance among the things which make up our human experience.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६५।

उनके गुण-दोष की आलोचना करता हुआ अपने आदर्श उपस्थित करता है ।[1] इस प्रकार कथा के प्रयोजन उपदेश और आनन्द प्राप्ति दोनों होते हैं ।

उद्देश्य की दृष्टि से प्राचीन और आधुनिक दृष्टिकोण अधिक भिन्न नहीं हैं । काव्य-रचना से कवि को यश और धन की प्राप्ति होती ही है । उसे तथा पाठकों को लोकव्यवहार का ज्ञान होता है । अनर्थ का निवारण भी हो सकता है । अन्तिम दो उद्देश्यों में परस्पर साम्य स्पष्ट है ।

व्यास जी का यह उपन्यास (गद्यकाव्य) उद्देश्य की दृष्टि से सफल है । व्यास जी ने इस काव्य के लिखने के प्रयोजनों का संकेत स्वयं किया है और वे प्रयोजन आधुनिक विचारधारा के अधिक समीप हैं । व्यास जी ने आनन्दानुभूति के अतिरिक्त एक जीवन-दर्शन उपस्थित किया है, जो ऊपर कही गई दोनों विधियों से प्रस्तुत किया गया है । उपन्यास के पात्र एक विशेष आदर्श को लक्ष्य में रख कर अपने कार्य की ओर अग्रसर होते हैं तथा कवि स्वयं भी उन पात्रों के चरित्र की आलोचना करता हुआ उन आदर्शों को व्यक्त करता है ।[2]

ऐतिहासिक काव्य का उद्देश्य कुछ अधिक विलक्षण है । ऐतिहासिक काव्यों का लेखक प्राचीन काल के महापुरुषों को कथानक में बाँधकर उनके द्वारा विशेष प्रकार के वातावरण की सृष्टि करता है और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्नशील होता है ।

'शिवराजविजय' की रचना का उद्देश्य कवि ने स्वयं इसकी भूमिका के रूप में "निर्माणहेतुः" लिखकर स्पष्ट किया है । इस लेखन से उनके निम्न उद्देश्य परिलक्षित होते हैं—

(क) संस्कृत भाषा में उपन्यास की रचना ।

---

१. He becomes interpreter of the mimic world he has called in to existance, and therefore of life at large, thus anticipating the critic in the task of systematising and formulating his thought.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६५ ।

२. पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दति, महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षार्थं सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्मघर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि, सिंहसंघेष्वपि, वारणवारेष्वपि, चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति । तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत आर्यवंशीया, वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः ।

'शिवराजविजय' पृष्ठ ४५-४६ ।

(ख) सनातन धर्म के रक्षक शिवाजी का वर्णन ।

(ग) हिन्दू धर्म पर होने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन और जातीय तथा राष्ट्रीय गौरव के अभ्युत्थान का प्रयत्न ।

(घ) सदुपदेश ।

(ङ) आनन्द की प्राप्ति ।

(क) **संस्कृत भाषा में उपन्यास की रचना :**—व्यास जी के युग में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से सर्वप्रथम बंगला और उसके बाद अन्य भारतीय भाषाओं में उपन्यासों के लेखन की प्रणाली आरम्भ हो चुकी भी । व्यास जी बंगला के ऐतिहासिक उपन्यासों से बहुत प्रभावित थे । संस्कृत-गद्य-साहित्य में इस शैली के अभाव को अनुभव करके आप ऐतिहासिक उपन्यास लिखने के लिये प्रवृत्त हुये ।

(ख) **सनातन धर्म के रक्षक शिवाजी का वर्णन करना :**—सनातन धर्म के प्रति आस्था रखने वाले व्यास जी ने इतिहास के पृष्ठों में से मुसलमानों के अत्याचारों से धर्म और जाति की रक्षा के लिये आग्रही शिवाजी को खोज कर[1] इस उपन्यास का नायक बनाया । बाल्यकाल में ही स्वप्नों में भगवती दुर्गा से देश की स्वतन्त्रता और धर्म की रक्षा का आदेश लेने वाले,[2] और मृत्यु के पश्चात् भी भारत की स्वाधीनता और धर्म-रक्षा के लिये चिन्तित होने वाले[3] शिवाजी के अतिरिक्त आपका आदर्श नायक कौन हो सकता था । अतः व्यास जी ने इन गुणों से विशिष्ट शिवाजी के वर्णन द्वारा अपनी रसना पवित्र की ।[4]

(ग) **हिन्दू धर्म पर होने वाले अत्याचारों का प्रदर्शन और जातीय तथा राष्ट्रीय गौरव के अभ्युत्थान का प्रयत्न** :—व्यास जी ने भारतवर्ष तथा हिन्दू जाति की दुर्दशा का प्रधान कारण मुसलमानों द्वारा इस देश पर अधिकार करके

---

१. कश्चन प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माग्रहग्रहग्रहिलः शिव इव धृतावतारः शिववीरः...... सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्यार्यकुलस्य, धर्मस्य, भारतवर्षस्य चाशासन्तानवितानस्यायमेवाश्रयः । 'शिवराजविजय' पृ० २३-२४ ।

२. महाराज ! बाल्येऽहं चिरं स्वप्नानपश्यम्—यद् दुराचारैम्लेंच्छैः सह प्रतियोद्ध स्वदेशस्य स्वातंत्र्यं धर्मं च रक्षितुं मां स्वयं भगवती दुर्गादिशतीति ।
'शिवराजविजय' पृ० ३५२ ।

३. दैवाद् वीरगतिं गतश्चेद् भवत्सु कुशलिपु पुनरपि स्वतंत्रमेव महाराष्ट्रराज्यम्, पुनरपि प्राप्तशरणो वैदिको धर्मः, पुनरपि च कम्प एव वक्षःसु भारतप्रत्यर्थिपत्नीनाम् । युष्मासु मया सह भारतभुवं विरहयत्सु च कस्मिन् धुरं धारयिष्यति धर्मः ।
'शिवराजविजय' पृ० २४७-२४८ ।

४. मया तु सनातनधर्मध्रुवंहशिवराजवर्णनेन रसना पावितैव ।
'शिवराजविजय' (निर्माणहेतुः) पृ० २ ।

हिन्दुओं पर नानाविध अत्याचार किया जाना निर्धारित किया । व्यास जी को जहां भी अवसर मिला उन्होंने इन अत्याचारों का जलता हुआ रूप उपस्थित किया । मुसलिम आधिपत्य का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करते हुये आपने सशक्त भाषा में मुसलिम बर्बरता प्रदर्शित की है —

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रं च पारस्परिकविरोधज्वरग्रस्तं विस्मृतराजनीतिं भारतवर्षदुर्भाग्यायमानमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकमकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमंगीचकार । तेन वाराणस्यामपि बह्वोऽस्थिगिरयः प्रचिताः, रिंगत्तरंगभंगा गंगाऽपि शोणितशोणा शोणीकृता, परः सहस्राणि देवमन्दिराणि भूमिसात्कृतानि ।[1]

भारत की दुरवस्था का वर्णन करते हुये आप लिखते हैं—

अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते । क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपात इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः ।[2]

देश और धर्म की दुरवस्था का अनुभव करके व्यास जी का हृदय विगलित हो उठा । आपकी लेखनी से करुणा प्रवाहित होने लगी-—

हा ! भारत ! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे ? हा ! वसुन्धरे ! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि ? हा ! सनातनधर्म ! किं विलयमेव यास्यसि ? हा ! चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि ? हा ! मन्दिरवृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा ! सांगवेद ! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? अहह !! धिग् ! धिग् ! रे ! कलिकाल ! यस्त्वं रक्षकानेव भक्षकान् विदधासि ।[3]

तीर्थ-स्थानों पर मुसलमानों द्वारा तोड़े गये मन्दिर आपके हृदय को निश्चित रूप से उद्वेलित करते होंगे । मन्दिरों की मुसलमानों द्वारा की गई गति का वर्णन करने से आप कैसे रुक सकते थे—

हा ! विश्वम्भर ! काश्यां विश्वनाथमन्दिरं धूलीकृतमेतैः । हा ! माधव ! तत्रैव बिन्दुमाधवमन्दिरस्य बिन्दुमात्रमपि चिन्हं न प्राप्यते । हा ! गोविन्द ! तव विहारभूमौ श्रीवृन्दावने गोविन्ददेवमन्दिरस्यापीष्टिकावृन्दं स्वच्छन्दं भषकैराक्रम्यते ।[4]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २१-२२ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० १४ ।
३. ,, ,, १७२ ।
४. ,, ,, १७५ ।

व्यास जी ने औरंगजेब को सभी मुस्लिम राजाओं की अपेक्षा अधिक अत्याचारी निर्धारित किया। उसके रूप में मानों कलियुग ने अवतार लिया था। केवल हिन्दुओं को सताने के लिये वह नये नये उपाय रचता था—

केवलमार्यस्वभावानामार्यजनानां क्लेशनार्थनेव गोहिंसनम्, प्रतिमाखण्डनम्, दीनहीनसनातनवैदिकधर्मशरणानामेवास्माकं जीवं-जीवं करग्रहणं महतां कार्यं वा ? वाराणस्यादिदेवतीर्थेषु बलात् पातितानां मन्दिराणां भग्नावशेषैः कपाटदेहली-पाषाणेष्टिकादिप्रचयैरेव स्वमज्जितरचना च महतां कार्यं वाः ?[1]

भारतदेश और हिन्दूधर्म की इस हृदय-द्रावक दुरवस्था को देखकर किस स्वाभिमानी हिन्दू का हृदय अपने देश, धर्म और जाति की रक्षा के लिए उत्साही और आग्रही नहीं होगा। भारत की इस भयानक दुरवस्था और निराशा में व्यास जी ने आशा का सन्देश दिया। देश की दुरवस्था का प्रधान कारण एकता का न होना है, अन्यथा इस देश के क्षत्रियों के प्रताप को कौन सहन कर सकता है—

अन्यथा को वा भटम्मन्यो भारतीयक्षत्रियाणां बालस्यापि क्रीडाचन्द्र-हासचमत्कारमतिसोढुमलम् । परन्त्वैक्यमेव न भवत्यस्मद्देशीयानाम्, यदि नाम सर्वेऽपि भारताभिजनवीरवराः सह युंजेरन्, तद्वयं क्षणेन पारावारमपि मरूकुर्मः ।[2]

राष्ट्रीय गौरव की रक्षा के लिए एकता की आवश्यकता है—

यद् भाग्यैरेषां भारतपरिपन्थिनां यवनानां न भवति पारस्परिकप्रीतिरस्माकं भारतीयक्षत्रियाणाम् । तद् भारताभिजनभूरिभाग्यभवनं भारताभिभावकभाग्य-पराभवनंच सर्वथैक्यमेवाऽऽसादनीयमस्माभिः । पारस्परिकविरोधज्वरावलीढानि दुर्बलानि भवन्ति बलानि, प्रेमपीयूषधाराऽभ्युक्षितानि च महामहांसि सम्पद्यन्ते तेजांसि ।[3]

उपन्यास के अन्त में व्यास जी ने शिवाजी द्वारा महाराष्ट्र को स्वतंत्रता प्राप्त कराकर भारतीय युवकों के हृदयों को वीरता और उत्साह से सम्पन्न किया है।

(घ) **सदुपदेश प्रदान करना**—व्यास जी ने प्रसंगतः अनेक उपदेश दिये। कुछ उत्तम उपदेशों को नीचे उद्धृत किया जाता है—

१. पूज्यजनों के आने पर उनका सत्कार करे।[4]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २०५।
२. 'शिवराजविजय' पृ० १७१।
३. ,, ,, ५३०।
४. ,, ,, ६।

२. प्राणों का भय होने पर भी दासता स्वीकार न करे।[1]

३. स्वामी से अपमानित होकर भी उसका अहित-चिन्तन न करे, अपितु अपने कार्यों से स्वामी का हृदय वश में करे।[2]

४. धर्म की रक्षा के लिये सुखों को छोड़कर निर्भयता-पूर्वक कष्ट सहन करना उचित है।[3]

५. दुष्ट और विश्वासघाती के प्रति "शठे शाठ्यं समाचरेत्" की नीति का अंगीकार करना उचित है।[4]

६. दुर्विनीत और आततायियों को बल से भी और छल से भी दण्ड देना परम पुण्य है।[5]

७. राजाओं को उचित है कि दुर्वृत्त मनुष्यों को निश्चित रूप से दण्डित करें।[6]

८. कन्यायें श्वसुरकुल में पीड़ित होती हुई भी अच्छी हैं, किन्तु अन्यत्र सुखी रहती हुई भी अच्छी नहीं।[7]

९. राजाओं के लिये उचित है कि वे जाति आदि का विचार किये बिना निष्पक्ष होकर शासन करें।[8]

(ङ) **आनन्द की प्राप्ति**—प्राचीन आचार्यों द्वारा निर्धारित काव्य का मुख्य उद्देश्य "सद्यः परनिर्वृति" भी इस काव्य की रचना का उद्देश्य है।[9] काव्य का अंगी-रस वीर होते हुये भी अंगरूप से अनेक रसों और भावों की अभिव्यंजना इसमें है। पाठक कभी तो वीर भावों से उद्दीप्त होता है, कभी शृंगार के मधुर आनन्द में खो जाता है, कभी भयानक और रौद्र वर्णनों से स्तम्भित होता है और कभी युवतियों की सरस वार्ताओं तथा हास-परिहास से प्रफुल्लित होता है। कहीं प्रकृति की भीषणता उसके हृदय को जड़ बना देती है और कहीं सौम्य सरस प्रकृति हृत्तन्त्री को झंकृत करती है। पाठक अनेकविध रसों और भावों के अभिव्यंजक इस उपन्यास से "सद्यः परनिर्वृति" की दशा को निश्चित रूप से प्राप्त करते हैं।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि कवि ने अपने उद्देश्यों में प्रभूत सफलता प्राप्त की। संस्कृत भाषा के गद्य-साहित्य को ऐतिहासिक उपन्यास नामक नवीन

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ६९।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ३६५।
३. ,, ,, ४५।
४. ,, ,, २०१।
५. ,, ,, २०२।
६. ,, ,, २०५।
७. ,, ,, २३८।
८. ,, ,, २७२।
९. सद्यः परनिर्वृतिश्च समासादितैव। 'शिवराजविजय' (निर्माणहेतुः) पृ० २।

काव्य-विधा से समृद्ध करके संस्कृत में नवीन परम्परा का सूत्रपात किया। अपने आदर्शों के अनुरूप नायक शिवाजी को इतिहास के पृष्ठों से निकाल कर स्वतंत्रता, देश, जाति और धर्म के रक्षक के रूप में जनता के सामने प्रस्तुत किया। आपने ओजस्वी शब्दों में मुसलिम अत्याचार का जलता हुआ रूप प्रस्तुत करके त्रस्त, दुःखी और दबे हुये हिन्दू युवकों में हिन्दू गौरव को प्रबुद्ध करते हुये आशा और विश्वास का सन्देश दिया। भिन्न २ प्रसंगों पर जीवन के लिये उपयोगी उपदेश प्रदान किये। आपके इस कथानक में इतनी शक्ति, सौन्दर्य और सरसता है कि इसको पढ़ने वाला पाठक इसमें पूर्ण रूप से रम जाता है और काव्य का आनन्द प्राप्त करता है।

————

षष्ठ अध्याय

शिवराजविजय (५)

शैली और रसाभिव्यक्ति

शैली शब्द अँग्रेजी स्टाइल का अनुवाद है और अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हिन्दी में आया है।[1] प्राचीन भारतीय साहित्य में भी शैली शब्द का प्रयोग है, किन्तु इसका प्रयोग व्याख्यान-पद्धति आदि के प्रसंग में हुआ है[2], साहित्यिक अभिव्यक्ति की पद्धति के अर्थ में नहीं। संस्कृत समालोचना में शैली का समानार्थक रीति को कहा जा सकता है। किन्तु रीति और शैली में कुछ भेद है। अभिव्यक्ति की पद्धति या गुण को शैली कहते हैं।[3] शैली में वस्तुतत्व और व्यक्तितत्व दो मूल तत्व होते हैं। शैली का वस्तुतत्व रीति हो सकता है, किन्तु व्यक्तितत्व रीति से कुछ भिन्न है। पाश्चात्य आलोचकों ने शैली के व्यक्तितत्व को प्रधानता दी है,[4] किन्तु भारतीय रीति विषय-प्रधान होने से व्यक्तितत्व को पूर्णतया प्रकट नहीं करती। अतः शैली को पूर्णतया रीति से अभिन्न मान कर उसी दृष्टिकोण से

---

१. 'हिन्दी साहित्य कोष' (ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी) प्रथम संस्करण पृ० ७७३।

२. प्रायेण आचार्याणामियं शैली यत् समान्येनामिधाय विशेषेण विवृणोति।
(कुल्लूक भट्ट की टीका-मनुस्मृति १।४), विशेवेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि कृत 'काव्यालंकार सूत्रवृत्ति की हिन्दी व्याख्या' पृ० ५५।

३. Style is term of literary criticism viewed as specific by some and as generic by others, use to name or describe it, the manner of quality of an expression.

जोसेफ टी शिप्ले द्वारा सम्पादित 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर' (१९६० संस्करण) पृ० ३५७।

४. The choice of words, the turn of phrases, the structure of sentences, their peculiar rythm and cadence—these are all curiously instinct with individuality of the writer, ...This is enough to show thar style I am using the word in it's broadest sense is fundamentally a personal quality.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० २७।

समालोचना करना उचित नहीं हैं। शैली के लक्षण के अनुसार भाषा, गुण, दोष, रीति और अलंकार को उसके अन्तर्गत समाविष्ट कर सकते हैं। काव्यशास्त्र के इन तत्वों का उपयोग लेखक अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये करता है, तथा इनके उपयोग से उसका व्यक्तितत्व पूर्णतया परिलक्षित होता है। इस आधार पर इस अध्याय में 'शिवराजविजय' की विवेचना निम्न क्रम से प्रस्तुत की जा रही है—

१. भाषा, २. गुण, ३. रीति, ४. अलंकार, और ५. रसाभिव्यक्ति।[1]

१. भाषा—

काव्य का शरीर शब्द और अर्थ है।[2] साहित्य की दृष्टि से शब्द और अर्थ के समूह को भाषा नाम दिया जा सकता है। यद्यपि भाषा शब्द का प्रयोग इससे अधिक व्यापक अर्थ में किया जाता है, तथापि साहित्य की समालोचना में भाषा के इसी स्वरूप को ग्रहण करना चाहिये। लेखक अपने भावों का प्रकाशन भाषा द्वारा करता है, अतः भाषा में स्वाभाविकता, सजीवता, सशक्तता, स्पष्टता और सरलता आदि विशेषतायें होने पर उसकी कृति सौन्दर्यशालिनी होती है। भावों के उत्कृष्ट होने पर भी यदि भाषा सौन्दर्यविहीन है तो कृति का सौन्दर्य उद्भासित नहीं होगा। भाषा की दृष्टि से 'शिवराजविजय' की आलोचना निम्न क्रम से की जा सकती है—

(क) शब्दशक्तियां, (ख) अनुगुण शब्दों का प्रयोग, (ग) शब्दों का अक्षय-भण्डार, (घ) नवीन शब्दों का प्रयोग, (च) लोकोक्तियां और मुहावरे, (छ) भाषा की सशक्तता, और (ज) भाषागत दोष।

(क) शब्दशक्तियां—काव्य में वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक तीन प्रकार के शब्द और उनके वाच्य, लक्ष्य तथा व्यंग्य तीन प्रकार के अर्थ होते हैं।[3] इन अर्थों का बोध अभिधा, लक्षणा और व्यंजना इन तीन शब्दशक्तियों द्वारा किया जाता है। व्यास जी ने तीनों शब्दशक्तियों द्वारा तीनों प्रकार के अर्थों को प्रकाशित किया है।

अभिधेय अर्थ के बोध के पश्चात् लक्ष्य अथवा व्यग्य अर्थों का ज्ञान होता है। 'शिवराजविजय' में अभिधावृत्ति द्वारा वाच्य अर्थ के साथ लक्षणा और व्यंजना वृत्तियों द्वारा लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ व्यक्त होते हैं।

---

१. काव्य की भाषा, गुण, रीति और अलंकार की दृष्टि से आलोचना करते हुये दोषों का भी विवेचन किया जाना चाहिये। भिन्न २ प्रकरण के दोषों का विवेचन उस उस प्रकरण में कर दिया गया है, अतः इस स्थल पर दोषों की पृथक विवेचना नहीं की गई।

२. शब्दार्थशरीरन्तावत् काव्यम्। 'ध्वन्यालोक' पृ० १६।

३. स्याद् वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा। वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः। काव्य प्रकाश २.६।

लक्षणा का प्रयोग—मुख्य अर्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ, रूढि अथवा प्रयोजन के होने पर लक्षणा-वृत्ति द्वारा लक्षित किया जाता है।[1] लक्षणा के सुन्दर प्रयोग 'शिवराजविजय' में हैं। यथा—

शाम्येदस्मच्चन्द्रहासानां चिरप्रवृद्धा महाराष्ट्ररुधिरास्वादतृषा।[2]

इस वाक्य में निर्जीव चन्द्रहास को रुधिरास्वादतृषा नहीं हो सकती और न वह शान्त हो सकती है। इस प्रकार मुख्य अर्थ के बाधित होने पर 'अस्मच्चन्द्रहासानां" का अर्थ उपादान-लक्षणा द्वारा "चन्द्रहासधारिणामस्माकं यवनानाम्" ग्रहण किया जाता है। यहां यवनों की स्वभावगत तीक्ष्णता और क्रूरता प्रदर्शित करना कवि का प्रयोजन है। अथवा--

गंगाधरस्याङ्गभूषणतामगमन्।[3]

इस वाक्य में स्त्रियों के शिव के अंगभूषण होने अर्थ के बाधित होने से लक्षण-लक्षणा द्वारा "भस्मताम्" अर्थ लक्षित होता है। यहां स्त्रियों द्वारा शिवलोक की प्राप्ति प्रयोजन है। अथवा—

महाराष्ट्रपंचाननपरिपूरिताम्।[4]

इस वाक्य में गौणी-सारोपा-लक्षणा द्वारा सिंहों के पराक्रम आदि गुणों का बोध महाराष्ट्र-देशीय जनता में होता है। अथवा—

शिवः तव महतीं पदवृद्धिमंगीकरिष्यति।[5]

इस वाक्य में विपरीत लक्षणा द्वारा शिवाजी तुम्हारे पद को नष्ट कर देंगे, यह अर्थ लक्षित होता है।

व्यंजना का प्रयोग—काव्य में व्यंजना का प्रयोग बाहुल्य से है। व्यंजना दो प्रकार की होती है—लक्षणामूला और अभिधामूला।[6] लक्ष्य अर्थ के लक्षित होने पर प्रयोजन की अभिव्यक्ति लक्षणामूला व्यंजना द्वारा होती है। इसके उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। अभिधामूला व्यंजना इस काव्य में मुख्य शब्द-शक्ति है। कवि ने प्रत्येक निश्वास के पूर्व कुछ पद्य उद्धृत किये हैं। वे पद्य उस निश्वास की कथा के भाव को अभिव्यक्त करते हैं। दूसरे निश्वास से पूर्व निम्न पद्य है —

१: मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया। 'काव्यप्रकाश' २.६।

२. 'शिवराजविजय' पृ० ७४।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ८५।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ६४।
५. 'शिवराजविजय' पृ० ४७।
६. एवं लक्षणामूलं व्यंजकत्वमुक्तमभिधामूलं त्वाह। 'काव्यप्रकाश' द्वितीय उल्लास पृ० २३।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे, हा ! हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥

इस पद्य से अभिव्यक्त होता है कि अफजलखां रात्रि के समाप्त होने के पश्चात् शिवाजी को कैद करने और कीर्ति अर्जित करने की विविध मनोकामनाओं से आल्हादित हो रहा था, किन्तु शिवाजी ने उसे मृत्यु के पथ पर भेज कर, उसकी सारी मनोकामनाओं का ध्वंस कर दिया ।

व्यंग्य अर्थ तीन प्रकार का होता है — वस्तुरूप व्यंग्य, अलंकाररूप व्यंग्य और रसरूप व्यंग्य ।[1] तीनों के उदाहरण 'शिवराजविजय' में निम्न हैं—

वस्तुरूप व्यंग्य—

महाराज ! महाराज ! अपि भवादृशानां सम्मुख उचितोऽयमन्यायप्रचारः ? किं रघुवीरसदृशानि कुलीनानामपत्यानि विद्रोहमाचरन्ति ?[2]

इस वाक्य में काकु की विशिष्टता से व्यंग्य अर्थरूप वस्तु की अभिव्यक्ति होती है, कि महाराज ! आपके सम्मुख इस प्रकार का अन्याय सर्वथा अनुचित है । रघुवीर के सदृश उत्तम कुल में उत्पन्न हुये बच्चे विद्रोह का आचरण नहीं करते ।

अलंकाररूप व्यंग्य—

कथं न सुधाकरः चन्द्रकान्तस्पर्शेऽपि रसं रचयेत् ।[3]

इस वाक्य का वाच्य अर्थ है कि चन्द्रमा चन्द्रकान्त-मणि के स्पर्श से रस का क्षरण कैसे नहीं करता । काकु की विशिष्टता से "चन्द्रकान्त मणि के स्पर्श से चन्द्रमा रस का क्षरण अवश्य करता है" यह वस्तुरूप अर्थ ध्वनित होता है । "सुधाकरः" का अर्थ है "सुधाममृतमारोग्यं करोतीति सुधाकरः वैद्यः," "चन्द्रकांत" का अर्थ है "चन्द्रवत् आल्हादकः कान्तः स्वामी," मुरेश्वर वैद्य शिवाजी राजा का स्पर्शरूप चपत खाकर आनन्द की रचना कर सकता है । इस प्रकार यह वस्तुरूप व्यंग्य अर्थ अभिव्यक्त होता है और इसके द्वारा मुरेश्वर का चन्द्रमा से तथा शिवाजी का चन्द्रकान्त से सादृश्य व्यंजित होकर उपमा अलंकार रूप व्यंग्य अर्थ की अभिव्यक्ति होती है ।

रस-रूप व्यंग्य—

रसाभिव्यक्ति के प्रकरण में विभिन्न रसों की निष्पत्ति के जो उदाहरण दिये गये हैं, वे सब रस-रूप व्यंग्य अर्थ को अभिव्यक्त करते हैं ।

(ख) अनुगुण शब्दों का प्रयोग—व्यास जी ने शब्दों के प्रयोग में उनके

१. संकलनेन पुनरस्य ध्वनेस्त्रयो भेदा व्यंग्यस्य त्रिरूपत्वात् । 'काव्यप्रकाश' पंचमउल्लास पृ० ६१ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ३८५ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ४७२ ।

काव्यानुगुण होने का ध्यान रखा है। प्रयुक्त शब्दों के स्थान पर किसी दूसरे शब्द का प्रयोग समुचित नहीं होता, क्योंकि वे ही शब्द उस स्थान पर उपयोगी हैं। यथा—

कदा तव कौमोदकी मोदं जनयिष्यति, कदा तव नन्दको नन्दयिष्यति।[1]

कौमोदकी में ही मोदजनन की और नन्दक में ही नन्दन की सामर्थ्य होने से यहां ये ही शब्द काव्य के अनुगुण हैं। अथवा—

अथ विजयतां त्रिपुरमथनो देवदेवः।[2]

इस स्थल पर शाईस्ताखां पर आक्रमण करने जाते हुये शिवाजी का शिव के लिये "त्रिपुरमथन" सम्बोधन काव्य के अनुगुण है।

(ग) शब्दों का अक्षय-भण्डार—व्यास जी के पास शब्दों का अक्षय भण्डार है। किसी भी वस्तु का वर्णन करने में उनका शब्द भण्डार समाप्त होने में नहीं आता। विक्रमादित्य के गुणों होने का वर्णन करने में—

"भगवन् धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्रभवति वीरविक्रमादित्ये।[3]"

आपकी यह प्रतिभा व्यंजित होती है। भण्डारघर की सामग्री और भोज्य वस्तुओं के अनेक नामों की आपने परिगणना की।[4] अनेक वाद्ययन्त्रों के नाम आपने गिनाये हैं।[5] आप किसी भी वस्तु का सांगोपांग पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं और उसके लिये आपके पास शब्दों की दरिद्रता नहीं रहती।

(घ) नवीन शब्दों का प्रयोग—व्यास जी ने नवीन शब्दों का प्रयोग कर संस्कृत को समृद्ध किया। मुसलमानों के लिए आपने "अरुणश्मश्रु" शब्द का प्रयोग किया। सम्भवतः मेहन्दी लगाकर, दाढ़ी लाल करने वाले मुसलमानों को देखकर, आपकोइस शब्द के प्रयोग की प्रेरणा मिली हो। पीकदान के लिए "निष्ठ्यूतादान",[6] चश्मे के लिए "उपनेत्र"[7], सलाम के लिये "आदरसूचक संकेत"[8], लालटेन के लिए "काचमंजूषा"[9] आंखों के भ्रम के लिये "चक्षुर्भ्रमरिका"[10], लोहे के

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १७५। २. 'शिवराजविजय' पृ० २५०।
३. ,, ,, १९।
४. ,, ,, ५१-५२, ४६४, ४७४-४७५।
५. ,, ,, ५६। ६. ,, ,, ५६।
७. ,, ,, १२७। ८. ,, ,, ५७।
९. ,, ,, १८०। १०. ,, ,, २२४।

टोप के लिए "आयसशीर्षाच्छादक"[1] चिलम के लिए "मत्रिका"[2], तोप के लिए "तोभ"[3] शब्द 'शिवराजविजय' में हैं। आपने अनेक व्यक्तिवाचक संज्ञायें भी संस्कृत में रूपान्तरित कीं। यथा—अफजलखां को अपजलखान, शाईस्ताखां को शास्तिखान, मोहम्मदगनी को महामदगरिण मुअज्जम को मायाजिह्म, रोशनआरा को रसनारी, रमजान को रामयान, मक्का को मर्क, जजिया को जीवंजीवं, अन्नाजी दत्तोबा को अन्नजीवदत्त रूप में परिवर्तित किया।

(च) लोकोक्तियों और मुहावरे—व्यास जी लोकोक्तियों और मुहाविरों द्वारा इस गद्यकाव्य की भाषा के सौन्दर्य में वृद्धि की है। उनके कुछ प्रयोग निम्न हैं—

(१) तत्सुप्रभातमद्य।[4]
(२) घृतेन स्नातु भवद्रसना।[5]
(३) पादांगुष्ठशिरीषाग्निः कदा मौलिमवाप्स्यति।[6]
(४) घुणाक्षरन्यायेन।[7]
(५) सत्यं दुग्धमुखीयम्।[8]
(६) अपि त्वादृशांस्तृणाय मन्यन्ते।[9]
(७) भवितव्यं भवत्येव नारिकेलफलाम्बुवत्।[10]

(छ) भाषा की सशक्तता—व्यास जी की भाषा सशक्त और अपने प्रयोजन को प्रतिपादित करने में समर्थ है। ओजस्वी भाषा में पात्रों द्वारा आप मानों प्रत्यक्ष रूप में वस्तु को अवतरित करते हैं। कौशला (सौवर्णी) की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुये कवि ने तथ्य पर तथ्य प्रस्तुत करके उसका करुणापूर्ण चित्र उपस्थित किया है—

कौशले ! कानि पातकानि पूर्वजन्मनि कृतवत्यसि ? यद् बाल्य एव त्वत्पिता संग्रामे म्लेच्छहतकैर्धर्मराजनगराद्ध्वन्यद्ध्वन्यः कृतः। माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेश्यावेवाखेटव्यसनिनौ महार्हभूषणभूषितौ तुरगावारुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृताविति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानस्य पुत्रीति स्वपुत्रीव मयैव सह नीता, वर्द्ध्यसे च। अहह कथं वारंवारं बालैव सुन्दरकन्याविक्रयव्यसनिभिर्यवनवराकैरपह्रियसे ?

१. 'शिवराजविजय' पृ० २२५।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २६५।
३. " " ३३६।
४. " " २८।
५. " " ५०।
६. " " १५१।
७. " " १८०।
८. " " २२४।
९. " " २७६।
१०. " " ३५१।

भगवदनुग्रहेण च कथंकथमपि मत्करमुक्ता पुनः प्राप्स्यसे। परमात्मन्! त्वमेव रक्षैनामनाथां दीनां क्षत्रियकुमारीम्।[1]

बिजली के चमकने और बादलों के कड़कने का सुन्दर सशक्त वर्णन है —

यावदेकस्यां दिशि नयने विक्षिपन्ती, कर्णौ स्फोटयन्ती, अवलोचकान् कम्पयन्ती, वन्यांस्त्रासयन्ती, गगनं कर्तयन्ती, मेघान् सौवर्णकषयेव घ्नती, अन्धकारमग्निनेव दहन्ती, चपला चमत्करोति, तावदन्यस्यामपि ज्वालावालेनेव बलाहकानावृणोति स्फुरणोत्तरं स्फुरणं गर्ज्जनोत्तरं गर्ज्जनमिति परःशतशतघ्नीप्रचारजन्येनेव कन्दरिकन्दरप्रतिध्वनिभिश्चतुर्गुणितेन महाशब्देन पर्यपूर्यत साऽरण्यानी।[2]

भाषा की सशक्तता और ओजस्विता शिवाजी द्वारा यशवन्तसिंह के सम्मुख कहे गए शब्दों में प्रकट होती है—

किन्तु निरीक्ष्यतां किमर्थेयं रणसज्जा? किमर्थम् एष महोपकार्यासन्निवेशः? किमिति भयानकभल्ला भासन्ते? किमिति चंचलाश्चन्द्रहासाश्चमत्कुर्वन्ति? कमश्वयितुमेते सादिनः? कं च भस्मात् कर्तुं ज्वालाजटिल एष भवत्कोपदावानलः? किं ये भवन्तमाशिषो ब्रुवन्ति, तेषामेव रक्तैः रेणुकाराशिमरुणयितुम्? ये भवन्माहात्म्यसमाकर्णनेन मोदन्ते, तेषामेव मेदोभिर्मेदिनीं मेदस्विनीं निर्मातुम्? ये भवन्तं निजकुलावतंसं मन्यन्ते, तेषामेव वंशं ध्वंसयितुम्? ये निरर्थं दीनान् लुण्ठन्ति, कुलीनकन्या अपहरन्ति, मन्दिराणि निपातयन्ति, सद्यो वृक्णैः प्रजानां मस्तकैर्नयनैश्च चिक्रीडन्ति, तानेव वैदिकमर्यादाविलोपनव्रतिनो वैरिहतकान् वा वर्द्धयितुम्?[3]

यशवन्तसिंह द्वारा फिर भी युद्ध करने का निश्चय प्रकट करने पर शिवाजी के शब्दों का ओज और अधिक बढ़ जाता है —

सत्यं योत्स्यते, स्ववंशजातानामेव क्षत्रियबालकानां वक्षश्छुरिकाभिर्विदारयिष्यते, सद्यश्छिन्नब्राह्मणकन्धरविगलद्रुधिरप्रवाहैर्भगवती वसुमती स्नपयिष्यते। यवनहस्तेष्वधिकारं समर्प्य महामांसदिग्धा च भारतभूर्द्रक्ष्यते।[4]

(ज) भाषागत दोष—यद्यपि 'शिवराजविजय' की भाषा-शब्द और अर्थ उत्कृष्ट हैं, तथापि इसमें कहीं कहीं कुछ दोष रह गए हैं। इन दोषों के कुछ उदाहरण नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ७८। २. 'शिवराजविजय' पृ० ११०।
३. ,, ,, १९५-१९६। ४. ,, ,, २०३।

१. यावच्चावां वस्त्राणि परिधाय, परिकरेऽसिधेनुकां बद्ध्वा, बाहुमूले निस्त्रिंशं चर्म च लम्बयित्वा.........।[1]

इस वाक्य में कर्ता गौरसिंह और श्यामसिंह का कथन "आवाम्" इस द्विवचन से किया गया है, अत: उनके साथ असिधेनुका, बाहुमूल, निस्त्रिंश और चर्म आदि में भी द्विवचन होना चाहिये। यदि इस स्थल पर जाति में एक वचन का प्रयोग हो तो "प्रत्येकं" इस शब्द का प्रयोग करके इसका संकेत देना उचित है।

२. अथ समार्दवं तदनुमतिमासाद्य सिंहदुर्गं प्रतिनिवर्तमानः मार्ग एव...... सादिभिरनुगम्यमानो माल्यश्रीकः समागच्छन्नालोकि।[2]

इस कर्म-वाच्य में कर्ता निवर्तमान शिवाजी और कर्म माल्यश्रीक हैं। कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग ठीक है, परन्तु कर्ता में तृतीया का प्रयोग होकर निवर्तमानेन होना चाहिये।

३. नाहं कथमप्यानृण्यमुपयास्यामि यो बाणैः प्रत्यर्थिनः प्राहरत्, शिताग्रेण शरेण यथा स झंझावातपातघाताहतः शुष्कच्छद इव परतः पपात।[3]

इस वाक्य में "प्रत्यर्थिनः" के लिए "स" इस सर्वनाम का प्रयोग हुआ है, इसमें बहुवचन होकर "ते पेतुः" इस प्रकार वाक्य-रचना होनी चाहिये।

४. विश्वेषां नयनानि सर्वेषां च मनो मोदयन्।[4]

इस स्थल पर "मनः" के स्थान पर "मनांसि" होना चाहिये। यद्यपि यहां जाति में एक वचन हो सकता था, तथापि प्रकरण के अनुसार बहुवचन का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता।

५. वामहस्ततर्जन्यंगुष्ठाभ्याम्।[5]

इस स्थल पर "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनांगानाम्" इस पाणिनीय सूत्र से एकवद्भाव होना चाहिये।

६. भगिन्यौ भवत्यावेव मम जीवने......किन्तु वित्थ एव भाग्यहीनाया मम व्यतीतं वृत्तान्तम्।[6]

इस वाक्य में "भवत्यौ" इस कर्त्ता के साथ क्रिया में प्रथम पुरुष का प्रयोग होकर "वित्तः" रूप होना चाहिये।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ८७। २. 'शिवराजविजय' पृ० २७४-२७५।
३. ,, ,, ४८६-४८७। ४. ,, ,, ५४२।
५. ,, ,, १८६। ६. ,, ,, ३३०।

व्याकरण की अशुद्धियों के अतिरिक्त अनेक स्थलों पर ऐसे शब्दों का प्रयोग है, जो प्रकरण के लिए उपयुक्त प्रतीत नहीं होते। मराठों द्वारा शाईस्ताखां के महल पर आक्रमण के समय जिन महिलाओं ने प्रासाद के पीछे खटखट शब्द सुना उनके लिये "महामदमहिलाभिः" शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे पूर्व शाईस्ताखां के एक दरबारी का नाम महामदगणि आ चुका है, अतः शाईस्ताखां की औरतों के लिये "महामदमहिलाभिः" शब्द भ्रान्ति उत्पन्न कर सकता है। सूर्यास्त का वर्णन करते हुये चर जगत के साथ अचर जगत् को भी दृष्टि-शक्ति प्रदान कर दी गई है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कहीं कहीं कुछ साधारण दोषों के होते हुये भी 'शिवराजविजय' की भाषा प्रभावशाली और उत्कृष्ट है और इसका सौन्दर्य सहृदयों को मुग्ध करने में सफल है।

२. गुण

काव्य में प्रधान रूप से स्थित रस के साथ सदा रहने वाले और रस का उत्कर्ष करने वाले धर्मों को गुण कहा जाता है।[2] गुणों के रस का धर्म होने से इनका वर्णन रस के प्रकरण में होना चाहिये, तथापि वर्ण, समास और रचना द्वारा अभिव्यक्त होने के कारण[3] इनका विवेचन इसी प्रकरण में किया जा रहा है।

माधुर्य, ओज और प्रसाद ये तीन गुण हैं। शृंगार, करुण तथा शान्त रस में माधुर्य गुण एवं वीर, बीभत्स और रौद्र में ओजोगुण की स्थिति होती है। प्रसाद गुण की स्थिति सभी रसों में होती है। प्रधान रूप से रसों में स्थित होते हुये भी ये गुण अप्रधान रूप से शब्द और अर्थ में भी रहते हैं।[4] इस वीर रस प्रधान काव्य में मुख्य रूप से यद्यपि प्रसाद-गुण अभिव्यक्त हुआ है, तथापि अन्य गुणों माधुर्य और ओज की अभिव्यक्ति भी प्रकरण के अनुसार है। 'शिवराजविजय' से इनके कुछ उदाहरण नीचे लिखे जाते हैं।

(क) माधुर्य गुण— संयोग-शृंगार को अभिव्यक्त करने वाले निम्न वाक्य मे माधुर्य-गुण की सुन्दर अभिव्यक्ति है—

---

१. सकलचराचरचक्षुसंचारशक्तिं शिथिलीकृत्य। 'शिवराजविजय' पृ० ३४।

२. ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः। 'काव्यप्रकाश' ८.६६।

३: वर्णाः समासो रचना तेषां व्यंजकतामिताः। 'काव्यप्रकाश' ८.७३।

४. माधुर्यौजः प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश। आह्लादकत्वं माधुर्यं शृंगारे द्रुतिकारणम्॥
करुणे विप्रलम्भे तच्छान्ते चातिशयान्वितम्। दीप्त्यात्मविस्मृतेर्हेतुरोजो वीररसस्थितिः॥
बीभत्सरौद्ररसयोस्तस्याधिक्यं क्रमेण च। शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः॥
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहित स्थितिः। गुणवृत्त्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता॥
'काव्यप्रकाश' ८.६८-७१।

सा त्वानन्दपरवशा जडीकृतेव चित्रार्पितेव मन्त्रकीलितेव मायामोहितेव विक्रीतचित्तेव हारितहृदयेव मथितमानसेव च विविधभावभंगतरंगिताभ्यां नयनाभ्यां निपुणमीक्षमाणा, अविरलगलन्नयनजलधारया भसितसम्मर्दमिव क्षालयन्ती, मन्दं मन्दं मुहूर्तमालप्य तं विससर्ज ।[1]

विप्रलम्भ-शृंगार के अभिव्यंजक निम्न वाक्य में माधुर्य गुण की मनोहारिणी अभिव्यंजना है—

तां तथा निःशब्दरोदनेनापि रोदसी रोदयन्तीम्, सधडत्कृतिना वक्षसा, विवर्णेन वदनेन, शून्यया दृष्ट्या, विकलया चांगयष्ट्या, अतिस्फुटीकृतप्रियविरह-क्लेशमाकलय्य, परवशतामंगीकुर्वदिव हृदयम्, भज्यमानमिव वाचम्, रुध्यमानमिव कण्ठम्, वेपमानमिव विग्रहम्, प्लाव्यमानमिव च चक्षुः, कथं कथमिव स्ववशंवदं विधाय, ते अश्रुमार्जनैः, कदलीदलवीजनैः, शान्तवचनैश्च सान्त्वयामासतुः ।[2]

प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन में कवि ने मनोहारी माधुर्य-व्यंजक वर्णों का प्रयोग किया है—

वसन्त इव पुंस्कोकिलाः काकलीकलकलैर्दिगन्तं बधिरयन्ति । मिलितमलयानिललोला लवंगलता दोलन्ति । मधुगन्धान्धमधुव्रतव्रातविधुता माकन्दमंजर्यो मांजुल्यं वमन्ति ।[3]

(ख) ओजोगुण—वीररस की अभिव्यक्ति करने वाले वाक्यों में लम्बे समासों और कठोर वर्णों द्वारा ओजोगुण की अभिव्यक्ति हुई है—

अस्ति कश्चन धैर्यधारिधुरन्धरैः, धर्मोद्धारधौरेयैः, सोत्साहसाहसचंचच्चन्द्रहासैः, सुशक्तिसुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः, भयोद्-भेदनभिन्दिपालैः, स्वप्रतिकूलकुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासक्तशूलैः, घनविघ्नविघट्ट-कघर्घराघोषघोरशतघ्नीकैः, प्रत्यर्थिशुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः, प्रचण्डदोर्दण्ड-वैदग्ध्यभाण्डप्रकाण्डकाण्डैः, क्षत्रियवर्यैरार्यवर्यैर्यवर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्रदेशः ।[4]

अग्नि की इस भीषणता में भी ओजोगुण की अभिव्यक्ति है—

कडकडाध्वनिधर्षितप्रान्तप्रजाः, उड्डीयमानदन्दह्यमानपरःसहस्रपटमण्डप-विहितहैमविहंगमविभ्रमाः, ज्योतिरिङ्गणायितपरःकोटिस्फुलिंगरिंगितपिंगीकृतप्रान्ताः, दोधूयमानधूमघटापटलपरिपात्यमानभासितसितीकृतानोकहाः, सकलकलध्वनिभिः पलायमानैः पतत्रिपटलैरिव सोसूच्यमानाः, शिविरघस्मराः ज्वालमाला अवलोक्य, सहाहाकारं तदभिमुखं प्रयाताः ।[5]

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४९७ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २२९-२३० ।
३. ,, ,, ३१८ ।
४. ,, ,, ८२-८३ ।
५. ,, ,, ७३

(ग) प्रसाद गुण—काव्य के प्रारम्भ में सूर्य की स्तुति करते हुये प्रसाद गुण अभिव्यक्त हुआ है—

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः । एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य ।[1]

गोपीनाथ के निम्न कथन से भी प्रसादगुण की अभिव्यक्ति होती है—

वीर ! परित्यज नवामिमां चंचलतामस्माभिः सह युद्धस्य, त्वदपेक्षयाऽत्यन्तमधिकं बलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽत्र कोषः, महती सेना, बहूनि दुर्गाणि, बहवश्च वीराः सन्ति । तच्छुभमात्मन इच्छसि चेत् त्यक्त्वा निखिलां चंचलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, करप्रदतामंगीकृत्य, समागच्छ मत्सभायाम् ।[2]

विप्रलम्भ-शृंगार की अभिव्यक्ति करने वाले निम्न वाक्य के वर्णों और रचना से भी प्रसाद-गुण अभिव्यक्त होता है—

सौवर्णि ! तव दुःखेन दुःखिते आवामिति विश्वसिहि । त्वां हि, कदाचित् सर्वा अस्मान् विहाय, उद्यानं प्रविश्य, एकान्ते तरुतल उपविशन्तीम्, क्वचन रहसि शिलासूपविश्य करतले कपोलं संस्थाप्यानिमिषाभ्यां दृग्भ्यां किमपि चिन्तयन्तीम्, कर्हिचित् कुंजान्तः प्रविश्य गजदन्तफलके कस्यापि प्रतिमूर्तिमिव लिखन्तीम्, कदाचन पाण्डुगण्डतलविसृत्वराण्यश्रूणि पटप्रान्तेन मार्जयन्तीम्, क्वचित् लुण्ठितेनेव, वंचितेनेव, अपहृतेनेव च हृदा, कंचिद्धवलिमानमिवांगेषु वहन्तीम्, दर्शं दर्शं भिद्यत इवाऽऽवयोर्हृदयम् ।[3]

३. रीति

संस्कृत काव्यशास्त्र में सबसे पहिले रीति शब्द का प्रयोग आचार्य वामन ने किया । आपने विशिष्ट पदरचना को रीति बताते हुये[4] इसे काव्य की आत्मा कहा[5] और गुणों के साथ रीति का सम्बन्ध निर्धारित करते हुये तीन रीतियां प्रतिपादित कीं ।[6] वामन से पहले भामह ने वैदर्भ और गौडीय काव्य का विवेचन करके रीति का संकेत तो किया, किन्तु गुणों से उनका कोई मौलिक

१. 'शिवराजविजय' पृ० २-३ । २. 'शिवराजविजय' पृ० ६८ ।
३. " " २२७-२२८ ।
४. विशिष्ट-पदरचना रीतिः । 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' १. २. ७ ।
५. रीतिरात्मा काव्यस्य । 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' १. २. ६ ।
६. सा त्रेधा वैदर्भी गौडीया पांचाली चेति । 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' १. २. ९ ।

सम्बन्ध प्रतिपादित नहीं किया था।[1] दण्डी ने वैदर्भ और गौडीय मार्ग का संकेत करके उनका गुणों के साथ मौलिक सम्बन्ध स्थापित किया। इनके पश्चात् भोज, राजशेखर, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने रीति के अनेक भेदों की विवेचना की। किन्तु ध्वनि की स्थापना करने वाले आचार्य आनन्दवर्धन ने रीतिवादियों की कटु आलोचना करते हुये उन्हें काव्यतत्व की व्याख्या करने में असमर्थ बताया[2] और असमासा, मध्यमसमासा और दीर्घसमासा तीन प्रकार की संघटना कही।[3] इनके अनुसार इस संघटना का गुणों से नियत सम्बन्ध नहीं है।[4] मम्मट ने भी रीतियों को विशेष महत्व न देते हुये वर्णों के विशेष प्रकार के गुम्फन को रीति नाम देकर यह प्रकरण समाप्त कर दिया।[5] विश्वनाथ ने रीतियों का कुछ विस्तार से विवेचन किया, किन्तु आपने रीति के वामनकृत लक्षण को स्वीकार करके भी उसे काव्य का बहिरंग बता कर रस आदि का उपकार करने वाली कहा।[6] आपने वैदर्भी गौडी, पांचाली और लाटी चार प्रकार की रीतियां प्रतिपादित कीं। वामन ने रीति को काव्यतत्व के आत्मरूप में प्रतिष्ठित किया था, किन्तु उत्तरवर्ती ध्वनिवादी आचार्यों ने वामन की परिभाषा "विशिष्टपदरचना रीतिः" को स्वीकार करके भी इसे काव्य के बहिरंग रूप में नियत कर दिया।

'शिवराजविजय' की पदरचना मुख्य रूप से वैदर्भी रीति में निबद्ध है। इसके अतिरिक्त काव्य के वीर रस प्रधान होने के कारण वीर आदि कठोर रसों की अभिव्यक्ति के अनेक स्थलों पर गौडी रीति का भी प्रयोग है। अंगभूत शृंगार रस की अभिव्यंजनाओं में पांचाली रीति का प्रयोग है। विशिष्ट पदरचना रूप इन रीतियों के उदाहरण 'शिवराजविजय' से उद्धृत किये जाते हैं—

(क) वैदर्भी-रीति— ओजः, प्रसाद आदि सम्पूर्ण गुणों से युक्त रीति वैदर्भी

---

१. आचार्य विश्वेश्वर कृत 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति की हिन्दी व्याख्या' पृ० ३२।

२. अस्फुटस्फुरितं काव्यतत्त्वमेतद् यथोदितम्।
अशक्नुवद्भिर्व्याकर्तुं रीतयः सम्प्रवर्तिताः॥ 'ध्वन्यालोक' ३.४६।

३. असमासा समासेन मध्यमेन च भूषिता।
तथा दीर्घसमासेति त्रिधा संघटनोदिता॥ 'ध्वन्यालोक' ३.५॥

४. तस्मादनियतसंघटनशब्दाश्रयत्वे गुणानां न काचित् क्षतिः। तेषां तु चक्षुरादीनामिव यथास्वं विषयनियमितस्य स्वरूपस्य न कदाचिद् व्यभिचारः तस्मादन्ये गुणा अन्या च संघटना।
'ध्वन्यालोक' बालप्रियालोचन-टीका-सहिता। (चौखम्बा संवत् १९९७) पृ० ३१९।

५. माधुर्यव्यंजकैर्वर्णैरुपनागरिकोच्यते। ओजःप्रकाशकैस्तैस्तु परुषा कोमला परैः॥
केषांचिदेता वैदर्भीप्रमुखा रीतयो मताः॥ 'काव्यप्रकाश' ९.७९-८०।

६. पदसंघटनारीतिरंगसंस्थाविशेषवत्। उपकर्त्री रसादीनाम्........ 'साहित्यदर्पण' ९.१।

कहलाती है ।[1] यह असमासा या अल्पसमासा होती है । 'शिवराजविजय' की अधिकांश रचना वदर्भी रीति में है । इस वाक्य में स्पष्ट रूप से वैदर्भी की संघटना है—

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः । एष भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य, सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य ।[2]

रघुवीरसिंह के भावों की अभिव्यक्ति करने वाले इस वाक्य की रचना भी वैदर्भी रीति में ही हुई है—

यत् किमिव करोमि ? अल्पं मे महत्वम्, क्षुद्रोऽधिकारः, असिधारावलेहनमिव कायम्, प्रत्यहं वर्द्धमान उपद्रवो महाराष्ट्रदेशे, स्वप्रेम्णा क्रीतवती मे हृदयं सौवर्णी, सा महतां कुलरत्नम् महाधिकारस्य श्रीमतो गौरसिंहस्य भगिनी, कस्यापि कृतपुण्यस्य जनस्य जनुः सफलयितुमवतीर्णा, तथाऽपि सा मदर्थमेव रोदिति, दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमांचति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च ।[3]

वीर भाव व्यक्त करने वाले इस वाक्य के पदों का संगठन भी वैदर्भी रीति में है —

राजपुत्रदेशीया युद्धकुशलाश्चेन्महाराष्ट्रा अपि दुर्बलेन करेण न वहन्ति चन्द्रहासम् । युद्धे प्राणांस्त्यक्ष्यथ, ततोऽपि मार्तण्डमण्डलं भित्वा स्वर्गमार्गमाकुलयिष्यथ । यदि विजेष्यध्वे, ततोऽपि लोकद्वये कीर्त्या कीर्ति धर्मरक्षापुण्यंच लप्स्यध्वे ।[4]

ख) गौडी-रीति—ओज और कान्ति गुणों से युक्त रीति गौडी रीति कहलाती है । यह समासबहुला और उत्कट पदों से युक्त होती है ।[5]

शिवाजी की विशेषताओं का वर्णन करने वाले वीररसाभिव्यंजक निम्न पदों का संगठन गौडी रीति का उत्तम उदाहरण है—

स्वस्ति श्रीसकलवसुमतीवलयदेदीप्यमानधैर्यवीर्यगाम्भीर्यप्रभावेषु, स्वच्छन्दोच्छृंखलोच्छलन्म्लेच्छमण्डलमूर्छादीक्षादक्षेषु, रणांगणागणितप्राणेषु, वैरिव्रातपात-

---

१. समग्रगुणा वैदर्भी । समग्रै रोजःप्रसादप्रमुखैर्गुणैरुपेता वैदर्भी नाम । 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति'

२. 'शिवराजविजय' पृ० २-३ । ३. 'शिवराजविजय' पृ० ३०४ ।

४. „ „ ४०४-४०५ ।

५. ओजःकान्तिमतीगौडीया । ओजःकान्तिश्च विद्येते यस्यां सा ओजःकान्तिमती, गौडीया नाम रीतिः । माधुर्यसौकुमार्ययोरभावात् समासबहुला अत्युल्वणपदा च ।

'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' १.२.१२ ।

कृपाकृपणकृपाणधारावलीढभारतप्रत्नसपत्नव्यग्रग्रीवाग्रविगलत्कवोष्णशोणशोणित--शोणचन्दनद्रवचर्चितभूभागेषु स्वातंत्र्यपीयूषप्रवाहरंजितमहाराष्ट्रप्रदेशेषु, क्षत्रियभूपानुरूपाऽऽचारप्रचुरीकृताऽऽस्माकीनाभिमानेषु, परमस्नेहभाजनेषु, महाराष्ट्रचक्रचक्रवर्त्तिषु, श्रीशिवराजवीरवरेषु ।[1]

वन की भयंकरता को व्यंजित करने वाले निम्न वाक्य के पदों का संगठन भी गौडी रीति से है—

पदे पदे च भयानकभल्लूकानामम्बूकृतसंकुलानाम्, मुस्तामूलोत्खननघुर्घुरायितघोरघोणानां घोणिनाम्, पंकपरीवर्त्तोन्मथितकासाराणां कासराणाम्, नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षूणाम्, विकटकरटिकटविपाटनपाटवपूरितसंहननानां सिंहानाम्, नासाग्रविषाणशाणशाणनच्छलविहितगण्डशैलखण्डानां खड्गिनाम्, दोदुल्यमानद्विरेफदलपेपीयमानदानवारिधुरन्धराणां सिन्धुराणाम्, कृपाकृपणकृपाणच्छिन्नदीनाढ्वनीनगलतलगलत्पीनधारशोणितबिन्दुवृन्दरंजितवारवाणसारसनोष्णीषधारणाकलिताखर्वगर्वबर्बराणां लुण्ठकनिकराणांच, सर्वथा साक्षात्कारसम्भवः ।[2]

(ग) पांचाली-रीति—माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त रीति पांचाली होती है ।[3] विप्रलम्भ-शृंगार की व्यंजना करने वाले इन पदों का संगठन पांचाली-रीति में किया गया है—

अहह तस्यास्तानि तानि भाषितानि, तानि तानीङ्गितानि, तानि तानि भ्रूविभ्रमणानि, तानि तानि प्रेक्षितानि, तानि तानि हसितानि, तानि तानि च रुदितानि शल्यानीव निमग्नानि मम हृदये, स्वप्नेष्वपि तामेव सुदतीं मदर्थं रुदतीमवलोकयामि ।[4]

'शिवराजविजय' में पदों की संघटना प्रकरण के अनुरूप है । यदि किसी स्थल पर वीर रस की अभिव्यंजना में गौडी रीति का प्रयोग है तो उन्हीं स्थलों पर कोमल रसों की अभिव्यंजना में पांचाली रीति का प्रयोग हो जाता है । यथा—

अहो ! आश्चर्यम् ! य एष फफिफणाफूत्कारेष्वपि सक्रोधहर्यक्षजृम्भारम्भेष्वपि भल्लतल्लजाग्रपरिस्पर्द्धिखरनखरभल्लधावनेष्वपि घनघनाघनघर्षणविघट्टितगैरिकव्रातजलप्रपातगिरिगह्वरोत्फालेष्वपि तरलतरतरंगतोयावर्त्तशताकुलतरंगिणीतीव्र-

---

१. 'शिवराजविजय' ५२१-५२२ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ९५-९६ ।
३. माधुर्यसौकुमार्योपपन्ना पांचाली ।
माधुर्येण सौकुमार्येण च गुणेनोपपन्ना पांचाली नाम रीतिः । "काव्यालंकारसूत्र वृत्ति" १.२.१३. ।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ३०५ ।

तरवेगेष्वपि गण्डकमण्डलघोणाघर्षणघोरघर्घराघोषघोरतरप्रान्तरेष्वपि च धैर्यं नात्याक्षीत्, कार्यजातं न व्यस्मार्षीत्, आत्मानं च न न्यगकार्षीत्, तस्याधुना स्विद्यन्त्यंगानि, एजते गात्रयष्टिः विमनायते हृदयम्, अंचन्ति रोमाणि, क्षुभ्यति च मनः।[1]

इस स्थल पर "धैर्यं नात्याक्षीत्" पद पर्यन्त वीररस की अभिव्यंजना में उत्कटवर्णों से युक्त समासबहुला रचना द्वारा गौडीरीति में पदों का जो संगठन है और "सीदन्त्यंगानि" से शृंगार-रस की अभिव्यक्ति के लिये कोमल पांचाली-रीति का प्रयोग है।

४. अलंकार

अलंकार काव्य के शरीर शब्दों और अर्थों की शोभा बढ़ाते हैं, अतः काव्य की शोभा के आधायक धर्मों को अलंकार कहा जाता है।[2] ये अलंकार शब्द और अर्थ को अलंकृत करके काव्य के आत्मरूप रस को उसी प्रकार उपकृत करते हैं जिस प्रकार हार आदि अलंकार रमणी के शरीर को भूषित करके उसके सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं।[3] शब्दालंकार और अर्थालंकार दो प्रकार के अलंकार होते हैं। 'शिवराजविजय' में अलंकारों के कुछ प्रयोगों का निदर्शन नीचे किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और यमक का अधिक प्रगोग है। अर्थालंकारों में उपमा और उत्प्रेक्षा का बाहुल्य है।

(१) अनुप्रास-अलंकार—

वर्णों के साम्य को अनुप्रास कहते हैं। यह छेक और वृत्ति दो प्रकार का होता है। अनेक व्यंजनों का एक बार सादृश्य होने पर छेकानुप्रास और एक या अनेक वर्णों का अनेक बार सादृश्य होने पर वृत्त्यनुप्रास होता है।[4] यदि अनुस्वार, विसर्ग और स्वर से युक्त व्यंजनों की पाद अथवा पद के अन्त में आवृत्ति हो तो इसे अन्त्यानुप्रास कहते हैं।[5] छेक, वृत्ति, और अन्त्य अनुप्रासों का प्रयोग 'शिवराजविजय' में बाहुल्य से है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १२२-१२३।

२. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते। 'काव्यादर्श' २. १।

३. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥ 'काव्यप्रकाश' ८.६७।

४. वर्णसाम्यमनुप्रासः छेकवृत्तिगतो द्विधः।
सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः एकस्याप्यसकृत्परः॥ 'काव्यप्रकाश' ६.७६।

५. व्यंजनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेण तु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्॥ 'साहित्यदर्पण' १०:६।

(क) छेकानुप्रास—

(अ) शोणितशोणधाराभिः ।[1]

(ब) लुण्ठका यथा न लुण्ठेयुः ।[2]

(स कटिपटाच्छन्नच्छुरिकाम् ।[3]

(ख) वृत्यनुप्रास—

(अ) दारुणदानवोदन्तोदीरणैर्न दीर्यते ।[4]

(ब) नितान्तविरहक्लान्तपरमश्रान्तशून्यस्वान्तकान्तजनज्वालाजटा-
लदावज्वलनजाज्वल्यमानांगारककम्बमिव ।[5]

(स) यवनोद्दण्डशुण्डादण्डगण्डिमण्डलम् ।[6]

(ग) अन्त्यानुप्रास —

(अ) सखि रे नन्दतनय आगच्छति ।
मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति ।[7]

(ब) असावेव चर्कर्ति, बर्भर्ति, जर्हर्ति च जगत् ।[8]

(स) सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्यन्ते,
स्मृतयः सम्मृद्यन्ते, मन्दुराणि मन्दुरीक्रियन्ते,
सत्यः पात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते ।[9]

(२) यमक-अलंकार—

अर्थ होने पर भिन्न अर्थ वाले वर्णों की पुनः उसी क्रम से श्रुति होने पर यमक अलंकार होता है ।[10] यमक अलंकार के कुछ उदाहरण निम्न हैं—

१. 'शिवराजविजय' पृ० १७ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २०० ।
३. " " २४१ ।
४. " " १७ ।
५. " " ३१८ ।
६. " " ५१५ ।
७. " " ६१ ।
८. " " ३ ।
९. " " १८ ।
१०. अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः । यमकम् ॥ 'काव्यप्रकाश' ९, ८३ ॥

(अ) शारदशर्वरीशर्वरीसार्वभौमकिरणकिरणोद्भूतकीलालाली-
व्यालीढचन्द्रकान्तजालीभूतलोचनः ।[1]

(ब) निःशंकं तस्मिन्ने व कोमलतमवेषे शेषे शेषे । तत्किं जगतः शेषे
तव निद्रा भंक्ष्यते ।[2]

(स) अष्टापदरचितम् अष्टापदम् ।[3]

(३) उपमा-अलंकार—

अलंकार-शास्त्र के रचयिताओं ने उपमा को सर्वाधिक मान्यता दी है। राजशेखर ने इसे सम्पूर्ण अलंकारों से श्रेष्ठ बताते हुये कवियों की माता कहा।[4] अलंकारसर्वस्वकार ने उपमा को ही सब अलंकारों में प्रधान कहा।[5] उपमान और उपमेय का चारु साद्दश्य होने पर उपमा अलंकार होता है,[6] इस साद्दश्य में भेद भी निहित रहता है।[7] उपमा के उपमान, उपमेय, साधारणधर्म और उपमावाचक शब्द ये चार अंग होते हैं। चारों अंग उपस्थित होने पर पूर्णोपमा और किसी अंग के न होने पर लुप्तोपमा होती है। एक उपमेय के साथ अनेक उपमान होने पर उपमा मालारूप से होती है। सभी उपमाओं के प्रयोग शिवराजविजय में हैं।

(क) पूर्णोपमा—

(अ) योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्टकाष्ठपीठं भास्वानिवोदयगिरि-मारुरोह ।[8]

(ब) नाहं वारवधूरिव विश्वेषां नर्मपात्रम् ।[9]

पहिले उदाहरण में योगिराज और काष्ठपीठ उपमेय, भास्वान् और उदयगिरि उपमान, इव उपमावाचक और आरुरोह साधारण धर्म हैं। दूसरे

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ७६ । २: 'शिवराजविजय' पृ० १७३-१७४ ।

३: ,, ,, २८० ।

४: अलंकारशिरोरत्नं सर्वस्वं काव्यसंपदाम् ।
उपमा कविवंशस्य मातैवेति मतिर्मम ॥
'साहित्यदर्पण' —श्री कृष्ण मोहन ठाकुर कृत टीका चौखम्बा (१९४७) पृ० ८९७ से उद्धृत ।

५: उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभूदात् ।
रंजयति काव्यरंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः ॥
'साहित्यदर्पण'—श्री कृष्णमोहन ठाकुर कृत टीका चौखम्बा (१९४७) पृ० ८९७ से उद्धृत ।

६: उपमा यत्र साद्दश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ॥ कुवलयानन्द (चन्द्रालोक) ६ ।

७: साद्दश्यमुपमा भेदे ॥ 'काव्यप्रकाश' १०.८७ ।

८. 'शिवराजविजय' पृ० ९-१० । ९. शिवराजविजय पृ० ५४१ ।

उदाहरण में अहम् उपमेय, वारवधू उपमान, इव उपमावाचक और विश्वेषां नर्मपात्रम् साधारण धर्म हैं। दोनों उदाहरणों में उपमा के चारों अंग होने से पूर्णोपमा है।

(ख) लुप्तोपमा—

कमलकोमलकमलाकरतलाभ्याम्।[1]

इस उदाहरण में कमलाकरतल उपमेय, कमल उपमान और कोमल साधारण धर्म हैं। उपमावाचक का लोप होने से यहां लुप्तोपमा है।

(ग) मालोपमा—

(क) न वयं मीनानिव पीनान्, इभानिव तुन्दिभान्, भेकानिव निर्विवेकान्, वृषदंशकानिव कपटहिंसकान्, काकानिवास्वादितदुर्विपाकान्, वलीमुखानिव चंचलमुखान्, शृगालानिव कलितधूर्ततामालान्, द्विजिह्वानिव च द्विजिह्वान्........नृपम्मन्यान् स्वप्नेऽपि समुपास्महे।[2]

यहां नृपम्मन्यान् उपमेय के साथ मीनान् आदि अनेक उपमान होने से मालोपमा है।

(ख) महाराज ! राजकुमारी, अभिनवचन्द्रकलेव तनुगात्रा, मृद्वीकेव शुष्का, प्रभातमाया रजनीव मन्दतारका, योगिनीव विगताशनाया, अवधूतेव चोन्मत्ता संवृतास्ति।[3]

यहां राजकुमारी उपमेय के साथ अभिनवचन्द्रकला आदि अनेक उपमान होने से मालोपमा अलंकार है।

(४) उत्प्रेक्षा-अलंकार—

प्रस्तुत वस्तु की अप्रस्तुत वस्तु में संभावना करना उत्प्रेक्षा अलंकार है[4]।

(अ) कलितमानवदेहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्।[5]

यहां ब्राह्मण कन्या उपमेय की सरस्वती उपमान के रूप में सम्भावना की गई है।

(ब) ततः संवृत्तेऽन्धकारे धूपधूमेनेव व्याप्तासु हरित्सु।[6]

यहां अन्धकार उपमेय की धूप-धूम उपमान के रूप में संभावना की गई है।

उत्प्रेक्षा अलंकार माला रूप में भी दृष्टिगोचर होता है—

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १७३। २. 'शिवराजविजय' पृ० १४०-१४१।

३. ,, ,, ४५२-४५३।

४. सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्। 'काव्यप्रकाश' १०.९२।

५. 'शिवराजविजय' पृ० ८। ६. 'शिवराजविजय' पृ० २-३।

(ग) षष्टिसहस्रबालखिल्यकाषायवसनविधृतायामिव, मन्देहदेहशोणितशोणितायामिव, अरुणारुणिमरंजितायामिव, मोमुह्यमाननरीनृत्यमानपरःकोटिताम्रचूडचूडाप्रतिबिम्बसंवलितायामिव, पोस्टफुट्यमानस्वर्गंगाकोकनदपटलव्याप्तायामिव, भक्तजनभक्तिप्रभावभाविताविर्भावच्छिन्नमस्ताकन्धरोच्छलच्छोणितस्नातायामिव, वसन्तोत्सवोच्छालितसिन्दूरान्धकारान्धीकृतायामिव, तातप्यमानताम्रद्युतिचौर्यां प्राच्याम् ।[1]

इस स्थल पर प्राची की लालिमा रूप उपमेय की काषायवसन की लालिमा आदि से हेतु के रूप में अनेक उपमानों की संभावना की गई है ।

(५) रूपक-अलंकार—

उपमान और उपमेय के अभेद को स्थापित करते हुये उपमेय पर उपमान का आरोप करने पर रूपक अलंकार होता है ।[2]

(अ) न तेषां ब्राह्मणकुलकमलदिवाकराणां यवनकैंकर्यकलंकपंको युज्यते ।[3]

(ब) भारतस्वातन्त्र्यपोतकर्णधारधुरमवक्ष्यत् ।[4]

पहिले उदाहरण में ब्राह्मण-कुल पर कमल का और कलंक पर पंक का, दूसरे उदाहरण में भारतस्वातन्त्र्य पर पोत का आरोप है ।

रूपक के मालारूप का भी चमत्कार है—

(स) भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेवरचक्रस्य, कुण्डलमाखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीकपटलस्य ।[5]

यहाँ सूर्य उपमेय पर मणि आदि उपमानों का आरोप है ।

(६) भ्रान्तिमान्-अलंकार—

जहाँ अप्रकृत पदार्थ के सदृश प्रकृत पदार्थ को देख कर अप्रकृत की भ्रान्ति होती है, वहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार होता है ।[6]

प्रफुल्लकमलभ्रमेणेव वदनमभिपततो मधुकरान् सभ्रूभंगमीक्षमाणाम् ।[7]

यहाँ अप्रकृत कमल के सदृश प्रकृत वदन को देख कर भ्रमरों को अप्रकृत

१: शिवराजविजय' पृ० १००-१०१ ।

२: तद्रूपकमभेदाय उपमानोपमेययोः । 'काव्यप्रकाश' १०:९३ ।

३: 'शिवराजविजय' पृ० ६७-६८ । ४: 'शिवराजविजय' पृ० ३४८ ।

५. ,, ,, २-३ ।

६. भ्रान्तिमानन्यसंवित्तत्तुल्यदर्शने । 'काव्यप्रकाश' १०:१३२ ।

७: 'शिवराजविजय' पृ० ३२० ।

कमलों की भ्रान्ति हुई है।

(७) अपह्नुति-अलंकार—

प्रकृत का निषेध करके अप्रकृत की स्थापना करने पर अपह्नुति अलंकार होता है।[१]

नवांकुरितश्मश्रुश्रेणिच्छलेन कन्यकापहरणकलंकपंककलंकिताननम्।[२]

यहाँ श्मश्रुश्रेणी प्रकृत का निषेध करके कलंकपंक अप्रकृत की स्थापना है।

(८) अतिशयोक्ति-अलंकार—

अतिशयोक्ति का अभिप्राय है अतिशय से कथन करना। लौकिक सीमा को अतिक्रान्त करके किसी वस्तु के धर्म का वर्णन करना अतिशय कहलाता है।[३] यह अतिशयोक्ति अनेक प्रकार की होती है। कुछ के उदाहरण 'शिवराजविजय' से दिये जाते हैं:—

(क) रूपकातिशयोक्ति—

विषयी द्वारा विषय का निगरण करके अध्यवसान होने पर रूपकातिशयोक्ति होती है।[४]

चान्द्रखानो वयोवृद्ध इति पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्योऽपि बिभेति।[५]

यहाँ पार्वतेभ्य उन्दुरुभ्यः इस पद में उन्दुरु विषयी द्वारा महाराष्ट्र विषय का निगरण करके दोनों में अभेद की स्थापना की गई है।

(ख) अत्यन्तातिशयोक्ति—

जहाँ पूर्व और पश्चात् होने वाली वस्तुओं में क्रम का व्यतिक्रम हो वहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति होती है।[६]

भगवन् वरयात्राप्रस्थानात् प्रागेव वधूप्रवेशो जातः।[७]

वरयात्रा पहिले होती है, वधू-प्रवेश बाद में। इस पौर्वापर्य का व्यतिक्रम हुआ है।

(ग) सम्बन्धातिशयोक्ति—

सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध की स्थापना करने पर सम्बन्धातिशयोक्ति

---

१. प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् साध्यते सात्वपह्नुतिः। 'काव्यप्रकाश' १०. ९६।

२. 'शिवराजविजय' पृ० २७।

३. लोकसीमानिवृत्तस्य वस्तुधर्मस्य वर्णनम्। भवेदतिशयोनाम। 'अग्निपुराण' ३४४. २५-२६।

४. रूपकातिशयोक्तिः स्यान्निगीर्याध्यवसानता। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) ३६।

५. 'शिवराजविजय' पृ० १५०।

६. अत्यन्तातिशयोक्तिस्तु पौर्वापर्यव्यतिक्रमे। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) ४३।

७. 'शिवराजविजय' पृ० २४८।

होती है।[1]

यस्य प्रतापो नृसिंहस्य सटाम्, कपर्दिनो जटाम्, फणिराजस्य स्फटां च स्पृशन् जाज्वल्यते ।[2]

यहाँ प्रताप के नृसिंहसटा आदि से स्पर्श सम्बन्ध न होने पर भी उसका कथन किया गया है।

(६) तुल्ययोगिता-अलंकार—

वर्ण्य अथवा अवर्ण्य विषयों के एक धर्म का कथन करने पर तुल्ययोगिता अलंकार होता है ।[3]

ऋतुनैतेन दिनानां परिणाहः, तमीनां तनुता, पयोजानां प्रसन्नता, सलिलानां सुखावगाह्यता च लुण्ठिता ।[4]

यहाँ दिन की लम्बाई आदि प्रस्तुत वस्तुओं के एक धर्म लुण्ठन का कथन है।

(१०) प्रतिवस्तूपमा-अलंकार—

उपमान और उपमेय वाक्यों में एक ही धर्म का भिन्न भिन्न प्रकार से कथन करने पर प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है ।[5]

सर्वतः संवृतोऽग्निरधिकतरं तापयति, अनुद्गीर्णं विषं प्राणानपहरति, असूचितो व्याधिरप्रतीकारो वर्द्धते, तदयमीदृशो दृढो निरोधस्तेऽनुरागस्याधिकमेव त्वां दुःखीकरिष्यति ।[6]

यहाँ उपमेय वाक्य का धर्म अधिक दुःखी करना उपमान वाक्यों में भिन्न प्रकार से कहा गया है।

(११) निदर्शना-अलंकार—

सम्बन्ध के वस्तुओ में न होने पर भी यदि उसका इस प्रकार से कथन किया जावे कि वह उपमा में पर्यवसित हो तो निदर्शना अलंकार होता है ।[7]

युद्धेन वा महारोगंस्यैतस्योपायं चिकीर्षति ? एवं चेज्जम्बुकस्य बुभुक्षितके-

१. सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यादयोगे योग-कल्पनम् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–३९ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० २७६ ।
३. वर्ण्यानामितरेषां वा धर्मैक्यं तुल्ययोगिता । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–४४ ।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ४०६ ।
५. वाक्ययोरेकसामान्ये प्रतिवस्तूपमा मता । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–५१ ।
६. 'शिवराजविजय' पृ० २२८ ।
७. निदर्शना । अभवन्वस्तु-सम्बन्ध उपमापरिकल्पकः । 'काव्यप्रकाश' १०.९७ ।

सरिखरनखराक्रान्तोरणजिघृक्षा विफला ।[1]

उपमेय वाक्य युद्धेन वा......तथा उपमान वाक्य एवं चेज्जम्बुकस्य...... में सम्बन्ध स्थापित न होने पर इसका पर्यवसान सादृश्य में होता है कि गीदड़ के द्वारा भूखे शेर के तेज नाखूनों से आक्रान्त मेष के छीनने की इच्छा के समान महाराष्ट्रों की युद्ध द्वारा पराजय रूप महारोग की चिकित्सा विफल है ।

(१२) दृष्टान्त-अलंकार—

उपमान और उपमेय वाक्यों के भिन्न भिन्न धर्मों के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से निर्दिष्ट होने पर दृष्टान्त अलंकार होता है ।[2]

सत्यं दुग्धदग्धो जनस्तक्रमपि व्यजनैर्बीजयित्वा पिबति, व्याविद्धकण्टको न कण्टकाकुलेन पथा पौनः पुन्येन प्रचलति– तद् यवनैः सह सन्धेर्ज्ञातास्वादैः कथं मुहुर्मुहुः संमुह्य संधास्यते ।[3]

इस स्थान पर पहले उपमान वाक्यों और बाद के उपमेय वाक्य में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है ।

(१३) दीपक-अलंकार—

उपमान और उपमेय के धर्म को एक बार में कहने पर अथवा एक ही कारक में अनेक क्रियाओं का कथन करने पर दीपक अलंकार होता है ।[4]

यावदेकस्यां दिशि नयने विक्षिपन्ती, कर्णौ स्फोटयन्ती, अवलोचकान् कम्पयन्ती, वन्यांस्त्रासयन्ती, गगनं कर्तयन्ती, मेघान् सौवर्णकषयेव घ्नती अन्धकार-मग्निनेव दहन्ती चपला ।[5]

यहाँ चपला एक कारक के साथ विक्षिपन्ती आदि अनेक क्रियाओं का कथन है ।

(१४) व्यतिरेक-अलंकार—

उपमान की अपेक्षा उपमेय के गुणों का आधिक्य होने पर व्यतिरेक अलंकार होता है ।[6]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १५६ ।

२. चेद् बिम्बप्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–५२ ।

३. 'शिवराजविजय' पृ० ५३० ।

४. सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम् । सैव क्रियासु बह्वीषु कारकस्येति दीपकम् । 'काव्यप्रकाश' १०:१०३ ।

५. 'शिवराजविजय' पृ० ११० ।

६. उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः । 'काव्यप्रकाश' १०.१०५ ।

कालिन्दी-सलिलसौन्दर्यविजित्वरातिहरितवनौषधिवृन्दव्याप्तानामुपत्यकानाम् ।[1]

यहाँ उपत्यकाओं की वनौषधियों का सौन्दर्य इस उपमेय का कालिन्दीसलिल के सौन्दर्य इस उपमान की अपेक्षा आधिक्य है ।

१५. समासोक्ति-अलंकार—

प्रस्तुत वस्तु के वर्णन किये जाने पर अप्रस्तुत वस्तु व्यंजित हो तो समासोक्ति अलंकार होता है ।[2]

भ्रमद्भ्रमरैश्चोचुम्ब्यमाना मल्लिकाः पश्यन् ।[3]

यहाँ प्रस्तुत वस्तु भ्रमरों द्वारा मल्लिका के स्पर्श किये जाने से चुम्बन शब्द द्वारा नायक द्वारा नायिका का चुम्बन व्यंजित होता है ।

(१६) अप्रस्तुतप्रशंसा-अलंकार—

यदि प्रस्तुत वृत्तान्त के वर्णन करने के लिये अप्रस्तुत वृत्तान्त का वर्णन किया जावे तो अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होता है ।[4]

न कुर्याच्यातको मुग्धश्चेत्स्ववांछित-सूचनम् ।
न पूरयति किं मेघस्तत्तृष्णां जलवृष्टिभिः ॥[5]

मेघ बिना मांगे ही चातक की कामना पूरी करता है, इस अप्रस्तुत वृत्तान्त से शाईस्ताखां बिना सन्धि की याचना किये ही शिवाजी की सन्धि-विषयक कामना पूरी करे, यह प्रस्तुत वृत्तान्त व्यंजित होता है ।

(१७) पर्यायोक्त-अलंकार—

यदि विवक्षित वस्तु को अन्य रीति से इस प्रकार कहा जावे कि कहने में अधिक सौन्दर्य का आधान हो तो वहां पर्यायोक्त अलंकार होता है ।[6]

जलमिदं कलिन्दगिरिनिर्झरस्य, चूर्णं चेदं शोषितस्य मधुवंशनिर्यातस्य ।[7]

यहां यमुना जल और मिश्री को कवि ने अन्य प्रकार से कहा है और इस कथन से अधिक चमत्कार उत्पन्न हो गया है । इसलिये यहां पर्यायोक्त अलंकार है ।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २६६-२६७ ।
२. समासोक्तिः परिस्फूर्तिः प्रस्तुतेऽप्रस्तुतस्य चेत् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-६१ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ३१६ ।
४. अप्रस्तुतप्रशंसा स्यात् सा यत्र प्रस्तुताश्रया । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–६६ ।
५. 'शिवराजविजय' पृ० १५७ ।
६. पर्यायोक्तं तु गम्यस्य वचो भंग्यन्तराश्रयम् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–६८ ।
७. 'शिवराजविजय' पृ० ४७२ ।

(१८) परिकर-अलंकार—

अभिप्राय-गर्भित विशेषणों का प्रयोग करने पर परिकर अलंकार होता है।[1]

तदस्मिन् मदसिविलीढे को नाम कठिनो बारवधूकरशरावचुम्बनचंचुरस्य तव विजयः।[2]

शाईस्ताखां के लिये वारवधूकरशरावचुम्बनचंचुरस्य विशेषण का प्रयोग इस अभिप्राय से किया गया है कि वैश्या के हाथ से मद्य पीने वाले को जीतना कठिन नहीं है।

(१९) परिकरांकुर-अलंकार—

अभिप्राय-गर्भित विशेष्य के प्रयोग करने पर परिकरांकुर अलंकार होता है।[3]

अथ विजयतां त्रिपुरमथनो देव-देवः।[4]

यहां शिव के लिये त्रिपुरमथन यह विशेष्य म्लेच्छों के विनाश के सामर्थ्य को प्रकट करने के अभिप्राय से प्रयुक्त हुआ है।

(२०) विरोध-अलंकार—

जहां विरोध न होते हुये भी विरोध की प्रतीति हो वहां विरोध या विरोधाभास अलंकार होता है।[5]

परितश्च तस्यैव खर्वामप्यखर्वपराक्रमाम्, श्यामामपि यशःसमूहश्वेतीकृतत्रिभुवनाम्, कुशासनाश्रयामपि सुशासनाश्रयाम्, स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्मदर्शनाम्, कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम्, शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिबन्धाम्, कलितगौरवामपि कलितलाघवाम् मूर्ति दर्शं दर्शम्।[6]

यहाँ शिवाजी के वर्णन में खर्व होते हुये भी जो अखर्व पराक्रम वाली है, आदि विशेषणों में विरोध प्रतीत होता है। वस्तुतः यहाँ विरोध नहीं है, क्योंकि इसका अर्थ इस प्रकार है—लम्बाई में छोटी है और अत्यधिक पराक्रम से युक्त है आदि। विरोध प्रतीत होने से विरोध अलंकार है।

(२१) विभावना-अलंकार—

कारण का निषेध कर देने पर भी कार्य की उत्पत्ति होने पर विभावना

१. विशेषणैर्यत् साकूतैरुक्तिः परिकरस्तु सः। 'काव्यप्रकाश' १०.११८।
२. 'शिवराजविजय' पृ० १८४।
३. साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् परिकरांकुरः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)–६६।
४. 'शिवराजविजय' पृ० २५०।
५. विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद् वचः। 'काव्यप्रकाश' १०.११०।
६. 'शिवराजविजय' पृ० ४२-४४।

अलंकार होता हैं।[1]

सुन्दरीसंसर्गरहितमपि वीरमण्डलमिदं प्रायिकसीत्कारं व्रणिताधरं सरोमांचं सवेपथु चास्ति।[2]

सुन्दरी के साथ रमण करने से सीत्कार आदि कार्यों की उत्पत्ति होती है। यहां कारण के निषेध कर देने पर भी इन कार्यों की उत्पत्ति हुई है।

(२२) विशेषोक्ति-अलंकार—

कारण के होने पर भी कार्य के न होने का कथन करने पर विशेषोक्ति, अलंकार होता है।[3]

आलोकालोकक्लृतकिंचिच्छोकमोकोऽपि कोको न वराकीं कोकीमुपसर्पति।[4]

यहां प्रकाश रूप कारण के उपस्थित होने पर भी चकवा-चकवी मिलन रूप कार्य की उत्पत्ति नहीं हुई।

(२३) असंगति-अलंकार—

कारण और कार्य के विरुद्ध या भिन्न देश में होने पर भी उनका निबन्धन-करने पर असंगति अलंकार होता है।[5]

गरलं तु धूर्जटिना पीतम्, मधु च दानवैरास्वादि, किन्तु चित्रं यद् एष विलक्षण-स्त्वयि दृश्यते व्यामोहः।[6]

यहाँ विष्णु के मोहरूप कार्य के कारणों गरल अथवा मद्य की भिन्न देश धूर्जटि या दानवों में स्थिति को कह कर भी उनका कार्यकारण-भाव कहा गया है।

(२४) विषम-अलंकार—

विषम अलंकार के कई भेद होते हैं। दो भेदों के उदाहरण निम्न हैं:—

(क) अति वैधर्म्य से युक्त होने पर भी दो वस्तुओं के मिलन का वर्णन करने पर विषम अलंकार होता है।[7]

क्व च ते नवनीतकोमलान्यंगानि क्व चैतद् ब्रह्मचर्यम्।[8]

यहां कोमल अंगों और कठोर ब्रह्मचर्य की घटना कही गई है।

(ख) यदि इष्ट की प्राप्ति के लिये उद्यम करने से इष्ट की प्राप्ति तो न हो

---

१. क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना। 'काव्यप्रकाश' १०.१०७।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ४१०।
३. विशेषोक्तिरखंडेषु कारणेषु फलावचः। 'काव्यप्रकाश' १०.१०८।
४: 'शिवराजविजय' पृ० ९९।
५. विरुद्धं भिन्नदेशत्वं कार्यहेत्वोरसंगतिः। कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-८५।
६. 'शिवराजविजय' पृ० १७३।
७. विषमं वर्ण्यते यत्र घटनाननुरूपयोः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-८८।
८: 'शिवराजविजय' पृ० ४९६।

किन्तु अनिष्ट की प्राप्ति हो जावे तो वहाँ भी विषम अलंकार होता है।[1]

मूर्छितानवगत्य शीतलयितुं सुगन्धिकुसुमानि जिघ्रापयिषुः पार्श्ववर्तिक्षुपाग्राद् गुच्छमेकमाचिनोत्। तत्समीपे समागच्छंश्च नवकुसुमस्तबकरूपदर्शनमोहितो गाढं स्वयमेवाघ्रात्। तत्क्षणाच्च भूमौ पतितो मुमूर्छ।[2]

रोशनआरा के शिविकावाहकों का अध्यक्ष मूर्छित शिविकावाहकों को चैतन्य करने के लिये पुष्प लेने लगा। वह उन्हें तो चेतन न कर सका, किन्तु स्वयं भी मूर्छित हो गया।

(२५) सम-अलंकार—

यदि दो अनुरूप योग्य वस्तुओं के मिलन की संभावना का वर्णन किया जावे तो सम-अलंकार होता है।[3]

त्वं क्षत्रियकन्यासि सुक्षत्रिय एवैष जनः! त्वं राजपुत्रदेशीयासि तद्देशीय एव चाहम्। अनुरागश्चोभयतः। तद् यदि तवाग्रजो पूज्यपुरोहितश्चानुमन्येत तत्प्रकटमेव तूर्णमेव च स्यात्परिणयः।[4]

यहां परस्पर अनुकूल और योग्य रघुवीर-सौवर्णी के मिलन की संभावना की गई है।

(२६) अर्थान्तरन्यास-अलंकार—

सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन करने पर अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है।[5]

(क) सामान्य से विशेष का समर्थन—

अन्यथापि स नात्मानं व्यापादयिष्यति। यतो नास्मत्कुले जाता मूढयोषित इवात्मानं घ्नन्ति।[6]

यहां वह आत्महत्या नहीं करेगा इस विशेष का समर्थन हमारे कुल में उत्पन्न हुये व्यक्ति मूर्ख स्त्रियों की तरह आत्महत्या नहीं करते इस सामान्य से किया गया है।

(ख) विशेष से सामान्य का समर्थन—

नूनं भोक्तव्यं भोगेनैव समाप्नोति, तद्दुःखमिदं घनीभूय प्रकटितपरिचयानां

---

१. अनिष्टस्याप्यवाप्तिश्च तदिष्टार्थसमुद्यमात्। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-९०।

२. 'शिवराजविजय' पृ० २४३-२४४।

३. समं योग्यतया योगो यदि संभावितः क्वचित्। 'काव्यप्रकाश' १०.१२५।

४. 'शिवराजविजय' पृ० २३७।

५. उक्तिरर्थान्तरन्यासः स्यात् सामान्यविशेषयोः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-१२२।

६. 'शिवराजविजय' पृ० ३८५।

युष्माकं तिरोहितपरिचयस्य च मम शिरस्यापतितमनुभूतं चासहायेन हृदयहतकेन।[1]

यहां मैंने और आपने सिर पर आये दुःख को भोग लिया है। इस विशेष द्वारा भोक्तव्य भोगना ही पड़ता है, इस सामान्य का समर्थन किया गया है।

(२७) विकस्वर-अलंकार—

यदि विशेष का सामान्य से समर्थन करके पुनः उस सामान्य का विशेष से समर्थन किया जावे तो विकस्वर अलंकार होता है।[2]

यदा तारुण्यमासीदस्मद्देशीयक्षत्रियप्रतापतपनस्य, तदा यवनराजानां वक्षःस्थलेषु च्छुरिकालेखनीभिर्भारतजयः क्रियासमभिहारेणास्माभिरलेखि, किन्तु, न सदा समानो व्यत्येति कालः। ग्रीष्मे शोषितमहानदोऽपि भास्करो हिमे हिमकणिकाभिस्तथाऽऽव्रियते, यत्तदवलोकनमपि दुःशकं भवति।[3]

यहां राजपूतों की पहली उन्नत, परन्तु वर्तमान हीन दशा रूप विशेष का समर्थन समय सदा समान व्यतीत नहीं होता इस सामान्य से किया गया है। पुनः इस सामान्य का समर्थन सूर्य और हिमकणिका के वृतान्त रूप विशेष से है।

(२८) संभावना-अलंकार—

यदि ऐसा हो तो ऐसा सिद्ध हो सकता है, इस प्रकार का तर्क उपस्थित करने पर संभावना अलंकार होता है।[4]

तरणिरोधं कोऽपि विधातुं पारयेच्चेत् तरणिरोधमपि विधातुं पारयेत्।[5]

यहां यदि कोई सूर्य को रोक सकता है तो नाव को भी रोक सकता है, इस तर्क को उपस्थित करने के कारण सम्भावना अलंकार है।

(२९) तद्गुण-अलंकार—

यदि कोई वस्तु अपने गुण का परित्याग करके अपने से उज्ज्वल अन्य वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है तो वहां तद्गुण अलंकार होता है।[6]

रम्भास्तम्भसहस्रहरिते, आरक्तपताकापटलारुणिते, जाम्बूनदवितानप्रभापुंजपीते, महाकुट्टिमे गौरप्राघुणिकाः प्राविशन्।[7]

यहाँ महाकुट्टिम अपने गुण का परित्याग करके अन्य वस्तुओं के हरित, अरुण, पीत गुणों का ग्रहण करता है।

---

१. शिवराजविजय' पृ० ५०३।

२. यस्मिन् विशेषसामान्यविशेषाः स विकस्वरः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-१२४।

३. 'शिवराजविजय' पृ० ३४५-३४६।

४. संभावना यदात्थं स्यादित्यूहोऽन्यस्य सिद्धये। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-१२६।

५. 'शिवराजविजय' पृ० ४४१।

६. स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत्।
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः। 'काव्यप्रकाश' १०.१३७।

७. 'शिवराजविजय' पृ० ५३७।

(३०) अनुगुण-अलंकार—

यदि किसी अन्य वस्तु के सान्निध्य से किसी वस्तु का पहले से ही सिद्ध धर्म उत्कर्ष को प्राप्त हो तो वहां अनुगुण अलंकार होता है।[1]

अभ्रंलिहानां कलितापरमेघाडम्बराणां समुद्धूतध्वजानां दिल्लीहर्म्याणां छाया कलिन्दनन्दिन्याः श्यामतां द्विगुणयति।[2]

यहां यमुना की पहिले से सिद्ध श्यामता हर्म्यों की छाया के सान्निध्य से द्विगुणित हो गई है।

(३१) उल्लेख-अलंकार—

अनेक व्यक्ति यदि एक ही वस्तु का अनेक प्रकार से उल्लेख करें तो वहां उल्लेखालंकार होता है।[3]

तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म।[4]

यहां एक ही योगिराज का अनेक व्यक्तियों ने अनेक प्रकार से विश्वास किया है।

(३२) स्वभावोक्ति-अलंकार—

किसी वस्तु के प्रकृतिसिद्ध स्वाभाविक क्रिया, रूप आदि का वर्णन करने पर स्वभावोक्ति अलंकार होता है।[5] व्यास जी ने स्वाभावोक्ति का प्रयोग बाहुल्य से किया है।

(अ) भगवान् भास्वान्, क्रमशः क्रूरकरानपहाय, दृश्यपरिपूर्णमण्डलः संवृत्य, श्वेतीभूय, पीतीभूय, रक्तीभूय च गगनधरातलाभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाण्डाकृतिमंगीकृत्य, अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चक्षुषामगोचर एव संजातः।[6]

यहां अस्त होते हुये सूर्य की स्वाभाविक क्रियाओं और रूप का वर्णन किया गया है।

(ब) अश्वश्च फेनान् पातयन् कन्धरामुद्धूनयन् हेषारवैश्चिरपरिश्रमं प्रकटयन्, प्रस्यन्दजलसिक्तभूभागः, समुत्सृष्टपुरीषः, शुष्कस्वेदः, मुहूर्ताद्धेनैव विस्मृतपरिश्रमः, सगतिस्तम्भं खुराग्रैर्भूमिमुत्खनन्, कर्णावुत्तम्भयन्, लांगूलं लोलयन्, सादिनो दक्षिणदेशे पृष्ठं निकटयन्, पुनरेनं वोढुम्, परतो धावितुं च, समीहां समसूसुचत्।[7]

१: प्राक्सिद्धत्वगुणोत्कर्षोऽनुगुणः परसन्निधेः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-१४५।

२. 'शिवराजविजय' पृ० ४२१।

३. बहुभिर्बहुधोल्लेखादेकस्योल्लेख इष्यते। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-२२।

४. 'शिवराजविजय' पृ० ६।

५. स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपवर्णनम्। 'काव्यप्रकाश' १०.११०।

६. 'शिवराजविजय' पृ० ३५-३६। ७. 'शिवराजविजय' पृ० १११।

यहां प्रथम परिश्रान्त अश्व की ओर तदनन्तर विस्मृतपरिश्रम अश्व की स्वाभाविक चेष्टाओं का वर्णन है।

(३३) व्याजोक्ति-अलंकार—

यदि कोई गुप्त वस्तु प्रकट हो रही हो तो उसे किसी छद्म से छिपाना व्याजोक्ति अलंकार है।[1]

मारविकारप्रसारभारजर्जरितमाकारं च कथं कथमपि कुसुमस्तबकावचयैः कलकूजितपूजितपतत्रिकुलकलितशाखाऽनुसन्धानैः, तत्क्षरणत्रोटितकदलीदलवीजनैः, स्वेदापनोदनैश्च निगूढवान्।[2]

यहाँ प्रकट हो रहे गुप्त कामविकार को शिवाजी अन्य चेष्टाओं के छद्म से छिपाते हैं।

(३४) लोकोक्ति-अलंकार—

यदि लोकप्रवाद का अनुकरण करते हुये किसी उक्ति का कथन किया जावे तो वहां लोकोक्ति अलंकार होता है।[3]

घृतेन स्नातु भवद्रसना इति व्याहरन् शिविरमण्डलं प्रविवेश।[4]

यहां आपकी जिह्वा घृत से स्नान करे इस लोकप्रवाद का अनुकरण किया गया है।

(३५) सहोक्ति-अलंकार—

यदि किसी वस्तु का सहभाव सहृदय-जन-आह्लादक हो तो सहोक्ति अलंकार होता है।[5]

भगवन् धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा, वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्यया च सममेव सनाथितवति तत्र भवति वीर-विक्रमादित्ये।[6]

यहां विक्रमादित्य का धैर्य आदि गुणों के साथ सहभाव सहृदयजनाह्लादक है।

(३६) भाविक-अलंकार—

यदि भूत या भावी वस्तु का वर्णन साक्षात्कार रूप से किया जावे तो भाविक अलंकार होता है।[7]

---

१. व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्। 'काव्यप्रकाश' १०.११८।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ३२६।
३. लोकापवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) -१५७।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ५०।
५. सहोक्तिः सहभावश्चेद् भासते जनरंजनः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-५८।
६. 'शिवराजविजय' पृ० १६।
७. भाविकं भूतभाव्यर्थसाक्षात्कारस्य वर्णनम्। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-१६१।

अद्यापि तद्विजयपताकाः मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयन्ते, अधुनापि तेषां पटहगोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीम्पूरयतीव ।[1]

यहां भूतकाल की विजयपताका आदि का साक्षात्कार रूप से वर्णन किया गया है ।

(३७) उदात्त-अलंकार (१)—

यदि किसी वस्तु की समृद्धि का वर्णन किया जावे तो वहां उदात्त अलंकार होता है ।[2]

यत्र कोषपूरिताः कांचनमया इव सानुमन्तः, महार्हमणिगणजटितजाम्बूनद-भूषणभूषिता गन्धर्वा इव जनाः विचित्रगवाक्षजालाट्टालिकांगणकपोतपालिकाचत्व-रगोष्ठभित्तिका विश्वकर्मरचिता इव गृहाः, सादिकरस्थकशाग्रचालनसंकेतसंचलितस-प्तिसमूहशफसम्मर्दसमुद्धूतधूलिधूसरिताश्च मार्गाः ।[3]

यहां राजपुत्र देश की समृद्धि का वर्णन है ।

(३८) उदात्त-अलंकार (२)—

वर्णनीय विषयों में महान् व्यक्तियों का उपलक्षण रूप से वर्णन किया जाने पर भी उदात्त अलंकार होता ।[4]

मित्र ! इयमेव राजधानी युधिष्ठिरादीनां क्षत्रियकुलभूषणानाम् । अत्रैव पृथ्वीराजोऽपि चरमवीर उवास ।[5]

यहाँ दिल्ली के वर्णन में युधिष्ठिर आदि महान् व्यक्तियों का उपलक्षण किया गया है ।

(३९) समाधि-अलंकार—

कार्य के सौकर्य के लिये अन्य कारण की सन्निधि उपस्थित करने पर समाधि अलंकार होता है ।[6]

रघुवीरसिंहस्य समीपत एव गतेति गमनसमये सचकितं सगतिस्तम्भं परिवृत-ग्रीवं कोऽयम् इत्येनं क्षणमवलोकयामास । परतश्च स्यात् कोऽपि इति समुपेक्ष्य गृहं प्रविष्टेत्यपरोऽपि जातो वशीकारप्रयोगप्रचारः ।[7]

सौवर्णी द्वारा रघुवीर के वशीकरण के सौकर्य के लिये कवि ने ग्रीवा-परिवर्तन रूप अन्य कारण की सन्निधि उपस्थित की है ।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १५ ।
२. उदात्तं वस्तुनः सम्पत् । 'काव्यप्रकाश' १०. ११५ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ८३–८४ ।
४. महतां चोपलक्षणम् । 'काव्यप्रकाश' १०:११५ ।
५. 'शिवराजविजय' पृ० ४१३ ।
६. समाधिः कार्यसौकर्यं कारणान्तरसन्निधेः । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-११८ ।
७. 'शिवराजविजय' पृ० १२५ ।

(४०) समुच्चय-अलंकार—

प्रस्तुत कार्य की सिद्धि के लिये एक साधक हेतु के उपस्थित होने पर भी यदि अनेक हेतु उपस्थित किये जावें तो समुच्चय अलंकार होता है ।[1]

बालावावाम्, अविज्ञातोऽद्ध्वा, भोगसमयो दुर्ग्रहाणाम्, अश्वावेव सहायौ, जनपदशून्यमेतत् प्रान्तरम्, तत्कथं गच्छेव ।[2]

यहां महाराष्ट्र-गमन के काठिन्य रूप कार्य की सिद्धि के लिये एक साधक हेतु होने पर भी अनेक अन्य हेतु उपस्थित किये गये हैं ।

(४१) अनुमान-अलंकार—

जहां साध्य (सिद्ध करने योग्य वस्तु) और साधन (सिद्ध करने का हेतु) का कथन किया जावे वहां अनुमान अलंकार होता है ।[3]

श्रवणेनैव तेनावगतं यद् आलापा एते कस्या अपि बालिकायाः, सा च लज्जा-परवशा यतो नोच्चैर्गायति, उच्चकुलप्रसूता यतो नान्यासामेवमुदारा वाक्, समीप-वर्तिनी यतः स्फुटः स्वरः, पूर्वस्यामुपविष्टा च यतस्तत एव मूर्च्छन्ति मूर्च्छनाः ।[4]

यहां लज्जापरवशा आदि साध्य और नोच्चैर्गायति आदि साधनों का कथन किया गया है ।

(४२) हेतु-अलंकार—

जहां हेतुमान् (कार्य) के साथ हेतु (कारण का वर्णन किया जावे वहाँ हेतु अलंकार होता है ।[5]

अथवा तस्यैव महागरलस्य महामद्यस्य च भगिन्या कनकांगिन्या समालिंगित इति पन्नगकुलमूलस्य शेषनागस्य गरलावलीढैर्निश्वासैः प्रतिरोमकुहरं रंजित इति च कलयसि कांचन मूर्च्छाम्, मत्ततां च ।[6]

यहां मूर्च्छा और मत्तता रूप कार्यों के साथ गरल तथा मद्य की भगिनी लक्ष्मी का समालिंगन और शेषनाग के विषैले निश्वास रूप कारणों का कथन है ।

(४३) अलंकार-संसृस्टि—

दो या दो से अधिक अलंकारों के परस्पर निरपेक्ष रूप से अवस्थित होने पर

---

१. तत् सिद्धिहेतावेकस्मिन् यत्रान्यत् तत्करं भवेत् । समुच्चयोऽसौ । 'काव्यप्रकाश' १०:११६ ॥
२. 'शिवराजविजय' पृ० ९६ ।
३. अनुमानं तदुक्तं यत् साध्यसाधनयोर्वचः । 'काव्यप्रकाश' १०.११७ ।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ११९ ।
५. हेतोर्हेतुमता सार्द्धं वर्णनं हेतुरुच्यते । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक)-११७ ।
६. 'शिवराजविजय' पृ० १७४ ।

अलंकारों की संसृष्टि होती है।[1] यह शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों की हो सकती है।

(अ) शब्दालंकारों की संसृष्टि—

लोकालोकमाकृष्य लोकालोकमिवोल्लिलंघयिषुम् ।[2]

यहाँ यमक और अनुप्रास अलंकारों की संसृष्टि है।

(ब) अर्थालंकारों की संसृष्टि—

या चेयं मध्यतः समुपविष्टा सा सुवर्णविजित्वरवर्णा मूर्तिमतीव शोभा, धारितदेहेव प्रेमपरम्परा, कलितावतारेव रतिरासीत् ।[3]

यहा व्यतिरेक और उत्प्रेक्षा अलंकारों की संसृष्टि है।

(४४) अलंकार-संकर—

जहां एक ही स्थान पर दो या दो से अधिक अलंकार परस्पर निरपेक्ष न होकर सापेक्ष भाव से विद्यमान हों, वहाँ संकर होता है। यह तीन प्रकार का होता है।

(अ) अंगांगिभाव-संकर—

यदि अलंकार एक दूसरे का उपकार करते हुये अंगागि-भाव से स्थित हों तो यह अंगांगी संकर होता है।[4]

तारामण्डलचुम्बितसौधाग्रशतविहितामरावतीविडम्बनायां सतारानगर्याम् ।[5]

यहां अतिशयोक्ति और व्यतिरेक दो अलंकार हैं। अतिशयोक्ति के सिद्ध होने पर व्यतिरेक की जो कि कवि का मुख्य प्रतिपाद्य है सिद्धि होती है। अतिशयोक्ति व्यतिरेक का अंग है। अतः यहां अतिशयोक्ति और व्यतिरेक का अंगांगी संकर है।

(ब) सन्देह-संकर—

यदि किसी स्थल पर दो या अधिक अलंकार इस प्रकार हों कि साधक-बाधक प्रमाणों के न होने से अलंकार निश्चय न हो सके तो संदेह-संकर होता है।[6]

अपरे च महाराष्ट्रासिभुजंगिनीभिर्दंदश्यमानाः ।[7]

यहां असयः भुजंगिन्य इव इस प्रकार उपमा है अथवा असय एव भुजंगिन्यः इस

१. सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः। 'काव्यप्रकाश' २०.१३६।
२. 'शिवराज विजय' पृ० २६६।
३. 'शिवराजविजय' पृ० २१८-२१६।
४. अविश्रान्तिजुषामात्मन्यंगांगित्वं तु संकरः। 'काव्यप्रकाश' १०.१४०।
५. 'शिवराजविजय' पृ० ५४६।
६. एकस्य च ग्रहे न्यायदोषाभावादनिश्चयः। 'काव्यप्रकाश' १०.१४०।
७. 'शिवराज विजय' पृ० ७३-७४।

प्रकार रूपक है इसका निश्चय नही हो पाता क्योंकि दशन की क्रिया असि और भुजंगिनी दोनों से ही हो सकती है।

(स) एकपदप्रतिपाद्य-संकर—

यदि शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों एक ही पद से प्रतिपादित हों तो वहां एकपदप्रतिपाद्य संकर होता है।[1]

क्षत्रियकुलांगनाः शारदा इव विशारदाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः, रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव च सुवर्णा, सत्य इव सत्यः।[2]

यहां यमक और उपमा एक ही पदों से प्रतिपादित किये गये हैं।

व्यास जी की अलंकारों की योजना कुशल है। अलंकार केवल पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिये न होकर भाषा प्रवाह के साथ स्वाभाविक प्रतीत होते हुये पाठकों को आनन्दित करते हैं। किन्तु कौशल से प्रयुक्त करने पर भी अलंकारों की योजना में कहीं-कहीं कुछ दोष हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

(क) इतस्तु दानवा इव मानवान् महाराष्ट्रा म्लेच्छान् घ्नन्तीत्यालोक्य व्यर्थहत्या शिवेन निवारिता।[3]

इस उपमा में कवि ने महाराष्ट्रों को दानव-तुल्य और म्लेच्छों को मानव-तुल्य कह कर महाराष्ट्रों की हीनता प्रकट की।

(ख) विमलकमलोदरसौन्दर्याभ्यां कमलकोमलकमलाकरतलाभ्याम्।[4]

इस स्थल पर कवि ने कमल से कमला की और कमल से ही कमला के अंग करतल की उपमा दी है। यदि कमला की उपमा कमल से है तो कमला के अंग करतल की उपमा कमल के अंग कमलपत्रों से दी जानी अधिक उपयुक्त होती।

(ग) दक्षकरतल एव कपोलं संस्थाप्य, निरन्तरपरिक्रमणक्लमकान्तं मुखं कमलपल्लवोदरे सुप्तं कलानाथमिव कदर्थयन्ती।[5]

यहा कवि ने कवि प्रसिद्धि के प्रतिकूल चन्द्रमा को कमलपल्लव पर शयन कराया है। कवि-प्रसिद्धि के अनुसार कमल और चन्द्रमा में स्वाभाविक वैर है। कमल के स्थान पर कुमुद का प्रयोग अधिक स्वाभाविक है।

(घ) भक्तजनभक्तिप्रभावभाविताविर्भावच्छिन्नमस्ताकन्धरोच्छलशोणितस्नाता-यामिव।[6]

इस स्थल पर कवि ने उत्प्रेक्षा में छिन्नमस्ताकंधरा से बहते हुये शोणित से

---

१. स्फुटमेकत्र विषये शब्दार्थालंकृतिद्वयम्। व्यवस्थितं च। 'काव्यप्रकाश' १०.१४१।

२. 'शिवराज विजय' पृ० ८४-८५। ३. 'शिवराजविजय' पृ० २६१। ४. 'शिवराजविजय पृ० १७३।

५. 'शिवराजविजय' पृ० २२८। ६. 'शिवराजविजय' पृ० १०१।

मानों स्नात इस प्रकार अत्यधिक विलष्ट कल्पना की है जिसे पौराणिक गाथाओं को जानने वाला व्यक्ति ही समझ सकता है।

यद्यपि इस प्रकार के कुछ थोड़े से अलंकारों के दोष 'शिवराजविजय' में मिल सकते हैं तथापि सामान्यत: ये अलंकार भाषा को विशिष्ट काव्य-सुषमा से अलंकृत करते हुये सौन्दर्य की अभिवृद्धि करने और सहृदयजनों को चमत्कृत करने में समर्थ होते हैं।

५. रसाभिव्यक्ति—

काव्य के अनेक प्रयोजनों में आनन्द की अनुभूति प्रधान प्रयोजन है। यह अनुभूति रसानुभूति के रूप में होती है। इस अनुभूति के समय सहृदय को अन्य अनुभूतियों का अनुभव नहीं रहता।[1] काव्य का आनन्द प्राप्त करने के लिये रसों की योजना आवश्यक होती है। संस्कृत काव्य-शास्त्र की परम्परा के अनुसार प्रबन्ध में एक रस प्रधान (अंगी) रूप से होता है तथा अन्य रस उसके उपकारक (अंग) होते हैं।[2] काव्य में रस की निष्पत्ति विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से होती है।[3] लोक के रति आदि भावों के कारण, कार्य और सहकारी भाव काव्य और नाटक में विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। इनसे व्यक्त हुआ स्थायी भाव ही रस है।[4]

'शिवराजविजय' में वीर रस प्रधान (अंगी) है। काव्य के नायक शिवाजी और स्वातन्त्र्य प्राप्ति में सहायता देने वाले उनके सहायक इस वीर-रस के आलम्बन विभाव हैं। शिवाजी की शारीरिक और चारित्रिक दृढता, नीतिकुशलता आदि, देश और जाति की पराधीनता तथा दुर्दशा का अनुभव आदि उद्दीपन विभाव है। शिवा जी और उनके साथियों द्वारा देश की रक्षा के लिये किये गये प्रयत्न अनुभाव हैं। स्वाधीनता प्राप्ति के लिये चिन्ता करना, युद्ध के लिये औत्सुक्य, अपने देश के प्रति गर्व, विजय-प्राप्ति पर हर्ष आदि व्यभिचारी भाव हैं। इन विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों से व्यंजित होता हुआ उत्साह रूप स्थायी भाव रस दशा को प्राप्त होकर वीर-रस निष्पन्न होता है। वीर रस के अंग रूप से शृंगार, हास्य, करुण,

---

१. सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादनसमुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्।
'काव्यप्रकाश' १.२ की वृत्ति

२. प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने।
एको रसोऽङ्गीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता। 'ध्वन्यालोक' ३.२१।

३. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति:। 'भरतनाट्यशास्त्र'।

४. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादे: स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययो:।
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिण:।
व्यक्त: स तैर्विभावाद्यै: स्थायीभावो रस: स्मृत:। 'काव्यप्रकाश' ४.२७-२८।

भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शान्त रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है । इसके अतिरिक्त भाव, रसाभास और भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, भावशबलता की अभिव्यक्ति के भी उदाहरण इस गद्यकाव्य में हैं। इन सबका विवेचन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है ।

(क) वीररस

वीररस इस गद्यकाव्य का अंगी रस है । यह चार प्रकार का होता है—दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर और दयावीर ।[1] 'शिवराजविजय' में प्रधानतः युद्धवीर और धर्मवीर रसों की अभिव्यंजना हुई है । वीररस की अभिव्यक्ति मुख्यतः शिवाजी, गौरसिंह और रघुवीरसिंह के आलम्बन से है । कहीं-कहीं यवनों और उनके सहायकों के आलम्बन से भी वीररस अभिव्यक्त हुआ है ।

शिवाजी इस वीररस के प्रधान आश्रय हैं । शिवाजी का निम्न वर्णन वीररस को अभिव्यंजित करता है—

कठिनामपि कोमलाम्, उग्रामपि शान्ताम्, शोभितविग्रहामपि दृढसन्धिबन्धाम्, कलितगौरवामपि कलितलाघवाम्, विशालललाटाम्, प्रचण्डबाहुदण्डाम्, शोणापांगाम्, सुनद्धस्नायुम्, वर्तुलश्यामश्मश्रुम्, धारिताकृतिमिव वीरताम्, विग्रहिणीमिव धीरताम्, समासादितसमरस्फूर्तिं मूर्तिं दर्शं दर्शम् ।[2]

शिवाजी की अनेक चेष्टायें इस काव्य में वीररस को अभिव्यक्त करती हैं । इनमें से कुछ को उद्धृत किया जाता है । चान्दखां के युद्ध में, शाईस्ताखां के महल के आक्रमण में और रुद्रमण्डल के युद्ध में उनके कार्य रूप अनुभाव युद्धवीर-रस के अभिव्यंजक हैं—

सर्वश्चैष महाराष्ट्रदेशीयवीरतामहिमा शिववीरकृत एवेति सोऽयं चंचलचपला-चमत्कारमिव चपलस्वरुसारेणेव सृष्टम्, कल्पान्तसप्तजिह्वस्यैवैकं जिह्वाविशेषं निजकरकलितं महाचन्द्रहासं तथा प्राहिणोद्, यथा चान्द्रखानस्यासिं, कन्धरां च, एकेनैवाऽऽघातेन द्विरकरोत् ।[3]

शिवस्तु चन्द्रहासचालने अद्वितीय इति झटिति केषांचिदविहितोत्फालानाम-स्पृष्टतलानां गगन एवोदरं सविदरमकार्षीत्, परेषां परिपत्योत्तिष्ठासतामेव शिरोधरा-मशिरोधरां व्यधित, अन्येषां मेदोमांसपिच्छिलकर्दमचलितान् चरणानसंचरणानकृत, इतरेषां च खड्गोत्क्षेपणोत्क्षिप्तान् करान् निजासिव्रणबाहुमूलानुदक्षैप्सीत् ।[4]

---

१. स च दानधर्मयुद्धैर्दयया च समन्वितश्चतुर्धा स्यात् । 'साहित्यदर्पण' ३.२३४ ।

२. 'शिवराजविजय' पृ० ४३-४४ । ३. 'शिवराजविजय' पृ० १८३-१८४ ।

४. 'शिवराजविजय' पृ० २५९-२६० ।

तदालोक्य गौरवगरिष्ठोऽपि लाघवेनोत्पत्य, सहचरैरप्यवितर्कितोत्पतनो वीरशिवः स्वयमपि प्राचीरमारुह्य परितः समापतितान्प्रत्यर्थिनः कदर्थीकृत्योभयतः समपातयत् ।[1]

शिवाजी की युद्धवीरता उनके इस कथन से भी व्यंजित होती है—

अरे रे विजयपुरकलंक ! स्वयमेव जीवन् शिवः तव राजधानीमाक्रम्य, वीर-पुंगवोपाधिसहकारेण तव महतीं पदवृद्धिमंगीकरिष्यति, तत्किं प्रेषयसि मृत्योः क्रीडनकानेतान् कदर्यहतकान् ।[2]

शिवाजी की धर्म वीरता भी अनेक स्थलों पर व्यंजित हुई है । शिवाजी का यह कथन धर्मवीर रस की व्यंजकता का उत्तम उदाहरण है—

परं किं भवानपि मामनुमन्यते—यद् येऽस्मदिष्टदेवमूर्तीर्भङ्क्त्वा, मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पक्वणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा, वेदपुस्तकानि विदार्य च, आर्यवंशीयान् बलाद् यवनीकुर्वन्ति, तेषामेव चरणयोरंजलिं बद्ध्वा, लालटिकता-मंगीकुर्याम् ? एवं चेद् धिङ् मां कुलकलंकं क्लीबम्, यः प्राणभयेन सनातनधर्मद्वेषिणां दासेरकतां वहेत् । यदि चाहमाहवे म्रियेय, बध्येय, ताड्येय, वा तदैव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ ।[3]

शिवाजी के प्रमुख सहायकों—गौरसिंह और रघुवीरसिंह के आलम्बन से भी वीररस की अभिव्यक्ति होती है । गौरसिंह की युद्धवीरता यवन युवक के साथ द्वन्द्व-युद्ध में अभिव्यक्त हुई है—

ततो गौरसिंहो दक्षिणान् वामांश्च परःशतान् कृपाणमार्गानंगीकृतवतः, दिनकरकरस्पर्शचतुर्गुणीकृतचाकचक्यैश्चंचच्चन्द्रहासचमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः, यवन-युवकहतकस्य, केनाप्यनुपलक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलितक्लेदसंवातस्वेद-जलजालम्, विशिथिलकचकुलमालम्, भग्नभ्रूभयानकभालम्, शिरश्चिच्छेद ।[4]

गौरसिंह की धर्मवीरता शिवाजी के इस कथन से अभिव्यंजित हुई है—

पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति, महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं त्यजन्ति, किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, वर्षास्वपि, ग्रीष्मधर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, व्यालवृन्देष्वपि, सिंहसंघेष्वपि, वारणवारेष्वपि, चन्द्रहासचमत्कारेष्वपि च निर्भया विचरन्ति । तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत आर्यवंशीयाः वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः ।[5]

१: 'शिवराजविजय' पृ० ३६५-३६६ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ४७ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ०६८-६९ ।
४. 'शिवराजविजय' पृ०२९ ।
५. 'शिवराजविजय' पृ० ४५-४६ ।

रघुवीरसिंह की युद्धवीरता के अनेक प्रसंग हैं। शिवाजी के पूना-अभियान, रुद्रमण्डल-युद्ध, क्रूरसिंह के साथ द्वन्द्व-युद्ध, देहली से लौटते हुये यवन सैनिकों द्वारा घेर लिये जाने पर शिवाजी की रक्षा— ये सभी घटनायें रघुवीरसिंह के युद्धवीर रस की अभिव्यंजना करती हैं। राघवाचार्य का वेश धारण करने वाले रघुवीर का निम्न कथन वीररस का अभिव्यंजक है—

यदि दिल्लीवल्लभस्याऽऽज्ञया जयपुरेश्वरो युध्यते, तद् योत्स्यामहे, (विचार्य) युध्यन्ताम्। राजपुत्रदेशीया युद्धकुशलाश्चेन्महाराष्ट्रा अपि दुर्बलेन करेण न वहन्ति चन्द्रहासम्। युद्धे प्राणांस्त्यक्ष्यथ, ततोऽपि मार्तण्डमण्डलं भित्वा स्वर्गमार्गमाकुलयिष्यथ। यदि विजेष्यध्वे, ततोऽपि लोकद्वये कीर्त्या कीर्ति धर्मरक्षा-पुण्यं च लप्स्यध्वे।[1]

वीररस की अभिव्यंजना देश और देवमूर्तियों के तथा शिवाजी के विरोधियों के आलम्बन से भी होती है।

राजपुत्रदेश के वर्णन से वीररस की अभिव्यक्ति—

अस्ति कश्चन धैर्यधारिधुरन्धरैः, धर्मोद्धारधौरेयैः सोत्साहसाहसचंचच्चन्द्रहासैः, सुशक्तिसुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्नपरिपन्थिगलगलच्छोणितच्छुरितच्छन्नच्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्वप्रतिकूलकुलोन्मूलनानुकूलव्यापारव्यासवतशूलैः, घनविघूनविघट्टकघर्घराघोषघोरशतघ्नीकैः, प्रत्यर्थिशुण्डिशुण्डाखण्डनोद्दण्डभुशुण्डीकैः, प्रचण्डदोर्दण्डवैदाढ्यभाण्डप्रकाण्डकाण्डैः, क्षत्रियवर्यैरार्यवर्यैरर्यवर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्रदेशः।[2]

हनुमान् की मूर्ति द्वारा वीररस की अभिव्यक्ति—

ततोऽवलोक्य तां वज्रेणेव निर्मिताम्, सा..रामिव वीरताम्, गदामुद्यम्य दुष्टदलदलनार्थमुच्छलन्तीमिव, केशरिकिशोरमूर्तिम्।[3]

चांदखां द्वारा वीररस की अभिव्यक्ति—

तिष्ठ रे महाराष्ट्रकुललांछन ! कपटदूत ! सर्वां शृणोमि ते दुर्वृत्तवार्ताम्। किन्तु चान्द्रखाने जीवति, न त्वादृशा जम्बुकवराकाः कृतकार्या भवन्ति इत्याक्ष्वेड्य, सचन्द्रहासः श्येन इवाभिपत्य, खड्गं तद्वामबाहौ प्राक्षिपत्।[4]

शाईस्ताखाँ के पुत्र द्वारा वीररस की अभिव्यक्ति—

अरे रे अपसद ! शास्तिखानपुत्रहस्तेनैव ते निधनं स्थिरीकृतं धात्रेति प्रकटमवलोकयन्तु सर्वे— इति कथयन् शक्तिमुदतूतुलत्।[5]

अफजलखां के सैनिकों द्वारा वीररस की अभिव्यक्ति—

तिष्ठत रे तिष्ठत धूर्तधुरीणाः ! महाराष्ट्रहतकाः ! किमिति चौरा इव,

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४०४-४०५।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ८२-८३।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ६२।
४. 'शिवराजविजय' पृ० १८२।
५. शिवराजविजय' पृ० २५८-२५६।

लुण्ठका इव, दस्यव इव च, यवनसेनापतीनाक्राम्यथ ? समागच्छत सम्मुखम्, यथा शाम्येदस्मच्चन्द्रहासानां चिरप्रवृद्धा महाराष्ट्र-रुधिराऽऽस्वादतृषा, इति सक्ष्वेडं संगर्ज्य, युद्धाय सज्जाः समतिष्ठन्त ।[1]

वीररस की अभिव्यंजना में कवि की प्रतिभा का परिचय मिलता है। किन्तु कहीं कहीं वर्णनों में काव्य के नायक की वीरता पर कलंक भी लगता हुआ प्रतीत होता है । शिवाजी का रोशनआरा से कहना—

"यदि भवतीमाश्रित्य भवत्याः पित्रा सह सन्धातुं शक्येत, तद्यत्नायैव समानीता मंगलमय्यत्र भवती ।"[2]

उनकी वीरता पर कलंक है । शिवाजी जयसिंह के सम्मुख अत्यन्त दीन बना दिये गये, किन्तु वे दिल्लीश्वर की आज्ञा से बीजापुर पर आक्रमण का संदेश पाने पर उत्साहित हो जाते हैं—

महाराष्ट्रराजस्तु, अनयाऽपि मुद्रया चिरन्तनसपत्नस्य विजयपुरेश्वरस्य दमनाऽऽदेशश्रवणेन स्फुरितबाहुः सेना आयोजयितुं तत्क्षणादादिदेश ।[3]

(ख) श्रृंगाररस

इस काव्य में वीररस के अंगी (प्रधान) रूप से और श्रृंगार-रस के अंग (अप्रधान) रूप से होने पर भी श्रृंगाररस की अभिव्यक्ति कम चमत्कारपूर्ण नहीं है । व्यास जी ने श्रृंगाररस की अभिव्यंजना करने वाली दो प्रेम-कथाओं को इस गद्य काव्य में निबद्ध किया —'रघुवीर-सौवर्णी' कथा और 'शिवाजी-रोशनआरा' कथा। श्रृंगाररस की दृष्टि से 'रघुवीर-सौवर्णी' कथा मुख्य है । रघुवीर और सौवर्णी परस्पर प्रेम के विवाहरूप फल की प्राप्त करने में सफल होते हैं । 'शिवाजी-रोशनआरा' एक अपूर्ण प्रेम-कथा है ।

श्रृंगाररस दो प्रकार का होता है—संयोग और विप्रलम्भ । इस गद्यकाव्य में दोनों प्रकार के श्रृंगाररस की अभिव्यक्ति है । यहाँ दोनों प्रेम- कथाओं के श्रृंगाररस की विवेचना की जाती है—

(१) रघुवीर-सौवर्णी कथा—

रघुवीर तथा सौवर्णी एक दूसरे के प्रति रति-भाव के आलम्बन हैं । एक दूसरे के गुण, स्वरूप और चेष्टायें, उनकी इस रति को उद्दीप्त करती हैं । १६ वर्ष की आयु का किशोर रघुवीर तोरणदुर्ग के हनुमन्मन्दिर में विश्राम कर रहा है । मधुर गीतध्वनि सुनकर आकृष्ट हुआ वह वाटिका में पहुँचता है और यौवन को स्पर्श

१. 'शिवराजविजय' पृ० ७४ । २. 'शिवराजविजय' पृ० २७२ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ३६२ ।

करती हुई एक बालिका को देखकर वह अपने आपको ही भूल जाता है—

रघुवीरसिंहस्तु स्वरालापश्रवणेनैव परवशो विलोक्यैनाम्—कोऽहम् ? क्वाहम् ? केयम् ? किमिदम् ?—इत्यखिलं यौगपद्येनैव विसस्मार।[1]

रघुवीर के हृदय में यह पूर्वराग की भावना उत्पन्न होती है। सौवर्णी के आलम्बन से उद्भूत यह रति-भाव उसके ग्रीवापरिवर्तन की चेष्टारूप अनुभाव से से उद्दीप्त होती है—

रघुवीरसिंहस्य च समीपत एव गतेति गमनसमये सचकितं सगतिस्तम्भं परिवृत्तग्रीवं कोऽयम् इत्येनं क्षणमवलोकयामास।[2]

तदनन्तर रघुवीरसिंह को माला पहनाते समय सौवर्णी के हृदय में भी पूर्वराग उत्पन्न होता है—

हस्ताभ्यां मालिकां विस्तार्य नतकन्धरस्य रघुवीरस्य ग्रीवायां चिक्षेप, ईषत्कंम्पितगात्रयष्टिश्च शनैर्यथागतं निववृते।[3]

यह अनुराग रघुवीर द्वारा सौवर्णी को नक्षत्रमाला पहिनाते समय और भी उद्बुद्ध होता है—

सा च व्रीडया कुलांगनांगीकृतमहाव्रतेन च स्तब्धवाग् न किंचन प्रावोचत्। रघुवीरश्च वाचंयमतामप्यंगीकारभंगीमंगीकृत्य, तदन्तिकमागत्य, सौवर्णीचित्रं मानसभित्तिकायामालिख्य, नक्षत्रमालां तत्कण्ठे प्राक्षिपत्, पवित्रतमानि स्फुटतमयौवनोद्भेदलक्ष्यरहितानि च तदंगानि नास्प्राक्षीत्।[4]

इसके बाद सौवर्णी और रघुवीर को मिलने के पांच, छः अवसर प्राप्त होते हैं[5] और दोनों का परस्पर अनुराग दृढ़ हो जाता है। अब विप्रलम्भ अवस्था प्रारम्भ होती है। 'रघुवीर-सौवर्णी' मिलन सरल नहीं है। महीनों तक सौवर्णी को रघुवीर का समाचार नहीं मिलता। वह यह भी नहीं जानती कि रघुवीर का घर कहां है ? उसकी पात्र में अभिलाषा है ? और इस प्रेम का क्या परिणाम होगा ? कवि ने सौवर्णी की विप्रलम्भ दशा की इस प्रकार व्यंजना की है—

यं च प्राणनाथं मन्यमाना मनोरथसन्तानवितानैरात्मानं व्यथयामि, तस्य मासान् यावत् कथामात्रमपि न लभे। आवसथमपि न वेद्मि। पात्रेऽयमभिलाषः, सुपरिणामोऽयं चित्रबन्ध इत्यपि न जाने। केवलमेनं प्रातिपदिकं चन्द्रमिव, कदाचित् क्षणाय दूरतोऽवलोक्य, चिरदाहदग्धं हृदयहतकं शीतलयामि। दुःखकथाकथनसमये दुःखमधिकमधिकं वर्द्धते— इति भवतीभ्यां पृष्टाऽपि न ब्रवीमि, अनुरुद्धाऽपि चापवृणोमि। तत् सख्यौ ! अलं मादृक्षाया हतभाग्याया मुखमप्यवलोक्य। परःशता रत्नभूता रणां-

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १२२।
२. 'शिवराजविजय' पृ० १२५।
३. 'शिवराजविजय' पृ० १३०।
४. 'शिवराजविजय पृ० १३२।

गरोषु प्रत्यहं शेरते । मम तु विधिना मृत्युरपि ललाटे नालेखि ।[१]

सौवर्णी के विप्रलम्भ-शृंगार का वर्णन करते हुये कवि ने दस कामदशाओं[२] को अभिव्यक्त किया है—

त्वां हि, कदाचित् सर्वा अस्मान् विहाय, उद्यानं प्रविश्य, एकान्ते तरुतल उपविशन्तीम्, क्वचन रहसि शिलासूपविश्य करतले कपोलं संस्थाप्यानिमिषाभ्यां दृग्भ्यां किमपि चिन्तयन्तीम्, कर्हिचित् कुंजान्तः प्रविश्य गजदन्तफलके कस्यापि प्रतिमूर्तिमिव लिखन्तीम्, कदाचन पाण्डुगण्डतलविसृत्वराण्यश्रूणि पटप्रान्तेन मार्जयन्तीम्, क्वचित् लुण्ठितेनेव, वंचितेनेव, प्रणष्टेनेव, अपहृतेनेव च हृदा, कंचिद्धवलिमानमिवांगेषु वहन्तीम् दर्शं दर्शं भिद्यत इवाऽऽवयोर्हृदयम् ।[३]

यहां एकान्त में आकर बैठने से अभिलाषा, हथेली पर गाल रख कर सोचने से चिन्ता, प्रतिलिपि चित्रित करने से स्मृति और गुण-कथन, अश्रुओं के उद्भव से उद्वेग और सम्प्रलाप, लुण्ठन से उन्माद, वंचन से व्याधि, प्रणष्टता से जड़ता और अपहृति से मूर्छा व्यक्त होते हैं ।

विप्रलम्भ-शृंगार की व्यंजना में सात्विक अनुभावों[४] की भी सुन्दर अभिव्यक्ति है –

तथापि सा मदर्थमेव रोदिति, दूयते, खिद्यते, क्लिश्यति, रोमाञ्चति, सीदति, स्विद्यति, ताम्यति च ।[५]

यहाँ अश्रु, रोमाञ्च, वेपथु, स्वेद और स्तम्भ नामक सात्विक अनुभाव व्यक्त हुये हैं ।

विप्रलम्भ-शृंगार की सुन्दर अभिव्यक्ति राघवस्वामी वेषधारी रघुवीर द्वारा सौवर्णी की विरह दशा के वर्णन में हुई है:—

देव ! एवं बहुधा बहुभिः सान्त्व्यमाना, उन्मत्तेव गृहीतसुहृदमौनव्रता मुक्तकेशी धूलिधूसरितदेहा रुद्राक्षमालाकलितवक्षाः स्थण्डिलशायिनी तडागकोण एव शिवालयमेकमभ्युष्य बिल्वपत्रैर्जलधाराभिर्धूर्तकुसुमैरक्षतैश्चानवरतं शिवं पूजयन्ती समयं याप-

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० २३१-२३२ ।

२. अभिलाषश्चिन्तास्मृतिगुणकथनोद्वेगसम्प्रलापाश्च ।
उन्मादोऽथ व्याधिर्जडता मृतिरिति दशात्र कामदशा । 'साहित्यदर्पण' ३:१९० ।

३: 'शिवराजविजय' पृ० २२७-२२८ ।

४. स्तम्भप्रलयरोमांचाः स्वेदो वैवर्ण्यवेपथू ।
अश्रु वैस्वर्यं इत्यष्टौ । 'दशरूपक' ४.५-६ ।

५. 'शिवराजविजय' पृ० ३०४ ।

यति ।[1]

चिरवियोग के पश्चात् रघुवीर और सौवर्णी का पुनः मिलन होता है । कवि ने इस स्थल पर संयोग-शृंगार को अभिव्यक्त किया है । रघुवीर को देखकर सौवर्णी के हृदय में अनेक प्रकार के सात्विक भावों का उदय होता है—

आत्मानं विस्मृत्य चित्रार्पितेव जडीकृतेव पुत्तलिकायितेव, गतचेतनेव, मोहन-मन्त्रमोहितेव च स्विन्ना, कण्टकिता, पुलकिता, वेपिता च, तथैव समस्थित ।[2]

दोनों को आनन्द देने वाले मिलन में पुनः संयोग-शृंगार व्यक्त हुआ है—

सा त्वानन्दपरवशा जडीकृतेव चित्रार्पितेव मन्त्रकीलितेव मायामोहितेव विक्रीतचित्तेव हारितहृदयेव मथितमानसेव च विविधभावभंगतरंगिताभ्यां नयनाभ्यां निपुणमीक्षमाणा, अविरलगलन्नयनजलधारया भसितसम्मर्दमिव क्षालयन्ती, मन्दं मन्दं मुहूर्त्तमालप्य तं विससर्ज ।[3]

(२) शिवाजी-रोशनआरा कथा—

'शिवाजी-रोशनआरा' प्रसंग में भी संयोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृंगार-रस अभिव्यक्त हुये हैं । किन्तु दोनों कथाओं में कुछ भेद है । 'रघुवीर-सौवर्णी' के प्रसंग में जहां पुरुष के हृदय में पूर्वानुराग पहले होता है, 'शिवाजी-रोशनआरा' की प्रणय-कथा में यह नारी के हृदय में पहले हुआ है । शिवाजी को देख कर रोशन-आरा के हृदय में पूर्वराग की भावना उदित होती है—

इयं···तद्वचनसुधाधाराविपासिताभ्यामिव कर्णाभ्यां परमैकतानताजडीकृताभ्यामिव नयनाभ्यां चित्रार्पितेवाभूत्।······ततः पराधीना तदाकारसौजन्यलावण्यगाम्भीर्यादराचाराद्यवलोकनमोहिता रसनारी स्वयमेवारभ्य एवमालपत् ।[4]

इस समय तक रोशनआरा यह नहीं जानती थी कि उपस्थित व्यक्ति स्वयं शिवाजी हैं । अभी तक वह केवल उपस्थित व्यक्ति के शिष्टाचार और सौन्दर्य पर मुग्ध है, किन्तु शिवाजी के उदात्त गुणों के सुनने से उसके हृदय में उनके दर्शन की तीव्र उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है[5] और उपस्थित व्यक्ति को शिवाजी जान कर उनके प्रति उसका हृदय अनुरक्त होता है । शिवाजी भी उसके प्रति अनुरक्त होते हैं—

ततः परमुपविष्टयोर्मुहूर्तं यावद् बहव आलापास्तयोः परस्परं चकितयोर्मुदितयोरनुरक्तयोरभूवन् ।[6]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४४६ । २. 'शिवराजविजय' पृ० ४६४ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ४६७ । ४. 'शिवराजविजय' पृ० २६६-२७० ।
५. 'शिवराजविजय' पृ० २७३ । ६. 'शिवराजविजय' पृ० २७४ ।

तदनन्तर रोशनआरा की विरह-दशा में कवि ने विप्रलम्भ-शृंगार की अभिव्यक्ति की है।

शिवाजी से मिलने के बाद रोशनआरा के हृदय में शिवाजी के प्रति तीव्र अनुराग उत्पन्न होता है। वह शिवाजी के विषय में ही चिन्ता करती है।[1] रोशनआरा की इस चिन्ता से अभिलाष नामक विप्रलम्भ-शृंगार की अभिव्यक्त हुई है। रोशनआरा की विरह-दशा का वर्णन कवि ने उसकी सहचरी द्वारा कराया है—

साऽस्माभिरतिसावधानतया सेव्यमानाऽपि प्रतिक्षणमनिमिषपातनिरुद्धनिःश्वासं वेक्ष्यमाणाऽपि रोमांचति, स्विद्यति, सीत्करोति, ताम्यति, विलपति, वेपते, उद्भ्रमति, रोदिति, ग्लायति, क्लिश्यति, मुह्यति, मूर्च्छति च। धीरं समीरमासाद्याधिकं खिद्यते, शीतमयूखमालोक्याधिकं तप्यते, कोकिलकलरवमाकर्ण्य कर्णयोस्तोद्यमानेव कराभ्यां कर्णकुहरं पिधायान्तर्निविशते, अस्माभिर्हास्यमानाऽपि न हसति, विविधविलासरामणीयकेष्वपि न रमते, पाटलिपटलकलिकामालामपि ज्वलनज्वालाजालावलीमिव वेवेत्ति। किं कथयामि ? केवलं दक्षतो वामतश्च परिवर्तनैः, दीर्घनिश्वासैः, सजृम्भाऽगुंलिस्फोटनैश्च सा क्षपां क्षपयति।[2]

इस वाक्य से और इसी प्रकार के अन्य वाक्यों से कवि ने रोशनआरा के विप्रलम्भ शृंगार के अनुभावों और कामदशाओं का अभिव्यंजन किया है।

महाराष्ट्र से दिल्ली भेज दिये जाने के बाद कवि ने रोशनआरा को शिवाजी से पृथक् ही रखा। शिवाजी के दिल्ली पहुँचने पर उनके पास रोशनआरा की सखी दो बार गई। उसके द्वारा रोशनआरा की विप्रलम्भ-अवस्था की अभिव्यक्ति हुई है। इसमें प्रेम की अन्तिम परिणति संयोग रूप में न होकर करुण रूप में हुई है। कवि ने शिवाजी के स्वप्न में रोशनआरा का अवसान कराकर इस प्रकरण को समाप्त कर दिया।

(ग) हास्य-रस

'शिवराजविजय' में हास्य के प्रसंग बहुत कम हैं। दो प्रसंगों में हास्य हो सकता है। प्रथम रोशनआरा की सखी का कुसुमविक्रेत्री के रूप में शिवाजी से मिलना और दूसरा मुरेश्वर का यवन चिकित्सक के रूप में शिवाजी के पास आना। इन दोनों स्थलों पर कवि ने प्रथम तो पाठकों को उत्सुकता और संशय की चरम सीमा पर पहुँचा दिया और तदनन्तर रहस्य का उद्घाटन करके हास्य की व्यंजना की। कुसुमविक्रेत्री द्वारा लगाये गये आरोप को सुन कर प्रथम तो शिवाजी जडीभूत से होते हैं[3] किन्तु रहस्य का उद्घाटन होने पर वे विक्षुब्ध हो जाते हैं। इस प्रसंग

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३०८-३०९। २. 'शिवराजविजय' पृ० ३२३-३२४।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ४५२।

में शिवाजी की अवस्था का अनुभव करके पाठकों को हास्य की अनुभूति होती है।

मुरेश्वर का प्रसंग हास्य का उत्तम उदाहरण है। चिकित्सक के व्यवहार से रुष्ट शिवाजी जोर से उसके मुख पर चपत लगा कर दाढी पकड़ कर खींच लेते हैं। गौरसिंह चिकित्सक को कमर से पकड़ कर पीछे खींच ले जाता है। इससे चिकित्सक की कृत्रिम दाढी खिच कर उखड़ जाती है और हंसता हुआ मुरेश्वर प्रकट हो जाता है—

अथ महाराजस्तस्य कृत्रिमकूर्चं स्वहस्तेनोत्पाटितम्, तं च घृष्यमाणमपि सखिलखिलशब्दं हसन्तं दृष्ट्वा किमिदमिति सावधानतया तमालुलोके, ददर्श च यत्—स्वस्य बालमित्रं प्रसिद्धो योद्धा श्रीमान् मुरेश्वरोऽस्तीति।[1]

(घ) करुण-रस

शिवराजविजय में करुण-रस की अभिव्यक्ति भारतवर्ष और हिन्दू जाति की दुर्दशा के चित्रण में हुई है। ब्रह्मचारिगुरु योगिराज के सम्मुख भारत की अवस्था का वर्णन करते हैं—

महात्मन् क्वाधुना विक्रमराज्यम्? वीरविक्रमस्य तु भारतभुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदशशतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजयध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे घण्टानादः? क्वाद्यापि मठे मठे वेदघोषः? अद्य हि वेदा विच्छिद्य वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पुराणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रेषु भर्ज्यन्ते। क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते, क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्त्तनादाः, क्वचिद्रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः क्वचिद् गृहनिपात इत्येव श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः।[2]

करुण-रस के सात्विक अनुभावों की अभिव्यक्ति ब्रह्मचारिगुरु की अवस्था से होती है—

उपक्रमममुमाकर्ण्यावलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रवक्षालितमिव वदनं, निपतद्वारिबिन्दुनी नयने, अंचितरोमकंचुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानंच स्वरम्, अवागच्छत्।[3]

यवन-यति के वेष में बैठे हुये माल्यश्रीक द्वारा भारतवर्ष की अवस्था का चिन्तन करुण-रस की अभिव्यक्ति करता है। उसका थोड़ा सा दिग्दर्शन करना उचित होगा—

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४६६। २. 'शिवराजविजय' पृ० १३-१४।
३. 'शिवराजविजय' पृ० १७।

हा ! भारत ! किं लुण्ठकैरेव भोक्ष्यसे ? हा ! वसुन्धरे ! किं दीनप्रजानां रक्तैरेव स्नास्यसि ? हा ! सनातनधर्म ! किं विलयमेव यास्यसि ? हा ! चातुर्वर्ण्य ! किं कथावशेषमेव भविष्यसि ?...हा !मन्दिरवृन्द ! किं धूलिसादेव सम्पत्स्यसे ? हा ! सांगवेद ! किं भस्मतामेव प्राप्स्यसि ? एवं भावयत एव तस्यान्तर्दु:खमिव जलरूपेण द्रावयन्ती, कपोलं क्षालयन्ती, श्मश्रुग्राद् बिन्दुभूय कूर्चं सिंचन्ती भूतलमाविलं चकाराश्रुधारा ।[1]

उदयपुराधीश द्वारा शिवाजी को भेजे गये पत्र के कुछ अंश से भी करुण-रस की अभिव्यक्ति होती है—

मात: ! काऽत: परं प्रतीक्ष्यते दुर्दशा भारतवर्षस्य ? यदा सफलीकरिष्यसीमं बाहुसहस्रभारम् । आ: ! पश्यतोः पित्रोर्बाला: करपत्रै: कर्त्यन्ते, रुदत: पत्यु: पत्न्य: पात्यन्ते, हाहाकारैर्गगनतलमपि विदारयतां भक्तानां भगवन्मन्दिराणि चूर्ण्यन्ते, सोढविविधबाधानां निरपराधानां हीनानां दीनानां रक्तै रक्ताक्रियते भगवती बसुन्धरा । देवि ! निजतनयेषु समापादिता इमा दुर्दशा: पश्यन्त्यपि न पश्यसि । रोदसी रोदयद्रोदनमद: शृण्वन्त्यपि न शृणोषि । मातैव समुपेक्षेत चेत् कोऽन्यो रक्षितुमपेक्षेत बालान् ।[2]

इसी प्रकार के अन्य प्रसंग इस गद्यकाव्य में भारतदुर्दशा के वर्णनों द्वारा करुण-रस की उद्भावना करते हैं।

विरह-विह्वला प्रताडिता रोशनआरा की कवि कल्पित मृत्यु भी करुण-रस की अभिव्यंजक है—

''नोन्माद: प्रकृतिं यामि, स्वयमात्मानं दण्डयामि, शाम्यतु शत्रुशातनस्य भवत: पीडा''— इति व्याहृत्य स्वतेजसा सदासेरं दिल्लीश्वरमपि धर्षयन्ती, नागदन्तिकावलम्बितामेकां छुरिकां त्सरौ गृहीत्वा, झटिति कोशादाकृष्य, ''ईदृशजीवनान्मरणं श्रेय:''—इति कथयन्ती, बलेनाऽऽहृत्य स्ववक्षो विददार, रुधिरधाराभिश्च समं भूमौ निपपात ।[3]

(च) रौद्र-रस

रौद्र-रस की अभिव्यक्ति के भी अनेक स्थल इस गद्यकाव्य में हैं। कन्याहरण के वृत्तान्त सुन कर क्रोधित हुये योगीराज के कथन से रौद्र-रस की उद्भावना होती है—

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच—विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचाराणामुपद्रव: ।[4]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १७२-१७३। २. 'शिवराजविजय' पृ० ८२६।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ५५१। ४. 'शिवराजविजय' पृ० १३।

महादेव पंडित का प्रासाद-रक्षक को क्रोधित नेत्रों से देखना रौद्र-रस की उद्भावना करता है।[1]

यवन-यति के वेश में राजमार्ग पर बैठे हुये माल्यश्रीक का ध्यान पथिकों की वार्ता से भंग हो जाता है। आततायियों को सामने देख कर क्रोध से पूर्ण उनकी मुद्रा रौद्र-रस की अभिव्यंजना करती है—

ततो द्विगुणितकोपो ज्वलदंगारप्रतिमनयनो वाद्यमुत्तोल्य सहुंकारं ताडयितुमिवोदस्थात्।[2]

रघुवीर को देखकर शिवाजी क्रोध से भर जाते हैं। उस समय उनके कथन और चेष्टायें रौद्र-रस की अभिव्यंजक हैं—

वाचाल ! कपटिन् ! तिष्ठ। पश्यन्तु सर्वे विद्रोहिणो दण्डम्। इति शक्तिमुदतिष्ठिपत्।[3]

(छ) भयानक-रस

काव्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार वीर और भयानक रस के आश्रय विरुद्ध होने के कारण एक काव्य में इन दोनों रसों के आश्रय भिन्न भिन्न होने चाहिये।[4] कवि ने शिवाजी और उनके सहायकों को वीर-रस का आश्रय बना कर उनके विपक्षी मुसलमानों को भयानक-रस का आश्रय बनाया। इस रस की अभिव्यक्ति इस काव्य में अनेक स्थलों पर होती है। शिवाजी से युद्ध करने के लिये आये हुये अफजलखां के सैनिक शिवाजी की शक्ति से भयभीत हैं। उनका भय इन कथनों से अभिव्यक्त होता है—

अहो दुर्गमता महाराष्ट्रदेशस्य, अहो दुराधर्षता महाराष्ट्राणाम्, अहो वीरता शिववीरस्य, अहो निर्भयतैतत्सेनानीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद् घोटकानाम्, आः किं कथयामः ? दृष्ट्वैव चमत्कारं शिववीरचन्द्रहासस्य न वयं पारयामो धैर्यं धर्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम्, को नाम द्विशिरा यः शिवेन योद्धुम् गच्छेत् ? कश्च नाम द्विपृष्ठो यस्तद्भटैरपि छलालापं विदध्यात् ? वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथापि न जानीमः, किमिति कम्पत इव, क्षुभ्यतीव च हृदयम् ? यवनानाम् पराजयो भविष्यति, अपजलखानो विनंक्ष्यतीति न विद्मः को जपतीव कर्णे ? लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे। मा स्म भोः मैवं स्यात्, रक्ष भो रक्ष जगदीश्वर।[5]

---

१. अंगारप्रतिमाभ्यां चक्षुर्भ्यां तं दहन्निव। 'शिवराजविजय' पृ० १६०।

२. 'शिवराजविजय' पृ० १७७।

३. 'शिवराजविजय' पृ० ३७८।

४. आश्रयैक्ये विरुद्धो यः स कार्यो भिन्नसंश्रयः। 'काव्यप्रकाश' ७.६४।

५. 'शिवराजविजय' पृ० ५३-५४।

शाइस्ताखां के हृदय में भय की अनुभूति उत्पन्न करनी वाली चाकरणदुर्ग के युद्ध की बिभीषिका भयानक रस की उद्भावना करती है—

शास्तिखानस्तु चिक्कणदुर्गाधिकारयुद्धस्मरणेन हतहृदयः पुनस्तादृशं रोमहर्षणं युद्धमविधित्सुः कातरतरान्तरात्मा समुवाच ।[1]

शाइस्ताखां के महल में नंगी तलवारें लेकर प्रवेश करते हुये महाराष्ट्र-वीरों को देख कर भयभीत हुई यवनदासियों की चेष्टायें भयानक रस की अभिव्यक्ति करती हैं—

तास्तु सचीत्कारं प्रतिनिवृत्ताः, गृहावग्रहणीसमुद्घाहतप्रपदाः, प्रघाणे निपतन्त्यः, कान्दिशीकाः अट्टेष्वितस्ततो धावन्त्यः, घोरनिद्रया सुप्तं सेनान्यं समबूबुधन्नचकथंश्च यद् नग्नासिहस्ताः महाराष्ट्राः गृहे प्रविष्टाः—इति ।[2]

(ज) बीभत्स-रस

बीभत्स-रस की अभिव्यक्ति प्रायः मुसलमानों के आचार-व्यवहार और खान-पान में जुगुप्सा रूप से हुई है । 'शिवराजविजय' में अनेक स्थानों पर इस प्रकार के वर्णन हैं । निम्न पदों में यह जुगप्सा उत्कट रूप से है—

महामांसडक्कारपूतिगन्धसंबन्धान्धीकृतपारिपार्श्विकैः, चिरजलानवगाहनोद्भूतमहामलावलिमलीमसैः मद्यस्वेदनिष्ठ्यूतकर्णकिट्टसिंघाणदूषिकादिविविधमललिप्तचिराक्षालितमलिनवसनैः, वारवधूच्छिष्टभोजिभिः ।[3]

(झ) अद्भुत-रस

अद्भुत्-रस के उदाहरण इस काव्य में कम हैं । योगिराज की अलौकिक समाधि विस्मय का भाव उत्पन्न करती है--

यौधिष्ठिरे समये कलितसमाधिरहं वैक्रमसमये उदस्थाम् । पुनश्च वैक्रमसमये समाधिमाकलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि ।[4]

यहाँ योगिराज की हजारों वर्ष लम्बी समाधि पाठकों को विस्मित करके अद्भुत-रस की अभिव्यंजना करने में समर्थ होती है ।

पुरोहित देवशर्मा, हनूमन्मन्दिर के पुजारी और रामचन्द्र के मन्दिर के पुजारी की सत्य सिद्ध होने वाली भविष्यवाणियाँ आदि भी अद्भुत रस को अभिव्यक्त करती हैं ।

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १५२ । २. 'शिवराजविजय' पृ० २५५-२५६ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० १६८ । ४. "शिवराजविजय पृ० १६ ।

(ट) शान्त-रस

इस गद्यकाव्य में शान्त-रस को अभिव्यक्त करने वाले स्थल भी कम हैं। योगियों के भगवत्साक्षात्कार के वर्णन में शान्त-रस अभिव्यक्त हुआ है—

भगवन् ! बद्धसिंहासनैर्निरुद्धनिःश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनीकैर्विजितदशेन्द्रियैरनाहतनादतन्तुमवलम्ब्याज्ञाचक्रं संस्पृश्य, चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजःपुंजविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्तः प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युंजयैरानन्दमात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्न ज्ञायते कालवेगः ।[1]

संसार के वास्तविक स्वरूप का निदर्शन कराने वाले निम्न पदों से निर्वेद रूप स्थायी भाव की अभिव्यक्ति होने के कारण शान्त-रस अभिव्यक्त होता है—

तात ! परिवर्ती संसारः, अवितर्कणीया दैवघटना, अवश्यंभाविनो भावाः, सुख-दुःखमय एव संसार, कस्य दुःखासम्भिन्नं सुखम् ? कस्य निःशेषं पूर्णा अभिलाषाः ? कस्यापरिचितपश्चात्तापसंघर्षहृदयम्[2] ?

'शिवराजविजय' में इन नव रसों के अतिरक्त भाव, रसाभास, भावाभास, भावशान्ति, भावोदय, और भावशबलता की भी चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इनके उदाहरण भी क्रमशः प्रस्तुत किये जाते हैं—

(क) भाव

देव, गुरु, नृप, मुनि, पुत्रादि विषयक रति तथा प्रधान रूप से व्यंजित व्यभिचारी भाव को भाव कहते है ।[3] पुत्र विषयक रति को मम्मट ने भाव पद दिया, किन्तु कुछ अन्य आचार्यों ने इसमें वत्सल-रस की उद्भावना की ।[4] भावों की अभिव्यक्ति के निम्न उदाहरण हैं—

(१) देवविषयक रति—

'शिवराजविजय' में अनेक देवताओं की स्थान स्थान पर स्तुति की गई है। देवविषयक रति के अनेक प्रसंग इसमें विद्यमान हैं। कुछ उदाहरण निम्न हैं—

(अ) अयमेवाहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवांगीकरोत्युत्तरं दक्षिणं चायनम् एनेनैव सम्पादिता

---

१. शिवराजविजय' पृ०१५-१६ । २. 'शिवराजविजय' पृ० २६५ ।

३. रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथांजितः । भावः प्रोक्तः । 'काव्यप्रकाश' ४.३५-३६ ।

४. वत्सलश्च रस इति तेन स दशमो मतः ।
स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः ॥
स्थायी वत्सलतास्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतम् ॥ 'साहित्यदर्पण' ३.२५१ ।

युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाऽऽश्रित्य भवति परमेष्ठिनः परार्द्ध संख्या, असावेव चर्कर्ति बर्भर्ति जर्हर्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्र्यमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवारहरहरुपतिष्ठन्ते, धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषाम् ।[1]

यहां विप्रबटु की सूर्य देवता विषयक रति व्यंजित होती है ।

(ब) अहो ! यस्याश्चरणरेणुनिकरेणैव शेषस्यापि शिरोधार्यं गृहीतवराहावतारस्य विष्णोरप्युद्धरणीयं गंगाधरस्यापि भस्मच्छुरणच्छद्मना सर्वांगसंश्लेषणीयं ब्रह्माण्डमण्डलं रचितमस्ति, सेयं भगवती जगदम्बिका समुपस्थिता ।[2]

यहां उदयपुराधीश का दुर्गादेवी विषयक रति-भाव व्यंजित हुआ है ।

(स) भगवति ! कृष्णप्रिये ! यथा कालियसदनं प्रविश्यापि भगवान् कृष्णः काकोदरं निर्मथ्य निरगात्, यथा च नन्दो ग्राहेण गृहीतस्त्वज्जले निमग्नोऽपि बकविद्वेषिणोऽनुग्रहेण सकुशलं परावृतः, तथैव चेदहमपि दिल्लीतः कुशलेन स्वपुण्यपुरीं परावर्ते, तद् दुग्धधारासहस्रैः कमलानां लक्षेण लक्षेण च घृतदीपानां त्वामभ्यर्चयिष्ये —इति ।[3]

यहां शिवाजी का यमुना विषयक रति भाव व्यक्त हुआ है ।

(२) मुनिविषयक रति—

येषां श्रीमतां चरणेनाङ्कितं विष्णोरपि वक्षः स्थलमैश्वर्यमुद्रयेव मुद्रितो विभाति...।[4]

यहां शिवाजी का ब्राह्मण विषयक रति-भाव व्यंजित हुआ है ।

(३) नृप-विषयक रति-भाव—

को नामापरः शिववीरात् ? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवाऽऽरोहविद्यासिन्धुः, स एव चन्द्रहासचालने चतुरः, स एव मल्लविद्यामर्मज्ञः, स एव पण्डितमण्डलमण्डनः, स एव बाणविद्यावारिधिः, स एव धैर्यधारिधौरेयः, स एव वीरवारवरः, स एव पुरुष-पौरुषपरीक्षकः, स एव दीनदुःखदावदहनः, स एव स्वधर्मरक्षणसक्षणः, स एव विलक्षण-विचक्षणः, स एव च मादृशगुणिगणगुणग्रहणाऽऽग्रही वर्तते ।[5]

यहां गौरसिंह की शिवाजी विषयक रति अभिव्यक्त हुई है।

(४) पुत्रविषयक रति—

देवशर्मा तु चिरसमयानन्तरं तादृशं स्वरं वचनं चाऽऽकर्ण्य, पादयोः पतितां

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ३-४ ।
२. 'शिवराजविजय' पृ० ५२५-५२६ ।
३. 'शिवराजविजय' पृ० ४२२ ।
४. 'शिवराजविजय' पृ० ६७ ।
५. 'शिवराजविजय' पृ० ६३-६४ ।

तादृशीं मूर्तं चावलोक्य चकितः, क्षणं जड इव स्तब्धः परस्ताच्चोत्थाय, उपनेत्रं श्मश्रु कूर्चं च प्रक्षाल्य, पतन्तीभिर्वाष्पधाराभिस्तमासिच्य, आनन्दाक्षतैरिव वात्सल्य-रजतांकुरैरिव प्रेमपीयूषधारोद्गारैरिव निःसरद्भिः कष्टकण्टकैरिव व समुदंचितैः श्वैतरोमभिर्व्याप्तः, कलितद्विगुणकम्पाभ्यां कराभ्यां कथमपि तमुत्थाप्य, वलितवली-पलितेऽस्थिचर्म्ममात्रे वक्षसि गाढमालिलिंग ।[1]

यहां देवशर्मा का रघुवीरसिंह विषयक वत्सलतारूप रतिभाव व्यंजित हुआ है ।

(५) अंजित व्यभिचारिभाव—

ततः कथं प्रचलितौ ? कथमत्रायातौ ? का घटना घटिता ? क उपायः कृतः ? किमाचरितम् ? इति कुतूहलपरवशे, विस्फारितनयने, उद्ग्रीवे, समनुकूलितकर्णे, विस्मृतान्यकथे, कृतावधाने परिकरवर्गे ...।[2]

यहां परिकरवर्ग का औत्सुक्य रूप व्यभिचारी भाव प्रधान रूप से व्यंजित हुआ है ।

(ख) रसाभास और भावाभास

यदि रस और भाव में अवलम्बनगत अनौचित्य हो तो उनको रसाभास और भावाभास कहा जाता है ।[3]

(१) रसाभास—

योऽयं क्रूरसिंहाभिधोऽश्वारोहाणां पंचशत्या अध्यक्षोऽत्र तोरणदुर्गप्रान्तरक्ष-कत्वे नियुक्तः, स स्वयमेव केनापि व्याजेनाऽऽगत्य मामवलोक्य हसति, भ्रुवौ नर्तयति, करकम्पनैराह्वयति, मन्दं मन्दं किमप्यभिदधाति च । अद्य तूद्याने पुष्पाण्यवचिन्वतीं मामकस्मादुपगत्य, चिरं प्रिये ! प्राणेश्वीर ! अनुगृहाण, पाणिं मे गृहाणे-त्यवादीत् ।[4]

यहां क्रूरसिंह का सौवर्णी के प्रति रतिभाव व्यंजित होता है जो अनुचित है ।

(२) भावाभास—

अथ सहासं सोऽब्रवीत् को नाम खपुष्पायितः, शशशृंगायितः, कमठीस्तन्या-यितः, सरीसृपश्रवणायितः, भेकरसनायितः, बन्ध्यापुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यताम् एव एवैषोऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा, चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते ।[5]

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४६७-४६८ । २. 'शिवराजविजय' पृ० ६४-६५ ।

३. तदाभासा अनौचित्यप्रवर्तिताः । 'काव्यप्रकाश' ४.३६ ।

४. 'शिवराजविजय' पृ० ३०६ । ५. 'शिवराजविजय' पृ० ६६ ।

यहां अफजलखां का गर्व नामक व्यभिचारिभाव अभिव्यक्त हुआ है, जो अनुचित है।

(ग) भावशान्ति और भावोदय

महा०—धिङ् माम् तथा तिरस्कृतवानस्मि प्राणरक्षकमेकम्, यच्छ्रूयते स मम तिरस्कारग्लानः प्राणांस्त्यक्तवान्— इति। आधिरयं ममापि प्राणैः सहैव शान्तिमेष्यति।

राघ०—(ग्रीवां परिवर्त्य कानिचिदश्रूण्युन्मुच्य) अपि महाराजस्तस्य नाम कथयिष्यति? यथा योगबलेन चिन्तयेयं स जीवति न वेति।

महा०—रघुवीरसिंहः।

राघ०—(आत्मनो रोमांचं गद्‌गद्स्वरं च गोपयन्, ध्यानच्छलेन क्षणं तूष्णीं संवृत्य धैर्यमाधाय) दीनबन्धो! जीवति रघुवीरसिंहः।

महा०—जीवतु जीवतु, चिरं जीवतु, अथं किं करोति? क्वास्ति? स्मारं स्मारं मम तिरस्कारं माममपवदति वा?[१]

इस संवाद में प्रधान रूप से व्यांजित होता हुआ शिवाजी विषयक 'ग्लानि' यह व्यभिचारि-भाव जीवतु जीवतु, चिरं जीवतु, शब्दों के साथ शान्त हो जाता है और तदनन्तर किं करोति? क्वास्ति आदि शब्दों द्वारा 'औत्सुक्य' रूप व्यभिचारि-भाव का उदय होता होता है।

(घ) भावशबलता

'शिवराजविजय' में भावसन्धि की व्यंजना के उदाहरण उपलब्ध नहीं होते। भावशबलता के उदाहरण प्राप्त होते हैं। जहां पूर्व पूर्व भाव को उत्तर उत्तर भाव बाधित करता हुआ चमत्कार उत्पन्न करता है वहां भावशबलता होती है। भावशबलता के अनेक प्रसंग इस काव्य में हैं—

अहह! किं करोमि? क्व गच्छामि? कथं पुनः पुण्यनगरं प्राप्नोमि? कथं पुनः प्रतापदुर्गशिखरमारुह्य सस्यश्यामां महाराष्ट्रभूमिमवलोकयामि? कथं पुनस्तोरणदुर्गसाम्मुखीनां मारुतिमूर्तिं प्रणमामि? कथं पुना राजदुर्गस्थराजसिंहासनमधिरोहामि? कथं पुनर्दैवज्ञवर्यस्य देवशर्मणश्चरणौ स्पृशामि? हन्त तदाश्रमस्थाया गौरसिंहभगिन्या विवाहसाहाय्यार्थं वरमन्वेष्टुं च प्रतिज्ञातवानस्मि। हा श्रूयते तदर्थमभिमतो रामसिंह एव रघुवीरनाम्ना मदनुचर आसीत्। अहह! योऽन्वेष्टव्यः स एव मया सभर्त्सनं निःसारितः। हा! कथं स्वपुत्रवियोगदुःखितं ब्रह्मचारिवेषं

---

१. शिवराजविजय' पृ० ४४४। २. 'शिवराजविजय प० ४३५-४३६।

महाराजजयसिंहस्यान्यतमं बन्धुं वीरेन्द्रसिंहं सान्त्वयिष्यामि ? नूनं निर्दोषरघुवीर-निर्वासनपापस्यैव फलमेतत् यत् — स्वयमागत्य प्रत्यर्थिनां क्रोडे पतितोऽस्मि, प्रथमसाक्षात्कार एवानादरं समनुभूतवानस्मि, परेऽह्न्येव च सन्देशं प्राप्तवानस्मि यद्— भूपतिसभायां यदुक्तं तत् सम्राजः कर्णशष्कुलिमस्पृशत्, तस्यायमेव दण्डो यन्न पुना राजसभायामागन्तव्यमिति। अल्पीयस्यपि मे सेना नगराद्बहिरेव शिविरेऽस्ति। पंचषैरात्मीयैः कतिपयैरेव च भृत्यैः सहात्र निवसामि, अत्रत्यं वायुजलं नानुकूल-मिति छलेन महाराष्ट्रदेशनिवर्तनादेशाय प्रेषितेऽप्यावेदनपत्रे दिल्लीकलङ्केन विषया-न्तरे बहु लिखितमप्याज्ञासम्बन्धे किमपि नालेखि। विनैवाऽऽज्ञां यदि पलायेय, अथ गृह्येय चेद्यवनहस्ते ध्रुवो मृत्युः। अहो! म्लेच्छेषु विश्वस्य समायातोऽस्मीति न भद्रं कृतम्। अहो! दुरदृष्टम् यद् राघवाचार्यसन्यासिनोऽपि न स्वीकृतं वचनम्।[1]

इस स्थल पर "किं करोमि ? क्व गच्छामि" से वितर्क, "कथं पुनस्तोरण-साम्मुखीनां ... देवशर्मणश्चरणौ स्पृशामि" से चिन्ता, "हन्त तदाश्रमस्थाया गौरसिंहभगिन्या प्रतिज्ञातवानस्मि" से स्मृति, "हा श्रूयते तदर्थमभिमतो...अनुचर आसीत्" से स्मृति, "अहह योऽन्वेष्टव्यः...निःसारितः" से ग्लानि, "हा कथं स्वपुत्र-वियोगदुःखितं...सान्त्वयिष्यामि" से चिन्ता, "नूनं रघुवीरनिर्वासनपापस्य.. पुना राजसभायामागन्तव्यम्" से मति, "अल्पीयस्यपि मे सेना...भृत्यैः सहात्र निवसामि" से विषाद, "अत्रत्यं वायुजलं नानुकूलं...किमपि नालेखि" से आवेग, "विनैवाज्ञां यदि...ध्रुवो मृत्युः" से शंका और त्रास, "म्लेच्छेषु विश्वस्य समायातोऽस्मीति न भद्रं कृतम्" से विबोध, "अहो दुरदृष्टम् यद् राघवाचार्यसन्यासिनोऽपि न स्वीकृतं वचनम्" से उन्माद, इस प्रकार उत्तर उत्तर अभिव्यंजित होते हुये व्यभिचारी भाव पूर्व पूर्व भाव का उपमर्दन करते हुये चमत्कृति को प्राप्त होते हैं।

———

१. 'शिवराजविजय' पृ० ४३५-४३६।

सप्तम अध्याय

व्यास जी का नाट्य साहित्य-(१)

प्राक्कथन—कथावस्तु—चरित्रचित्रण

व्यास जी के गद्यकाव्य (शिवराजविजय) का आलोचनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् अब उनके रूपकों की विवेचना की जा रही है। इस विवेचना को प्रारम्भ करते हुये प्राक्कथन के रूप में सर्वप्रथम संस्कृत नाट्य-परम्परा पर विहंगम दृष्टि डाल कर शास्त्रीय दृष्टिकोण से संस्कृत रूपकों के भेदों का निरूपण किया गया है। तदनन्तर व्यास जी के रूपकों का नाम निर्देश करके और वे किस काव्य-विधा के अन्तर्गत हैं इसका निर्देश करके नाट्य-साहित्य के अध्ययन की रूपरेखा है। इसके पश्चात् इसी अध्याय में रूपकों की कथावस्तु और चरित्र-चित्रण की आलोचना की गई है।

१. संस्कृत नाट्य-परम्परा

संस्कृत की नाट्य-परम्परा अति प्राचीन है। ईसा पूर्व पंचम-चतुर्थ शताब्दी तक के नाटक इस समय तक उपलब्ध हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त इससे भी प्राचीन साहित्य में अभिनय सम्बन्धी ग्रन्थों के नाम उपलब्ध हुये हैं।

नाट्य का उद्भव—संस्कृत नाट्यों की उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने विभिन्न मत प्रस्तुत किये हैं। भरत ने इनकी दैवीय उत्पत्ति का वर्णन किया।[1] किन्तु इससे सन्तुष्ट न होकर आधुनिक विद्वानों ने विभिन्न मत प्रतिपादित किये। ऋग्वेद के संवादात्मक सूक्तों[2] और अभिनय सामग्री[3] के आधार पर कुछ विद्वानों

---

१. महेन्द्रप्रमुखैर्देवैरुक्तः किल पितामहः। क्रीडनीयकमिच्छामः दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्।
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु। तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्।
भरत-नाट्यशास्त्र १.११-१२।

२. ऋग्वेद १.१६५, ३.१३, १०.५६, १०. १०।

३. अधि पेशांसि वपते नृतूरिवायोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्युषा आवर्तय। ऋग्वेद १. ९२:४।

ने वैदिक संवादों से इसका उदय सिद्ध किया ।[1] रूपकों की उत्पत्ति पर धार्मिक अनुष्ठानों, पुत्तलिका-नृत्य, छाया-नाटक, ग्रीक प्रभाव, शक प्रभाव आदि तत्वों का प्रभाव भी विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किया गया । जागीरदार ने नाट्य-उत्पत्ति पर अनार्य प्रभाव को स्वीकार करते हुये सूतों और कुशीलवों के योग से उनकी उत्पत्ति सिद्ध की ।[2] प्रोफेसर इन्दुशेखर ने संस्कृत नाट्यों के विकास को आर्य और अनार्य जातियों का संयुक्त प्रयास सिद्ध किया है ।[3]

संस्कृत में नाट्य-रचना के प्रारम्भ का संकेत रामायण,[4] महाभारत,[5] पाणिनीय अष्टाध्यायी[6] और महाभाष्य[7] के काल से मिलता है, परन्तु इस युग के नाटक उपलब्ध नहीं हैं। प्राचीनतम नाटक भास-प्रणीत उपलब्ध हुये हैं । इनकी रचना ई० पू० पंचम-चतुर्थ शताब्दी की है ।[8] शूद्रक का मृच्छकटिक और कालिदास के नाटक भी प्रायशः ईसा पूर्व के स्वीकार किये जाते हैं । ये नाटक संस्कृत रूपकों की विकसित परम्परा की सूचना देते हैं । सम्भवतः अश्वघोष के रूपक भी इसी युग के हैं ।

कालिदास के पश्चात् नाटककारों में श्रीहर्ष, विशाखदत्त, भवभूति, भट्ट-नारायण, दिङ्नाग आदि प्रसिद्ध हैं । इनके पश्चात् संस्कृत नाट्य-कला का ह्रासयुग आरम्भ होता है । इस युग के कवियों में मुरारि और राजशेखर सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने अनर्घराघव, बालरामायण तथा बालभारत लिखकर अभिनेयत्व की अपेक्षा पाठ्य को अधिक महत्व दिया ।

तदनन्तर संस्कृत नाट्य-परम्परा का पूर्ण ह्रास हुआ । बारहवीं शताब्दी से लेकर भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना तक का समय नाट्य-कला की दृष्टि से

---

१. कीथ कृत 'संस्कृत ड्रामा' पृ० ५७ ।
२. आर० वी० जागीरदार कृत 'ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर' पृ० ४१ ।
३. Thus Indian drama appears to have an independent origin and growth as an organism that was continually in the process of evolution till the days of its decline. At best it could, perhaps, be the joint work of the Aryans and non-Aryans, who in subsequent years jointly subscribed to the evolution of Indian culture.
संस्कृत ड्रामा—इट्स ओरिजिन एण्ड डिक्लाइन । इन्दुशेखरकृत । पृ० ५६-६०
४. 'बाल्मीकि-रामायण' २.६७.१५ ।
५. 'महाभारत' हरिवंश पर्व अ० ६१-६७ ।
६. पाराशर्यशिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः 'अष्टाध्यायी' ४.३. ११० ।
७. 'महाभाष्य' ३.१.२६ ।
८. स० डी० पुसलकर कृत 'भास' पृ० २०७

बंजर काल कहा जा सकता है। इस समय में संस्कृत में ही नहीं, अन्य भारतीय भाषाओं में भी बहुत कम नाटकों की रचना हुई। इस बंजरता के अनेक कारण विद्वानों ने बताये हैं।[1]

१९ वीं शताब्दी में नाट्य-परम्परा का एक रूप से पुनर्जन्म हुआ। इस युग में हिन्दू जन में राष्ट्रीय भावनाओं के जागरण ने साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया। भारतीय भाषाओं में सामाजिक आलोचना, ऐतिहासिक पुनर्जागरण और धार्मिक पुनरुत्थान को अभिव्यक्त करने वाली नाटकीय रचनायें लिखी गईं। इस प्रवृत्ति का प्रभाव संस्कृत-रचनाओं पर पड़ना भी स्वाभाविक था। इस युग के नाटकों में तीन प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं। कुछ नाटककारों ने सर्वथा प्राचीन पद्धति के अनुसार नाटकीय रचनायें लिखीं, कुछ ने पौराणिक विषयों को आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया और कुछ ने ऐतिहासिक चरितों के आधार पर नाटकों की रचना की। इन का विस्तृत विवरण डा० राघवन् ने दिया है।[2] व्यास जी द्वितीय वर्ग के नाटककार हैं, जिन्होंने पौराणिक विषय को आधुनिक रूप देकर रूपक की रचना की।

२. संस्कृत रूपकों के विभिन्न प्रकार

संस्कृत साहित्य में काव्य को दृश्य और श्रव्य दो भागों में विभक्त किया गया है। इनमें दृश्य काव्य अभिनेय होता है।[3] आलंकारिकों ने दृश्य काव्य को तीन नाम दिये—नाट्य, रूप और रूपक।[4] रूपक के भेदों का सर्वप्रथम निरूपण भरत के नाट्यशास्त्र में हुआ।[5] भरत ने नाटक, प्रकरण, व्यायोग, भाण, समवकार, वीथी, प्रहसन, डिम और ईहामृग ये दस भेद गिनाये।[6] इनके साथ उसने नाटिका का भी लक्षण दिया।[7] भरत के पश्चात् काव्यलक्षण-विधायकों ने उनके ही आधार पर रूपकों के भेदों को अधिक विस्तृत रूप दिया।[8] नाट्यदर्पण

---

१. विशेष अध्ययन के लिये निम्न स्थल देखने चाहियें—
(क) कीथ कृत 'संस्कृत ड्रामा' पृ० २४२-२४३।
(ख) इन्दुशेखर कृत 'संस्कृत ड्रामा—इट्स ओरिजिन एण्ड डिक्लाइन'—इन्ट्रोडक्शन पृ० XXV।
(ग) डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'भारतीय नाट्य साहित्य' में डा० भोला शंकर व्यास का लेख।

२. 'आज का भारतीय साहित्य'—साहित्य एकेडेमी १९५८ डा० राघवन् का संस्कृत रचनाओं पर लेख।

३. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। दृश्यं तत्राभिनेयम्। 'साहित्यदर्पण' ६.१।

४. अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपकं तत्समारोपात्। दशरूपक १७।

५. वर्तयिष्याम्यहं विप्राः दशरूपविकल्पनम्। 'भरतनाट्यशास्त्र' १८. १।

६. नाटकं सप्रकरणमंकं व्यायोग एव च। भाणः समवकारश्च वीथी प्रहसनं डिमः
ईहामृगश्च विज्ञेयो दशमो नाट्यलक्षणे। 'भरतनाट्यशास्त्र' १८. २-३।

७. 'भरतनाट्यशास्त्र' १८. ५९-६०।

८. विस्तृत विवरण के लिये देखें—मनकड कृत 'टाईप्स आफ संस्कृत ड्रामा' अध्याय ३, ५ और ६

के रचयिता रामचन्द्र और गुणचन्द्र ने १२ रूपकों के लक्षण लिखे। इनमें ११ भेद भरत के ही सदृश हैं तथा १२वां भेद प्रकरणी अतिरिक्त है।[1] उन के अतिरिक्त "अन्यान्यपि च रूपकाणि दृश्यन्ते" कह कर सट्टक, श्रीगदित, दुर्मिलिता, प्रस्थान, अपसार, गोष्ठी, हल्लीसक, नर्तनक, शम्या, लास्य, छलित, प्रेक्षणक, रासक, पिण्डी, श्रृंखला, मेद्यक, नाट्यरासक, काव्य, शुद्ध, संकीर्ण, चित्र, भाणक, और भाणिका ये २३ भेद कहे।[2] साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रूपकों के दो विभाग किये हैं—रूपक और उपरूपक। उन्होंने रूपकों के दस और उपरूपकों के १८ भेद गिनाये।[3] यदि नाट्य सम्बन्धी सभी उपरूपकों के नामों की गणना की जावे तो इनकी संख्या २६ है।[4]

३. व्यास जी के रूपक

व्यास जी ने संस्कृत में तीन रूपकों की रचना की। 'बिहारी-बिहार' पुस्तक के अन्तिम भाग में उनके ग्रन्थों का विवरण है, जिससे उनके एक ही संस्कृत रूपक 'सामवतम्' का बोध होता है। आपने 'सामवतम्' के उपोद्घात में स्वरचित तीन संस्कृत रूपकों का उल्लेख किया है—

धर्माधर्मकलकलम्, मित्रालापः और सामवतम्।

व्यास जी के नाटकों का एक संग्रह 'मन की उमंग' है। इसमें पांच रूपक हिन्दी और दो रूपक संस्कृत में हैं। संस्कृत रूपकों के नाम 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' हैं। ये रूपक धर्मसम्बन्धी उत्सवों पर अभिनय के लिये लिखे गये थे और इनका मुजफ्फरपुर की धर्मसभा में अभिनय हुआ था।[5]

व्यास जी ने 'धर्माधर्मकलकम्' और 'मित्रालापः के रूप में एक नवीन रचनाशैली संस्कृत नाट्य-परम्परा में जोड़ी। 'सामवतम्' के रूप में आपने प्राचीन पौराणिक कथा को नवीन रूप में उपस्थित किया। इसका वातावरण यद्यपि प्राचीन

---

१. 'नाट्यदर्पण' १. ३-४।
२. 'नाट्यदर्पण' चतुर्थ विवेक।
३. नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिभाः।
ईहामृगांकवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।
नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेंखणं रासकं तथा।
संल्लापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिका चेति।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः। साहित्यदर्पण' ६. ३-६।
४. दशरथ ओझा कृत 'नाट्यसमीक्षा' (प्रथम संस्करण) पृ० २७।
५. 'मन की उमंग' भूमिका।

काल का है, तथापि इसमें आधुनिक सामाजिक समस्याओं को भी हल करने का प्रयत्न है। इस नाटक की रचना में नाटकीय गति तथा अभिनेयता का पूरा ध्यान रखा गया है।

४. व्यास जी के रूपकों के प्रकार

इस प्रकरण में व्यास जी के रूपक किस श्रेणी में रखे जा सकते हैं—इस पर विचार करना भी उपयुक्त होगा। व्यास जी का 'सामवतम्' नामक रूपक नाटक है। व्यास जी ने स्वयं इसे नाटक नाम दिया। नाट्य ग्रन्थों में नाटक के लक्षण इस प्रकार हैं—

प्रख्यातवस्तु विषयं प्रख्यातोदात्तनायकं चैव।
राजर्षिवंश्यचरितं तथैव दिव्याश्रयोपेतम्॥
नानाविभूतिभियु‍तमृद्धिविलासादिभिर्गुणैश्च।
अंकप्रवेशकाढ्यं भवति हि तन्नाटकं नाम॥[१]

'सामवतम्' में नाटक के सामान्य लक्षण हैं। नाटक में कथा का मुख्य विषय सामवान् का स्त्री के रूप में परिवर्तित होकर सुमेधा से विवाह करना है। यह कथा 'स्कन्दपुराण' के ब्रह्मोत्तर-खण्ड के "सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णनम्" की पुराण-प्रसिद्ध कथा के आधार पर लिखी गई है।[२] प्रख्यात कथा होने के कारण नायक भी प्रख्यात है। नाटक का नायक सुमेधा उदात्त है। उदात्त शब्द की व्याख्या करते हुये अभिनव गुप्त ने लिखा है—"तेन धीरललितधीरप्रशान्तधीरोद्धतधीरोदात्ताः चत्वारोऽपि गृह्यन्ते[३]"। सुमेधा धीरप्रशान्त नायक है। नायक राजर्षिवंश्य होना चाहिये। यहां राजर्षि शब्द की व्याख्या अभिनवगुप्त ने "राजानः ऋषय इव इति उपमित समासः" इस प्रकार की है। यह व्युत्पत्ति राजानश्च ऋषयश्च इस प्रकार द्वन्द्व समास से भी हो सकती और उत्तम वंश का ऋषि भी नाटक का नायक हो सकता है। सुमेधा श्रेष्ठ ऋषि वेदमित्र का पुत्र है। नाटक में अनेक प्रकार की राजकीय तथा तपोवन की समृद्धि का वर्णन है। 'सामवतम्' अंकों तथा प्रवेशकों से सम्पन्न है। नाटक में ५-१० अंक होने चाहिये।[४] 'सामवतम्' में ६ अंक हैं। इस प्रकार नाटक के सामान्य लक्षणों से युक्त होने के कारण 'सामवतम्' को नाटक की श्रेणी में रखा जा सकता है।

---

१. 'भरतनाट्यशास्त्र' १८. १०-११।

२. 'सामवतम्' उपोद्धात पृ० ८।

३. 'भरतनाट्यशास्त्र'-अभिनवभारती टीका—रामकृष्ण कवि द्वारा संपादित (ओरियंटल इन्स्टीट्यूट १९५६) वाल्यूम २ पृ० ४११।

४. वही पृ० ४१२।

'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' दोनों एक एक संवाद के छोटे छोटे रूपक हैं। कुछ पद्यों से युक्त ये संवाद प्रधानतः गद्य में हैं। संस्कृत के नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में कही गई कोई नाट्यविधा इस प्रकार की नहीं है, जिसमें इन रूपकों का समावेश किया जा सके। वस्तुतः व्यास जी की इन दोनों कृतियों को शास्त्रीय दृष्टिकोण से रूपक नाम देना युक्तियुक्त भी नहीं है। कथावस्तु, पात्र, नायक आदि किसी दृष्टि से भी इनको रूपक नहीं कहा जा सकता। १९ वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में होने वाले सामाजिक सुधारों के आन्दोलन के विरोध में आपकी छटपटाहट के और पुरानी रूढियों के सुरक्षित रखने की उमंग के रूप में ये रचनायें आपकी लेखनी से निःसृत हुईं। इन को आपने 'मन की उमंग' पुस्तक में संगृहीत कर दिया। इन दोनों रचनाओं को यदि संवाद मात्र कह दिया जावे तो भी अनुपयुक्त न होगा।

५. व्यास जी के रूपकों के अध्ययन की रूप-रेखा

दशरूपककार ने रूपक के तीन तत्वों की गणना की है— वस्तु, नेता और रस।[1] किन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिये कि रूपक में अन्य तत्व नहीं होते। वस्तुतः इन तीन तत्वों को रूपकों के भेदक तत्व समझना चाहिये। रूपकों में कुछ सामान्य तत्व भी होते हैं। रूपक का सामान्य लक्षण— अवस्था का अनुकरण करना, दृश्य-योजना और पात्रों पर अभिनेताओं का आरोप करना है।[2] अर्थात् अभिनय रूपक का सामान्य तत्व है। भरत ने भी कहा है कि अभिनय से युक्त होने के कारण यह नाट्य कहलाता है।[3] भरत ने रूपक के चार अंगों का निर्देश किया है— पाठ्य, गीत, अभिनय और रस। रूपकों में वृत्तियों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है और इनको नाट्य की माता कहा जाता है।[4] ये वृत्तियां नायक आदि के क्रिया-कलाप से युक्त होती हैं। वाणी, मन और शरीर की चेष्टायें भारती, सात्वती, कैशिकी और आरभटी वृत्तियां हैं। चेष्टारूप होने से इन वृत्तियों का अन्तर्भाव अभिनय में किया जा सकता है। भरत ने भी वृत्तियों को अभिनयात्मक कहा।[5]

पाश्चात्य विचारकों के अनुसार नाटक के ६ तत्व होते हैं– कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल, रचनाशैली और उद्देश्य। संस्कृत और पाश्चात्य विचार-

---

१. 'दशरूपक' १. ११।
२. अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपकं तत्समारोपात्। 'दशरूपक' १.७।
३. सांगाभिनयसंयुक्तं नाट्यमित्यभिधीयते। 'भरतनाट्यशास्त्र' २१.१२३।
४. चतस्रो वृत्तयो ह्येता सर्वनाट्यस्य मातृकाः। 'साहित्यदर्पण' ६.१२३।
५. ऋषिभिस्तादृशी वृत्तिः कृता वाक्यांगसम्भवा।
नाट्यवेदसमुत्पन्ना वागंगाभिनयात्मिका। 'भरतनाट्यशास्त्र' २२.२२।

धारा के अनुसार नाटकीय तत्वों में कुछ शब्दों और प्रवृत्ति का भेद होने पर भी इनका समन्वयात्मक रूप बनाया जा सकता है। पाश्चात्य - कथानक, संवाद, देशकाल और रचना शैली का समावेश स्थूल रूप से संस्कृत नाट्यशास्त्र की वस्तु में किया जा सकता है। भारतीय नाट्यसाहित्य अनेक उद्देश्यों को लक्ष्य में रखते हुये भी आदर्शवादी दृष्टिकोण को लेकर रसाभिव्यक्ति को प्रश्रय देता है और लोकोत्तर आनन्द को प्रतिष्ठित करता है। पाश्चात्य दृष्टिकोण में नाटकों में यथार्थवादी पद्धति को लेकर किसी लोकभावना को उद्‌बुद्ध किया जाता है। इस प्रकार उद्देश्यों में कुछ भेद के होने पर भी पाश्चात्य उद्देश्य का अन्तर्भाव रसाभिव्यक्ति में किया जा सकता है। भारतीय और पाश्चात्य पद्धति के भेद को स्वीकार करते हुये भी दोनों का समन्वय करके नाटकीय रचनाओं का अनुशीलन करना अधिक उपयुक्त है। अतः व्यास जी के नाट्यसाहित्य का अध्ययन निम्न पद्धति से किया जा रहा है—

१. कथावस्तु, २. चरित्रचित्रण, ३. संवाद ४. देशकाल, ५. रचनाशैली, ६. रसाभिव्यक्ति और ७. अभिनय।

इस अध्याय में कथावस्तु और चरित्रचित्रण की विवेचना है और अगले अध्यायों में शेष तत्वों पर विचार किया गया है।

कथावस्तु

व्यास जी के नाट्यसाहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन करने के लिये सर्वप्रथम उसके कथानक पर विचार होना चाहिये। 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' में कथानक का अभाव होने के कारण उनकी चर्चा यहां अपेक्षित नहीं है, अतः इस प्रकरण में 'सामवतम्' की ही कथावस्तु का विवेचन किया गया है। इसमें कथानक, कथानक का स्रोत, कथानक का प्रकार (आधिकारिक तथा प्रासंगिक कथायें आदि), अर्थप्रकृतियां, कार्यावस्थायें, सन्धियां, वस्तु संगठन सौष्ठव और सामवतम् नामकरण का औचित्य इन तत्वों पर विचार है। कथावस्तु के शास्त्रीय अध्ययन के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन 'शिवराजविजय' के अध्ययन में किया जा चुका है, अतः इस स्थल पर उसका विस्तार अनावश्यक है।

१. कथानक

नाटक के प्रारम्भ में कवि ने एक लम्बी प्रस्तावना द्वारा मिथिला देश और मिथिलानरेश का विस्तार से तथा नाट्य और कवि का संक्षेप से परिचय दिया है। प्रस्तावना के अन्त में नटी द्वारा कहे गये वाक्य को लेकर नाटक का आरम्भ किया गया है।

सारस्वत और वेदमित्र नाम के ऋषि अपने पुत्रों—सामवान् और सुमेधा को विवाह के लिये धन प्राप्ति करने हेतु विदर्भराज के पास भेजते हैं। वन की प्राकृतिक

शोभा का अवलोकन करते हुये सामवान् और सुमेधा ऋषियों के आश्रम के समीप संगीत की ध्वनि सुनते हैं। समीप के आश्रम में स्थित दुर्वासा मित्र-पुत्र सामवान् को पुकारते हैं। किन्तु वह उनको नहीं सुन पाता। क्रोधित दुर्वासा सामवान् को स्त्री रूप हो जाने का शाप देते हैं। सामवान् को इस शाप का ज्ञान नहीं होता।

विदर्भनगर में होलिकोत्सव का प्रबन्ध करता हुआ अमात्य सामवान् और सुमेधा को देखता है। वह होली खेलने वालों को सीमा में रहने के लिये कहता है। राजा के विदूषक वसन्तक को मुनिपुत्रों को रंगने के लिये आते देख कर वह उसको रोकने के लिये राजभट को साथ लेकर उस ओर जाता है। मना करने पर भी सामवान् और सुमेधा को रंगने के लिये तत्पर विदूषक को राजभट बांध कर ले जाता है। राजपुरोहित देवशर्मा घबराये हुये सामवान् और सुमेधा को अपने साथ ले जाता है।

विदर्भ नगर के राजा के मित्र चित्रांगद की धर्मपत्नी सीमन्तिनी ने सोमवार को भगवान् कृष्ण का दोलोत्सव करने एवं तदनन्तर शिवपूजन करके ब्राह्मण-दम्पतियों को भोजन और दक्षिणा देने का व्रत लिया है। देवशर्मा दोनों मुनिपुत्रों को राजसभा में ले जाता है। विदूषक और मद्य से मत्त राजा मुनिपुत्रों का उपहास करते हैं। मुनिपुत्र अपने आगमन का प्रयोजन बताते हैं। मुनिपुत्रों से चिढे हुये विदूषक की सलाह से राजा आदेश देता है—महाराजा चित्रांगद की रानी सीमन्तिनी द्वारा सोमवार के दिन ब्राह्मणों को दिये जाने वाले निमन्त्रण में सुमेधा पति का तथा सामवान् उसकी पत्नी का रूप धारण करके जावें और बहुत सा पारितोषिक प्राप्त करके अपने आश्रम में लौट जावें। निरुपाय मुनि-पुत्र राजाज्ञा मानने के लिये बाधित होते हैं।

राजा के पाप के कारण विदर्भ राज्य में उपद्रव होते हैं। ग्राम लूटे और जला दिये गये हैं। एक ब्रह्मचारी आकर बताते हैं— स्त्री-वेश को धारण किये हुये सामवान् की सीमन्तिनी ने मातृभाव से पूजा की। सीमन्तिनी के भक्तिभाव के प्रभाव से सामवान् सचमुच ही स्त्रीत्व को प्राप्त हो गये। दोनों भोजनादि करके जंगल के मार्ग से आश्रम को लौट रहे हैं। स्त्री रूप धारण किये हुये सामवान् को साथ लेकर सुमेधा वन-मार्ग से अपने आश्रम की ओर जाता है। सामवान्, जो अब सामवती है, काम से पीड़ित होकर सुमेधा से प्रणय की याचना करती है। सुमेधा को इससे आश्चर्य होता है। सामवती अपने स्त्री-भाव को सुमेधा से कहती है और उसके अविश्वास करने पर अपने अंगों को दिखाती है। किसी प्रकार सुमेधा सामवती को समझा कर शीघ्रता से आश्रम की ओर जाता है। पुत्र के स्त्री रूप होने के दुःखद समाचार को जान कर सारस्वत अत्यधिक क्रोधित होते हैं। वे अगले दिन ही राजा को इस धृष्टता का दण्ड देने का संकल्प करते हैं।

रात्रि में देखे गये दुःस्वप्नों से अत्यन्त व्याकुल हुआ राजा पुरोहित को बुलाता है। पुरोहित क्रुद्ध सारस्वत मुनि के आने का समाचार देते हैं। सारस्वत के अन्दर प्रवेश करने पर राजा उनके चरणों पर गिर कर क्षमा प्रार्थना करते हैं। क्रोधित मुनि राजा की इस प्रार्थना को स्वीकार कर लेते है कि वह सामवती को पुनः पुरुष रूप में परिवर्तित करने के लिये देवी की आराधना करेगा।

राजा की भक्ति से प्रसन्न देवी जगदम्बिका साक्षात् रूप से प्रकट होती हैं। वे निष्कपट भक्त सीमन्तिनी की चेष्टा के विरुद्ध कार्य करने में असमर्थता प्रकट करती हैं। राजा की प्रार्थना पर वे सारस्वत को एक पुत्र का वरदान देकर सन्तुष्ट करती हैं तथा सामवती का सुमेधा के साथ विवाह करने का आदेश देकर अन्तर्धान हो जाती हैं। राजा सारस्वत के पैरों पर गिर कर क्षमा याचना करते हैं और विवाह के लिये सामग्री भेजने का वचन देते हैं। सारस्वत भी राजा को आशीर्वाद देते हुये अपने आश्रम को चले जाते हैं। आश्रम आकर वे सामवती का सुमेधा के साथ विवाह करते हैं और उचित दहेज देकर पुत्री को पतिगृह के लिये विदा कर देते हैं।

२. कथानक का स्रोत

नाटक की कथावस्तु के स्रोत के विषय में विवाद नहीं है। व्यास जी ने नाटक के उपोद्घात में स्वयं कथावस्तु के स्रोत का संकेत किया है।[1] 'स्कन्द पुराण' के ब्रह्मोत्तर-खण्ड की एक कथा को नाटक के कथानक का आधार बनाया गया है। संभवतः व्यास जी ब्रह्मोत्तरखण्ड के अध्याय का संकेत करने में भूल कर गये हैं। आपने नाटक की कथा का आधार "सोमव्रतप्रकरण" लिखा है। ब्रह्मोत्तर-खण्ड का अष्टम अध्याय "सोमवारव्रतवर्णने सीमन्तिनीकथावर्णनम्" है। इस कथा के अनुसार सीमन्तिनी का पति नदी में डूब जाता है, परन्तु सोमवार का व्रत करने से वह उसको पुनः प्राप्त करती है। नवम अध्याय "सीमन्तिन्या प्रभाववर्णनम्" है, जो 'सामवतम्' के कथानक का स्रोत है। अतः कथावस्तु के स्रोत के लिये व्यास जी को "सोमव्रतप्रकरणे" के स्थान पर "सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णने" लिखना चाहिये था। 'स्कन्दपुराण' की इस कथा को नाटकीय रूप देकर व्यास जी ने अनेक कल्पनाओं को भी संजोया है। आपने कालिदास आदि कवियों की कृतियों से भी

१: स्कन्दपुराणीयब्रह्मोत्तारखण्डे सोमव्रतप्रकरणे सीमन्तिन्या पार्वतीधिया पूजितः पुरुषोऽपि सामवांस्तद्भक्तिमहिम्ना स्त्रीत्वं लेभे इति सक्षिप्ताऽस्त्याख्यायिका। सैव समूलेति पवित्रेति मनोहरेति अद्भुतेति शिक्षाभिक्षादायिनीति भक्तिपर्यवसायिनीति च मया तामेवाऽऽश्रित्य बहूनि सहायकानि रसोज्जृम्भकाणि कौतुकोत्पादकानि कार्यनिर्वहणक्षमाणि बिन्दुप्रकरीपताकास्थानकादिसंघटकानि पात्राणि प्रकल्प्य विषयममुमंकषट्के विभज्य नाटकमिदं घटितम्।

'सामव्रतम्' उपोद्घात पृ० ८-९।

कुछ घटनाओं के संकेत लिये हैं, जिनका उल्लेख यथावसर है। स्कन्दपुराण के ब्रह्मोत्तरखण्ड के नवम अध्याय की कथा संक्षेप से इस प्रकार है—

विदर्भदेश में वेदमित्र और सारस्वत दो ब्राह्मण थे। इनके क्रमशः सुमेधा और सामवान् नाम के पुत्र थे। विद्याध्ययन करने के अनन्तर बालकों के १६ वर्ष की आयु का और विवाह योग्य हो जाने पर दोनों ब्राह्मणों ने पुत्रों को विदर्भनगर जा कर राजा से धन प्राप्त करने के लिये कहा। ब्राह्मण-पुत्रों ने विदर्भ-नरेश को अपने गुणों से प्रसन्न करके धन की प्रार्थना की। इस पर विदर्भराज ने हंस कर कहा—

निषध-देश के राजा की सीमन्तिनी नाम की पतिव्रता रानी प्रति सोमवार को अम्बिका सहित महादेव की पूजा करती है और वेदज्ञ ब्राह्मणों को सपत्नीक निमन्त्रण देकर पूजा करके बहुत सा धन देती है। तुम दोनों ब्राह्मण दम्पति का रूप धारण करके सीमन्तिनी के घर जाकर बहुत सा धन प्राप्त करके मेरे पास आओ।

राजा की आज्ञा से डर कर ब्राह्मणकुमारों को इस आदेश का पालन करना पड़ा सीमन्तिनी ने इन ब्राह्मण-पुत्रों को कृत्रिम दम्पती जानकर भी कुछ हंस कर गौरी-परमेश्वर माना और सत्कार करके बहुत सा सामान एवं धन देकर विदा किया।

पार्वती-बुद्धि से पूजित होने के कारण सीमन्तिनी के प्रभाव से सामवान् अपने पुरुषत्व को भूल कर तथा स्त्रीरूप होकर मित्र पर आसक्त हो गया। वह सुमेधा से रति की याचना करने लगा। सुमेधा मित्र के इस कथन को सुन कर पहले तो विस्मित हुआ किन्तु सुन्दर स्त्री चिह्नों को देख कर कुछ विचलित होने लगा। किसी प्रकार अपने को नियन्त्रित करके वह सामवती को समझा कर घर लाया और सारी घटना कही। इस घटना को सुनकर दोनों ब्राह्मण क्रोध और शोक से विह्वल होकर पुत्रों के साथ विदर्भराज के पास गये तथा सारस्वत ने राजा से अपने पुत्र के कन्या रूप में परिवर्तित होने और सन्तति नष्ट होने की बात कही।

इस कथन को सुनकर राजा सीमन्तिनी के प्रभाव से परम विस्मित हुआ। ऋषियों की सलाह से वह सबको साथ लेकर अम्बिका के मन्दिर में पहुँचा और भोजन छोड़ कर तीन दिन तक देवी का ध्यान करता रहा। भक्ति से प्रसन्न होकर देवी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये और कहा—"वह भक्तों के किये हुये को अन्यथा नहीं कर सकती।" राजा द्वारा सारस्वत को सन्तुष्ट करने की प्रार्थना करने पर देवी ने वरदान दिया कि उनकी कृपा से सारस्वत को दूसरा पुत्र होगा और यह सामवती सुमेधा की पत्नी होगी। देवी के अन्तर्धान होने पर सब अपने अपने स्थानों को चले गये। सारस्वत ने देवी की कृपा से पहले से भी उत्तम पुत्र प्राप्त किया और सामवती-सुमेधा दम्पति होकर चिरकाल तक सुखोपभोग करते रहे।

'स्कन्दपुराण' की इस कथा को व्यास जी ने नाटक के उपयुक्त नान्दी, प्रस्तावना, अर्थप्रकृति, कार्यावस्था, सन्धि आदि से युक्त करके और नवीन पात्रों तथा घटनाओं की कल्पना करके रसनिष्ठ नाटक के रूप में परिणत किया। मूल-कथानक के रूप को यथासम्भव सुरक्षित रखते हुये आपने कुछ परिवर्तन भी किये। 'स्कन्द-पुराण' की कथा और 'सामवतम्' के कथानक में निम्न अन्तर हैं—

१. कथा में नाटकीय सौन्दर्य उत्पन्न करने और कथा के संचालन के लिये निम्न पात्रों की और कल्पना है—

बन्धुजीव, कलि, दुर्वासा, जटिल(बधिर ब्राह्मण), राजभट, अमात्य, वसन्तक, देवशर्मा-राजपुरोहित, सीमन्तिनी का उद्यानरक्षक और पुरोहित, भूतादि, भिक्षु, ब्रह्मचारी, धीवर, प्रतीहार, मदालसा, इन्दुवदना, नर्तकी, मालतिका और मधुरवचना।

२. पात्रों को अधिक सशक्त एवं सामर्थ्यशाली चित्रित किया है। स्कन्दपुराण के सारस्वत और वेदमित्र, जो कि सामान्य एवं विनयशील ब्राह्मण थे, 'सामवतम्' में अधिक तपोधनी, शक्तिसम्पन्न, क्रोधी एवं कुछ कर सकने की सामर्थ्य रखने वाले हैं। 'स्कन्दपुराण' का विदर्भराज 'सामवतम्' में अधिक उच्छृंखल किन्तु साथ ही अधिक निर्बल और ऋषियों से डरने वाला है।

३. नाटकीय सौन्दर्य एवं सशक्ता के लिये अनेक घटनाओं और वर्णनों की कल्पना है— यथा, सामवान् और सुमेधा के प्रस्थान के समय मांगलिक कृत्य, यज्ञ-धूम से अन्धे कलि द्वारा ऋषिपुत्रों के प्रति कोप और राजा की बुद्धि का भ्रष्ट करना, अप्सराओं का पृथ्वी पर अवतीर्ण होकर गायन करना, दुर्वासा का शाप, विदर्भनगर में होलिकोत्सव, ऋषिपुत्रों द्वारा नगरपरिभ्रमण एवं सौन्दर्य का अवलोकन, राजसभा का संगीत-नृत्य, ग्रामों को लूटा जाना, ब्रह्मचारी की अलौकिक शक्तियां, वन की मनोहारी सुषमा, सारस्वत का राजा के प्रति प्रचण्ड कोप, देवी की स्तुति, राजा द्वारा ऋषियों से क्षमा प्रार्थना, सामवती और सुमेधा की विरहावस्थायें वैवाहिक विधि आदि के वर्णन कवि ने प्रस्तुत किये हैं।

४. मूल कथानक में ब्राह्मणों और तपस्वियों की शक्ति एवं प्रभाव का विशेष वर्णन नहीं है, किन्तु 'सामवतम्' में कवि ने इस तत्व को बहुत अधिक महत्व दिया है।

५. मूल कथानक में 'सामवान्' का लिंग परिवर्तन होने का एक मात्र कारण सीमन्तिनी का प्रभाव है, किन्तु 'सामवतम्' में कवि ने अनेक अन्य कारण भी दिये है—पूर्वजन्मकृत कर्म[1], दुर्वासा का श्राप[2], कलि का कोप[3] आदि।

१: सामवतम् पृ० १६४। २: सामवतम् पृ० ४७।
३. ,, ,, पृ० ३२।

६. मूल कथा में राजा की बुद्धि भ्रष्ट होने का कोई विशेष कारण नहीं दिया गया, किन्तु 'सामवतम्' में कवि ने इसके लिये अनेक कारण प्रस्तुत कर राजा के दोष को कम करने का प्रयत्न किया है। कलि द्वारा वसन्तोत्सव में राजा की बुद्धि का भ्रष्ट करना, सीमन्तिनी के आवास से निकाले गये भूतप्रेतों का राजसभा में आना, विदूषक की प्रेरणा राजा की बुद्धि भ्रष्ट होने के कारण हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि व्यास जी ने 'स्कन्दपुराण' के ब्रह्मोत्तर-खण्ड के नवम अध्याय की "सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णनम्" कथा को अपने नाटक के कथानक का आधार बनाया। आपने अपने आदर्शों के अनुकूल स्वकीय कल्पनाओं के द्वारा इस कथा को परिवर्तित और परिवर्धित करके एक सुन्दर भावपूर्ण नाटक की रचना की।

'सामवतम्' नाटक की कथा का स्रोत मुख्य रूप से यद्यपि ऊपर वर्णन किया गया 'स्कन्दपुराण' के ब्रह्मोत्तरखण्ड का नवम अध्याय है, तथापि उन्होंने कई घटनाओं में दूसरे स्थानों से भी सामग्री ग्रहण की है। नाटक के प्रथम अंक में सामवान् और सुमेधा इन्दुमती और मदालसा की वार्ता को और इनके गान को छिप कर सुनते हैं, दुर्वासा सामवान् को शाप देते हैं और नेपथ्य से हाथी के उपद्रव को सुन कर अप्सरायें घबरा कर चली जाती हैं। इन घटनाओं पर 'अभिज्ञानशा-कुन्तलम्' का प्रभाव है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में दुष्यत शकुन्तला और प्रियम्वदा की वार्ताओं को छिप कर सुनते और देखते है, दुर्वासा शकुन्तला को शाप देते हैं और हाथी के उपद्रव से तीनों सखियां घबरा कर जाने का उपक्रम करती हैं। जिस प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में दुर्वासा का शाप घटनाओं में मोड़ उपस्थित करता हैं उसी प्रकार 'सामवतम्' में दुर्वासा के शाप ने घटना चक्र को मोड़ दिया है। 'सामवतम्' के षष्ठ अंक में नायिका की विरह-वेदना का ज्ञान नायक को सारिका द्वारा होता है। इस घटना पर हर्ष की 'रत्नावली' का प्रभाव है, जहां सारिका द्वारा उदयन को अपने प्रति सागरिका के आकर्षण की प्रतीति हुई है।

इस प्रकार इस नाटक की कथा में व्यास जी ने अन्य स्थानों से सामग्री ग्रहण करके भी मुख्य रूप से 'स्कन्दपुराण' के ब्रह्मोत्तरखण्ड की "सीमन्तिन्याः प्रभाववर्णनम्" कथा को 'सामवतम्' के कथानक का आधार बनाया है।

३. कथानक का प्रकार—

कथावस्तु प्रथम दो प्रकार की होती है— आधिकारिक और प्रासंगिक। 'सामवतम्' नाटक में दोनों प्रकार की कथावस्तु है। सामवती और सुमेधा का कथानक आधिकारिक कथा है तथा उसके साथ हा होलिकोत्सव, नगर-भ्रमण, भिक्षु, अमात्य आदि के कथानक प्रासंगिक कथायें हैं। कथावस्तु पुनः तीन प्रकार की होती है— प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र। कवि ने पुराण-प्रसिद्ध कथा को

प्रस्तुत किया है, इस अंश में नाटक की कथा प्रख्यात है। होलिकोत्सव, नगरभ्रमण भिक्षु, अमात्य और राजसभा आदि की घटनायें कवि की स्वकीय कल्पनायें हैं, इस अंश में यह कथा उत्पाद्य है। नाटक की कथावस्तु में प्रख्यात और उत्पाद्य दोनों का अंश होने से यह कथावस्तु मिश्र है।

कथावस्तु पुनः दिव्य और मर्त्य भेद से दो प्रकार की होती है। इस नाटक में सामवती, सुमेधा, सारस्वत, राजा आदि मर्त्य पात्र होने से और घटनाओं का स्थान पृथिवी-तल होने से नाटक की कथावस्तु मर्त्य है। यद्यपि नाटक में इन्दुवदना, मदालसा और देवी अम्बिका दिव्य पात्र हैं, तथापि इनको फल की प्राप्ति न होने से कथा को मर्त्य ही कहना चाहिये।

४. अर्थप्रकृतियां

कथावस्तु का उपादान बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कार्य ये पांच अर्थप्रकृतियां होती हैं। "सामवतम्" नाटक में इनकी स्थिति इस प्रकार है—

बीज— सुमेधा को सामवती का पत्नी रूप में प्राप्त करना इस नाटक का मुख्य साध्य है और सामवान् को वनिता रूप में परिवर्तित कराना अवान्तर साध्य है। सुमेधा तथा सामवान् को सारस्वत का यह कहना "तुम दोनों का मंगलमय विवाह हो[1]", तदनन्तर बन्धुजीव का यह कहना "क्या दोनों का ही परस्पर विवाह होगा[2]" और "तो एक को किसी प्रकार स्त्री बनाना चाहिये[3]" यह कथावस्तु का बीज है।

बिन्दु— प्रथम अंक में बन की सुषमा और अप्सराओं के सौन्दर्य-संगीत से कथावस्तु के विच्छिन्न होने पर दुर्वासा द्वारा सामवान् को स्त्री रूप में परिणत होने का शाप दिया जाना[4] इस कथावस्तु का बिन्दु है। बिन्दु के लक्षण को स्पष्ट करते हुये 'साहित्यदर्पण' के टीकाकार लिखते हैं, "जल में जिस प्रकार तेल की बूंद फैल जाती है, उसी प्रकार बिन्दु सम्पूर्ण कथा पर फैल जाता है।[5]" दुर्वासा ऋषि के शाप की यही स्थिति है, जिसके परिणाम स्वरूप सामवान् के स्त्री हो जाने से सुमेधा के साथ उसका विवाह सम्पन्न होता है। अतः इस शाप को बिन्दु समझना चाहिये। किन्तु कवि ने पंचम अंक में सामवान् के स्त्री बनने के अन्य अनेक कारणों का उल्लेख करके इस बिन्दु को शिथिल कर दिया है।

---

१. सामवतम् पृ० १.३६।   २. सामवतम् पृ० ३०।
३. ,, ,, ३०।   ४. ,, ,, १.६४।
५. अवान्तरकथाविच्छेदे तत्सन्धानकारी बिन्दुः। जने तैलबिन्दुवत् विस्तारित्वात् बिन्दुरिति व्यपदिश्यते। 'साहित्यदर्पण'-जीवानन्द विद्यासागर कृत टीका (१९३४ ई०) पृ० ४०२।

पताका— द्वितीय अंक से लेकर तीसरे और पांचवें अंक तक की राजा की कथा पताका है। यह मुख्य प्रासंगिक इतिवृत्त है, जो प्रधान कथावस्तु का सहायक है। इसके द्वारा सामवान् स्त्रीत्व को प्राप्त होता है और सामवती का सुमेधा के के साथ विवाह सम्भव होता है। द्वितीय अंक में राजा होली के मद में राजसभा में उपहास में रत है और तीसरे अंक में ऋषिपुत्रों का उपहास करते हुये उन्हें दम्पति रूप में सीमन्तिनी के पूजोत्सव में जाने का आदेश देता है। इस आदेश के कारण सामवान् सामवती बन जाता है। पांचवे अंक में कुपित सारस्वत को प्रसन्न करने के लिये राजा देवी की आराधना करता है। प्रसन्न होकर देवी अम्बिका प्रकट होती हैं। उनके द्वारा दिये गये पुत्र-प्राप्ति-रूप वर से सन्तुष्ट होकर सारस्वत सुमेधा के साथ सामवती के विवाह को स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार प्रधान कथा के साथ दूर तक रहने वाली राजा की कथा पताका है।

प्रकरी— प्रथम अंक में कलि का वृत्तान्त, अप्सराओं का गान और दुर्वासा का आविर्भाव, द्वितीय और तृतीय अंक में होली के वृत्तान्त, चतुर्थ अंक में भिक्षु और ब्रह्मचारी की कथा, पंचम अंक में अमात्य का वृत्तान्त और देवी का आविर्भाव प्रकरी कथायें हैं। ये प्रासंगिक कथायें मुख्य कथावस्तु के एक प्रदेश में स्थित होती हुई उसका उपकार करती हैं। इसलिये इन घटनाओं को प्रकरी कहा जा सकता है।

कार्य— सामवान् का सामवती के रूप में परिवर्तित हो जाना अवान्तर कार्य है, जिसकी सम्पन्नता की सूचना चतुर्थ अंक में दी गई है। नाटक के अन्त में सुमेधा का सामवती के साथ विवाह हो जाता है। दोनों का यह मिलन नाटक का मुख्य कार्य है।

५. कार्यावस्थायें

कार्यावस्थायें पांच प्रकार की होती हैं— आरम्भ, यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति, और फलागम।

आरम्भ— प्रथम अंक में सारस्वत और वेदमित्र अपने वार्तालाप में पुत्रों के युवा हो जाने के कारण उनके विवाह की चिन्ता कर रहे हैं। सामवान् और सुमेधा भी अपने शरीर में यौवन के आविर्भाव का अनुभव करते हैं। उनके हृदय में विवाह की आकांक्षा उत्पन्न होती है। यह आरम्भ की अवस्था है।

यत्न— सारस्वत और वेदमित्र की आज्ञा से विवाह के निमित्त सामवान् और सुमेधा धन की प्राप्ति के लिये विदर्भनगर जाकर राजा से धन की याचना करते हैं। यह यत्न की अवस्था है। इस समय दोनों मुनिपुत्र विवाह रूप फल की प्राप्ति के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

प्राप्त्याशा— चतुर्थ अंक के विष्कम्भक से सामवान् के सामवती रूप में परिवर्तित होने का समाचार ज्ञात होता है, जिससे सामवती-सुमेधा के विवाह की

संभावना होती है। चतुर्थ अंक में सामवती की प्रणय-प्रार्थनाओं से द्रवित सुमेधा उससे विवाह करने का विचार करता है। वह पिता द्वारा प्रदत्त सामवती को स्वीकार कर सकता है, अतः विवाह की सम्भावना उत्पन्न होती है। किन्तु इसमें विघ्न भी हो सकते हैं— हो सकता है कि सामवती के पिता विवाह करने के लिये सहमत न हों अथवा सामवती पुनः पुरुष-रूप में परिवर्तित हो जावे। इस प्रकार इस अवस्था को प्राप्त्याशा कहा जा सकता है।

नियताप्ति— पंचम अंक में क्रोधित सारस्वत को शान्त करने के लिये राजा भगवती की आराधना करते हैं। भगवती अम्बिका सामवती को पुनः पुरुष रूप में परिवर्तित करने में असमर्थता प्रकट करके सामवती का विवाह सुमेधा से करने का आदेश देती है। इस आदेश को सारस्वत स्वीकार कर लेते हैं। राजा भी विवाह संस्कार के लिये सामग्री भेजने का प्रबन्ध करते हैं। सामवती-सुमेधा का विवाह निश्चित हो जाने से और इसमें किसी विघ्न की सम्भावना न होने से यह नियताप्ति की अवस्था है।

फलागम— छटे अंक में नैपथ्य से आने वाली ध्वनियों से सामवती-सुमेधा के विवाह की सूचना मिलती है। तदनन्तर वे दोनों परिजनों के साथ रंगमंच पर उपस्थित होते हैं। अब सारस्वत ब्राह्मणों को धन आदि दान करके अपनी कन्या को वर के साथ विदा कर देते हैं। यह अवस्था फलागम की है।

६. सन्धियां

सन्धियां पांच प्रकार की होती हैं— मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श और निर्वहण।

मुख-सन्धि— बीज और आरम्भ के योग से मुख-सन्धि होती है। यह प्रथम अंक में सारस्वत और वेदमित्र द्वारा अपने पुत्रों के विवाह करने की चिन्ता करने से प्रारम्भ होकर सारस्वत के निम्न कथन—

> तद् यज्ञभूमिमपि प्रदक्षिणीकृत्य गम्यताम्। सैषा यज्ञभूमिः, याम्-
> तिलाज्यप्राज्यगन्धेन घनवत्संप्रसारिणा।
> प्रवेष्टुं नैव शक्नोति धूमेनान्धीकृतः कलिः॥ [1]

और बन्धुजीव के इस कथन पर "अये जणदत्त लड्डुवं वि पडिक्किदम्" पर समाप्त होती है। यहां सामवान् और सुमेधा के विवाह रूप फल का बीज आरोपित कर दिया गया है। बन्धुजीव द्वारा विवाह के लड्डुओं के भक्षण की कामना ने इस बीजारोपण को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है।

---

१. सामवतम् १.४२।

प्रतिमुख-सन्धि— प्रतिमुख-सन्धि का आरम्भ प्रथम अंक में सामवान् और सुमेधा के नगर-गमन से होता है। यहाँ से लेकर राजा से भेंट होने तक प्रतिमुख-सन्धि है। प्रतिमुख-सन्धि बिन्दु और यत्न के योग से बनती है। सामवान् और सुमेधा का विवाह राजा से धन प्राप्त करके ही हो सकता है, अतः इस कार्य के लिये दोनों मित्र विदर्भनगर जाकर राजा से भेंट करते हैं। बीच में दुर्वासा का शाप रूप बिन्दु उपस्थित होता है। इस प्रकार सामवान् और सुमेधा के आश्रम से प्रस्थान करने से लेकर राजा से भेंट करने तक का वृत्तान्त प्रतिमुख-सन्धि के अन्तर्गत है।

गर्भ-सन्धि— गर्भ-सन्धि तृतीय अंक के अन्तिम भाग से प्रारम्भ होकर पंचम अंक की समाप्ति से कुछ पहले तक है। यह पताका और प्राप्त्याशा के संयोग से बनती है। राजा का वृत्तान्त जो पताका है, द्वितीय अंक से प्रारम्भ होकर पंचम अंक तक चला गया है। वस्तुतः यह पताका प्रतिमुख-सन्धि के कार्यक्षेत्र से ही प्रारम्भ होकर विमर्श-सन्धि के क्षेत्र तक चली गई है। इसी क्षेत्र के मध्य में प्राप्त्याशा है। राजा के आदेश के कारण सामवान् स्त्री रूप में परिवर्तित हुआ है और चतुर्थ अंक में उसकी प्रणयचेष्टाओं द्वारा विवाह रूप फल की प्राप्ति की आशा व्यक्त होती है। किन्तु अभी भी कुछ विघ्न अवशिष्ट है, जो देवी के आदेश से और सारस्वत के उनको स्वीकार करने से समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार तृतीय अंक में राजा द्वारा मुनिपुत्रों को दिये गये आदेश से लेकर पंचम अंक में देवी अम्बिका से सामवती को पुरुष रूप में परिवर्तित करने की प्रार्थना तक गर्भ-सन्धि है।

अवमर्श-सन्धि— पंचम अंक के अन्तिम भाग से लेकर षष्ठ अंक में सामवती के विवाह की वेदी पर उपस्थित होने से पूर्व तक का अंश अवमर्श-सन्धि है। अवमर्श-सन्धि प्रकरी और नियताप्ति का योग है। देवी अम्बिका के आविर्भाव से नायक सुमेधा को सामवती रूप फल की प्राप्ति सुनिश्चित हो गई है। देवी ने सारस्वत को सामवती का सुमेधा के साथ विवाह करने का आदेश दिया, जिसे सारस्वत ने स्वीकार कर लिया। राजा ने विवाह के योग्य सभी सामग्री भेजने का वचन दिया। षष्ठ अंक के विष्कम्भक से ज्ञात होता है कि देवी के वरदान से प्रसन्न हुये सारस्वत सामवती के साथ सुमेधा का विवाह करने के लिये तपोवन वापिस जा रहे हैं, बन्धुजीव द्वारा सुमेधा को विदित हो गया है कि उसका सामवती के साथ विवाह सम्पन्न होगा और मधुरवचना ने सामवती को बता दिया है कि उसका सुमेधा के साथ विवाह होगा। सुमेधा और सामवती भी विवाह के लिये मण्डप की ओर चले गये। इस प्रकार पंचम अंक में देवी अम्बिका द्वारा सारस्वत को दिये गये आदेश से लेकर षष्ठ अंक में सुमेधा और सामवती के विवाह-मंडप पर जाने तक का अंश अवमर्श सन्धि के अन्तर्गत ग्रहण किया जा सकता है।

इसकी समाप्ति हुई।[1] अंक के अन्त में नैपथ्य से वन्य पुरुषों के अत्याचारों का कोलाहल उत्पन्न कराके[2] कवि ने राजा के अनुचित आचरण के कारण भविष्य में राज्य में होने वाले उपद्रवों की भविष्यवाणी की है।

चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में पिछले अंक के अंत में सूचित किये गये उपद्रवों को प्रदर्शित किया गया है और सामवान् के सामवती के रूप में परिणत होने की सूचना दी गई है।[3] यहां से सुमेधा के धैर्य की रक्षा करने के लिये ब्रह्मचारी को भेजा गया है।[4] शृंगाररस-प्रधान चतुर्थ अंक की घटनायें मनोरंजक और प्रभावपूर्ण हैं। सामवती ने अनेक प्रकार से सुमेधा को कामासक्त करने का प्रयत्न किया। सुमेधा अविचलित ही रहा और विचलित होने पर भी ब्रह्मचारी के उद्बोधन से उद्बोधित हो गया।[5] भारतीय सदाचार का यह उज्ज्वल पक्ष कवि ने इस घटना द्वारा उपस्थित किया। इस अंक में कहीं कहीं कवि औचित्य और शिष्टाचार की रक्षा नहीं कर सके। यथा- अवगुंठनवती सामवती के नेत्रों की विलक्षणता तो सुमेधा पहिले ही देख लेता है[6], किन्तु अवगुण्ठन बाद में हटाता है।[7] वह यह कहते हुये भी कि नारी के स्पर्श से ब्रह्मचारी का व्रत खण्डित हो जाता है, सामवती का घूंघट उलट देता है[8]। इतना ही नहीं वह सामवती के वक्षःस्थल को भी निरावरण कर देता है।[9] स्त्री के वक्षःस्थल को निरावरण करके उसके स्तनों का रंगमंच पर नग्न प्रदर्शन. चुम्बन और आलिंगन भारतीय शिष्टाचार के तथा संस्कृत नाट्य-परम्परा के विरुद्ध हैं और कवि की उच्छृंखलता के परिचायक हैं। अंक के अन्त में कवि ने सुमेधा और सामवती से सारा हाल न कहला कर ब्रह्मचारी द्वारा कहलाया है[10] और इस प्रकार राजा को दण्ड देने के लिए सारस्वत के जाने की भूमिका बांधी है। यहां तक कथा का एक कार्य सामवती का स्त्री रूप में परिणत हो जाना पूरा हो जाता है और सामवती-सुमेधा का विवाह सम्पन्न करा कर कथा समाप्त की जा सकती है। किन्तु कवि को अभी ब्राह्मणों के सामर्थ्य का प्रदर्शन, आराधना की शक्ति और भगवद्भक्तों के प्रभाव का प्रदर्शन कराना अभीष्ट है, अतः वे कथासूत्र को आगे बढ़ाते हैं।

पंचम अंक के विष्कम्भक में वन्यों से पराजित होकर वापिस आते हुये अमात्य की नौका डूब जाती है। ब्रह्मचारी उसकी प्राणरक्षा करते हैं तथा सारस्वत के

---

१. सामवतम् पृ० १२१।
२. सामवतम् ३.४०।
३. ,, ४.१२।
४. ,, पृ० १३२।
५. ,, पृ० १५४।
६. ,, ,, १३८।
७. ,, ,, १४०।
८. ,, ,, १४०।
९. ,, ,, १४१
१०. ,, ,, १६७।

विदर्भनगर जाने की सूचना देते हुये राजा की रक्षा के लिए एक पुष्प देकर[1] उसे विदर्भनगर भेज देते हैं। कथा की दृष्टि से यह घटना आवश्यक नहीं है। मंत्री के हारने और वापिस आने का समाचार राजा को उसके पत्र से ही मिल जाता है।[2] सारस्वत के विदर्भनगर प्रस्थान करने की सूचना सामाजिकों को चतुर्थ अंक के अन्त में मिल चुकी है।[3] पुष्प ने राजा की रक्षा में कोई योग नहीं दिया। पंचम अंक में ब्राह्मणों की शक्ति, भक्तों का प्रभाव और आराधना की सामर्थ्य प्रदर्शित करना कवि का मुख्य ध्येय है। सारस्वत के क्रोध और शक्ति से सभी भयभीत हैं। देवी राजा की आराधना से प्रसन्न होकर और प्रत्यक्ष दर्शन देकर[4] उनकी मनोकामना पूरी करती हैं। अंक के अन्त में राजा द्वारा सामवती-सुमेधा के विवाह के लिए सामग्री प्रदान करा कर[5] कवि ने मुनिपुत्रों के नगर-आगमन के उद्देश्य की भी पूर्ति करा दी। इस प्रकार इस अंक की घटनायें नाटकीय कथा के लिए उपयोगी और रोचक हैं।

षष्ठ अंक में सुमेधा और सामवती की विरह-पीड़ा का चित्रण करके कवि ने विप्रलम्भ-शृंगार की व्यंजना की है और सारिका की घटना द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन किया है।[6] यह सारिका रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं की गई। यदि कवि रत्नावली की सारिका के सदृश[7] इस को भी रंगमंच पर उपस्थित करता तो अधिक मनोरंजन हो सकता था। सामवती-सुमेधा का विवाह नैपथ्य की ध्वनियों से सूचित कियागया है और दर्शक इस युगल को विवाह होने के पश्चात् रंगमंच पर देखते हैं। तदनन्तर कवि ने भारतीय परम्परा के अनुसार ब्राह्मणों को दान दिलवा कर[8] कन्या को श्वसुर-गृह के लिये विदा कर दिया है।[9]

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि कहीं कहीं असंगत होने पर भी प्रायः सभी घटनायें नाटकीय कथा-संगठन के औचित्य की रक्षा करती हैं। कवि ने अत्यन्त कौशल से इन घटनाओं को एक सूत्र में पिरो कर रोचक और शिक्षाप्रद नाटक प्रस्तुत किया है।

८. 'सामवतम्' नामकरण का औचित्य

'सामवतम्' शब्द की व्युत्पत्ति है— "सामवन्तम् अधिकृत्य कृतं नाटकम्।" इस व्युत्पत्ति मे सामवत् शब्द से "अधिकृत्य कृते ग्रन्थे"[10] सूत्र से अण् प्रत्यय करके

१. 'सामवतम्' पृ० १७६।
२. 'सामवतम्' पृ० १९१-१९२।
३. ,, ,, १६८, ४.५६।
४. ,, ,, १९२।
५. ,, ,, १६८।
६. ,, ,, २०५-२०७।
७. 'रत्नावली' प्रकाशटीकोपेता—चोखम्बा संस्कृत सीरीज (१९५३) पृ० ७४-८०।
८. 'सामवतम्' पृ० २२१।
९. 'सामवतम्' पृ० २२१।
१०. 'अष्टाध्यायी' पृ० ४.३.८७

सामवत शब्द निष्पन्न होकर नपुंसकलिंग प्रथमा के एक वचन में 'सामवतम्' रूप बनता है। सामवतम् का तात्पर्य है कि इस नाटक का कथानक सामवान् को लक्ष्य करके निबद्ध किया गया है।

सारस्वत का पुत्र सामवान् अपने मित्र सुमेधा के साथ पिता के निर्देश से विदर्भराज के पास विवाह के लिए धन की इच्छा से जाता है, जहां होली के मद से मत्त दरबारियों के कुचक्र से उसे सुमेधा की पत्नी का वेष रख कर सीमन्तिनी की पूजा स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। स्त्री रूप में परिवर्तित होने के पश्चात् सामवती प्रणय-निवेदन में अग्रसर होती है। और सारस्वत के विदर्भनगर से लौटने के बाद सुमेधा के साथ उसका विवाह होता है।

इस नाटक के कथानक में सामवान् का चरित्र सबसे अधिक विस्मयोत्पादक और मुख्य है, अतः इस नाम के आधार पर कवि का इस नाटक को 'सामवतम्' नाम देना सर्वथा उचित है।

चरित्र-चित्रण

'सामवतम्' की कथावस्तु के विश्लेषण के पश्चात् अब इस के चरित्र-चित्रण पर विचार किया जाता है। इसका क्रम इस प्रकार रखा गया है— नाटकीय चरित्र-चित्रण की विशेषतायें, सामवतम् की पात्र-योजना और पात्रों का चरित्र-चित्रण।

१. नाटकीय चरित्रचित्रण की विशेषतायें

नाटक के पात्रों की क्रियाओं और संवादों से नाटकीयता का निर्माण होता है। पात्रों के चरित्र का चित्रण नाटक का दूसरा तत्व है। चरित्र-चित्रण नाटक के महत्व में आधार-भूत और स्थायी प्रभाव रखता है।[1] यद्यपि 'शिवराजविजय' के अध्ययन में पात्रों के चरित्र का विश्लेषण किया गया है, तथापि नाटक और उपन्यास में किये जाने वाले चरित्र-चित्रण में अन्तर होता है। चरित्र-चित्रण करते हुये नाटककार को यह ध्यान में रखना चाहिये कि वह संक्षिप्त और केन्द्रीभूत हो। इसके साथ ही यह पात्रों के व्यक्तित्व को उभारने वाला होना चाहिये। उपन्यासों में कवि के पास पात्रों के चरित्र-चित्रण के लिए पर्याप्त स्थान होता है। वह स्वयं अथवा दूसरे पात्रों द्वारा या कथोपकथन द्वारा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं को विस्तार से व्यक्त कर सकता है। नाटक में एक तो कवि के पास स्थान की कमी होती है और दूसरे वह स्वयं उसकी विशेषताओं का कथन नहीं कर सकता। वह पात्रों की क्रियाओं और कथोपकथन द्वारा ही उसकी विशेषताओं को व्यक्त करने के लिये

1. Characterisatson is the really fundamental and lasting element in the greatness of any dramatic work.
डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १८६।

बाध्य है ।[1] उसका यह चित्रण संक्षिप्त और केन्द्रीभूत होना आवश्यक है । नाटक में पात्रों का अभिनय किया जाता है । नाटककार स्वयं अलग खड़ा होकर पात्रों द्वारा ही घटनाओं और विचारों को प्रस्तुत करता है, इसलिये पात्रों का उभरा हुआ और प्रभावशाली व्यक्तित्व ही उस नाटक को सफल बना सकता है ।

नाटककार कथानक और संवादों द्वारा चरित्र-चित्रण प्रस्तुत करता है । नाटक के कथानक में पात्र अनेक प्रकार की क्रियायें करते हैं, जिनसे घटनायें घटती हैं और परिस्थितियां उत्पन्न होती हैं, तथा इनके द्वारा पात्र के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति होती है । किन्तु पात्रों की इन क्रियाओं से उनके व्यक्तित्व के बाह्य रूप का ही परिज्ञान होता है । उनके चरित्र के सूक्ष्म अध्ययन और आन्तरिक भावों की उद्भावना के लिये सम्वादों का प्रयोग किया जाता है ।[2] चरित्र-चित्रण के लिए इन सम्वादों का उपयोग या तो स्वयं पात्रों द्वारा किये जाने वाले संवादों से अथवा उस पात्र के विषय में अन्य पात्रों द्वारा कही जाने वाली उक्तियों से होता है । संवाद अनेक प्रकार के होते हैं जिनके श्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य तीन मुख्य विभाग किये जाते हैं ।[3] तीनों प्रकार के संवादों से चरित्र की विशेषतायें परिलक्षित होती हैं । इन संवादों में श्राव्य से गूढ, नियतश्राव्य से गूढतर और अश्राव्य से गूढतम आन्तरिक विशेषताओं की अभिव्यक्ति होती है ।

२. 'सामवतम्' की पात्र-योजना

नाटक के अनेक पात्र नाटकीय घटनाओं को घटित करते हैं । नायक और उसके सहायक तथा नायिका और उसकी सहायिकाओं के अतिरिक्त घटना-प्रवाह में आने वाले अन्य पात्रों का भी आयोजन प्रसंग के अनुसार किया जाता है । 'सामवतम्' नाटक की पात्र-योजना संस्कृत नाटकों की सामान्य पद्धति से कुछ भिन्न है । इसमें नायक का मित्र ही स्त्री रूप में परिवर्तित होकर नायिका बन गया है । इस नाटक का अंगी-रस शृंगार है और नाटककार का इसकी रचना में विशेष उद्देश्य है । इस नाटक के माध्यम से वह ब्राह्मणों के प्रभाव और शक्ति, उनकी पूजनीयता,

---

१. He has of course to do so wholly through the medium of the plot and the utterances of his characters.
डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १८६ ।

२. For details of characterisation and for the exibition of passions, motives feelings in their growth, entanglements and conflicts we must in every case refer from the action itself to the dialogue which accompanies it.
डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शद टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १८६ ।

३. संवादों के भेदों का विस्तृत अध्ययन संवादों के प्रकरण में किया गया है ।

योगशक्ति का चमत्कार, चरित्र का आदर्श, भक्ति की महिमा और भक्त के सामर्थ्य, भारतीय संस्कृति की इन विशेषताओं को प्रदर्शित करना चाहता है। सम्भवतः इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रख कर कवि ने पात्रों में विशेषताओं का आधान किया है। पात्रों के चरित्र का विश्लेषण कवि के इस उद्देश्य की अभिव्यक्ति में सहायक है। सारस्वत और वेदमित्र ऋषियों और ब्राह्मणों के प्रतिनिधि हैं, जो शाप देने में समर्थ हैं, राजा ब्राह्मणों को शान्त और प्रसन्न रखने में ही अपना कल्याण समझता है, सामवान् और सुमेधा के अपमान से राज्य में उपद्रव होने लगते हैं, ब्रह्मचारी योग की शक्ति से तीनों कालों की बात जान सकता है और आकाश में उड़ने की सामर्थ्य रखता है, सुमेधा सामवती के नानाविध हाव-भावों से भी कामासक्त नहीं होता, राजा की भक्ति से देवी प्रकट होती हैं, और सीमन्तिनी की भक्ति की महिमा से पुरुष भी स्त्री रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसे देवी अम्बिका भी अन्यथा नहीं कर सकतीं।

व्यास जी के पात्र सामान्यः संगीत और नृत्य में निपुण हैं। इन्दुवदना, मदालसा अप्सरायें, भावकलावती नर्तकी और भृकुंसक तो गीत-नृत्य उपस्थित करते ही हैं, बन्धुजीव, वसन्तक, भिक्षुक और ब्रह्मचारी भी मनोहारी संगीत प्रस्तुत करने में कुशल हैं। व्यास जी के पात्रों की योजना सामान्य संस्कृत नाट्य-परम्परा से कुछ स्वतंत्र है। आपका विदूषक वसन्तक प्राचीन रूपकों की परम्परा से मेल नहीं खाता। 'सामवतम्' नाटक का अंगी रस शृंगार होते हुये भी इसमें पुरुष-पात्रों की प्रधानता है। प्रथम अंक में इन्दुवदना और मदालसा के संगीत और द्वितीय अंक में भावकलावती के नृत्य के रूप में अति स्वल्प समय के लिये स्त्रीपात्र रंगमंच पर रहते हैं। तृतीय अंक में कोई स्त्री-पात्र नहीं है। पंचम अंक में थोड़े समय के लिये देवी अम्बिका आती हैं। चतुर्थ और षष्ठ अंक में अवश्य ही सामवती की प्रमुख भूमिका है।

व्यास जी ने पात्रों के चरित्र-चित्रण में क्रियाओं और संवादों दोनों का प्रयोग किया है। पात्रों की क्रियायें और संवाद उनकी विशेषताओं को व्यक्त करते हैं। यथा— बन्धुजीव की उछलकूद से उसका मौजी स्वभाव, सामवान् के अप्सराओं के गीत में निमग्न होने से उसकी विलासप्रियता तथा कोमलता, राजसभा में मुनि-पुत्रों का परिहास करने से राजा की उच्छृंखलता, सामवती-सुमेधा संवाद से सामवती की कामप्रवणता और सुमेधा का धैर्य, अमात्य-ब्रह्मचारी संवाद से अमात्य की स्वामिभक्ति परिलक्षित होती हैं। चरित्र-चित्रण के लिये व्यास जी ने संस्कृत नाटकों में प्रचलित आकाश भाषित और स्वगत-कथन के अतिरिक्त पाश्चात्य नाट्य-परम्परा के स्वगतोक्ति (soliloquy) का भी आश्रय लिया है। कलि की विशेषताओं की अभिव्यक्ति में इसका प्रयोग है। इस आलोचना में पात्रों के चरित्रों का निम्न क्रम से विश्लेषण है—

पुरुष पात्र—

क. नायक और उससे सम्बन्धित पात्र—- सुमेधा, सामवात्, सारस्वत, वेदमित्र ।

ख. राजा और उससे सम्बन्धित पात्र—राजा, राजपुरोहित, अमात्य, सीमन्तिनी का पुरोहित ।

ग. हास्य उत्पन्न करने वाले पात्र बन्धुजीव, वसन्तक ।

घ. अन्य पुरुष पात्र— कलि, दुर्वासा, भिक्षुक, ब्रह्मचारी आदि ।

स्त्री पात्र—

क. नायिका और उससे सम्बन्धित पात्र— सामवती, मधुरवचना ।

ख. अन्य स्त्रीपात्र— इन्दुवदना, मदालसा, भावकलावती, देवी अम्बिका आदि ।

३. 'सामवतम्' के पात्रों का चरित्र-चित्रण

सुमेधा— सुमेधा इस नाटक का नायक है । संस्कृत नाट्य-परम्परा के अनुसार चार प्रकार के नायक होते हैं— धीरललित, धीरशान्त, धीरोदात्त और धीरोद्धत ।[1] सुमेधा धीरशान्त[2] और अनुकूल[3] नायक है । वह सुशील है[4] और अनेक विद्याओं में निपुण है । वेदान्त, सांख्य, व्याकरण और न्याय का विद्वान है ।[5] सामान्य जीवन में पग पग पर उसे दर्शन के सिद्धान्त स्मरण आते हैं । स्त्री के सौन्दर्य के निरूपण में वह वेदान्त के सिद्धान्तों को[6], राजा की प्रशंसा में न्याय और व्याकरण के नियमों को[7] और सामवान् के स्त्रीरूप में परिणत होने में दृश धातु के रूप-परिवर्तन[8] को स्मरण करता है । ब्रह्मचारी द्वारा की गई शिवस्तुति से उसे सांख्य के सेश्वर और निरीश्वर वादों का स्मरण होता है ।[9] दर्शनों में उसे न्याय सबसे अधिक प्रिय है ।[10]

सुमेधा धैर्यशाली और जितेन्द्रिय है । उसके ये गुण सामवती के साथ एकान्त वन में जाते हुये व्यक्त हुये हैं । रमण के लिये स्वयं प्रार्थना करती हुई भी सामवती उसको विचलित नहीं कर पाती ।[11] बिना विवाह किये वह रति-क्रीड़ा को उचित नहीं समझता और ब्रह्मचर्य के भंग के डर से वह स्त्री के स्पर्श से भी

---

१. भेदैश्चतुर्धा ललितशान्तोदात्तोद्धतैरयम् । दशरूपक २.४ ।

२. सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरशान्तः स्यात् । 'साहित्यदर्पण' ३.३४ ।

३. अनुकूलस्त्वेकनायिकः । 'दशरूपक' २.७ ।

४. 'सामवतम्' पृ० २५ ।

५. 'सामवतम्' पृ० २८ ।

६. ,, १.५८, ४.२३, ६.४ ।

७. ,, ,, ११० ।

८. ,, ४.२६ ।

९. ,, ४.५६ ।

१०. ,, १.३५

११. ,, पृ० १४३ ।

डरता है।[1] चरित्र की दृष्टि से वह वस्तुतः योगी है[2] और नाम से ही नहीं अपितु कर्म से भी सुमेधा है।[3]

दृढ़चरित्र और धैर्यशाली होते हुये भी सुमेधा में मनुष्य की स्वाभाविक कोमल अनुभूतियां हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य उसे आनन्दित करता है,[4] उत्तम संगीत से वह मोहित होता है[5] और नारी सौन्दर्य का वह प्रशंसक है।[6] विरह-वेदनायें उसे पीड़ित करती हैं[7] और वह प्रिया की व्यथा का स्मरण करके और भी अधिक व्यथित होता है।[8] सामवती से मिलने में देरी उसे सह्य नहीं है।[9]

सुमेधा एक उत्तम मित्र है। सामवान् उसका मित्र है, सहाध्यायी है। पिता के बिछुड़ने से दुःखी मित्र को वह सान्त्वना देता है[10], राजदरबार में मित्र के अपमान से क्रुद्ध होता है[11], उसके गर्हित वनिताभाव से शोकग्रस्त होता है,[12] स्त्री रूप में परिवर्तित हुये उसकी कामपीड़ा से व्याकुल होता है[13] और उसके मूर्छित हो जाने पर सहायता करता है।[14]

सुमेधा नगर से दूर तपोवन में रहने वाले एक ऋषि का भोला पुत्र है जिसमें सामान्य मानवीय गुण और दुर्बलतायें हैं। वह आश्रम में रहते हुये नित्य-नियमों का पालन करता है[15], नगर में राजभवन की शोभा को देख कर चकित होता है[16] और राजा से डरता है।[17] विदूषक की अभिसन्धि में फंसा वह किंकर्तव्यविमूढ और भयभीत होकर राजा का अनुचित आदेश भी स्वीकार कर लेता है।[18] विदर्भनगर में अपमानित होने से वह अत्यन्त भयभीत होकर जनबहुल मार्ग से न जा कर वन-मार्ग से लौटता है[19]। कोई परिचित न मिल जावे इस कारण वह बात भी नहीं करता।[20]

सुमेधा के रूप में कवि ने प्राचीन संस्कृति में पले हुये दृढचरित्र, धैर्यशाली, जितेन्द्रिय और विद्वान् नायक की कल्पना की है। यद्यपि उसके चरित्र को कवि ने गौरवसम्पन्न करने का प्रयत्न किया है, तथापि उसकी स्वभावगत दुर्बलता उसके व्यक्तित्व को पूरी तरह से उभरने से रोकती है। सामर्थ्यशाली ऋषि का पुत्र

१.	सामवतम्	४.२४।	२.	सामवतम्	४.४८।
३.	,,	पृ० १६२।	४.	,,	१.४६, १.४७, १.५०।
५.	,,	१.५४।	६.	,,	१.५७।
७.	,,	पृ० २०७।	८.	,,	पृ० २०९।
९.	,,	,, २०३।	१०.	,,	१.४५।
११.	,,	,, ११४।	१२	,,	पृ० १४३।
१३.	,,	,, १५४।	१४.	,,	,, १५३।
१५.	,,	,, ७०।	१६.	,,	३.१३।
१७.	,,	२.५।	१८.	,,	३.३८।
१९.	,,	पृ० १३१।	२०.	,,	पृ० १३३-१३४।

और दृढव्रती सुमेधा राजा के अनुचित आदेश का दृढता पूर्वक प्रतिरोध न करके डरते हुये उसे स्वीकार कर ले, यह उचित नहीं लगता। राजा की आज्ञा का दृढ विरोध उसके चरित्र को ऊंचा उठा सकता था। षष्ठ अंक में सुमेधा एक सामान्य सांसारिक युवक के समान प्रेमिका के विरह में विलाप करता हुआ दिखलाया गया है। यहां वह अपने ही उपदेश "आत्मनैवात्मसंबोधो मुनिपुत्रैर्विधीयते"[१] को भूल जाता है। इन दुर्बलताओं के अतिरिक्त उसका चरित्र आदर्श ब्राह्मण के अनुरूप है।

सामवान्— सामवान् तीसरे अंक तक पुरुष रूप में रहता है, तदनन्तर स्त्रीरूप में परिवर्तित हो जाता है। इस स्थल पर पुरुष रूप सामवान् के चरित्र पर विचार किया जा रहा है। स्त्री रूप सामवती के चरित्र का नायिका के स्थल पर विचार किया जायगा।

सामवान् गुणों में प्रायः सुमेधा के ही समान है। सुमेधा के सदृश वह वेदान्त, सांख्य, व्याकरण और न्याय का विद्वान है।[२] विवाद में विजय प्राप्त कराने वाले न्यायशास्त्र का वह प्रशसंक है।[३] सौन्दर्य की प्रशंसा में उसे भी योग दर्शन[४] और व्याकरण के सिद्धान्त स्मरण आते हैं।[५] वह भावुक, कोमल हृदय, भीरु और विलासप्रिय है। पिता का विरह उसे दुःख देता है[६], तोतों को पिंजरों में बन्द देख कर उसे व्यथा होती है[७], शरीर में यौवन के समागम से उसका हृदय मन्मथव्यथित होने लगता है[८] और अप्सराओं के संगीत एवं सौन्दर्य के आनन्द में डूब कर वह बाह्य संसार को भी भूल जाता है। इस कारण निरपराधी होते हुये भी उसे शाप का भागी होना पड़ता है।[९] सामवान् के चेहरे पर स्त्रीसुलभ कोमल कमनीय भाव हैं[१०], जिसे देख कर विदूषक उसे ही स्त्री रूप धारण करने के लिए बाध्य करता है।[११]

सांसारिक व्यवहार की दृष्टि से सामवान् सुमेधा की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक है। पुरोहित द्वारा कहे गये राजा के गुणों की प्रशंसा को[१२] प्रत्यक्ष देखकर ही स्वीकार करना उचित समझता है।[१३] वह राजसभा में उचित शिष्टाचार दिखाता है और राजा को आशीर्वाद देकर[१४] उसके गुणों की प्रशंसा करता है।[१५] वसन्तक द्वारा अपमानित होने पर भी वह नम्र शब्दों में उसको समझाता है[१६] और राजा

१. सामवतम् १.४५।
२. सामवतम् पृ० २८।
३. ,, १.३६।
४. ,, १:५५।
५. ,, १.५६।
६. ,, पृ० ३४।
७. ,, २.१३।
८. ,, १.३८।
९. ,, १.६४।
१०. ,, पृ० १०६, २.२८।
११. ,, पृ० ११८।
१२. ,, २.७-८।
१३. ,, ,, ६१।
१४. ,, २.२०।
१५. ,, ,, १०६-११२।
१६. ,, पृ० ११४, २.३०।

के अनुचित आदेश का विनम्रता से विरोध करता है। किन्तु अन्त में राजा की आज्ञा से डर कर उसे यह आदेश स्वीकार करना पड़ता है।[1] यहां कवि ने सामवान् को बहुत भीरु बना दिया। हुंकार मात्र से क्षत्रियों को भस्म करने की सामर्थ्य रखने वाले सारस्वत के विद्वान् पुत्र की यह भीरूता शोभाजनक नहीं है। संभवतः सामवान् में स्त्रीत्व की कल्पना के कारण कवि ने उसे भीरू दिखाया हो।

सारस्वत— सारस्वत एक आदर्श ब्राह्मण ऋषि है। वह यज्ञों में आस्था[2] एवं शकुनों और अपशकुनों में विश्वास करता है।[3] वह उच्च कोटि का तपस्वी है। विदर्भ-देश में उसकी तपस्या प्रसिद्ध है। और उसकी महिमा से उसका पुत्र भी आदर का पात्र है।[4] उसकी तपस्या से जगन्माता अम्बिका भी परिचित और सन्तुष्ट है।[5] तप के प्रभाव से वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है[6] और परोक्ष वृत्तान्त को भी जान सकता है।[7]

सारस्वत सांसारिक व्यवहार की मर्यादा जानता है। युवा पुत्रों के विवाह की उसको चिन्ता है[8] और वह धनप्राप्ति के लिये पुत्रों को राजा के पास भेजता हैं।[9] उसमें स्वाभिमान है, अतः पुत्रों को भिक्षा मांगने नहीं भेजता अपितु विद्या के प्रभाव से धन प्राप्त करने का आदेश देता है।[10]

पुत्र के प्रति उसको अत्यधिक स्नेह है। विदर्भनगर जाने पर उसका वृत्तान्त जानने के लिये वह व्यग्र है।[11] ब्रह्मचारी से भेंट होने पर वह पुत्र के ही वृतान्त पूछता है।[12] पुत्र उसको पिण्डदान करने वाला[13] और वार्द्धक्य में सहारा देने वाला होने के कारण भी[14] प्रिय है। वह क्रोधी और शक्ति-सम्पन्न भी है। पुत्र के अमंगल के समाचार से क्रोधित होकर[15] वह राजा के साथ सम्पूर्ण क्षत्रिय जाति को दण्ड देने के लिये तत्पर हो जाता है।[16] उसकी हुंकार ही क्षत्रियों को भस्म कर देने में समर्थ है।[17] क्रोध के आवेग में उसका उचित-अनुचित का विवेक नष्ट हो जाता है। दुर्घटना में राजा के अपराध की मात्रा की खोज किये बिना ही पैरों में गिरते हुये राजा को वह दुत्कार देता है[18] और हाथ जोड़ कर क्षमा-प्रार्थना करते हुये देवशर्मा को कटुवचन कहता है।[19]

---

१. 'सामवतम्' २.३८।
२. सामवतम् .४२।
३. ,, पृ० २६
४. ,, पृ० ५३।
५. ,, ,, १९३।
६. ,, ,, २५।
७. ,, ,, १९४।
८. ,, ,, २५।
९. ,, ,, २६,२९।
१०. ,, १.३९।
११. ,, ,, १६५।
१२. ,, पृ० १६७।
१३. ,, ५.१३।
१४. ,, ५.१४
१५. ,, ४.५५।
१६. ,, ४.५६।
१७. ,, ५.१२।
१८. ,, पृ० १८४।
१९. ,, ५.१४।

अम्बिका के प्रति उसकी भक्ति है। देवी के वचनों से उसका क्रोध शान्त हो जाता है और पुत्र का वरदान पा कर[1] वह सन्तुष्ट होता है। क्रोध शान्त होने पर राजा को उचित उपदेश[2] और आशीर्वाद[3] देकर और सामवती के विवाह के लिये राजा की सहायता स्वीकार करके वह तपोवन में वापिस चला जाता है[4]। सारस्वत उत्तम मित्र है। अपनी और मित्र की सन्तानों की मित्रता से वह प्रसन्न है।[5] मित्र को छोड़ते हुये उसके हाथ पैर नहीं चलते।[6] कन्या के प्रति मोह होने पर भी उसके वियोग को वह अवश्यंभावी समझ कर धैर्य धारण करता है[7]। वह दानी है। दान के निमित्त ही धन प्राप्त करने के लिये वह पुत्रों को विदर्भनगर भेजता है और विवाह के पश्चात् ब्राह्मणों को दान देता है।[8]

सारस्वत के चरित्र में कुछ न्यूनतायें भी हैं। पुत्र के पुत्री रूप में परिवर्तित होने के समाचार से उसकी मुनि-स्वभाव के अनुकूल गम्भीरता नष्ट हो जाती है और वह आवश्यकता से अधिक उच्छृंखल और रौद्र हो जाता है। पुत्री को विदा करते हुये उसकी वात्सल्य-भावना उद्दीप्त नहीं हुई। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के कण्व के सदृश उसके हृदय की पुत्री के प्रति भावविह्वलता इस नाटक में अभिव्यक्त नहीं होती। यहां भावों की अपेक्षा व्यावहारिकता ही अधिक अभिव्यक्त हुई है।

सारस्वत रूप में कवि ने एक तपस्वी, स्नेही, मित्र, यज्ञों और देवताओं के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा रखने वाले ऋषि, व्यावहारिक गृहस्थ, शकुन-अपशकुन में विश्वास रखने वाले सांसारिक, पुत्र के प्रति अनिष्ट और अपमान से क्रुद्ध होने वाले साहसी और युक्ति-युक्त तथ्यों को समझ कर शान्त हो जाने वाले विवेकशील व्यक्ति का चरित्र प्रस्तुत किया है।

वेदमित्र— सारस्वत का मित्र वेदमित्र अनेक अंशों में सारस्वत के ही सदृश है। वह तपस्वी और विद्वान् है। दुःशकुनों से उसका हृदय भी चंचल होता है।[9] पुत्र के प्रति उसे स्नेह है। अपनी तपस्या के लिये वह विदर्भ देश में प्रसिद्ध हैं।[10] उसका तप अमंगल का निराकरण कर सकता है। उसके वेदमंत्र पाठ में कल्याण करने की सामर्थ्य है।[11] वह प्रतिदिन यज्ञ करता है। वह मित्र के प्रति स्नेहशील है। मित्र की पुत्री के साथ अपने पुत्र का विवाह सम्पन्न हो जाने पर वह उनके प्रति और भी सहृदय होता है। वह चाहता है कि अम्बिका के वर से पुत्र को प्राप्त करके सारस्वत प्रसन्न रहे।[12] सारस्वत और वेदमित्र दोनों ही सनातन धर्म की

---

१. 'सामवतम्' पृ० १६४।
२. 'सामवतम्' पृ० १६६।
३. ,, ५.२६।
४. ,, ,, १६७।
५. ,, पृ० २४।
६. ,, ६.१९।
७. ,, ,, २२०।
८. ,, पृ० २२२।
९. ,, ,, १६४-१६५।
१०. ,, ,, १६५।
११. ,, १.४०।
१२. ,, ,, २२०, ६.२१।

रूढियों और परम्पराओं का पालन करने वाले भारतीय तपस्वियों और ऋषियों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

राजा— विदर्भ देश का राजा विलासी, आरामपसन्द और बाह्य तत्वों से शीघ्र प्रभावित हो जाने वाला है। वह संगीत और नृत्य का प्रेमी है[1]— राजसभा में विदूषक और अन्य व्यक्तियों के साथ आमोद-प्रमोद करता है।[2] कविपुत्रों को अनुपहसनीय समझते हुये भी वह उनके साथ उपहास करने की वासना को रोक नहीं पाता[3] और भावज के साथ हास्य की योजना बनाने के लिये[4] सुमेधा और सामवान् को पतिपत्नी का रूप धारण करने का आदेश देता है।[5] राजकार्यों में रुचि[6] होते हुये भी वह विलास और विनोद के प्रसंगों में अपने कर्त्तव्य को भूल जाता है। वह अमात्य को सेनापति की सहायता के लिये भेजता तो है, किन्तु केवल राजसभा से दूर हटाने के लिए, जिससे कि उसके हास्य-विनोद में कोई विघ्न उपस्थित न हो।[7] राज्य में क्या हो रहा है इसकी या तो उसे विशेष चिन्ता नहीं है, अथवा उसका गुप्तचर विभाग सजग नहीं है। राज्य में चारों ओर वन्य पुरुष उपद्रव कर रहे हैं, अनेक ग्राम लूटे जा रहे हैं[8], जलाये जा रहे हैं[9], किन्तु इसका उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है। वह रात को सुख की नींद सोता है।[10] वह शीघ्र घबराने वाला है। स्वप्न में क्रुद्ध मुनि को देख कर उसका हृदय धड़कने लगता है[11] और पुरोहित से सारस्वत मुनि के समाचार जान कर वह भयभीत होता है।[12] अपने अपराध के प्रति उसे इतनी ग्लानि नही जितनी सारस्वत द्वारा भस्मीभूत कर दिये जाने का डर।[13] राजा में भक्ति भाव है। उसकी एकाग्र भक्ति से प्रसन्न होकर देवी अम्बिका प्रत्यक्ष दर्शन देकर[14] अभय प्रदान करती हैं।[15] राजा का अन्तःकरण निर्मल है, वह देवी से हृदय की निर्मलता तथा प्रजा के कल्याण का ही वर मांगता है[16] और सन्तुष्ट हुये सारस्वत को पुत्री के विवाह के लिये सहायता देता है।[17]

राजा के चरित्र में कवि ने किसी प्रकार की राजनीतिक निपुणता या शौर्य आदि गुणों की उद्भावना नहीं की। राजा का चरित्र नाटक में बहुत निर्बल है।

---

१. सामवतम् पृ० ७२-७३।
२. सामवतम् पृ० ७८।
३. ,, ,, ११६।
४. ,, ,, ११७।
५. ,, ,, १२१।
६. ,, ,, १८०।
७. ,, ,, ११६।
८. ,, ,, १२४।
९. ,, ४.२-३।
१०. ,, ,, १७७।
११. ,, पृ० १७८।
१२. ,, ,, १७९।
१३. ,, ५.२३।
१४. ,, ,, १९२।
१५. ,, पृ० १९३।
१६. ,, ,, १९३।
१७. ,, ,, १९८।

न तो व्यक्तिगत गुणों की दृष्टि से और नाहीं शासकीय दृष्टि से कवि ने उसमें किसी प्रकार की विशेषता का आपादन किया। राजा के चरित्र को प्रस्तुत करते हुये कवि का केवल यही उद्देश्य है कि राजाओं द्वारा ब्राह्मणों, ऋषियों और तपस्वियों का आदर सत्कार करने की परम्परा प्रचलित रहनी चाहिये।

अमात्य-- राजा का अमात्य कर्त्तव्य-निष्ठ और राजभक्त है। उसे अपने कर्त्तव्य और औचित्य का सदा ध्यान रहता है। होली के हुल्लड़ में मर्यादा के पालन के लिये वह तत्पर है।[१] राजसभा में होने वाली लम्पटता[२] और ऋषि-पुत्रों के परिहास को रोकने का वह यत्न करता है।[३] यहां अमात्य की निर्बलता भी लक्षित होती है। ऋषिपुत्रों के उपहास को अनुचित समझते हुये भी उसे रोकने में दृढ न होकर दबी जबान से केवल "अनुचित एष आरब्धो वाचां प्रचारः" कह कर वह चुप हो जाता है। वह राजभक्त है। राजा के आदेश से वन्य पुरुषों के उपद्रव को रोकने में सेनापति की सहायता के लिये चला जाता है। सेना के नष्ट हो जाने पर किसी प्रकार जान बचा कर भिक्षु का वेष धारण करके वापिस जाने का उद्योग करता है।[४] राजा की विपत्ति में वह ब्रह्मचारी द्वारा प्रस्तुत किये गये आध्यात्मिक आनन्द की उपेक्षा करके शिरोदान द्वारा भी राजा को सुखी करना चाहता है।[५] देवशर्मा से वह बिना विलम्ब किये राजा की रक्षा करने की ही प्रार्थना करता है[६], राजा को योगी द्वारा दिया गया पुष्प देता है[७], क्रुद्ध सारस्वत से धैर्य धारण करने के लिये प्रार्थना करता है और उनके प्रसन्न होने पर उनसे राजा को आशीर्वाद देने के लिए निवेदन करता है।[८] अमात्य में राजभक्ति, मर्यादा-पालन और कर्त्तव्यपरायणता की भावनायें हैं।

राजपुरोहित— नाटक में दो पुरोहित हैं– राजा का पुरोहित और सीमन्तिनी का पुरोहित। राजपुरोहित देवशर्मा नाटक के दूसरे अंक में सामवान् और सुमेधा के साथ विदर्भनगर की सड़कों पर राजभवन की ओर जाता हुआ दिखाई देता है। देवशर्मा राजा का प्रशंसक है।[९] विपत्ति के समय राजा पुरोहित को ही स्मरण करता है[१०] और उससे रक्षा करने की प्रार्थना करता है।[११] देवशर्मा के बताये गये मन्त्रों से आराधना करने पर देवी अम्बिका प्रकट होकर मनोकामना पूरी करती हैं।[१२] राज्य में होने वाली घटनाओं का उसे राजा की अपेक्षा भी अधिक ज्ञान है। सामवान् के वनिता रूप में परिवर्तित होने और सारस्वत के कुपित होने

१.	सामवतम्	२.१, पृ० १३।	२.	सामवतम्	२.३१।
३.	,,	पृ० ११६।	४.	,,	५.४।
५.	,,	,, १७६।	६.	,,	पृ० १८३।
७.	,,	,, १८३।	८.	,,	,, १९६
९.	,,	,, ५९।	१०.	,,	,, १७९।
११.	,,	,, १८४।	१२.	,,	,, १८०।

का वृत्तान्त वह राजा से भी पहले जान लेता है।[१] पुरोहित की मान्यता है कि विप्रों को रुष्ट करने से मनुष्य को सभी प्रकार के कष्ट भुगतने पड़ते हैं।[२] देवशर्मा न केवल पण्डित और पुजारी ही है, किन्तु सहृदय भी है। वह प्राकृतिक सौन्दर्य के निरीक्षण में आनन्द का अनुभव करता है। सायंकाल के समय उदय होते हुये चन्द्रमा की शोभा को देखकर उसका कवित्व प्रकट होता है।[३] पुरोहित के चरित्र में निर्बलता भी है। यद्यपि वही मुनिपुत्रों को राजसभा में लाया है, तथापि उस समय या उसके बाद उसने राजा को न तो अनुचित आचरण करने से रोका और नाहीं स्पष्ट शब्दों में इस आचरण के लिये उसकी भर्त्सना की।

सीमन्तिनी का पुरोहित— उसको राजा चित्रागंद की धर्मपत्नी सीमन्तिनी द्वारा देवपूजा के लिये नियुक्त किया गया था। वह अपने कार्य के प्रति सावधान है। पूजोद्यान के रक्षक के कार्य पर उसकी सतर्क दृष्टि है।[४] वह भगवान से द्वेष करने वालों और धर्म से अपरिचित व्यक्तियों को पूजागृह में जाने की अनुमति देना नहीं चाहता।[५] केवल मात्र भोजन के लोभी[६] और दान लेने के अभिलाषी[७] ब्राह्मणों को वह निन्दनीय तथा लज्जा के योग्य समझता है। दृढ स्वभाव का वह पुरोहित राजा के मित्र और देवशर्मा के भाई वसन्तक की भी तर्जना करने से नहीं हिचकता।[८] वह सभी प्रकार के व्यसनों, यहां तक कि नस्य[९] और पान खाने से भी[१०] परहेज करता है।

संस्कृत नाटकों में विदूषक का चरित्र विशिष्ट है। वह शृंगार रस में नायक का सहायक होता।[११] वह अपने कार्य, शरीर और वेश आदि से हास्य उत्पन्न करता है। कलह में उसकी रति होती है।[१२] उसका कार्य भोजन के प्रति अभिरुचि प्रकट करना और मुख्य रूप से हास्य उत्पन्न करना है।[१३] प्रस्तुत नाटक में व्यास जी ने सुमेधा के साथ बन्धुजीव की और राजा के साथ वसन्तक की विदूषकों के रूप में कल्पना की है। नाट्यशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के नायकों के साथ चार प्रकार

---

१. सामवतम् पृ० १७६।	२.,, सामवतम् ५.१०।
३. ,, २.२२।	४. ,, पृ० ८६।
५. ,, ३.६।	६. ,, ३.१०।
७. ,, ३.११।	८. ,, पृ० ६५।
९. ,, पृ० ६३।	१०. ,, ,, ६५।

११. शृंगारेऽस्य सहाया विटचेटविदूषकाद्याः स्युः। 'साहित्यदर्पण' ३.४०।

१२. कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।
हास्यप्रियः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः। 'साहित्यदर्पण' ३.४२।

१३. स्वकर्मज्ञः– स्वस्य निजस्य कर्म सर्वत्र भोजनाद्यभिरुचिप्रकटनकारितहास्योत्पादनरूपं जानातीति तथाभूतः विदूषकः स्यात्।
'साहित्यदर्पण'– जीवानन्द विद्यासागर कृति टीका (१९३४ई०) पृ० १०६।

के विदूषक होने चाहिये। इनमें राजाओं के साथ द्विज और ब्राह्मण के साथ शिष्य नामक विदूषक रहता है।[१] व्यासजी ने इस परम्परा का निर्वाह नहीं किया। वसन्तक में द्विज के और बन्धुजीव में शिष्य के पूरे लक्षण नहीं है। इस युग के विदूषकों के तीन वर्ग किये गये हैं—मूर्ख, समालोचक और धूर्त।[२] इनमें बन्धुजीव को मूर्ख तथा वसन्तक को धूर्त कहा जा सकता है, यद्यपि दोनों में यत्किंचित् दूसरे लक्षण भी हैं। दोनों विदूषकों का चित्रण व्यास जी ने अपनी कल्पना के अनुसार किया है।

बन्धुजीव— बन्धुजीव सामवान् और सुमेधा दोनों का मित्र है, किन्तु सामवान् के सामवती रूप में परिवर्तित हो जाने के पश्चात् वह सुमेधा के साथ रहता है। वह कौतुक-प्रिय है और मित्रों के साथ कौतुक-क्रीडा करने के लिये तत्पर रहता है।[३] हंसी हंसी में ही वह कहता है कि दोनों में से एक को स्त्री बना कर उनका परस्पर विवाह कर दिया जावे[४] और उसका यह हास्य-कथन सत्य रूप में परिणत हो गया। वह अरसिक और मूर्ख भी है। सारिका के मधुर वचनों में उसे सूअर के शब्द का सादृश्य प्रतीत होता है[५] और सामवती की विरह व्यथा को व्यक्त करती हुई सारिका को यह कह कर उड़ा देता है कि इसके वचनों से उसका प्रिय मित्र व्याकुल हो रहा है।[६] मित्र के रुष्ट होने पर वह जोरों से पुकार पुकार कर सारिका को बुलाता है।[७] बन्धुजीव को मोदकों की बहुत अधिक अभिलाषा है।[८] वह लोभी भी बहुत अधिक है, सामवती-सुमेधा के विवाह में पुनः पुनः दान लेना चाहता है[९] और सामवती की विदा के समय सारस्वत को दान देने का स्मरण दिलाता है।[१०] उसे अपने ब्राह्मणत्व का भी गर्व है, भिक्षु द्वारा स्थिर होने के लिये कहने पर वह उसका तिरस्कार करता है।[११]

वसन्तक— नाटक का दूसरा विदूषक वसन्तक है। वह हास्यप्रिय और विनोदी है। नृत्य के प्रति उसमें विशेष उत्कण्ठा है, नैपथ्य से नृत्य की ध्वनि सुन कर वह तत्काल वहां जाने के लिए व्यग्र होता है।[१२] वह धूर्त[१३] और निर्लज्ज[१४] भी है, बिना कारण दूसरों से चिढ कर उनके अपमान का निश्चय कर लेता है। मुनिपुत्रों पर रंग डालने का प्रयत्न करते हुये राजभट से पकड़ा जाने पर मुनिपुत्रों से ही बदला

---

१. 'भारतनाट्यशास्त्र' २४.१६-२०।
२. जी० के० भट्ट कृत 'विदूषक' पृ० १७२।
३. 'सामवतम्' पृ० २४।
४. 'सामवतम्' पृ० ३०।
५. ,, ,, २०५।
६. ,, ,, २०७।
७. ,, ,, २०७।
८. ,, ,, ३१,३२,१२५।
९. ,, ,, २१७।
१०. ,, ,, २२१।
११. ,, ,, २१८।
१२. ,, ,, ७१।
१३. ,, ,, ७७, ६५।
१४. ,, ,, ६५।

लेने का संकल्प करता है[१] और पुरोहित द्वारा झिड़का जाने पर उससे भी बदला लेने का विचार करता है।[२] राजसभा में मुनिपुत्रों का परिहास करके[३] उन्हें उसने दम्पति के रूप में सीमन्तिनी के घर जाने का आदेश दिलवा कर अपमानित किया[४]। हास्य-वार्ता में वह चतुर है। नर्तकी का वर्णन करने में उसकी हास्य-प्रियता[५] और भूकुसंक का वर्णन करने में प्रतिभा व्यंजित हुई है।[६] वसन्तक भोजन-प्रिय है, मुनिपुत्रों की दुर्दशा करने की प्रतिज्ञा करते हुये वह लड्डुओं की शपथ खाता है,[७] राजा द्वारा यह पूछने पर कि अब तक कहां थे, लड्डू और जलेबी खाने का ही उल्लेख करता है।[८] राजा द्वारा सभा विसर्जित करने पर वह उसे दध्योदन खाने का आशीर्वाद देता है।[९] सीमन्तिनी के ब्राह्मण-भोज में जाने की उसकी तीव्र अभिलाषा है।[१०]

व्यास जी का यह विदूषक संस्कृत नाट्य परम्परा से बहुत कुछ भिन्न है। यद्यपि इसमें विदूषकों की भोजन-प्रियता और हास्यजनक उच्छृंखलता है, तथापि संस्कृत नाटकों के विदूषकों का राजा के प्रति विश्वस्तभाव, सदा सान्निध्य और भक्ति-भाव[११] इसमें नहीं है। संस्कृत नाटकों के विदूषकों का मूर्खता के साथ सरलता का भाव भी उसमें नहीं है। मुनिपुत्रों के प्रति वह अकारण विद्वेष रख कर धूर्तता से भरी हुई योजना बनाता है, राजा को बहका कर मुनिपुत्रों का अपमान कराता है और उसके कारण राजा पर विपत्ति आती है तो उसका कहीं भी पता नहीं लगता।

कलि— नाटक में कलि और भूत-प्रेत कुतूहल और भय की भावना उत्पन्न करते हैं। वस्तुतः ये भावों के प्रतिनिधि रूप पात्र हैं। कलि का राज्य कृष्ण के पृथिवी छोड़ने के बाद से प्रारम्भ हुआ।[१२] वह धर्म का शत्रु है[१३] और तीर्थों में नहीं रह सकता। वह यज्ञ के धूम से व्याकुल होकर[१४] भागता फिरता है और यज्ञ करने वाले ऋषियों को दुःखी करने की योजना बनाता रहता है।[१५] क्रोध उसका मंत्री[१६] और काम आदि उसके सहायक हैं।[१७] उसका निवास मदिरालयों, वेश्यालयों, द्यूतालयों,

१. 'सामवतम्' पृ० ७०।
२. 'सामवतम्' पृ० ६६।
३. ,, ३.२८।
४. ,, ,, ११८।
५. ,, २.३३-३४-३५।
६. ,, ३.२६-२७।
७. ,, पृ० ७०।
८. ,, पृ० ७६-७७।
९. ,, ,, ७६।
१०. ,, ,, ६४-६५।
११. (क) The character of the vidusaka, the constant and trusted companion of the king. कीथ कृत 'संस्कृत ड्रामा' पृ० ३६।
(ख) The king's confident and devoted freind is the vidusaka. कीथ कृत 'संस्कृत ड्रामा' पृ० ३१०।
१२. 'सामवतम्' ३.२।
१३. 'सामवतम्' ३.३।
१४. ,, पृ० ३२।
१५. ,, पृ० ८५।
१६. ,, ,, ३३।
१७. ,, ,, ८१।

धनिकगृहों और अनेक प्रकार के कलहों में है ।[1] मद्यपान, लशुन, चंचल स्त्रियों और कलह आदि से उसकी शक्ति बढ़ती है ।[2] भगवान का नाम सुनते ही वह भाग जाता है ।[3] वायवीय शरीरधारी भूत-प्रेत धर्म-कर्म से युक्त घर में नहीं रह सकते[4], मधुमत्त स्थान में उनका प्रवेश होता है ।[5] जिस स्थान पर वे रहते हैं, वहां रहने वालों की बुद्धि भ्रष्ट कर देते हैं ।[6]

दुर्वासा— दुर्वासा का चरित्र अद्भुत है, वे महान तपस्वी और प्रभावशाली ऋषि हैं । वे बहुत शीघ्र कुपित हो जाते हैं और बिना किसी कारण के अपमान को अनुभव करने लगते हैं । बिना कारण सामवान् को शाप देते हुये उनका चरित्र कुछ उच्च प्रतीत नहीं होता । संसार में उनका कोप प्रसिद्ध है । अप्सरायें भी उनके आश्रम के समीप रहने से डरती हैं ।[7] दुर्वासा को न पहिचानने वाले व्यक्ति किसी भी क्रुद्ध ऋषि को देखकर उसे दुर्वासा ही समझने लगते हैं ।[8]

भिक्षु— ग्राम ग्राम में भिक्षा मांगने वाला भिक्षुक साधारण भिक्षुक मात्र नहीं है । वह नीतिशास्त्रविद्, विद्वान् और करुण हृदय है ।[9] ऐसे राजा के राज्य में वह नहीं रहना चाहता जहां वारवधुओं का आदर होता हो, मुनियों और विद्वानों का तिरस्कार होता हो और खल निवास करते हों[10] । शुभ और कल्याण-कारी घटनायें उसे प्रसन्नता प्रदान करती हैं ।[11] वह विद्वत्तापूर्ण भाषा में छन्दों द्वारा अपने विचार प्रकट कर सकता है ।[12] भिक्षावृत्ति को वह हीन नहीं अपितु पवित्र समझ कर स्वीकार किये हुये है ।[13] भगवान् विष्णु में उसकी परम भक्ति है ।[14]

ब्रह्मचारी— कौपीन वस्त्र और तुम्बीधारी ब्रह्मचारी[15] योग और प्राणायाम की शक्ति से सभी हृद्गत भावों को तथा विधाता की सृष्टि के सभी वृत्तान्तों को जानने की सामर्थ्य रखता है ।[16] वह अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न है । भूखे प्यासे भिक्षुक का कष्ट निवारण करके[17] उसे वह आकाश का भ्रमण कराता है[18], अमात्य को मृत्यु के मुख से निकाल कर [19] और स्वस्थ करके[20] राजा की रक्षा के निमित्त

---

१. 'सामवतम्' पृ० ८१ ।
२. 'सामवतम्' ३.४ ।
३. ,, ,, ३४ ।
४. ,, ३.१-२ ।
५. ,, ,, ६८ ।
६. ,, पृ० १६४ ।
७. ,, ,, ४७ ।
८. ,, ,, १८४ ।
९. ,, ४.२ ।
१०. ,, ४.७ ।
११. ,, पृ० २०१ ।
१२. ,, ४.१३ ।
१३. ,, ,, २०१ ।
१४. ,, ६.२२ ।
१५. ,, ,, १२८ ।
१६. ,, ४.१४,४.५३ ।
१७. ,, ,, १३२ ।
१८. ,, पृ० १३३ ।
१९. ,, ,, १७४ ।
२०. ,, ,, १७४ ।

एक पुष्प देकर[१] आकाश-मार्ग से विदर्भनगर पहुँचा देता है।[२] धर्मात्माओं की सहायता के लिये वह सदा तत्पर है।[३] वह दो बार सुमेधा को सावधान करके धर्म के प्रति स्थिर रखता है।[४] उसे वनस्पतियों का विलक्षण ज्ञान है। एक पत्ते के भक्षण-मात्र से १ मास तक भूख-प्यास को दूर रख सकता है[५], तथा एक पत्ते के रस को पैरों पर लेप करके आकाश-गमन का सामर्थ्य उत्पन्न कर सकता है।[६] उसकी विभूति आश्चर्यजनक है, जो अंगों पर केवल लेप दिये जाने से शरीर को नीरोग कर देती है।[७] ब्रह्मचारी भाषा के ज्ञान में निपुण है और सौन्दर्य का प्रशंसक है। सुमेधा द्वारा प्रस्तुत किये गये श्लेष को वह समझ लेता है और उदय होता हुआ प्रातःकालीन सूर्य उसके हृदय में मनोहर कल्पनाओं को जन्म देता है।[८]

अन्य पुरुष पात्रों की अपनी विशेषतायें हैं। राजा का प्रतीहार कार्य के प्रति सजग है। कुछ ऋषियों को देखकर वह घबराता है और उन्हें दुर्वासा ही समझता है।[९] राजभट और सीमन्तिनी के पूजोद्यान का रक्षक अपना कर्त्तव्य तत्परता से निबाहते हैं। वे पूजनीय जनों के प्रति आदर व्यक्त करते हैं। स्त्रीवेश धारण करने वाला भृकुंसक अपने नृत्य से राजसभा को मुग्ध कर लेता है।[१०] जटिल बधिर ब्राह्मण हास्य उत्पन्न करने वाला है। वह अपने वेष, भूषा, भाषा और हकलाने के द्वारा क्रोध व्यक्त करता हुआ भी सामाजिकों को हंसाता ही है।[११] खंखणक और झंझणक दोनों मल्लाह आनन्दी स्वभाव के हैं। नाव खेते हुये वे मस्त होकर गाते हैं।[१२] आंधी आने पर भी वे घबराते नहीं, अपितु ईश्वर में विश्वास रखते हैं।[१३]

सामवती— नाटक की नायिका सामवती सीमन्तिनी द्वारा भक्तिभाव से पार्वती रूप में पूजित सामवान् का परिवर्तित स्त्री-रूप है।[१४] स्त्री रूप में परवर्तित होने पर उसमें पौरुष की भावना नहीं रहती। सामवती प्रथम एक परकीया नायिका है, जिसका प्राप्त करना नायक की दृष्टि में उसके पिता के आधीन है। वह अनुपम रूपवती तरुणी है, उसमें वासना अधिक है। वसन्त से प्रफुल्लित कानन के सौन्दर्य से उन्मत्त होकर[१५] वह काम की ज्वालाओं से जलने लगती है[१६] और सुमेधा के अन्दर कामवासना जगाने का प्रयत्न करती है।[१७] अंगों का प्रदर्शन करके वह स्पष्ट रूप से

१. 'सामवतम्' पृ० १७६।
२. 'सामवतम्' पृ० १७७।
३. ,, ,, १३२।
४. ,, ४.४४,४.४५।
५. ,, ,, १३२।
६. ,, पृ० १३३,१७७।
७. ,, ,, १७४।
८. ,, ५.७,५.८।
९. ,, ,, १८४।
१०. ,, पृ० ११३।
११. ,, ,, ५०-५१।
१२. ,, ,, १७०।
१३. ,, ,, १७३।
१४. ,, ४.१२।
१५. ,, ४.१५-१७।
१६. ,, ४.१८।
१७. ,, ४.१८-१९।

सुमेधा से रमण करने की प्रार्थना करती है[१] और कामना पूरी न होने पर वह उसकी भर्त्सना करती है।[२] कामना पूरी न होने पर वक्षःस्थल पर आघात करके वह मूर्छित होती है[३], किन्तु सुमेधा द्वारा किसी प्रकार समझाई जाकर घर लाई जाती है।

सामवती का सौन्दर्य सुमेधा को विह्वल बनाने में समर्थ है।[४] प्रियतम की याद में वह इतना खो जाती है कि बाह्य वस्तुओं का उसे ज्ञान नहीं रहता।[५] सोते समय भी उसे प्रियतम दिखाई देते हैं।[६] वह अत्यधिक कोमल है। सारिका की कुहक भी उसे निष्ठुर प्रतीत होती है।[७] वह उदार स्वभाव की है। विवाह का समाचार सुनाने वाली मधुरवचना को हार उतार कर दे देती है।[८] वह सौन्दर्य-गर्विता है। आभूषण आदि पहन कर और दर्पण में अपना मुख देख कर अपने रूप से वह स्वयं ही गर्वित होती है।[९] पिता से उसे स्नेह है। चिरकाल से अभिलषित प्रियतम के साथ पति के घर जाते हुये और पितृगृह से बिछुड़ते हुये पिता का वियोग उसके नयनों को अश्रुओं से सिंचित कर देता है।[१०]

सामवती एक रूपवती यौवन-मद से उन्मत्त और स्वयं रमण की प्रार्थना करने वाली युवती है। उसका बाह्य सौन्दर्य अद्भुत है— उसकी भवें रात्रि के सदृश काली हैं और अधर बाल-सूर्य के सदृश लाल हैं, दोनों नेत्र कभी मुंदे हुये और कभी खिले हुये कमलों की तरह सुन्दर हैं।[११] काले घुंघराले केश[१२] और स्वर्ण-सम्पुट की शोभा को जीतने वाले कुच धैर्य को दूर कर देते हैं।[१३]

सामवती के चित्रण में नाटककार ने एक भारतीय नायिका के साथ न्याय नहीं किया। यह ठीक है कि शृंगार नायकगत और नायिकागत दोनों प्रकार का हो सकता है। नायिका में प्रथम शृंगार का आविर्भाव होकर पुनः उसके इंगितों से नायक में शृंगार की भावना जागृत होती है। तथापि इतने स्पष्ट रूप से कुमारी युवती का स्वयं प्रणय-प्रार्थना करना, विह्वल होकर नायक से रति की याचना करना और नायक द्वारा निषेध करने पर मूर्छित होना उचित नहीं है। नायक के असहमत होने पर भी गाढालिंगन और चुम्बन करती हुई तथा रमण के लिये याचना करती हुई

---

१. 'सामवतम्' पृ० ४.२६-३१।
२. 'सामवतम्' ४.३६।
३. ,, पृ० १५३।
४. ,, पृ० २०४।
५. ,, ,, २०८।
६. ,, ,, २०६।
७. ,, ,, २१२।
८. ,, ,, २१३।
९. ,, ६.१२-१३।
१०. ,, ,, २२०।
११. ,, ४.२७।
१२. ,, ,, १४०।
१३. ,, पृ० १४२।

निरावृत्त कुचों वाली सामवती का इतने स्पष्ट और निर्लज्ज रूप में प्रदर्शित किया जाना अनेक अंशों में भारतीय सभ्यता की गोद में पलने वाले सामाजिकों को असह्य हो सकता है।

मधुरवचना— यह सामवती की प्रिय सखी है[१] जो सखी के दुःख को दूर करने की चेष्टा करती है और उसकी सेवा करती है।[२] वह परिहास करने में कुशल है। सामवती द्वारा स्वप्न सुनाने पर वह कहती है-फिर यहां क्यों खड़ी हो, आर्य-पुत्र के घर जाओ।[३] सखी धर्म का पालन करते हुये वह अपने हाथों से सामवती का शृंगार करती है।[४]

देवी अम्बिका— विशेष मन्त्रों से आराधना किये जाने पर देवी अम्बिका प्रकट होकर भक्तों की मनोकामना पूरी करती हैं।[५] देवी के अनेक रूप हैं— वे भयंकर रूप वाली कालिका हैं और शस्त्र हाथ में लेकर राक्षसों का संहार करती हैं।[६] उनका मनोहर स्वरूप भी है, जो भक्तजनों की रक्षा करने वाला और मनोकामनाओं को पूरा करने वाला है।[७] देवी अपने भक्तों के आधीन रहती हैं और उनकी चेष्टाओं के विरुद्ध आचरण नहीं करतीं।[८]

अन्य स्त्री पात्रों में प्रतिहारी मालती अपने कार्य के प्रति सजग है। राज-नर्तकी भावों और कलाओं के प्रदर्शन में निपुण[९] और गाने में कुशल है।[१०] इन्दु-वदना और मदालसा दो सुन्दर अप्सरायें हैं जो विहार करने के लिये पृथिवी पर आई हुई हैं।[११] उनका अद्भुत सौन्दर्य, अंगों के आभूषण और मधुर संगीत मुनि-पुत्रों को भी वश में कर सकते हैं। यद्यपि दोनों ही स्त्री–स्वभाव होने से भीरु हैं, तथापि इन्दुवदना अधिक भीरु है। दुर्वासा का आश्रम समीप होने से वह अधिक ठहरना नहीं चाहती।[१२] हाथी के उपद्रव से डर कर दोनों शीघ्र ही आकाश-मार्ग से स्वर्ग चली जाती हैं।[१३]

नाटक के पात्रों का चरित्र-चित्रण समाप्त करने से पूर्व यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि रंगमंच पर उपस्थित न होने वाले, किन्तु प्रकरण से प्राप्त पात्रों की भी चरित्रगत विशेषताओं का विश्लेषण किया जावे। इन पात्रों में यज्ञदत्त वेदमित्र

---

१. 'सामवतम्' पृ० २०६
२. 'सामवतम्' पृ० २१३।
३. ,, ,, २१।
४. ,, ,, २१३।
५. ,, ,, १८०,१८२।
६. ,, ,, १८०-१८१।
७. ,, ,, १८८,५.२१।
८. ,, ,, १८२।
९. ,, २.२६।
१०. ,, २.३२।
११. ,, पृ० ४१।
१२. ,, पृ० ४७।
१३. ,, ,, ४९।

का शिष्य है, जो यज्ञ की सामग्री को परिष्कृत करके[1] समय पर आचार्य की प्रतीक्षा करता है।[2] वह आश्रम में आने जाने वालों पर दृष्टि रखता है। उसी के द्वारा सामवती और सुमेधा के आने की सूचना ऋषियों को मिलती है।[3] सुमेधा को विवाह की वेदी पर आने में देर होते देख कर वही उसे पुकारता है।[4] राजा का सेनापति वीर और राजभक्त है, किन्तु अपने से अधिक शक्तिशाली वन्य पुरुषों के सम्मुख निरुपाय है। सीमन्तिनी राजा के मित्र चित्रांगद की धर्मपत्नी है।[5] वह विष्णु[6] और शिव[7] की आराधिका है। वह प्रति सोमवार को ब्राह्मणों को सपत्नीक निमंत्रित करके और भोजन करा कर उनका पूजन करती है।[8] अम्बिका के प्रति उसकी भक्ति निष्कपट है, जिसके प्रभाव से असंभव वस्तुयें भी संभव हो सकती हैं। सीमन्तिनी द्वारा भक्तिभाव से पार्वती की भावना से पूजित सामवान् सचमुच ही स्त्री रूप में परिणत हो गया।[9] भगवती अम्बिका भी उसको बदल नहीं सकतीं।[10]

ऊपर की विवेचना से स्पष्ट है कि व्यास जी के पात्रों में चरित्रगत दृष्टि से विभिन्नतायें होते हुये भी कुछ सामान्य भाव हैं। सभी पात्र भारतीय संस्कृति के प्रतीक ब्राह्मणों के प्रति आदर की भावना से समन्वित हैं। १९वीं० शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिखे गये इस नाटक के पात्र वर्तमान जगत् से भिन्न शताब्दियों पूर्व के से प्रतीत होते हैं।

———

१. 'सामवतम्' १.४१।
२. 'सामवतम्' पृ० ३१।
३. ,, पृ० १६८।
४. ,, ,, २०८।
५. ,, ,, ११७।
६. ,, ,, ८९।
७. ,, ,, ९१।
८. ,, ,, ११८।
९. ,, ४.१२।
१०. ,, ,, १९२।

अष्टम अध्याय

व्यासजी का नाट्य-साहित्य–(२)

संवाद-देशकाल-अभिनय-उद्देश्य

'सामवतम्' नाटक के कथानक और चरित्र-चित्रण का अध्ययन करके अब व्यासजी के नाटकों के संवाद, देशकाल, अभिनय और उद्देश्य का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकरण में नाटकीय संवादों के भेद और उनकी विशेषताओं का संक्षेप में कथन करके उनके आधार पर इन नाटकों के संवादों की विशेषताओं का अध्ययन किया गया है। तदनन्तर देशकाल-विषयक विशेषताओं की विवेचना करने के पश्चात् अभिनय और उद्देश्य पर विचार है।

१. सम्वाद—

संवाद तत्व नाटक का प्रधान और मूलभूत तत्व है। संवादों द्वारा कथानक के विकास के साथ ही पात्रों के चरित्र का भी चित्रण किया जाता है। यदि नाटकीय क्रियाओं से पात्रों के बाह्य व्यक्तित्व का बोध होता है तो संवादों द्वारा उनकी आन्तरिक मनोवृत्तियों का परिचय प्राप्त होता है। कथानक और चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त नाटक के अन्य तत्वों— देशकाल, उद्देश्य और भावों की अभिव्यक्ति में भी संवादों का महत्वपूर्ण योग है। संस्कृत की नाट्य आलोचना में संवादों की विशेषतायें बताई गई हैं। 'भरत-नाट्यशास्त्र' के १९वें अध्याय में सम्भाषण-विधि की विस्तृत विवेचना है और १८वें अध्याय में किस पात्र को किस भाषा का प्रयोग करना चाहिये, इस तथ्य का निर्देश है। दशरूपककार ने नाट्य-धर्म की अपेक्षा करके वस्तु के जो तीन भेद किये हैं, वे वस्तुतः संवाद के अनुसार किये गये प्रतीत होते हैं।

संवादों का वर्गीकरण— नाटकीय संवाद तीन प्रकार के होते हैं— सर्वश्राव्य, अश्राव्य और नियतश्राव्य।[1]

(क) सर्वश्राव्य— इन संवादों को रंगमंच पर उपस्थित सभी पात्र सुन सकते हैं।[2]

---

१. नाट्यधर्ममपेक्ष्यैतत्पुनर्वस्तु त्रिधेष्यते।
सर्वेषां नियतस्यैव श्राव्यमश्राव्यमेव च। 'दशरूपक' १.६३-६४।

२. सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात्। 'दशरूपक' १.६४।

(ख) अश्राव्य— इन सम्वादों को बोलने वाले के अतिरिक्त रंगमंच पर उपस्थित अन्य कोई पात्र नहीं सुन सकता। केवल दर्शक ही इनको सुन सकते हैं। इन संवादों को स्वगत भी कहते हैं।[1]

(ग) नियतश्राव्य— इन संवादों को रंगमंच पर उपस्थित सभी पात्र नहीं सुन सकते, किन्तु कुछ विशेष पात्र सुन सकते हैं। नियतश्राव्य संवाद पुनः दो प्रकार के होते हैं— जनान्तिक और अपवारितक।[2]

(अ) जनान्तिक— वार्तालाप के मध्य में यदि त्रिपताका मुद्रा से रंगमंच पर उपस्थित अन्य व्यक्तियों को बचा कर व्यक्ति- विशेष से वार्तालाप किया जावे तो इसे जनान्तिक कहते हैं।[3]

(ब) अपवारितक— जिस पात्र से रहस्य छिपाना हो, उसकी ओर से घूम कर यदि बात कह दी जावे तो इसे अपवारितक कहते हैं।[4]

इन संवादों के अतिरिक्त आकाशभाषित और कर्णनिवेद्य संवादों का उल्लेख भी नाट्यशास्त्र में मिलता है। इनके लक्षण इस प्रकार से हैं

(क) आकाशभाषित— यदि कोई पात्र इस प्रकार बातचीत कर रहा हो कि मानों वह किसी दूसरे की बात सुन कर उसका उत्तर दे रहा है, किन्तु दूसरा पात्र वहां उपस्थित न हो तो इसे आकाशभाषित कहते हैं।[5]

(ख) कर्णनिवेद्य— यदि कोई पात्र दूसरे पात्र के कान में कोई रहस्य की बात 'एवमेवम्' इस प्रकार से कह कर करे तो इसे कर्णनिवेद्य कहते हैं।[6]

व्यास जी ने इन संवादों का प्रयोग अपने नाटकों में किया है।

पाश्चात्य नाट्य परम्परा में एसाइड और सोलिलोकी (aside and soliloquy) नामक संवादों के प्रयोग मिलते हैं। इनको संस्कृत की पारिभाषिक नाट्य शब्दावली में स्वगत या अश्राव्य कहा जाता है। एसाइड में वक्ता के कथन को रंगमंच पर उपस्थित पात्र न सुनने का अभिनय करते हैं। यह केवल दर्शकों को सुनाने

---

१. अश्राव्यं स्वगतं मतम्। 'दशरूपक' १.६४।

२. द्विधान्यन्नाट्यधर्माख्यं जनान्तमपवारितम्। 'दशरूपक' १.६५।

३. त्रिपताकाकरेणान्यानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्। 'दशरूपक' १.६५-६६।

४. रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्यापवारितम्। 'दशरूपक' १.६६।

५. किं ब्रवीष्येवमित्यादि विनापात्रं ब्रवीति यत्।
श्रुत्वेवानुक्तमप्येषस्तत्स्यादाकाशभाषितम्। 'दशरूपक' १.६७।

६. यानि गुह्यार्थयुक्तानि वचनानीह नाटके।
कर्णेनिवेद्यमेवमेवामित्यमिधाय च। 'भरतनाट्यशास्त्र' २६.८४।

के लिये अभिनीत किया जाता है।[१] सोलिलोकी उस पात्र का कथन है जो अकेला हो या इस प्रकार का अभिनय कर रहा हो कि मानों वह अकेला है। यह एक प्रकार की स्वयं से ही कही गई चिन्तनोत्तेजित वार्ता है और इसे मन का स्व से सम्भाषण कहा जा सकता है।[२] व्यास जी ने अपने 'सामवतम्' नाटक में इसका प्रयोग किया है। इसका प्रयोग प्रसिद्ध इंगलिश नाटक-कार शेक्सपियर के 'मैकबैथ', 'हेमलेट', 'किंग-लियर' आदि नाटकों में है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इसका प्रभाव हिन्दी नाटकों पर भी पड़ा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'चन्द्रावली'[३] और 'भारतदुर्दशा'[४] में इसका प्रयोग किया है।

'सामवतम्' नाटक में सम्वादों के कुछ अन्य प्रयोग भी हैं। कुछ संवाद ऐसे हैं जिनमें बोलने वाले सभी पात्र नेपथ्य से बोलते हैं और कुछ संवाद ऐसे हैं जिनमें कुछ पात्र रंगमंच पर उपस्थित रहते है और कुछ नेपथ्य से बोलते हैं।

नाटकीय संवादों की विशेषतायें— उपन्यास अथवा गद्य काव्य की अपेक्षा नाटक में संवादों का अधिक महत्व है, अतः नाटकीय संवादों के संगठन में कवि को अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होती है। ये संवाद चरित्र-चित्रण करने में समर्थ होने चाहिये और इनके द्वारा पात्रों की आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। संवाद के तीन भेदों— श्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य से क्रमशः पात्रों की गूढ, गूढ़तर और गूढतम आन्तरिक भावनाओं का परिचय प्राप्त होता है। संवादों द्वारा चरित्र-चित्रण दो प्रकार से किया जाता है— या तो पात्र स्वयं अपने कथन द्वारा अपने चरित्र का परिचय देते हैं अथवा अन्य पात्रों के कथन से उनकी विशेषताओं की अभिव्यक्ति होती है।[५]

---

१. A remark that the others on the stage are not to hear, intended to give information to the audience.
जोसेफ टी शिप्ले द्वारा सम्पादित 'डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर' (फिलोस्फिकल लाईब्रेरी न्यूयार्क १९६०) पृ० ३७।

२. A soliloquy is spoken by one person that is alone or acts as though he were alone. It is a kind of talking to oneself, not intended to affect others ("The dialogue of mind with itself": Mathew Arnold Pref. 1853).
वही पृ० २७३।

३. 'भारतेन्दु ग्रन्थावली' (प्रकाशक—रामनरायणलाल इलाहाबाद १९६२) पृ० २०३।

४. वही पृ० ४६२-३।

५. We may regard dramatic dialogue as a manners of characterisation under two heads; taking, first, the utterances of a given person in his conversation with others, and the remarks made about him by others persons in the play.
डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० १६२।

चरित्र-चित्रण के साथ ही संवाद कथा को गति देने वाले होने चाहिये । ये देशकाल, उद्देश्य और प्रसंग के अनुरूप भावनाओं की अभिव्यक्ति करने में भी समर्थ होने चाहिये ।

संवाद सुसंगठित और गतिशील होने चाहिये । नाटकों में स्थान और समय के बंधन के कारण संगठन और गतिशीलता की विशेष रूप से अपेक्षा होती है । कथन करने वाले कम से कम शब्दों और कम से कम स्थान में अधिक से अधिक भावों को उपस्थित करने का प्रयत्न करते हैं । उनकी वार्ता कथानक के प्रकरण के अनुरूप होती है । नाटकों के संवाद मर्मस्पर्शी होते हैं । वे सुनने वालों के हृदय को तत्काल प्रभावित करते हैं । इन संवादों में भाषण और वादविवाद के तत्व भी हो सकते हैं, किन्तु आवश्यक नहीं है कि ये भाषण और विवाद लम्बे ही हों । कवि इन भाषणों और विवादों से अपने मंतव्यों की पुष्टि करता है । संवादों में भाव, भाषा, सामाजिक मर्यादा अर्थात् संबोधन आदि वक्ताओं की बौद्धिक और सामाजिक स्थिति के अनुरूप होते हैं । इनमें अभिनयोचित चांचल्य भी होना चाहिये । संवादों में मुख की विभिन्न मुद्राओं और विविध प्रकार के अंग-संचालनों से सम्बन्धित संकेत दिये जाते हैं ।

व्यासजी के रूपकों के संवादों की विशेषतायें— व्यास जी के रूपकों में संस्कृत नाट्य-परम्परा के सर्वश्राव्य, नियतश्राव्य और अश्राव्य तीनों प्रकार के संवाद हैं । आपने आकाश-भाषित और कर्ण-निवेद्य संवादों का भी प्रयोग किया है । सर्वश्राव्य संवादों में आपने इस प्रकार की योजना भी की है कि कुछ संवादों में एक पात्र रंग-मंच पर रह कर बोलता है और दूसरा नेपथ्य से बोलता है । कुछ संवादों में दोनों नेपथ्य से बोलते हैं । इन संवादों के अतिरिक्त व्यास जी ने पाश्चात्य नाटकों में प्रचलित सोलिलोकी का भी प्रयोग किया है ।

सर्वश्राव्य संवाद व्यास जी के सभी रूपकों में बाहुल्य से हैं । 'धर्माधर्मकल-कलम्' और 'मित्रालाप:' ये दोनों रूपक एक-एक संवाद के रूप में है और सर्वश्राव्य हैं । 'सामवतम्' के अधिकांश संवाद सर्वश्राव्य हैं । इस कारण इन संवादों के सामान्य उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं । इनके विशिष्ट उदाहरण दिये जाते हैं । सर्व-श्राव्य संवादों में बन्धुजीव-कलि पंवाद में कलि रंगमंच पर से और बन्धुजीव नैपथ्य से बोलता है

नैप०— अरे ! कस्त्वं मुनीनामाश्रमसमीपे कूरं गर्जसि ?
कलि:— अरे ! रे ! भ्रातरं भ्रूणहत्याया मद्यपानस्य मातुलम् ।
गोहिंसाया गुरुवरं कलिं वेत्सि न मूर्ख माम् ।।
नैप० — तद् गच्छ शौण्डिकालयम् । मुनिमण्डले ते क्वावस्थानम् ?
कलि: अस्ति, अस्मिन्नेव दुर्वासस उटजे मम प्रियमन्त्री क्रोधो निवसति । तत्त्रैव गच्छामि । (परिक्रामति)

नैप० —(बन्धुजीवस्वरेण) मङ्गलं भगवान् विष्णुः ।

कलिः— (सवक्षस्ताडनम्) हा हतोऽस्मि हतोऽस्मि हतोऽस्मि रे ! एतद्भगवन्नामकीर्तनेन (इतस्ततः पलायमानः क्रन्दमानो निष्क्रामति)[१]

नैपथ्य में स्थित यज्ञदत्त और रंगमंच पर विद्यमान वेदमित्र के संवाद में यही प्रयोग है। इन्दुवदना-मदालसा के संवाद में दोनों ही पात्र नैपथ्य से बोलते हैं, जो इस प्रकार है —

नैप० —(स्त्रीस्वरेण) सहि मदालसे बहु गाइदं, अधुणा उठ्ठेहि तिविट्ठवं गच्छेम्ह ।

नैप०— (पुनः अपरस्त्रीस्वरेण) चिट्ठ इन्दुवदणे चिट्ठ, एक्कं अवरं वि गाइस्सं । दाव वसन्तसुरालावं विधेहि ।[२]

नियतश्राव्य संवादों में व्यास जी ने जनान्तिकम् का प्रयोग किया है। जनान्तिकम् का प्रयोग एक वक्ता के अथवा दोनों वक्ताओं के कथन द्वारा हुआ है।

सार०— (जनान्तिकम्) मित्र ! वेदमित्र ! किमाशंसितमेतेन ? यत् सत्यं कम्पितमिव मे हृदयम् ।[३]

इस कथन में एक वक्ता के कथन द्वारा जनान्तिक संवाद है।

ब्रह्मचारी— (भिक्षुकमभिवृत्य जनान्तिकम्) अपि विलोकितं त्वया एतयोरौन्मनस्यम् ?

भिक्षुकः— (जनान्तिकम्) विलोकितमेव, विलक्षण एष दूरस्थानामपि हृदाम् अवितर्क्यः सम्बन्धः । यतः—

दूरे सन्तमपि प्रेष्ठमनुसृत्यैव सर्वदा ।
स्वस्याविशुद्धं हृदयं दूयते च प्रसीदति ॥[४]

इस कथन में दोनों वक्ताओं ने जनान्तिक का प्रयोग किया है। आकाशभाषित का प्रयोग केवल तीसरे अंक के विष्कम्भक में कलि के कथन में है।[५] कर्णेनिवेद्यम् का प्रयोग विदूषक और राजा के कथनों में है।[६] अश्राव्य संवाद (स्वगतम्) का प्रयोग अनेक स्थानों पर है। यह प्रयोग या तो एक वक्ता की उक्ति में है अथवा दोनों वक्ताओं की उक्तियों में। यथा—

धर्मः— (स्वगतम्) सत्यमधुना सर्वत्रैव व्याप्नोत्येष चाण्डालः ।[७]

इस स्वगतकथन में एक ही वक्ता धर्म की उक्ति है। सामवती-सुमेधा का

१, 'सामवतम्' पृ० ३३-३४ । २. 'सामवतम्' पृ० ४१ ।
३. ,, ,, ३०   ४. ,, ,, १६६ ।
५. ,, ,, ८२-८४ । ६. ,, ,, ११७ ।
७. 'धर्माधर्मकलकलम्' ।

एक लम्बा संवाद स्वगत कथन के रूप में है—

सा०— (स्वगतम्) अहो स्पर्शः कान्तस्य (इति रोमाञ्चिता भवति स्विद्यति च)।

सु०— (स्वगतम्) अहो कान्तिः कुचयोः, इमौ तु जगतो विजयं कृत्वा परिवर्त्य स्थापितौ मदनमहीपतेर्दुन्दुभी इव भासेते। (विमृश्य) यद्यपि वास्तविकौ कुचावेवेत्यत्र न संशये, तथापि दृढनिश्चयार्थं कंचुकीमपि परिहरामि (तथा नाटयति)।

सा०— (स्वगतम्) कथमयं कुचौ निरावरणौ करोति बाधत इव मां लज्जा। अथवा लज्जे ! तृतीयस्य कथयापि रहितेऽस्मिन् रहसि त्वं कुतो रतिविच्छेदकारिणी समायाता ?

(इति शिथिलेन हस्तेन सुमेधसो हस्तं विगृह्य ससात्विकभावं नेत्रे मुकुलयति)

सु०— (स्वगतम्) कथमेषा लज्जत इव, किन्तु नैषा प्रकृतिप्रतिबन्धिका लज्जा। यतो मन्थरं गृह्णाति मे हस्तम्। (नेत्र अवलोक्य) अहो शोभास्या अर्धमुकुलितयोर्नेत्रयोः।[1]

सोलिलोकी का प्रयोग अनेक स्थानों पर है, किन्तु ये अधिक लम्बे नहीं हैं। नाटक के आरम्भ में बन्धुजीव द्वारा प्रयुक्त संवाद में यह प्रयोग है—

बन्धुजीवः— ही ही भो ए—ए—ए—ए—एदं एदं जेव्व। अज्ज चकिदो भविस्सिदि सामवं ही ही। भोदु कीलिदं, भोदु कीलिदं। भोदु एदं जेव्व कीलिदं। (क्षणं परिक्रम्यावलोक्य च) एसो आअच्छदि सुमेधा सामवं वि। ता अहं अस्सिंजेव्व पलासपादपिट्ठे समच्छण्णो चिट्ठामि। जस्सिं क्खणे सामवं आसणो भविस्सदि झडित्ति तस्सिं जेव्व अखणे अहं बलियं छिक्किस्सं, एदं जेव्व कीलिदं। एत्थ तादसारस्सुदो तादवेदमित्तो वि आसणो चिट्ठदित्ति तक्केमि। ता तहिं जेव्व गदुअ कीलिदं करिस्सम्। एदं जेव्व कीलिदं भो एदं एदं। (हसन् सोत्फालं गच्छति)[2]

इसी प्रकार के प्रयोग सूत्रधार,[3], कलि[4], वसन्तक[5] और भिक्षु[6] के संवादों में भी हैं।

व्यास जी ने पात्रों के चरित्र का संवादों द्वारा सफलता से चित्रण किया है। यह चरित्र-चित्रण पात्रों द्वारा स्वयं कहे गये शब्दों से अथवा अन्य पात्रों द्वारा उनके विषय में कहे गये शब्दों से व्यक्त होता है। नाटक के मुख्य पात्र सामवान् और सुमेधा ने वेदान्त, सांख्य, न्याय और व्याकरण का अध्ययन किया है, इस तथ्य का परिज्ञान वेदमित्र के कथन से तो होता ही है,[7] साथ में उनकी न्यायशास्त्र के प्रति

---

१. 'सामवतम्' पृ० १४१-१४२।
२. 'सामवतम्' पृ० २४।
३. ,, ,, ६-६।
४. ,, ,, ८१-८२।
५. ,, ,, ८६।
६. ,, ,, १२४-१२८।
७. ,, ,, २८।

अधिक रुचि स्वयं उनके कथनों से भी परिलक्षित होती है।[१] सारस्वत के तप के प्रभाव का परिचय सामाजिकों को उनके कथन के[२] साथ अमात्य की उक्ति से भी प्राप्त होता है।[३] इसी प्रकार अन्य पात्रों के चरित्र संवादों द्वारा प्रकाशित होते हैं।

नाटक के आरम्भ में ही बन्धुजीव के रंगमंच से चले जाने के बाद सारस्वत और वेदमित्र के संवाद से नाटक का कथानक प्रारम्भ होता है। इस सम्वाद से कथा को गति मिलती है कि दोनों मुनि सामवान् और सुमेधा के युवा हो जाने से उनके विवाह के लिये चिन्तित हैं। विवाह के लिये धन की आवश्यकता है और वे अपने पुत्रों को धन प्राप्ति के लिये विदर्भराज के पास भेज रहे हैं। चतुर्थ अंक में सामवती-सुमेधा संवाद द्वारा कथा को गति प्रदान की गई है कि स्त्रीरूप में परिवर्तित सामवती और सुमेधा वनमार्ग से जा रहे हैं। सामवती सुमेधा के प्रति प्रबल रूप से कामासक्त है। सुमेधा विचलित तो होता है परन्तु वह किसी प्रकार संयम करके कौशल से अपने ब्रह्मचर्य व्रत को भंग किये बिना सामवती को आश्रम ले जाता है। इसी प्रकार से नाटक का प्रत्येक संवाद किसी न किसी रूप में कथानक को आगे बढ़ाता है।

संवादों से देशकाल का परिचय भी प्राप्त होता है। सामवान् और सुमेधा जा रहे हैं। सुमेधा सामवान् से कहता है 'पश्यैतद् विपिनम्[४]'। तदनन्तर सामवान् कहता है 'सत्यं विदर्भविषय एषः'।[५] इन कथनों से सामाजिक जान पाते हैं, कि सामवान् और सुमेधा आश्रम से चलकर विदर्भ-वन पहुँच गये हैं तथा इस दृश्य की घटनायें उसी प्रदेश में हो रही हैं। सीमन्तिनी के उद्यान का रक्षक पुरोहित से कहता है— 'अज्ज होलिओत्तरप्पडिपद त्ति'[६], तदनन्तर पुरोहित कहता है 'अपरं च श्वस्तु चन्द्रवासरोऽस्ति'।[७] इससे निश्चय होता है कि होली के अगले दिन प्रतिपदा को रविवार था। रविवार के दिन राजा द्वारा दिये गये आदेश से दोनों मुनिपुत्र सोमवार को सीमन्तिनी के पूजोत्सव में सम्मिलित हुये थे। इस प्रकार 'सामवतम्' के संवादों द्वारा देशकाल की स्थिति सूचित की गई है।

---

१. सुमेधा— वेदान्तिनश्च पटुपाणिनिशास्त्रशस्त्राः संख्यायुता बहुलसांख्यविदां गणे च।
संरुद्धबुद्धिबलसंकुचिताधरास्याः दृष्ट्वेव तार्किकमुखं सभया चरन्ति। 'सा०' १.३५।
सामवान्— कुर्वन्तु गण्यगणितं गणका गणे स्वे सांख्या वदन्तु बहु सत्वरजस्तमांसि।
न्यायाद्रिकन्दरहरिर्हि जयं ददाति शाब्दश्च घोषयतु किं बहु वृद्धिरादैच्। 'सा०' १.३६।

२. सारस्वत— मित्र ! यद्यपि तपोबलेन सर्वं सम्पदयितुं शक्यम्। 'सामवतम्' पृ० २५।

३. अमात्यः—(अवलोक्य) अलं रे बालाः। न वो भयं मुनिपुत्रेभ्योऽपि ? तौ सामवत्सुमेधसो प्रबलप्रतापयोः प्रसिद्धयोः सारस्वतवेदमित्रयोर्मुनिवरयोः पुत्रौ। 'सामवतम्' पृ० ५३।

४. 'सामवतम्' पृ० ३४।

५. 'सामवतम् पृ० ३५।

६. „ „ ८६।

७. „ „ ९१।

संवादों द्वारा उद्देश्य की अभिव्यक्ति होती है। 'मित्रालापः' और 'धर्माधर्म-कलकलम्' संवाद रूप रूपक हैं और उनका उद्देश्य स्पष्ट है। 'मित्रालापः' का उद्देश्य है कि धर्म की रक्षा के लिये सनातन-धर्म-समाजों का आयोजन किया जाना चाहिये और 'धर्माधर्मकलकलम्' का उद्देश्य यह अभिव्यक्त करना है कि भगवन्नाम संकीर्तन से अधर्म नष्ट होता है। इन उद्देश्यों की अभिव्यक्ति संवादों से ही होती है। 'सामवतम्' नाटक के अनेक उद्देश्य हैं।[1] युवकों को विषयलोलुप नहीं होना चाहिये, इस उपदेश रूप उद्देश्य की अभिव्यक्ति सामवती-सुमेधा संवाद से होती है। ब्राह्मणों को समाज में उचित सम्मान मिलना चाहिये। इस उद्देश्य की अभिव्यक्ति राजपुरोहित[2] और सारस्वत[3] के कथनों से होती है।

संवादों से प्रसंग के अनुरूप भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। वसन्तोत्सव के समय राजसभा में राजनर्तकी के नृत्य के समय हास्य-विनोद का प्रसंग है। उस समय का निम्न संवाद इस भावना को प्रस्तुत करता है --

राजा— अस्तु, किंचिद् वर्णय तावद् भावकलावतीम्।

वसन्तकः— जं आणवेदि वअस्समहाराओ। (इति स्वीकृत्य संस्कृतमाश्रित्य)
हंसीशोभां कलयति गतौ शशिवदनेयम्।
लोलन्मुक्ताप्रवालामलमणिरचितस्रग्धरा भाति यस्याः श्रीः।

अमात्यः— अहो किमिदं छन्दः ?

वसन्तकः— अच्चरिअं ण आणिदं भअदा एदं विसमं छन्दो जा पडिपदं अणं जेव्व होदि।

अमात्यः— अथ प्रतिपदमेषां छन्दसां किं नाम ?

वसन्तकः— अमच्च ! पडिपदं सुमरिदं जेव्व।[4]

सुमेधा और सामवती की परस्पर एक दूसरे के प्रति अनुरक्ति और मिलन की आकुलता की भावनाओं का परिचय उनके संवादों से ही मिलता है।

व्यासजी के रूपकों के संवाद सुसंगठित, गतिशील और कथानक के अनुकूल हैं। रात में देखे गये भयानक स्वप्न के दुष्परिणाम को जानने के लिये और उसके निवारण का उपाय करने के लिये राजा पुरोहित को बुलाता है। उस समय राजा से मालतिका, प्रतीहार और पुरोहित के संवाद होते हैं। क्रमशः एक के बाद एक होने वाले

---

१. नाटक के उद्देश्यों पर विस्तृत विचार उद्देश्य के प्रकरण में किया गया है।

२. रुरुदिषति जनो यो भ्रष्टभाग्यप्रवाहः, पिपतिषति पदाद् यः पूजनीयात् परोच्चात्॥
जिगमिषति च दीनो दुर्गतिं दुःखदात्रीं, जगति स हि मनुष्यः कोपयत्याशु विप्रान्॥
'सामवतम्' ५.११।

३. इतस्तु परं त्वया कदापि विप्रा न कोपनीयाः। 'सामवतम्' पृ० १६६।

४. 'सामवतम्' पृ० ७७।

इन संवादों में सुसंगठन, गतिशीलता और कथानक की अनुकूलता स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है ।[1]

रूपकों के संवाद मर्मस्पर्शी हैं । यह मर्मस्पर्शिता सामवती-सुमेधा और सामवती-मधुरवचना के संवादों से प्रकट होती है । सामवती सो कर उठी है । वहां मधुरवचना भी उपस्थित है । विरह की मुद्रा का अभिनय करते हुये सामवती का मधुरवचना से इस प्रकार संवाद होता है—

मधुरवचना— हला पिअ सहि ! कधं अणहिअआ विअ चिट्ठसि, मए कथिदं किंविण सुणेसि ?

सामवती— (सशैथिल्यम्) सहि ! तुए किं कहिदम् ?

मधु०— मए एदं जेव्व कहिदं जा कधं हत्थे कबोलविएणासं कदुअ चिन्तां करेसि ? कधं तावसुस्सन्तदसणवसणा खिण्णा विअ लक्खीअसि ?

साम०— तदो मए किं कहिदम् ?

मधु०— ण किं वि ।

साम०— (निःश्वस्य) सहि किं कहेमि, मह सुवणे वि पिअसमागमं ण सहेदि विधी ।

मधु०— ता किं सुवणे संगदो पिओ ?[2]

संवादों में विवाद और भाषण के तत्व भी हैं । किन्तु विवाद के तत्व को व्यास जी ऊंचा नहीं उठा पाये हैं । नाटक में राजा द्वारा सामवान् और सुमेधा को दम्पति का रूप धारण करके सीमन्तिनी के पूजोत्सव में जाने का आदेश दिया गया है । इस अवसर पर कपटवेष धारण करने के औचित्य पर कवि ने एक विवाद उपस्थित किया, किन्तु इसका निर्णय युक्तियों से न होकर राजा के आदेश से किया गया ।[3] 'मित्रालापः' के संवाद में सनातनधर्म के प्रचार की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुये भाषण का तत्व निवेशित किया गया —

अत एव सम्प्रत्यावश्यकता धर्मविजयघोषणायाः । एते हि अस्माकं बालकाः केवलमांगलशिक्षयैव शिक्ष्यन्ते । स्वधर्ममंजूषायाः संस्कृतभाषायास्तु स्वप्नमपि नानुभवन्ति । इतो मातापितृभ्यां पाठशालाध्यक्षकरकरकमलेष्वर्प्यन्ते ततश्च तैरपि नियतपुस्तकरटनमात्रेण पितर इव तर्प्यन्ते । अहह इमे शुद्धहृदयाः नवयुवका इतस्ततश्च विलोठिताः कान्दिशीका इव यां कांचिदपि दिशं श्रयन्ति तत्र को नाम दोषोऽस्माकं धर्मपशूनां शिशूनामत एवास्माभिः सभासु बालकास्तदध्यक्षाश्च चेत्यन्ते यत्सावधानाः भवन्तु स्वधर्मकर्मकरणेषु ।[4]

---

१. 'सामवतम्' पृ० १७८-१८० ।
२. 'सामवतम्' पृ० २०८-२०९
३. ,, पृ० १२१
४. 'मित्रालापः' ।

संवादों में भाव, वक्ताओं के बौद्धिक स्तर के अनुरूप हैं। सामवान् और सुमेधा व्याकरण और दर्शन के पण्डित हैं। यौवन का आविर्भाव हो जाने के कारण उनकी सौन्दर्य की अनुभूति भी अधिक तीव्र हो गई है। वे अप्सराओं के मनोहारी संगीत को सुनकर और उनके रूप को देख कर उनके विषय में वार्तालाप करते हैं। उस समय उनके संवाद में वीणा के नाद में व्याकरण की समता[1] तथा अप्सराओं के सौन्दर्य में वेदान्त के सिद्धान्तों का विरोध[2] परिलक्षित होने लगता है। मोदक प्रिय बन्धुजीव अपनी मोदक प्रियता और धूर्त बसन्तक अपनी धूर्तता को संवादों में अभिव्यक्त करते हैं।

संवादों की भाषा उनके बौद्धिक और सामाजिक स्तर के अनुरूप है। संस्कृत नाट्य परम्परा के अनुसार भिन्न-भिन्न स्तर के पात्रों की भाषा संस्कृत अथवा प्राकृत होती है।[3] 'सामवतम्' नाटक में उच्च वर्ग के पात्रों की भाषा संस्कृत और निम्न वर्ग के पात्रों की भाषा प्राकृत है। इसके अतिरिक्त सामवान्, सुमेधा, पुरोहित आदि विद्वान् पात्रों की भाषा प्रांजल और अलंकृत है[4] जब कि राजा, अमात्य आदि ने सामान्य संस्कृत का प्रयोग किया है।

संवादों में संस्कृत नाट्य-शास्त्र के अनुसार औचित्य का ध्यान रखना चाहिये। किन्तु इस सम्बन्ध में व्यास जी ने नाट्यशास्त्रीय परम्परा का अक्षरशः पालन नहीं किया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार सूत्रधार और नटी परस्पर संबोधन के लिए आर्य शब्द का प्रयोग करते हैं।[5] 'सामवतम्' नाटक में नटी तो आर्य शब्द का प्रयोग करती है[6], किन्तु सूत्रधार उसे 'प्रिये' कह कर पुकारता है।[7] सम्बोधन करने के लिए भृत्यों द्वारा राजा को देव[8] और अन्य व्यक्तियों द्वारा महाराज[9] कहा जाना चाहिये, किन्तु

---

१. सामवान्— धातुसूत्रसमायुक्ता साधुशब्दस्य साधिका।
वाद्यत इयं वीणा पुस्तिका व्याकृतेरिव। सामवतम् १.५५।

२. सुमेधा— बाला बिभ्रति मुक्तिं मुक्ता अपि बन्धनैर्बद्धा।
विरुणद्धि हन्त बाला सर्वं वेदान्तसिद्धान्तम्। सामवतम् १.५७।

३. इस तथ्य का विस्तृत विवेचन 'सामवतम्' नाटक की प्राकृत की आलोचना में किया गया है।

४. सामवान्—(अंगुल्या निर्दिश्य) पश्य पश्य कलितललिततारकमण्डलमण्डितमाकाशमिव संकोच्य स्थापितं वितानम्, संशोभन्तेऽत्र सुवर्णश्रृंखलावलम्बिताः पद्मरागवैदूर्यमरकतमाणिक्यबज्ररचिताः कमलदलविलसत्तुषारकणिकायमानमुक्ताफलपटलशोभिताः कृत्रिमसुमनस्तबकाः। 'सामवतम्' पृ० १०४।

५. आर्या नटीसूत्रभृतौ मिथः। 'दशरूपक' २.६७।

६. नटी—अज्ज अहं भअन्त जैव्व मग्गमाणा एत्थ आअदह्मि किं वि आणवेदु अज्जो। 'सामवतम्' पृ० १०।

७. सूत्रधारः—प्रिये मिथिलां वर्णयितुं महाकवयोऽपि शिथिला भवन्ति। 'सामवतम्' पृ० १३।

८. देवेति नृपतिर्वाच्यो भृत्यैः प्रकृतिभिस्तथा। 'भरतनाट्यशास्त्र' १९.१६।

९. महाराजेति पार्थिवम्। 'भरतनाट्यशास्त्र' १९.५।

इस नाटक में प्रतीहार राजा के लिये एक स्थल पर देव शब्द का [1] और अन्य स्थल पर महाराज शब्द का प्रयोग करता है।[2] पुरोहित राजा को सम्बोधन करने के लिये कहीं महाराज शब्द का प्रयोग करके भी [3] अन्य स्थल पर आयुष्मान् शब्द का प्रयोग करता है।[4] अमात्य एक स्थल पर महाराज कह कर[5] अन्य स्थल पर आयुष्मान् कहता है।[6]

संवादों में अभिनयोचित चांचल्य भी है।[7] पात्र संवादों के अभिनय के समय भावों के अनुरूप मुखमुद्राओं में परिवर्तन और अंगों का संचालन नाटक में किये गये निर्देशों के अनुसार निश्चित रूप से प्रदर्शित करते हैं। जटिल ब्राह्मण के संवाद में अभिनेयता का यह तत्व इस प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है—

बच्चों द्वारा रंग से लिप्त किया जाने के कारण उसके मुख पर क्रोध की मुद्रा होती है, क्रोध से उसके मुँह से अक्षर भी अस्पष्ट निकलते हैं, गुस्से से कांपता हुआ वह कमर को उत्तरीय से बांधता है, बच्चों को मारने के लिये वह दण्ड उठाता है, धमकाता है और उनकी ओर भागता है, राजभट द्वारा रोके जाने पर मुड़ कर उसकी ओर देखता है, किन्तु बहिरा होने के कारण राजभट के कथन का उल्टा ही अर्थ लगा कर और भी क्रोधित हो उसे गाली देता है। वन-मार्ग में सामवती-सुमेधा संवाद और क्रोधित सारस्वत का राजा के सम्मुख बोला गया संवाद मुख-मुद्राओं के परिवर्तन और अंग-संचालन द्वारा अभिनेयता को स्पष्ट करते हैं। मुखमुद्राओं के परिवर्तनों और अंग-संचालन के निर्देशों को व्यास जी ने प्रायः संवादों में यथास्थान दिया है।

२. देशकाल

'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' रूपकों के संवाद-मात्र होने पर भी उनमें व्यास जी की धार्मिक और सामाजिक धारणाओं की अभिव्यक्ति होती है। 'सामवतम्' नाटक में देशकाल की योजना सुसंगठित रूप से की गई है। इसन ाटक की रचना 'स्कन्द-पुराण' की एक काल्पनिक कथा के आधार पर है, अतः कथावस्तु के काल्पनिक होने के कारण इसके देशकाल भी काल्पनिक हैं। नाटक के स्थान और समय किसी स्थान-विशेष अथवा समय विशेष से सम्बन्धित नहीं। विदर्भनगर के ऐतिहासिक होने पर भी नाटक की कथा का इतिहास में प्रसिद्ध विदर्भनगर से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। नाटक में निबद्ध सामाजिक अवस्था आदि का भी किसी कालविशेष अथवा देशविशेष से सम्बन्ध जोड़ा नहीं जा सकता। इनसे कवि के हृद्गत विश्वासों

१. 'सामवतम्' पृ० १८२।
२. 'सामवतम्' पृ० १८४।
३. ,, ,, १७९।
४. ,, ,, १८३।
५. ,, ,, ११६।
६. ,, ,, १८३।
७. अभिनय का विस्तृत विवेचन अभिनय के प्रकरण में किया गया है।

की ही अभिव्यक्ति होती है। इसी दृष्टिकोण से इस स्थल पर देशकाल की विवेचना की गई है। देशकाल की विवेचना करने के लिये निम्न क्रम स्वीकार किया गया है—

(क) काल तथा स्थान योजना— (१) कालयोजना
(२) स्थानयोजना

(ख) स्थानवर्णन— (१) मिथिलादेश
(२) विदर्भवन और तपोवन।
(३) राजप्रासाद
(४) राजसभा

(ग) सामाजिक व्यवस्था— (१) वर्णव्यवस्था
(२) धार्मिकविश्वास
(३) देवी-देवता
(४) लोक-विश्वास
(५) राजा के कर्तव्य
(६) शिक्षा और शास्त्र
(७) प्रणय और विवाह
(८) उत्सव

(घ) प्रकृति-चित्रण

(क) काल तथा स्थान योजना

संस्कृत नाटकों में स्थान और समय की अन्विति का ध्यान रखा जाता है। नाटक में स्वाभाविकता का समावेश करने के लिये यह अन्विति आवश्यक है। यूरोपीय नाट्य-साहित्य में भी समय, स्थान और क्रिया की अन्विति पर बहुत अधिक बल दिया जाता है। संस्कृत-नाट्यशास्त्रों के आचार्यों ने नाटकों की स्वाभाविकता को ध्यान में रख कर स्थान और समय की अन्विति का पालन करने के लिये नियमों का विधान किया।

संस्कृत नाट्य परम्परा के अनुसार स्थान और समय की अन्विति पूरे नाटक के अनुसार नहीं, अपितु प्रत्येक अंक के अनुसार होती है। नाटकीय घटनाओं के स्थान विभिन्न हो सकते हैं और उनका समय भी पर्याप्त दीर्घ हो सकता है, किन्तु एक अंक में स्थान और समय की अन्विति का होना आवश्यक है। एक अंक में यदि किसी घटना को प्रारम्भ किया जावे तो उसकी समाप्ति उसी अंक में होनी चाहिये, अथवा समाप्त न होने पर किसी कार्यवश उसके खण्डन पर्यन्त की कथा उस अंक में आ जानी चाहिये। अंक का समय चार प्रहर अथवा एक दिन का होना चाहिये।[1] समय

---

१. (क) अवस्थायाः समाप्तिर्वा छेदो वा कार्ययोगतः।
अंकः सबिन्दुहृश्यार्थाः चतुर्यामो मुहूर्ततः। 'नाट्यदर्पण' १.९।

(ख) एकदिवसप्रवृत्तः कार्यस्त्वंकोऽथ बीजमधिकृत्य। 'भरतनाट्यशास्त्र' २०.२४।

की अन्विति के साथ ही स्थान की अन्विति भी आवश्यक है। एक अंक में एक ही स्थान या उसके समीपस्थ प्रदेशों की घटनायें होनी चाहिये। यदि अंक की घटनाओं के अनुसार पात्र दूर स्थान पर चले जाते हों तो अंक को समाप्त कर देना चाहिये।[1] निष्कर्ष यह है कि सम्पूर्ण नाटक में समय तथा स्थान की विभिन्नता होने पर भी एक अंक की घटना का स्थान एक होना चाहिये तथा उस अंक की सम्पूर्ण घटना चार प्रहर अथवा एक दिन में ही समाप्त हो जानी चाहिये। संस्कृत-साहित्य में यद्यपि इस प्रकार के नाटक मिलते हैं जिनमें सम्पूर्ण नाटकीय घटनायें एक ही स्थान पर घटित हो जाती हैं, जैसे कि 'मालविकाग्निमित्र' और 'रत्नावली' में सम्पूर्ण-नाटकीय घटनायें राजप्रासाद, राजोद्यान और उनके समीपस्थ प्रदेशों में घटित हुई हैं, तथापि इस प्रकार का निबन्धन आकस्मिक ही है। इनके रचियता कालिदास और हर्ष नाटकों में इस प्रकार की स्थान की एकता को आवश्यक नहीं मानते थे। उनकी दूसरी रचनायें 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 'विक्रमोर्वशीयम्' और 'नागानन्द' इस कथन की पुष्टि करते हैं। 'सामवतम्' नाटक में संस्कृत नाट्यपरम्परा के इन नियमों का पालन कवि ने किया है।

कालयोजना— 'सामवतम्' नाटक के प्रथम अंक का घटना-क्रम प्रातःकाल से से प्रारम्भ होता है। सारस्वत, वेदमित्र, सामवान् और सुमेधा के वार्तालाप के मध्य में नैपथ्य से सुनाई देता है कि आचार्य अग्निहोत्र का समय क्यों निकाले दे रहे हैं।[2] इससे अग्निहोत्र की सामग्री के तैयार होने और शिष्यों के वहां बैठने की सूचना मिलती है। इसी समय सारस्वत और वेदमित्र अपने पुत्रों को विदर्भनगर भेज रहे हैं। अतः सामवान् और सुमेधा का विदर्भनगर के लिये प्रस्थान करने का समय प्रातः अग्निहोत्र से पहले होना चाहिये। यहाँ से प्रस्थान करके वे वैदर्भवन में ऋषियों के आश्रम के समीप दिखाई देते हैं।[3] यह समय मध्याह्न का होना चाहिये। आश्रम से प्रातःकाल चल कर दोनों मध्याह्न तक वहां पहुँच गये होंगे। इस समय वे सूर्य की धूप से गर्मी का अनुभव करते होंगे, क्योंकि वृक्षों की छाया उन्हें सुखद प्रतीत हो रही है।[4] वन मार्ग में अप्सराओं के गान सुनने में उन्हें १–१.३० घन्टे का समय लग सकता है। गान की समाप्ति के बाद सामवान् दुर्वासा के शाप का भागी होता है। तदनन्तर नेपथ्य से हाथी के उपद्रव की ध्वनियों से घबरा कर अप्सराओं के स्वर्ग

---

१. यः कश्चित्कार्यवशात् गच्छति पुरुषः प्रकृष्टमध्वानम्।
तत्राप्यंकच्छेदः कर्तव्यः पूर्ववत्तज्ज्ञैः। 'भारतनाट्यशास्त्र' २०.३०।

२. कथमग्निहोत्रसमयोऽतिपात्यते आचार्यचरणैः। 'सामवतम्' पृ० ३१।

३. अहो महान् ऋषिसमुदायोऽनमीयतेऽत्र वैदर्भवने। 'सामवतम्' पृ० ३६।

४. कथमिह पथि पथिकजनो विन्देतामन्दमानन्दम्।
यदि तरुनिकरः स भवेद् फलपुष्पच्छदभृज्जो न वने। 'सामवतम्' १.४९।

चले जाने के बाद प्रथम अंक समाप्त होता है। यह समय मध्याह्नोत्तर का होना सम्भव है। इस प्रकार प्रथम अंक का समय प्रातः अग्निहोत्र के पूर्व से प्रारम्भ होकर मध्याह्नोत्तर तक होना चाहिये।

सौभाग्य से नाटक में दिये गये अगले अंकों के संकेतों से प्रथम अंक की घटना का दिन और महीना निश्चित किया जा सकता है। द्वितीय अंक में होलिकोत्सव के चित्रण से विदित होता है कि यह होली का दिन है। तृतीय अंक में पुरोहित और रक्षक के संवाद से विदित होता है कि आज होलिकोत्सव प्रतिपदा है[1] और अगले दिन सोमवार है।[2] इस प्रकार से होलिकोत्तर प्रतिपदा के दिन रविवार और होली के दिन शनिवार होना चाहिये। होली के दिन सायंकाल दोनों मुनिपुत्र होली का कोलाहल देखते हुये राज-मार्ग पर जाते हुये दिखाई देते हैं।[3] इस कारण यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दोनों मुनिपुत्र उस दिन प्रातःकाल या उससे पहले दिन सायंकाल विदर्भनगर पहुँच गये होंगे। विदर्भनगर से सारस्वत का आश्रम एक दिन के मार्ग से अधिक नहीं है, क्योंकि ब्रह्मचारी से पुत्र के अनिष्ट का समाचार सुन कर सारस्वत अगले दिन ही राजा को अपने क्रोध का फल दिखाने की घोषणा करते हैं।[4] इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दोनों मुनिपुत्र होली से पहले दिन तपोवन से चले होंगे। इस प्रकार वह शुक्रवार का दिन होना चाहिये। होली फाल्गुन मास की पूर्णिमा को होती है। इस प्रकार पहले अंक की घटना का समय फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी शुक्रवार प्रातःकाल से लेकर मध्याह्नोत्तर तक का निर्धारित किया जा सकता है।

द्वितीय अंक के विष्कम्भक में राजमार्गों पर होली का हुल्लड़ जोरों पर है। नगर में अमात्य, राजभट आदि प्रबन्ध करने के लिये घूम रहे हैं। इसी समय अमात्य को सामवान् और सुमेधा आते हुये दिखाई देते हैं।[5] वे दोनों पुरोहित के साथ नगर भ्रमण करते हुये राजद्वार तक पहुँचते हैं। इस समय चन्द्रोदय होता है[6] और वे नित्य कर्मों से निवृत्त होने के लिये चले जाते हैं। इस भ्रमण में सम्भवतः इनको दो तीन घंटों का समय लगा होगा, अतः वे मध्याह्नोत्तर काल में नगर-परिभ्रमण के लिये

---

१. अज्ज होलिओत्तरप्पड़िप्पद इति। 'सामवतम्' पृ० ८६।
२. अपरं च श्वस्तु एष चन्द्रवासरोऽस्ति। 'सामवतम्' पृ ९१।
३. ततः प्रविशतो गमनं नाटयन्तौ सामवत्सुमेधसौ। 'सामवतम्' पृ० ५७।
४. मुनिपुत्रे श्चापलस्य कोपस्यापि च मादृशाम्।
श्व एव द्रक्ष्यसि फलं मयि तत्र समागते। 'सामवतम्' ४. ५६।
५. तौ सामवत्सुमेधसौ प्रबलप्रतापयोः प्रसिद्धयोः सारस्वतवेदमित्रयोर्मुनिवरयोः पुत्रौ। 'सामवतम्' पृ० ५३।
६. अहो पश्य पश्येन्द्रदिशि निस्तन्द्रश्चन्द्र उदेति, अहो आरुण्यमस्याः। 'सामवतम्' पृ० ६६।

निकले होंगे। इस प्रकार द्वितीय अंक के विष्कम्भक और द्वितीय अंक का प्रारम्भ मध्याह्नोत्तर होना चाहिये। 'मुनिपुत्रों और पुरोहित के जाने के बाद वसन्तक वहाँ आता है और राजोद्यान से नृत्य की ध्वनि सुन कर वहां चला जाता है। इस स्थान पर आधी रात तक गोष्ठी होने के बाद[1] सभा विसर्जित होती है। इस प्रकार द्वितीय अंक का समय फाल्गुन पूर्णिमा शनिवार मध्याह्नोत्तर से प्रारम्भ होकर रात्रि के १२ बजे तक का हो सकता है।

तृतीय अंक का विष्कम्भक उस समय आरम्भ होता है, जब प्रातःकाल तो हो गया है, किन्त अभी सूर्योदय नहीं हुआ। जिस समय कलि नगर प्रान्त में प्रवेश करता है उस समय पक्षियों के चहचहाने से प्रातःकाल का अनुमान लगाया जा सकता है।[2] तृतीय अंक का प्रारम्भ सीमन्तिनी के पूजोद्यान के बाहर पहरा देते हुये रक्षक के दृश्य से होता है, जो नैपथ्य से उदय होते हुये सूर्य की स्तुति करते हुये पुरोहित का स्वर सुनता है। पुरोहित कह रहा है कि इधर सूर्य उदय हो रहा है और इधर चन्द्रमा अस्त हो रहा है।[3] इसके बाद भी पुरोहित कहता है कि इस अरुणोदय वेला में भी बालकों का कोलाहल क्यों है।[4] तदनन्तर सीमन्तिनी के पुरोहित और वसन्तक का विवाद हुआ है, जिसमें सम्भवतः आधे घंटे का समय लगा होगा। इसके पश्चात् देवशर्मा आता है और वसन्तक से कहता है कि आज राजसभा में राजा ने सामवान् और सुमेधा को बुलाया है, उन्हें लेकर वहीं जाता हूं, स्नान, जप आदि में मुझे देर हो गई।[5] पूजा-महोत्सव के कारण राजसभा का आयोजन प्रातःकाल ही किया गया होगा, इसी कारण पुरोहित देरी का अनुभव कर रहा होगा। अब देवशर्मा मुनिपुत्रों को साथ लेकर राजसभा में पहुँचता है। राजसभा का वृत्तान्त लम्बा है और उसकी समाप्ति लगभग दोपहर को हुई होगी। उस दिन जैसे कि पहले कहा जा चुका है होलिकोत्तर-प्रतिपदा, रविवार है और अगले दिन सोमवार। अगला दिन सोमवार होने का बोध विदूषक के कथन से भी होता है, जो यह कहता है कि प्रति सोमवार को भगवती सीमन्तिनी ब्राह्मण दम्पतियों को भोजन-वस्त्र आदि से और धन आदि से सन्तुष्ट करती हैं, अतः सामवान् स्त्री का वेष धारण करके तथा सुमेधा उसके पति का रूप धारण करके कल ही वहां जाकर भोजन-सुख प्राप्त करके अपने आश्रम

---

१. अरे अर्द्धरात्रसूचकमिदं वाद्यं, किल पश्यसि यत्संवृतोऽयं निशीथसमयः। 'सामवतम्' पृ० ७६।
२. रावैः पतत्रिणोऽपि दिगन्तं दन्तुरयन्ति। 'सामवतम्' पृ० ८४।
३. अहो इतश्च सूर्य उदेति ततश्च चन्द्रोऽस्तमेति। 'सामवतम्' पृ० ८७।
४. तत्किमीदृश्यामरुणोदयवेलायामपि बालकोलाहलः। 'सामवतम्' पृ० ८६।
५. वसन्तक! मित्र! अद्य वार्षिकयोगिनीपूजामहोत्सवदिनमिति समारब्धानि राजसभायां नृत्य-संगीतादीनि, तत्रैव च सामवत्सुमेधसावपि श्रीमताकारितौ। तत्तौ नीत्वा तत्रैव गच्छामि, विलम्बितं च मया स्नानजपाद्यासक्तेनेति शीघ्रता। 'सामवतम्' पृ० ९७।

चले जावें ।[1] अगला दिन सोमवार होने से उस दिन निश्चय रूप से रविवार होना चाहिये । इस प्रकार तृतीय अंक के विष्कम्भक की घटना प्रातः सूर्योदय से पूर्व प्रारम्भ होकर मध्याह्न तक समाप्त हो जाती है और यह दिन चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा, रविवार है ।

चतुर्थ अंक की घटनाओं के सम्बन्ध में कवि ने कथावस्तु में विशेष संकेत नहीं दिये । प्रकृति-वर्णन से भी समय के अनुमान करने में सहायता नहीं मिलती । जो कुछ संकेत मिलते भी हैं उनसे समय-सम्बन्धी उलझन और भी अधिक बढ़ जाती है । ऐसा प्रतीत होता है कि इस अंक में समय की अन्विति का निर्वाह उचित रीति से नहीं हो सका है ।

चतुर्थ अंक के विष्कम्भक में भिक्षु बहुत देर से प्यासा है[2] और पसीने से भीग रहा है ।[3] इससे सूर्य की धूप बढ़ने और मध्याह्न के समय का अनुमान लगाया जा सकता है । तदनन्तर ब्रह्मचारी के कथन से विदित होता है कि सामवान् और सुमेधा भोजन करके और उपहार प्राप्त करके अभी ही गये हैं ।[4] सीमन्तिनी के पूजोत्सव में ब्राह्मणों को भोजन आदि करने में और उपहार प्राप्त करने में मध्याह्न का समय हो गया होगा । अतः जब सामवान् और सुमेधा वनप्रान्त में जाते हुये दिखाई देते हैं, वह समय मध्याह्न का होना चाहिये । सामवती की विरह-वेदना, प्रणय-प्रार्थना, सुमेधा द्वारा उसके स्त्री-चिन्हों का निरीक्षण, सामवती का मूर्छित होना आदि घटनाओं में सायंकाल हो जाना स्वाभाविक है । जब सुमेधा ने सामवती को वन्य पशुओं का भय दिखाया है, उस समय सूर्यास्त होने लगा होगा और वे दोनों सूर्यास्त होने के बाद आश्रम में पहुंचे होंगे । सामवती-सुमेधा के वन प्रान्त से जाने के बाद ब्रह्मचारी और भिक्षु वहां प्रकट होते हैं । इसके बाद समय सम्बन्धी समस्या उत्पन्न होती है । वन प्रान्त के समीप ही बिल्ववन है, जहां सामवान् और सुमेधा दोनों प्रतिदिन आया करते थे ।[5] इस बिल्ववन के समीप ही उनका आश्रम है । इसलिये ब्रह्मचारी भिक्षुक से कहते हैं कि आश्रम में जाकर देखें कि उन दोनों का पिता से साक्षात्कार किस प्रकार होता है ।[6] तात्पर्य यह है कि इस प्रकार कथा के अनुसार

---

१. 'सामवतम्' पृ० ११७-११८ ।
२. चिरं पिपासितोऽस्मि । 'सामवतम्' पृ० १२८ ।
३. किन्तु स्वेदकणाक्लिन्नेन भवता ससाहसमेवं जलं झटिति न पेयम् । 'सामवतम्' पृ० १२८ ।
४. अधुनैव सामवान् सुमेधाश्च कृतभोजनौ प्राप्तविविधपूजोपहारौ पूजागृहात् निर्गतौ स्तः । 'साम० पृ० १३१
५. यदि काभिश्चिद् युक्तिभिः कथमपि कियन्तमद्ध्वानमतिक्राम्यामि तत्प्रत्यहायातमैव प्राप्नोमि बिल्ववनम् । 'सामवतम्' पृ० १५६ ।
६. अधुना तु अस्यैव बिल्ववनस्य अन्तस्तयोराश्रमः, तद्दृश्यतां कथमिव तयोस्तातसाक्षात्कारो भवतीति । 'सामवतम्' पृ० १६३ ।

सामवती-सुमेधा को सोमवार के दिन सूर्यास्त के समय तक आश्रम अवश्य पहुंच जाना चाहिये।

अगले दृश्य में सारस्वत और वेदमित्र बिल्वपत्रों का चयन करते हुये दिखाई देते हैं। सारस्वत प्रभातकल्पा यामिनी में सुद्युम्न से सम्बन्धित स्वप्न देखने से बहुत उद्विग्न हैं,[१] जो उस समय तक सामवान् के स्त्री के रूप में परिवर्तित हो जाने की सूचना देता है। सामवान् सोमवार के दिन स्त्री-भाव को प्राप्त हुआ है, अतः यह स्वप्न सोमवार-मंगलवार के मध्य की रात्रि में देखा जाना उपयुक्त प्रतीत होता है। इस प्रकार दोनों ऋषियों की इस वार्ता का दिन मंगलवार होना चाहिये। किन्तु ऊपर की गई विवेचना के अनुसार सामवती-सुमेधा सोमवार को ही आश्रम में आ गये हैं। इसीलिये यह स्वप्न रविवार-सोमवार के बीच की रात्रि में देखा जाना चाहिये। इस प्रकार इस अंक के समय की अन्विति भंग होती है। किन्तु इसका यत्किंचित् समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि सामवान् को रविवार के दिन स्त्री का रूप धारण करने का आदेश मिला था, अतः उसका अगले दिन स्त्री के रूप में परिवर्तित हो जाना निश्चित है। इस प्रकार सारस्वत रविवार-सोमवार के मध्य की रात्रि में सुद्युम्न से सम्बन्धित स्वप्न देख सकते हैं और सोमवार के दिन वेदमित्र से वार्तालाप करते हुये ब्रह्मचारी से मिल सकते हैं। इस प्रकार विचार करने पर चतुर्थ-अंक के विष्कम्भक और चतुर्थ अंक का समय चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया, सोमवार मध्याह्न से लेकर सूर्यास्त तक का मानना चाहिये।

पंचम अंक के विष्कम्भक में अमात्य भिक्षु का वेष धारण किये हुये आसन्न-ब्राह्ममुहूर्ता-रजनी में नदी के मार्ग से जा रहा है।[२] यह समय सूर्योदय से पहले का है, जबकि अभी अंधेरा है। तूफान से नौका के डूब जाने पर वह नदी तट पर मूर्छित होकर पड़ा हुआ दिखाई देता है। उस समय प्रभातप्राया रजनी है।[३] यद्यपि प्रातःकाल हो गया है, तथापि प्रकाश पूरी तरह से नहीं हुआ। ब्रह्मचारी द्वारा अमात्य की चिकित्सा करने के बाद सूर्योदय हो जाता है।[४] तदनन्तर अमात्य आकाश-मार्ग द्वारा अपने निवास-स्थान पर शीघ्र पहुँच गया होगा और राजा के बुलाने पर जागरमन्थर अवस्था में[५] राजभवन पहुँचने से उसे विश्राम का समय नहीं मिला

---

१. प्रभातकल्पायां यामिन्यां मया स्वप्ने सुद्युम्नस्य सर्वोऽपि वृत्तान्तो यथावस्थितो दृष्टः।
'सामवतम्' पृ० १६३।

२. समयश्च आसन्नब्राह्ममुहूर्ता रजनी। 'सामवतम्' पृ० १७०।

३. प्रभातप्राया च रजनी। 'सामवतम्' पृ० १७४।

४. विभाति भानुकिरणारुणीकृतशरीरयोः।
संकोचनविकासाभ्यां विभेदः कैरवाब्जयोः। 'सामवतम्' पृ० ५.७।

५. ततः प्रविशति स्ववेषेण जागरमन्थरोऽमात्यः। 'मित्रालापः' पृ० १८२।

होगा। इस प्रकार इस विष्कम्भक का समय ब्राह्ममुहूर्त रजनी से लेकर सूर्योदय तक का है।

पंचम अंक में उष:काल में राजा सोता हुआ दिखाई देता है।[1] रात्रि में देखे गये दु:स्वप्न से चिन्तित राजा को पुरोहित को बुला कर अपनी विपत्ति कहने, अमात्य को बुलाने, नित्य नियमों से निवृत्त होने, पत्र पढ़ने और मन्त्र दीक्षा लेने में मध्याह्न हो गया होगा। इसी समय सारस्वत वहां पहुँचते हैं। पुत्र के अनिष्ट से क्रोधित सारस्वत प्रातःकाल ही तीव्रगति से आश्रम से चल कर मध्याह्न तक विदर्भनगर पहुँच गये होंगे और उसी दिन उन्होंने राजा से साक्षात्कार किया होगा।[2] राजा द्वारा देवी की आराधना करने, प्रसन्न होकर देवी के प्रकट होने, वरदान देकर उनके अन्तर्धान होने, उसके बाद राजा द्वारा सारस्वत से क्षमा की प्रार्थना करने और विवाह के लिये सम्पूर्ण सामग्री भेजने का वचन देने में सायंकाल हो गया होगा। सांयकाल हो जाने से सारस्वत सम्भवत: विदर्भनगर में ही रह गये होंगे और अगले दिन प्रातःकाल अपने आश्रम गये होंगे। इस प्रकार पंचम अंक की घटनाओं का समय प्रात: उष:काल से लेकर सूर्यास्त तक का निर्धारित किया जा सकता है। यह चैत्र मास की कृष्णपक्ष की तृतीया, मंगलवार का दिन होना चाहिये।

षष्ठ अंक के विष्कम्भक में भिक्षुक आश्रम की ओर जाते हुये सारस्वत को देख रहा है।[3] पहले कहा जा चुका है कि सारस्वत मंगलवार की रात्रि में विदर्भनगर ठहर गये होंगे। बुद्धवार को प्रात: वे विदर्भनगर से चल कर मध्याह्न तक आश्रम पहुँचे होंगे। उसी दिन राजा ने सम्पूर्ण सामग्री भेज दी होगी और मुनि ने उसी दिन अपनी पुत्री के विवाह की तैयारी की होगी।

षष्ठ अंक में सामवती-सुमेधा का विवाह सम्पन्न हुआ है। बुधवार के दिन विवाह की तैयारी करके सारस्वत ने अगले दिन वृहस्पतिवार को विवाह संस्कार निष्पन्न किया होगा। इसी दिन प्रातःकाल सुमेधा पुष्पों का चयन करता हुआ बन्धुजीव के साथ दिखाई देता है।[4] अगले ही दृश्य में अपनी सखी मधुरवचना के साथ सामवती दिखाई देती है, जो अभी सो कर उठी है।[5] मधुरवचना और सामवती की वार्ता को सुन कर सारिका उड़ जाती है। इस सारिका की वार्ता को इससे पहले

---

१. उषसीह विराजितेऽप्ययं सरजस्कामपि पद्मिनी मियास्।
भ्रमरः परिचुम्बनि स्फुटं किमकार्यं मधुपस्य विद्यते ॥ सामवतम् ५.९।

२. तथापि सारस्वतस्तु अद्यैव राजसाक्षात्कारं करिष्यति। 'सामवतम्' पृ० १७५।

३. तदेवं विगतकोपरयः सारस्वतमुनिः स्वमाश्रममायातीति। 'सामवतम्' पृ० २०१।

४. ततः प्रविशति पुष्पावचयं नाटयन् बन्धुजीवेनानुगम्यानः सुमेधाः। 'सामवतम्' पृ० २०१।

५. प्रविशति च तत्क्षणसुप्तोत्थिता विरहमुद्रां नाटयन्ती सामवती सम्मुखस्था मधुरवचना सखी च। 'सामवतम्' पृ० २०८ ।

दृश्य में सुमेधा सुन चुका है, इस कारण सुमेधा और सामवती के शृंगार आदि में और उसको विवाह की वेदी पर लाने में तीन चार घन्टे का समय लगा होगा। मध्याह्न से विवाह-संस्कार प्रारम्भ होकर मध्याह्नोत्तर काल में समाप्त हो गया होगा। तदनन्तर ब्राह्मणों और भिक्षुकों को दान देने में सायंकाल होने वाला होगा एवं सामवती को विदा करने के समय तक सायंकाल हो जाना स्वाभाविक है। इस प्रकार से षष्ठ अंक का समय चैत्र मास के कृष्णपक्ष की पंचमी, बृहस्पतिवार को प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक निर्धारित करना उपयुक्त है।

उपर्युक्त विवेचना के अनुसार नाटक के प्रत्येक अंक के लिये एक दिन और षष्ठ अंक के विष्कम्भक के लिये एक दिन इस प्रकार सम्पूर्ण नाटक के लिये सात दिन का समय निर्धारित होता है। नाटकीय घटनायें प्रथम अंक में फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की चतुर्दशी से प्रारम्भ होकर षष्ठ अंक में चैत्र मास की कृष्णपक्ष की पंचमी तदनुसार शुक्रवार से प्रारम्भ होकर बृहस्पतिवार तक समाप्त हो जाती हैं।

स्थान योजना—'सामवतम्' नाटक के प्रथम अंक का दृश्य मुनियों के आश्रम प्रान्त से प्रारम्भ होता है।[1] इस स्थल पर बन्धुजीव की उछल-कूद के बाद सारस्वत और वेदमित्र परस्पर वार्तालाप करते हुये उपस्थित होते हैं और यही पर सामवान् और सुमेधा आते हैं, जहां इनको विदर्भनगर जाने का आदेश दिया जाता है। अब घटनाचक्र ऋषियों के आश्रम के समीपवर्ती वन मार्ग में चला जाता है। ऋषियों के यज्ञधूम से व्याकुल होकर अन्धा हुआ कलि यहां से भागता है। उसके पश्चात् सुमेधा और सामवान् ऋषियों के आश्रम के समीपवर्ती वनमार्ग से विदर्भनगर की ओर जाते हुये दिखाई देते हैं। इस वनमार्ग के समीप ही दुर्वासा का आश्रम है।[2] इसी वैदर्भ वनमार्ग में इन्दुवदना और मदालसा नामक अप्सराओं के सौन्दर्य और मधुरस्वर के प्रति आकर्षित होने के कारण सामवान् स्त्री रूप में परिवर्तित होने के शाप का भागी होता है। इस प्रकार इस अंक का घटना-चक्र मुनियों का आश्रम और ऋषियों के तपोवन के समीपवर्ती वैदर्भवन का मार्ग है।

द्वितीय अंक के प्रवेशक की घटना विदर्भनगर के चतुष्पथ पर होती है[3], जहां होली के कोलाहल में बच्चों से सताया जाता हुआ जटिल, बधिर ब्राह्मण राजभट से उलझता है और अमात्य से सान्त्वना पाकर चला जाता है। द्वितीय अंक की घटनायें भी विदर्भनगर के मार्ग के चत्वर पर घटित होती है।[4] यहाँ होली खेलने में मग्न वसन्तक

---

१. स्थानं मुनीनामाश्रमप्रान्तः। 'सामवतम्' पृ० २४।

२. सहि, सुलहकोवस्स दुर्वासस्स अस्समसमीवे णोचिदं चिरं अवट्ठातुं, ता गच्छेम्ह। वही ४७।

३. स्थानं विदर्भनगर्याश्चतुष्पथम्। 'सामवतम्' पृ० ५०।

४. ततः प्रविशति पटीक्षेपेण चत्वरस्थः मांजिष्ठोदकपात्रजलयन्त्रसहितः झर्झरहस्तो वसन्तकः। 'सामवतम्' पृ० ५४।

को बान्ध कर राजभट ले जाता है। अब नगर-मार्ग पर सामवान् और सुमेधा जाते हुये दिखाई देते हैं।[१] इनके साथ देवशर्मा भी है। ये तीनों राजमार्ग पर घूमते हुये राजद्वार तक जाते हैं।[२] यहाँ से ये सायंकालीन कृत्यों के सम्पादन के लिये जाते हैं और यहाँ पर विदूषक आता है। विदूषक राजोद्यान से आती हुई नृत्य की ध्वनि को सुन कर[३] वहां होने वाली राजसभा में जाता है। राजोद्यान में ही सभा की समाप्ति के साथ अंक समाप्त होता है। इस प्रकार द्वितीय अंक के प्रवेशक और द्वितीय अंक की घटनाओं का स्थान राजमार्ग और राजोद्यान हैं।

तृतीय अंक के विष्कम्भक की घटना का स्थान नगरप्रान्त है।[४] यहां होली के मद से प्रसन्न कलि अपना कथन प्रस्तुत करता है। तृतीय अंक की घटनायें नगर-वीथी से[५] प्रारम्भ होती हैं। यहां महाराज चित्रांगद की महिषी सीमन्तिनी के पूजोद्यान का रक्षक उपद्रव करते हुये बच्चों को भगाता है।[६] इसी स्थान पर पुरोहित और वसन्तक का संवाद होता है और पुनः इसी स्थान पर इस पुरोहित के जाने के पश्चात् राजा का पुरोहित देवशर्मा उपस्थित होता है। देवशर्मा के चले जाने पर वसन्तक भी राज सभा में जाने की अभिलाषा से जाता है।[७] इसी स्थान पर देवशर्मा, सामवान् और सुमेधा राजप्रसाद की ओर जाते हुये दिखाई देते हैं। वे विभिन्न राज-द्वारों को देखते हुये राजसभा तक पहुँचते हैं।[८] इसके बाद घटनायें राजसभा में ही घटित होती हैं। इस प्रकार इस अंक की घटनाओं का स्थान नगरप्रान्त, नगरवीथी, राजमार्ग, राजद्वार और राजसभा हैं।

चतुर्थ अंक के विष्कम्भक का स्थान किसी ग्राम का प्रान्तभाग है, जो लुटेरों द्वारा लूटा और जलाया गया है। इससे दो कोस की दूरी पर रुक्म ग्राम है[९] और पास में ही कृष्णवर्त्मा ग्राम है।[१०] इस ग्राम में प्रवेश करने पर उसी स्थल पर भिक्षु

१. ततः प्रविशतो गमनं नाटयन्तौ सामवत्सुमेधसौ। 'सामवतम्' पृ० ५७।
२. राजद्वारमेतत्। 'सामवतम्' पृ० ६२।
३. अस्सिंजेव्व राउज्जाणे—(विचार्य) ता को वि णच्चइ का वि वा......(सकूर्दनम्) मुद्धा मुद्धा ता लहुं जेव्व गच्छेमि। सामवतम् पृ० ७१-७२।
४. स्थानं नगरप्रान्तः। 'सामवतम्' पृ० ८१।
५. स्थानं नगरवीथी। 'सामवतम्' पृ० ८६।
६. मढाः किं ण प्येक्खध एदं महोराअचन्दंगदस्स पट्टरणीए सीमन्तिणीए पूजोज्जाणं त्ति? पलाअध पलाअध। 'सामवतम्' पृ० ८६।
७. हद्धी हद्धा राअसमं जेव्व गच्छेमि दाव। सामवतम् पृ० ६८।
८. अहो द्वारदेशत एव विलोक्यते शोभालोभावहा महाराजसभा। 'सामवतम्' पृ० १०४।
९. अधुनैव मया इतो इतो गव्यूत्यन्तरस्थस्य रुक्मग्रामस्य विलक्षणदशा दृष्टा। 'सा०' १२४।
१०. इतो वामतश्चापरो ...... एको ग्रामोऽस्ति... यं जनाः कृष्णवर्त्मेत्याख्यान्ति। 'साम०' १२६।

की ब्रह्मचारी से भेंट होती हैं। चतुर्थ अंक का घटना-चक्र वनमार्ग से प्रारम्भ होता है। सामवान् और सुमेधा सीमन्तिनी के पूजागृह से निकल कर वनमार्ग द्वारा [1] अपने पिता के आश्रम की ओर चल पड़े हैं। इस वनमार्ग में सुमेधा पर आसक्त हुई सामवती प्रणय की प्रार्थना करती है और सुमेधा शीघ्रता से उसे वन से बाहर ले जाता है। तदनन्तर इसी वन मार्ग में ब्रह्मचारी और भिक्षु दिखाई देते हैं। इस घटना के पश्चात् सारस्वत और वेदमित्र के आश्रम प्रान्त में [2] दोनों मुनियों और ब्रह्मचारी के वार्तालाप के साथ चतुर्थ अंक समाप्त हो जाता है। इस प्रकार चतुर्थ अंक के विष्कम्भक का स्थान विदर्भदेश के एक ग्राम का प्रान्त भाग है और चतुर्थ अंक की घटनाओं का स्थान वनप्रान्त और ऋषियों के आश्रम का प्रान्त भाग है।

पंचम अंक के विष्कम्भक का स्थान नदी की धारा से प्रारम्भ होकर नदीतट पर समाप्त होता है। अमात्य नौका से नदीमार्ग द्वारा जा रहा है।[3] आंधी से नौका डूब जाती है। अमात्य प्रातःकाल के समय नदी तट पर मूर्छित पड़ा हुआ मिलता है।[4] पंचम अंक की घटनाओं का स्थान राजभवन है।[5] रात में भयंकर स्वप्न देखने से व्याकुल राजा पुरोहित को राजभवन में बुलाता है।[6] राजभवन में ही अमात्य को बुलाया गया[7] और यही पर क्रोधित सारस्वत राजा को दण्ड देने के लिये प्रवेश करते हैं।[8] राजा की आराधना से आविर्भूत भगवती अम्बिका[9] के वर से सन्तुष्ट होकर और राजा के विनय से प्रसन्न होकर सारस्वत अपने तपोवन लौट जाते हैं।[10] इस प्रकार पंचम अंक के विष्कम्भक का स्थान नदी और नदी-तट तथा पंचम अंक की घटनाओं का स्थान राजभवन है।

षष्ठ अंक के विष्कम्भक में विल्व वन में स्थित भिक्षुक अपने आश्रम की ओर जाते हुये सारस्वत को देख रहा है।[11] इसके बाद षष्ठ अंक की सम्पूर्ण घटनायें सारस्वत और वेदमित्र के आश्रम में होती हैं। विरही सुमेधा अपनी वेदना को और प्रिय-मिलन की अभिलाषिणी सामवती अपनी आन्तरिक पीड़ा को तपोवन में ही व्यक्त

१. अधुनैव सामवान् सुमेधाश्च......इत एव कानननमार्गं गच्छतः। 'सामवतम्' पृ० १३१।
२. स्थानम्—सारस्वतसुमेधसोराश्रमप्रान्तः। 'साम०' १६३।
३. स्थानं नदी। 'सामवतम्' पृ० १७०।
४. स्थानं नदीतटः पुलिनलग्नस्य चामात्यस्यार्द्धमूर्छितस्य प्रवेशः। 'सामवतम् पृ० १७४।
५. स्थानं राजशयनशाला। 'सामवतम्' पृ० १७७।
६. आः कथं मम घोरः स्वप्नः? ...मालतिके उच्यतां प्रतीहारौ यत् सपदि पुरोहितमानय। 'सामवतम्' पृ० १७८-१७९।
७. यदि अमात्यश्रीकान्तः स्वभवने वर्तेत तत् स सूचनीयो यच्छीघ्रमेवाहं तं दिदृक्षे। 'सा०' १८२।
८. प्रतीहारे निष्क्रान्ते झटिति प्रविशति क्रुद्धः सारस्वतः। सामवतम् पृ० १८४।
९. ततः सतेजःपुंजप्रचारमाविर्भवति जगदम्बिका। 'सामवतम्' पृ० १९२।
१०. गच्छाम्यहमधुना विवाहकार्यं निवर्त्तयितुम्। 'सामवतम्' पृ० १९७।
११. स्थानं बिल्ववनम्। सामवतम् पृ० १९९।

करते हैं। तपोवन में ही दोनों का विवाह सम्पन्न होता है। इस प्रकार षष्ठ अंक के विष्कम्भक की घटना का स्थान बिल्ववन और षष्ठ अंक की घटना का स्थान सारस्वत का आश्रम है।

सम्पूर्ण नाटक की कथावस्तु के आलोचन से यह निश्चय होता है कि नाटकीय घटनायें तीन स्थानों पर घटित हुई हैं। सारस्वत-वेदमित्र का आश्रम, वनप्रान्त और राजप्रासाद सहित विदर्भनगर। नाटक के प्रथम अंक की घटना का स्थान आश्रम और विदर्भदेश का वनप्रान्त है, द्वितीय तथा तृतीय अंक की घटनाओं का स्थान विदर्भनगर और राजप्रासाद हैं, चतुर्थ अंक वनप्रान्त और सारस्वत-वेदमित्र के आश्रम में घटित हुआ है, पंचम अंक की घटनाएँ राजप्रासाद में और षष्ठ अंक की घटनायें मुनियों के आश्रम में घटित हुई हैं। इस प्रकार कवि ने मुनियों के आश्रम से कथा को प्रारम्भ करके वहीं पर उसकी समाप्ति की है।

(ख) स्थान वर्णन

'सामवतम्' नाटक में स्थानों के वर्णन में काव्य के चमत्कार का प्रदर्शन ही अधिक है। कुछ विशिष्ट वर्णनों को यहां प्रदर्शित किया जाता है—

मिथिला—नाटक की प्रस्तावना में कवि ने महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह (जिनको यह नाटक समर्पित किया गया था) के देश मिथिला का वर्णन किया है। विद्या के प्रेमी कवि मिथिला के वर्णन में भौगोलिक या प्राकृतिक विशेषताओं के स्थान पर उस देश की विद्वता के गौरव को प्रस्तुत करते हैं। जिस मिथिला देश को कमला नाम की नदी रेणुकणों में विलोडित करती हैं[1], उस देश में विद्यापति नाम के कवि हुये। रसिक-गण उनके गीतों को आम्र-कुंजों में मित्रों के साथ गाते हैं।[2] इस नगरी में अन्य अनेक पण्डित और उत्तम कवि हुये[3], सकल शास्त्रों में पारंगता विदुषी पत्नी के स्वामी मण्डनमिश्र,[4] षड्दर्शनों पर टीकाओं की रचना करने वाले[5] वाचस्पति पण्डित[6], पण्डित पक्षधर[7] और चिन्तामणि नामक न्यायग्रन्थ की रचना करने वाले गंगेश पण्डित इसी देश में हुये।[8] यही पर देवों से भी वन्दनीय भगवती सीता ने जन्म लिया।[9]

विदर्भवन और तपोवन—सुमेधा और सामवान् वन-मार्ग से विदर्भनगर की ओर जा रहे हैं। वन की प्राकृतिक सुषमा को देखकर उनका मन प्रसन्न हो जाता

---

१. 'सामवतम्' १.१० ।
२. 'सामवतम्' १.११ ।
३. ,, १.१२ ।
४. ,, १.१३ ।
५. ,, १.१५ ।
६. ,, १.१४ ।
७. ,, १.१६ ।
८. ,, १.१७ ।
९. ,, १.१८ ।

है। वहां मधुर जल से युक्त झरने, वायु से हिलते हुये दिव्य फल और सुगंधित कदली के पत्रों की वायु थके हुये पथिकों की सदा सेवा करते हैं।[१] एक स्थान पर तमाल-वृक्ष के पत्तों में छिपा हुआ सफेद कबूतर बैठा है जो अन्धकार से बद्ध चन्द्रमा प्रतीत होता है।[२] फल, पुष्प और पात्रों से युक्त वृक्षों के समूह पथिकों को आनन्द प्रदान करते हैं।[३] वृक्षों में बैठी हुई और आम की मंजरियों का भक्षण करने वाली कोयलें मीठे राग सुनाती हैं।[४] इस वन में महर्षियों के आश्रम भी विद्यमान हैं।[५] इनका अनुमान इससे लगता है कि ऋषियों द्वारा कुशलतायें उखाड़ ली गई हैं, वृक्ष यज्ञ के धूम से श्याम हो गये हैं, मनुष्यों के भय से रहित मृग यहां घूमते हैं[६] और ऋषि-कन्याओं द्वारा पालित सुन्दर बालों वाला खरगोश घूमता हुआ दिखाई देता है।[७] इस वन में मुनियों द्वारा नीचे से वृक्षों के फल तोड़ लिये जाने के कारण ऊंचाई पर फल-पुष्प दिखाई देते हैं, झरनों के जल में तिल और भूमि पर अक्षत एवं पुष्प दृष्टि-गोचर होते हैं।[८]

विदर्भवन में एक ओर कवि ने जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन किया है, वहां दूसरी ओर उसे ऋषियों के समुदाय से युक्त करके धार्मिक भावना से भी संभृत कर दिया है।

राजप्रासाद—कवि ने विदर्भदेश के राजप्रासाद का उदात्त वर्णन किया है। इसमें राजद्वार की शोभा का वर्णन मुख्य रूप से है। राजप्रसाद बहुत सुन्दर बना हुआ है। उसके कवाट वृक्षों की शोभा को प्रकट कर रहे हैं। कवाटों पर जड़ी हुई मरकत-मणियां वृक्षों के पत्र हैं, हीरे पुष्प हैं, माणिक्य फल हैं और सोने की चित्र-कारी से लटकते हुये पक्षी हैं।[९] राजद्वार की खिड़कियों पर सोने के पिंजरे लटके हुये हैं। इनमें तोते, कोयल, चातक, चकोर और चक्रवाक कलरव करते हैं।[१०] राजप्रसाद के द्वार के ऊपर निरन्तर दुन्दुभि बजती है। उसके ऊपर बना हुआ मणिनिर्मित मयूर सौन्दर्य को उल्लसित करता है।[११] राजसभा में जाने के लिये तीन द्वारों को पार करना पड़ता है। प्रथम, और द्वितीय द्वारों के बीच में कृत्रिम कमल बने हुये हैं, जिन्हें वास्तविक समझ कर मकरन्द के पान की लालसा से उन पर भौंरे अपना मुख टकराते हैं।[१२] एक कमरे में कृत्रिम चटका है जो कूजन करती हुई कभी अपने पंखों को सिकोड़ती है, कभी हिलाती है, कभी फैलाती है और कभी खोलती है।[१३] । वहां

---

१. 'सामवतम्' १.४६।
२. 'सामवतम्' १.४७।
३. ,, १.४६।
४. ,, १.५०।
५. ,, पृ० ३६।
६. ,, १.५१।
७. ,, १.५२।
८. ,, १.५३।
९. ,, २.११।
१०. ,, पृ० ६३-६४।
११. ,, २.१२।
१२. ,, ३.१३।
१३. ,, ३.१४।

पर एक मुकुरभवन भी है। इसमें अनेक प्रकार के शीशे लगे हैं जो सम, नतोदर और उन्नतोदर हैं। इनमें प्रतिबिम्बित होकर एक ही व्यक्ति हजारों हाथों, सिरों और पैरों वाला दिखाई देता है।[१] द्वितीय द्वार पर दुन्दुभि ध्वनि से मयूर नृत्य कर रहे हैं।[२] यहां प्रतिहार निरन्तर पहरा देते हैं।[३] इस स्थल पर एक ओर सुन्दर सरोवर है, जिसमें कमलों और कुमुदनियों पर भ्रमर मंडराते हैं। यह चारों ओर चन्द्रकान्त-मणियों से जटित है। चन्द्रकिरणों के स्पर्श से प्रस्रवित मणियों के जल से भरे हुये इस सरोवर में कमलों का पीला पराग बिखरा हुआ है। सुन्दर सारसों से यह शोभित है।[४] सरोवर के स्फटिक निर्मित सोपानों के ऊपर बिखरे हुये मालती के पुष्परूप मोतियों को चन्द्रमा का अमृत समझ कर हंस तृप्त होते हैं।[५] इसी कक्षा में सुन्दर उद्यान है जिसमें सुन्दर अशोक के वृक्ष ललनाओं के पादाघात के कारण उनके नूपुरों से गिरे हुये मोतियों से आवृत हैं और लाख की लालिमा से लाल हैं।[६] इसके बाद तृतीय राजद्वार स्थित है। यह मानों विश्वकर्मा का बनाया हुआ है। इसकी दीवारों पर मरकतमणि निर्मित कण्ठ वाला, पद्मराग-जटित पंखों वाला, रजत-निर्मित नेत्रों वाला और नील ताराओं से अंकित पुच्छ वाला मयूर बना हुआ है। मयूर की चोंच में वायु से हिलती हुई मोतियों की माला सुशोभित है।[७] राजद्वार की बलभियों पर चांदी के बने हुये सुन्दर चंचुओं वाले, निर्मल माणिक्य-रचित सुन्दर चक्षुओं वाले कृत्रिम कपोतशावक बने हुये हैं। तृतीय द्वार से राजसभा दृष्टिगोचर होती है।

राजसभा—राजसभा के ऊपर एक सुन्दर वितान तना हुआ है जो स्थापित किया हुआ तारक-मण्डल से खचित संकुचित आकाश सा प्रतीत होता है। इसके किनारों पर पद्मराग, वैदूर्य, मरकत, माणिक्य और हीरे के बने हुये एवं मोतियों से सुशोभित कृत्रिम फूलों के गुच्छ सुवर्ण-श्रृंखलाओं द्वारा लटक रहे हैं।[८] राजसभा में राजा अपने प्रियजनों, मंत्री, विदूषक आदि के साथ विशेष अवसरों पर यथा—वसन्तोत्सव आदि पर नृत्य, गीत आदि विनोदों का आयोजन करता है। इनमें राजनर्तकी और भ्रूकुंसकों के नृत्य एवं संगीत के साथ साथ हास्य-विनोद भी होते हैं। यह आयोजन आधीरात तक भी चलते रहते हैं।[९] यदि कोई विशिष्ट व्यक्ति इन अवसरों पर राजा से मिलने आता है, उसे वहीं बुला लिया जाता है।[१०]

---

१. 'सामवतम्' ३.१५।
२. 'सामवतम्' पृ० १००।
३. ,, ३.१६।
४. ,, पृ० १००-१०१।
५. ,, ३.१७।
६. ,, ३.१८।
७. ,, ३.१६।
८. ,, पृ० १०४।
६. ,, पृ० ७६।
१०. ,, ,, ६७।

(ग) सामाजिक व्यवस्था

सामाजिक व्यवस्था काल्पनिक है और इसमें कवि की स्वयं की आस्थायें व्यक्त होती हैं।

वर्णव्यवस्था—व्यास जी ने समाज को चार वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया है। इनमें क्षत्रिय अर्थात् राजा नीतिनिपुण और शासन करने में समर्थ, ब्राह्मण विद्या से युक्त, वैश्य व्यापार करने वाले और शूद्र सभी वर्गों की सेवा करने वाले होने चाहिये।[1] नाटक में ब्राह्मणों का चरित्र मुख्य है। ब्राह्मण समाज में सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इनके दो वर्ग हैं—एक तो वे जो तपोवनों में रह कर तपस्या करते हैं, दूसरे वे जो नगरों में रह कर पुरोहित का कार्य करते हैं। कुछ ब्राह्मण विदूषक आदि के रूप में भी हैं, पर वे भोजन के लोभी होते हैं और इस प्रकार मांग मांग कर ब्राह्मणत्व को भी लज्जित करते हैं।[2] तपोवनों में रहने वाले ब्राह्मण ऋषियों का जीवन बहुत सरल होता है। वे वल्कल धारण करते हैं, अंगुली में दर्भ पहिनते हैं, जटायें रखते हैं, पर्णकुटियों में रहते हैं आसनों पर सोते हैं और यज्ञ आदि करते हैं। धन के लिये वे राजा पर ही आश्रित रहते हैं।[3] उनकी तपस्या का प्रभुत्व बहुत अधिक है और वे अपने क्रोध की हुंकार से ही क्षत्रियों को भस्म कर देने में समर्थ होते हैं।[4] पुरोहित का कार्य करने वाले ब्राह्मण अपने यजमान के हितचिन्तन में रहते हैं। कवि की धारणा है कि ब्राह्मणत्व की महती शक्ति होती है और जो ब्राह्मणों को कुपित करता है, उसकी दुर्गति होती है।[5] राजा का कर्तव्य है कि वह कभी भी ब्राह्मणों को कुपित न करे।[6]

धार्मिक-विश्वास—व्यासजी सनातनधर्म के प्रचारक रहे। सनातनधर्म के विषय में अपनी मान्यताओं का कुछ परिचय आपने अपनी 'मूर्तिपूजा', 'अवतार-मीमांसा' आदि पुस्तकों में दिया है। 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' विशुद्ध रूप से प्रचार नाटक हैं। 'मित्रालापः' द्वारा आप सनातनधर्म-समाज की स्थापना करके धर्म का प्रचार करना चाहते थे। आपका मन्तव्य था कि संस्कृत भाषा धर्म की प्रतिष्ठा करने वाली है, उसका प्रचार करना चाहिये। 'धर्माधर्मकलकलम्' में आपने प्रतिपादित किया कि गंगास्नान और तीर्थ अधर्म का विनाश करते हैं,[7] भगवान् का नाम लेने से अधर्म नष्ट होता है। यह अधर्म वेश्याओं, परस्त्रीगमन,[8] मद्य, मांस, काम, क्रोध, मद और मत्सर आदि से बढ़ता है।[9] ब्राह्मसमाजी और आर्यसमाजी ब्रह्मज्ञान एवं वेदों को नष्ट करने वाले हैं।[10] कलियुग पापों का बढाने वाला है। इसका

१. 'सामवतम्' ६.२५।
२. 'सामवतम्' ३.१०-११।
३. ,, पृ० १९७।
४. ,, ५.१७।
५. ,, ५.११।
६. ,, पृ० १९६।
७. 'धर्माधर्मकलकलम्'–३।
८. 'धर्माधर्मकलकलम्'–६।
९. 'धर्माधर्मकलकलम्'–७।
१०. 'धर्माधर्मकलकलम्'–४।

आरम्भ भगवान् कृष्ण के स्वर्गवास के बाद से हुआ। मदिरा पीना, लहसन, गोमांस, म्लेच्छों की भाषा, वेदों का खण्डन, काम, क्रोध आदि कलि की वृद्धि करने वाले हैं।[1] यज्ञ के धूम से कलि अन्धा सा हो जाता है[2] और भगवान् के नाम से भागता है।[3] पुत्र को भी व्यासजी ने धार्मिक महत्व दिया है। वह पिण्ड देता है[4] और वृद्धावस्था में उसके आश्रय से विष्णु का भजन किया जा सकता है।[5]

देवी-देवता— व्यासजी ने नाटकों में अनेक देवताओं की विशेषताओं का उल्लेख और स्तुति की है। शिव वस्त्र-रहित रहते हैं, सर्प ही उनकी सम्पति हैं, उनके मस्तक की जटायें चन्द्रकला से अलंकृत रहती हैं और उन्होंने कामदेव को नष्ट कर दिया है।[6] उनकी सम्पत्ति शूल, सर्प, कपाल और डमरू हैं।[7] उनका एक रूप अर्द्धनारीश्वर भी है, जिसका आधा शरीर शिव (पुरुष) रूप और आधा शरीर पार्वती (स्त्री) रूप है।[8] गणेश सबको सफलता प्रदान करने वाले हैं।[9] उनके पदकमलों का गान करने से मनुष्य महिमा को प्राप्त करता है।[10] कृष्ण विष्णु के अवतार हैं— उन्होंने प्रह्लाद को आनन्दित किया था, ध्रुव को स्थिर किया था, नन्द को आनन्दित किया था और उद्धव को प्रसन्न किया था, वे विनम्रों की रक्षा करने वाले गोपाल-बाल हैं[11] और प्रेम से वंशी बजाते हैं।[12] सूर्य अमृत-रस से भरी हुई किरणों से मनुष्यों को निष्पाप करता है।[13] उसके उदय होने पर सब मनुष्य अपने अपने कार्यों में प्रवृत्त हो जाते हैं।[14] भगवती दुर्गा जगदम्बिका हैं। विष्णु और ब्रह्मा को वे ही महत्व प्रदान करती हैं। संसार के स्वामी, हलाहल का पान करने वाले और सिर पर गंगा को धारण करने वाले शिव को वे गौरव प्रदान करती हैं। उन्होंने महिषासुर, चण्ड और अन्य दैत्यों का वध किया। वे राक्षसों का विनाश करने वाली कालिका हैं। उनका क्षण भर भी भजन करने से संसार के दुःख दूर हो जाते हैं। पार्वती-परमेश्वर रूप से उनका पूजन करने से व्यक्ति में अपूर्व सामर्थ्य उत्पन्न होता है। अपने भक्तों की भक्ति से प्रसन्न हो कर वे आविर्भूत होती हैं[15] और मनोकामनायें पूरी करती हैं। भक्तों के किये को वे अन्यथा नहीं करतीं।[16]

---

१. 'सामवतम्' १.४३। २. 'सामवतम्' पृ० ३२।
३. ,, पृ० ३४। ४. ,, ५.१५।
५. ,, ५.१६। ६. ,, १.१।
७. ,, १.३। ८. ,, ४.१५।
९. ,, १.२। १०. ,, १.३४।
११. ,, पृ० ९०। १२. ,, २.१६।
१३. ,, ३.८। १४. ,, ३.६।
१५. ,, पृ० १९१। १६. ,, पृ० १९२।

लोक-विश्वास—'सामवतम्' नाटक में कवि ने अनेक लोक-विश्वासों को प्रकट किया। कई चिह्न अशुभ-सूचक होते हैं। बाईं भुजा[1] और बांई आंख का फड़कना[2] अमंगल के सूचक हैं। छींकना अशुभ की सूचना देता है।[3] विघ्नों के विनाश के लिये गणेश का स्मरण करना चाहिये।[4] प्रभातप्राया रजनी में देखे गये स्वप्न सत्य सिद्ध होते हैं। सारस्वत, राजा और सामवती द्वारा इस समय देखे गये स्वप्न सत्य सिद्ध हुये। तपस्वियों और योगियों में अद्भुत शक्तियां होती हैं। वेदमित्र रक्षा करने में समर्थ बिल्वपत्र जटाओं में धारण करते हैं।[5] ब्रह्मचारी राख मल कर शरीर को नीरोग कर देते हैं,[6] एक पत्ते का रस पैरों पर लेप करके आकाश-गमन की सामर्थ्य उत्पन्न कर देते हैं[7], उनके द्वारा दिया गया एक पत्ता खाने से एक मास तक भूख नहीं सताती[8] और वे योग-दृष्टि से त्रिकाल की बात जान सकते हैं।[9]

राजा का कर्त्तव्य— व्यास जी ने 'सामवतम्' नाटक में राजा के कर्त्तव्यों का भी निर्देश किया है। राजा को चाहिये कि वह अपना हृदय स्वच्छ रखे, जिससे कोई अनुचित कार्य न हो।[10] उसके राज्य में प्रजायें प्रसन्न रहें, देवता और ब्राह्मण सन्तुष्ट रहें एवं राज्य में प्रभूत धन सम्पत्ति रहे।[11] राजा को दानी और शत्रु-विजेता होना चाहिये। वह प्रजाओं से षष्ठ अंश लेकर उनकी रक्षा करता है।[12] राजा को कभी भी अत्याचारी नहीं होना चाहिये। यदि राजा ही प्रजा पर अत्याचार करेगा तो कौन उसकी रक्षा करेगा।[13] यदि राजा प्रजा पर अत्याचार करता है, मुनियों की अवहेलना करता है और ब्राह्मणों का तिरस्कार करता है तो उस पर अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आती हैं एवं राज्य में उपद्रव होते हैं।

शिक्षा और शास्त्र— यद्यपि व्यास जी ने शिक्षा का विशेष वर्णन नहीं किया, तथापि कहीं-कहीं कुछ संकेत अवश्य हैं। आपने कुछ शास्त्रों की विशेषतायें कही हैं। ऋषियों के आश्रमों में रहने वाले विद्यार्थी वेदान्त, सांख्य, न्याय तथा व्याकरण का अध्ययन करते हैं।[14] न्याय शास्त्र में प्रतिपादित तर्कों से अन्य सभी शास्त्र पराजित हो जाते हैं[15], हेतु द्वारा अनुमान किया जाता है तथा अनेक हेतु व्यभिचारी भी होते हैं।[16] वेदान्त-सूत्र स्वयं प्रकाशित ब्रह्म की व्याख्या करते हैं[17], इनका सिद्धान्त ब्रह्म सत्य और जगत्-मिथ्या है।[18] विद्वान् मनुष्य ज्ञान प्राप्त करके मुक्त होकर बन्धन-

१.	'सामवतम्'	पृ० २५।	२.	'सामवतम्'	४.५१।
३.	,,	,, १४३।	४.	,,	पृ० २६।
५.	,,	,, ३०।	६.	,,	,, १७४।
७.	,,	,, १३३।	८.	,,	,, १३२।
९.	,,	४.१४।	१०.	,,	५.२६।
११.	,,	४.२७।	१२.	,,	३.२३।
१३.	,,	३.३८।	१४.	,,	पृ० २८।
१५.	,,	१.३५-३६।	१६.	,,	पृ० ११०।
१७.	,,	६.४।	१८.	,,	४.५२।

रहित हो जाते हैं।[1] सांख्य दो प्रकार का है— सेश्वर और निरीश्वर।[2] इसमें सत्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों का कथन किया जाता है।[3] योग की अनेक शक्तियां हैं। शीतली मुद्रा से पिपासा की शान्ति होती है।[4] प्राणायाम करने से सभी अंग क्षण भर में शीतल हो जाते हैं[5] और इसके द्वारा योगी दूसरों के हृद्गत भावों को जान लेते हैं।[6] योग-दृष्टि से विधि की सम्पूर्ण सृष्टि देखी और सुनी जा सकती है।[7] ज्योतिषशास्त्र में गणना की जाती है।[8] वेद आर्यों की मूल पुस्तक है, कलियुग में पाखण्डियों ने वेदों को खण्डित किया, धूर्तों ने इसे काटा[9] और आर्यसमाजियों ने इसे विदीर्ण कर दिया।[10] स्त्रियां मन्त्रों को ग्रहण करके अनुष्ठान करती हुई तपस्या करती हैं।[11] संगीत की महिमा से जड़, चेतन, पक्षी आदि भी आनन्द-मग्न हो जाते हैं।[12] यह मृग, सर्प, मर्त्य, अमर्त्य सभी को मोहित करता है।[13] नृत्य और गीत इसकी दो मुख्य शाखा हैं। व्याकरण पाणिनीयशास्त्र के नाम से प्रसिद्ध है।[14] इसका प्रथम सूत्र "वृद्धिरादैच्" है, यह धातुओं और सूत्रों से युक्त है तथा इसके द्वारा शब्द सिद्ध किये जाते हैं।[15] इसके नियमों के अनुसार "दृश" धातु को "पश्य" आदेश होता है,[16] स्त्रीलिंग शब्दों को पुंवद्भाव होता है।[17] इसमें अनेक शब्द सकारान्त, अदन्त और उदन्त हैं, वृद्धि और गुण संज्ञायें हैं[18], आख्यात (तिङन्त) हैं, सन्धियां है, बहुव्रीहि और अव्ययीभाव समास हैं।[19]

प्रणय और विवाह— व्यास जी ने स्वच्छन्द प्रणय को विषयलोलुपता मान कर प्रश्रय नहीं दिया। वे प्रणय का उद्देश्य विवाह मान कर विवाहोत्तर प्रणय को उचित समझते हैं। विवाह के विषय में वे नवयुवकों और नवयुवतियों की स्वतन्त्रता को उचित नहीं समझते। उनकी धारणा है कि माता पिता द्वारा वैदिक विधि से कन्या का प्रदान करना ही उचित है।[20] विवाह के ८ प्रकारों में गान्धर्व विवाह के शास्त्रोक्त होते हुये भी उन्होंने इसे उचित नहीं समझा। माता पिता की अनुमति प्राप्त किये बिना विवाह करना यौवन की उच्छृंखलता और हठ है। विवाह के लिये कन्या, कन्याप्रतिगृहीता और कन्यादाता इन तीनों की अपेक्षा होती है।[21] सम्भवतः

---

१. 'सामवतम्' १.५८।
२. 'सामवतम्' ४.४६।
३. ,, १.३६।
४. ,, पृ० १२९।
५. ,, ४.१०।
६. ,, ४.५३।
७. ,, ४.१४।
८. ,, १.३६।
९. ,, ३.३।
१० 'धर्माधर्मकलकलम्'–४।
११. ,, ६.६।
१२. 'सामवतम्' पृ० ३८-३९।
१३. ,, १.५४।
१४. ,, ,, २८।
१५. ,, १.५६।
१६. ,, ४.२६।
१७. ,, ४.१३।
१८. ,, २.९।
१९. ,, पृ० ११०।
२०. ,, पृ० १४५।
२१. ,, ,, २५।

व्यास जी ने वर के लिये अपने माता-पिता की अनुमति प्राप्त करना अधिक आवश्यक नहीं समझा। सुमेधा सामवती से उसके पिता की अनुमति प्राप्त करने के लिये कहता है, अपने पिता का उल्लेख नहीं करता। विवाह के अवसर पर वे दान करना आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं।[1] इससे विवाह की शोभा होती है। व्यास जी ने पुनर्विवाह को पतिव्रत्य का नष्ट करने वाला और अधर्म का हेतु कहा।[2] विवाह-विधि का कुछ वर्णन उन्होंने किया है—

विवाह-संस्कार विवाह-मण्डप में होता है, इसमें एक ओर वर तथा दूसरी ओर वर के बन्धु बैठते हैं। यह मण्डप पुष्प, धूप और चन्दन से सुवासित होता है।[3] मण्डप में सखियां कन्या को लाती हैं।[4] संस्कार के समय हवन किया जाता है।[5] कन्या का पिता अपनी पुत्री का हाथ वर के साथ में देता है। इस समय सब स्नेही जन अपने अपने उपहार भेंट करते हैं।[6] संस्कार के बाद वर कन्या का हाथ पकड़ कर उसे लाता है।[7] इस अवसर पर मंगल-गीत गाये जाते हैं और वर-वधू पर अक्षत बखेरे जाते हैं।[8] कन्या का पिता वर के पिता और सम्बधियों का सब प्रकार से सत्कार करता है। विदा के समय वह उसे दूर तक छोड़ने जाता है और कन्या को श्वसुरकुल के लिये विदा करके ब्राह्मणों को दान देता है।[9]

उत्सव— व्यास जी ने 'सामवतम्' नाटक में होलिकोत्सव (वसन्तोत्सव) का वर्णन किया है। यह फाल्गुन मास की पूर्णिमा को मनाया जाता है। कवि के होलिकोत्सव के वर्णन से आधुनिक होली का स्वरूप स्पष्ट रूप से लक्षित होता है। होली के दिन बालक उपद्रव करते हैं। रास्ते में चलते हुये पथिकों पर रंग डालते हैं और उनके क्रोध की परवाह नहीं करते। उस समय कोई गाली देता है, कोई गुलाल डालता है और कोई ताली बजा बजा कर हंसता है।[10] इस दिन साधारण जन रंग और पिचकारियां लेकर सड़कों पर निकल जाते हैं और रंग डालने के साथ साथ होली के गीत गाते हैं।[11] इस समय अबीर से सब दिशायें भर जाती हैं, केसर के रंगों से घरों की दीवारें अरुणिम हो जाती हैं, नागरिक रंगों से भीगे वस्त्र पहिने ढोल बजा बजा कर गीत गाते हैं। होली के दिन सायंकाल एवं रात्रि में राजाओं और धनियों के प्रासादों में नृत्य-संगीत के कार्यक्रम हुआ करते हैं। इनमें चारण और नर्तकियां अपनी कला का प्रदर्शन करती हैं।[12] ये कार्यक्रम आधी आधी रात तक हुआ करते हैं।[13] व्यास जी का मन्तव्य है कि राज्य की ओर से इस बात का प्रबन्ध

---

१. 'सामवतम्' पृ० २५।

२. पातिव्रत्ययशोध्वंसो य आसीद् भारतस्त्रियाम्।
पुनर्विवाहबाणेन सोऽपि विद्धो मयाधुना। 'धर्माधर्मंकलकलम्' -८॥

३. 'सामवतम्' ६.१४।

४. 'सामवतम्' पृ० २१६।

५. ,, पृ० २१७।

६. ,, ६.९।

७. ,, ,, २११।

८. ,, पृ० २१९।

९. ,, ,, २००-२०१।

१०. ,, २.५।

११. ,, २.३।

१२. ,, २.२४-२५-२६,३९।

१३. ,, पृ० ७९।

होना चाहिये कि होली के कोलाहल में पूजनीय व्यक्तियों और अनिच्छुकों पर रंग न डाला जावे।[1] हास्य वही होना चाहिये जो दूसरों को प्रमुदित करे।[2]

(घ) प्रकृति-चित्रण

'सामवतम्' नाटक का प्रकृति-चित्रण यद्यपि 'शिवराजविजय' के सदृश उज्ज्वल नहीं है, तथापि अनेक प्राकृतिक वर्णनों में कवि की कल्पना का प्रांजल चमत्कार अभिव्यक्त हुआ है। इस नाटक में व्यास जी ने प्रकृति को आलम्बन और उद्दीपन दोनों प्रकार के विभावों के रूप में उपस्थित किया है। तपोवन का प्रकृति-चित्रण शान्त-रस के आलम्बन विभाव और आंधी एवं मेघों का गर्जन भयानक-रस के आलम्बन विभाव के रूप में प्रस्तुत है। चतुर्थ अंक की वन्य प्रकृति उद्दीपन विभाव है। यह सामवती की प्रणय-भावनाओं को उद्दीप्त करती है और सुमेधा द्वारा रति के लिये निषेध कर देने पर विप्रलम्भ-शृंगार का उद्दीपन विभाव बनती है। व्यास जी ने प्रकृति-चित्रण करते हुये यद्यपि अनेक कवि-प्रसिद्धियों का उपयोग किया है, तथापि अनेक दृश्यों के चित्रण में नितान्त स्वाभाविकता और कवि की प्रकृति निरीक्षण की सूक्ष्मता अभिव्यक्त होती है। कानन की शोभा, मेघों का गर्जन, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि वर्णन प्रतिपादित करते हैं कि व्यास जी ने कवि-प्रसिद्धियों का उपयोग करते हुये भी अपनी प्रकृति-निरीक्षण और प्रकृति वर्णन की प्रतिभा उज्ज्वलता से अभिव्यक्त की है। कवि ने प्रकृति और मानव के सामीप्य का अनुभव किया है और अनेक स्थलों पर नारी-सौन्दर्य को एवं अनेक स्थलों पर मानवीय भावनाओं को प्राकृतिक सौन्दर्य से अनुस्यूत किया है। अप्सराओं के स्मितमात्र से शोभारहित हुआ चन्द्रमा क्षयरोग से ग्रस्त होकर क्षयी कहलाता है।[3] अप्सरा के गले का हार आकाशगंगा की धारा और नूपुर की मणियां तारकपटल के रूप हैं।[4] पुरुष और स्त्री का आलिङ्गन माधवी लता और आम्र वृक्ष के मिलन के सदृश है।[5] व्यास जी द्वारा इस नाटक में किये गये प्रकृति के अंगों के चित्रण का रूप संक्षेप से नीचे दिया जाता है—

वन की शोभा— वन की शोभा इस नाटक में दो स्थानों पर वर्णित हुई है— प्रथम अंक में विदर्भवन के वर्णन में और चतुर्थ अंक में सामवती-सुमेधा के प्रणयप्रसंग में। प्रथम स्थल का निर्देश स्थान वर्णन में किया जा चुका है। चतुर्थ अंक की वन्य-प्रकृति प्रायः उद्दीपन विभाव के रूप में चित्रित हुई है। सामवती और सुमेधा विदर्भनगर से लौटते हुये वनमार्ग से आते हैं। यह निर्जन कानन वसन्त की शोभा से आलिंगित है।[6] चारों ओर लाल पुष्प खिले हैं, पीत पराग बिखरा हुआ है; हरताल सदृश यह पीत पराग भ्रमरों के लग गया है। काले तमाल वृक्षों की पंक्तियों में भ्रमर ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों मदातिरेक को उद्भावित करने वाले कामदेव के

---

१. 'सामवतम्' २.१। २. 'सामवतम्' २.२।
३. ,, १.५७। ४. ,, पृ० ४३।
५. ,, ६.५। ६. ,, ,, १३४।

मनोहर यश को प्रकाशित करने वाले अक्षरों की माला हों।[१] मकरन्द के रस से उन्मादित हुआ भ्रमर मदनपीडिता भ्रमरी के पीछे जाता हुआ[२] मानों गान्धर्व-विवाह का आयोजन कर रहा है।[३] गूंजते हुये भ्रमरों से युक्त सुन्दर कुंजों से आवृत कानन में पुष्परस के कणों से मिश्रित वायु बह रही है, मोतियों से भी सुन्दर पुष्प चारों ओर बिखरे पड़े हैं, कोमल लताओं से आलिंगित वृक्ष पुलकित हो रहे हैं।[४] बसन्त के सुन्दर समय में कोयल की कूक, सुन्दर कुंजों और मदनविह्वला रमणी से अन्वित कानन[५] हृदय को विमोहित कर देने वाला है। प्रकृति का यह रूप मनोहारी होते हुये भी कामज्वाला से पीड़ित व्यक्तियों को व्यथित करने वाला ही होता है। कोयल का मधुर स्वर और आम्र-मंजरियों से प्रसन्न भ्रमरों की झंकार विरहियों के कानों को पीडित ही करती है।[६] मकरन्द-कणों से स्विन्न मलय-पवन अंगों को अग्नि की ज्वालाओं के सदृश जलाता है।[७]

इस कानन की शोभा को कवि ने मकरन्द से सुवासित मलयपवन के समीरण से[८], मधुर कण्ठ वाली कोयलों के गान से[९], मकरन्द से उन्मादित भ्रमरों के गुंजन से युक्त कुंजों के सौन्दर्य से[१०] और लताओं से आलिंगित वृक्षों के उन्माद से[११], अत्यन्त चित्ताकर्षक बना दिया है। कहीं भ्रमर-भ्रमरी का विवाह हो रहा है[१२], कहीं माधवी के पुष्प बिखरे हैं[१३], कहीं लतानिकुंज हैं[१४], कहीं श्वेत पुष्पों का हास्य है[१५], कहीं वृक्षों की शाखायें वायु से हिल रही हैं[१६], कहीं जूही लतायें हैं[१७], कहीं कदम्ब के झुंड हैं[१८] और कहीं तमाल-तरुओं की पंक्ति है।[१९]

कानन की इस मनोहरता में कवि ने श्लेष द्वारा भीषणता के भी दर्शन कराये हैं। मयूर में अग्नि, कदम्ब में सिंह, कुंज में हस्ती, पलाश-वृक्षों में मांसभक्षी पशु, कोविदरा-वृक्षों में भल्लूक, और व्याघ्रपाद् वनस्पति में व्याघ्र की उपस्थिति[२०] की अभिव्यंजना करके कवि ने प्रतिपादित किया है कि प्रत्येक वस्तु की मनोहारिता में भयंकरता के तत्व भी निहित हो सकते हैं।

मेघवर्णन— पंचम अंक के विष्कम्भक में कवि ने मेघों के रौद्र रूप का वर्णन किया है। आंधी आने के साथ ही आकाश में मेघ गर्जन करने लगे।[२१] उनकी गर्जना

१.	'सामवतम्'		४.१५।	२.	'सामवतम्'		४.१६।
३.	,,		४.१७।	४.	,,	पृ०	१३६।
५.	,,		४.३१।	६.	,,	,,	१५१।
७.	,,	पृ०	१५२।	८.	,,		४.३७।
९.	,,		४.३८।	१०.	,,	पृ०	१५६।
११.	,,		४.३९।	१२.	,,		४.१७।
१३.	,,	पृ०	१३६।	१४.	,,	पृ०	१३९।
१५.	,,		४.४०।	१६.	,,		४.४०।
१७.	,,	पृ०	१५५।	१८.	,,	पृ०	१५५।
१९.	,,	,,	१५५।	२०.	,,	,,	१६१।
२१.	,,		५.३।				

अत्यन्त भयंकर और दीनजनों को दुःख पहुँचाने वाली है। मेघों में तलवार के सदृश चमक वाली बिजलियां चमक रही हैं। भयंकर आभा से युक्त, पर्वतों के समान विशाल मेघ आकाश को जल से विहत करते हुये घूमते हैं। ये कभी नीले, कभी पीले, कभी धूसर, कभी पिंगल, कभी हरे, कभी काले और कभी चितकबरे इस प्रकार विविध रूप धारण करते हैं। वायु के वेग से ताडित हुये, समुद्र की लहरों के समान विस्तीर्ण ये मेघ अपने वेग से दिग्गजों को भी भगाने की सामर्थ्य रखते हैं।[1]

चन्द्रोदय —इस नाटक के दूसरे अंक में चन्द्रोदय का सुन्दर वर्णन है। पूर्णिमा का चन्द्र उदय होते हुये रक्त वर्ण का होता है।[2] चन्द्रमा के उदय होने से कैरव खिलते है, समुद्र उद्वेलित होता है, विरही मनुष्यों के चित्त खिन्न होते हैं और सारा संसार चन्द्र की शुभ्र किरणों के कारण मानों दूध से भर जाता है।[3] उदय होते हुये चन्द्र की लालिमा के कारणों की अनेक संभावनायें कल्पित की गई हैं। अपनी सुन्दरियों से वियुक्त चातक सन्यासी हो जावें, अतः विधाता ने मानों उन्हें यह काषाय वस्त्र दे दिया[4], राहु अमावस्या में सूर्य को ग्रस्त करता है और पूर्णिमा में चन्द्रमा को, अतः राहु द्वारा ग्रस्त होने के भय से वह सूर्य के सदृश हो गया[5] अथवा अपनी प्रेयसी कमलिनी को मधुपों के साथ देख कर वह क्रोध से लाल हो रहा है।[6] चन्द्र के कलंक के लिये कवि ने अद्भुत कल्पना की है कि अपनी प्रियाओं से संगत पकड़े भ्रमरों की श्यामता से उसमें कलंक बन गया है।[7] पूर्व में चन्द्रोदय और पश्चिम में सूर्यास्त के दृश्य में भी कवि ने अद्भुत कल्पना की है कि सिन्दूर से भरे हुये सूर्य और चन्द्र भी पश्चिम और पूर्व दिशा में होली खेल रहे हैं।[8]

अर्धरात्रि —द्वितीय अंक में पूर्णिमा की अर्धरात्रि का स्वाभाविक वर्णन है। इस समय किसी स्थान पर पक्षियों का कोलाहल सुनाई नहीं देता, चन्द्रमा आकाश के मध्य में होता है, आंखें नींद से बन्द होने लगती हैं और सारा शरीर शिथिल होने लगता है।[9]

सूर्योदय —तृतीय अंक में सूर्योदय का वर्णन है। सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है और सभी व्यक्ति अपने कार्य में लग जाते हैं। विद्वानों से पूजित सूर्य पूर्व दिशा को अपनी किरणों से व्याप्त कर लेता है। अन्धकार के नष्ट हो जाने से पथिक अपने मार्ग पर चलने लगते हैं, किसान खेतों में हल चलाते हैं और विद्वान् मनुष्य अपने यज्ञ आदि कार्यों को करते हैं।[10] प्रातः काल उदय होते

१.	'सामवतम्'	५.३।	२.	'सामवतम्'	पृ० ६६।
३.	,,	२.२२।	४.	,,	२.१७।
५.	,,	२.१८।	६.	,,	२.१९।
७.	,,	२.२०।	८.	,,	२.२३।
९.	,,	२.२६।	१०.	,,	३.६।

हुये सूर्य ने अपनी प्रेयसी पूर्व दिशा को चन्द्र द्वारा उपभुक्त हुआ देख कर और क्रोध से भर कर उसकी प्रिया कुमुदिनी पर हाथ (कर=हाथ अथवा किरण) डाला, जिससे कमलों द्वारा उपहसित चन्द्रमा कलंक रूप विष को पीकर पर्वतों पर जा गिरा।[1] रात्रि रूपी सर्पिणी से ग्रस्त, चिरकाल से मूर्छित और अनेक पापों से युक्त जीवों को सूर्य के बिना कौन नीरोग कर सकता है।[2]

ऊपर की गई देशकाल की विवेचना से स्पष्ट है कि व्यास जी ने रूपकों में प्रकरण के अनुरूप देशकाल की सृष्टि की है। आपकी इन रचनाओं में देशकाल की अन्विति का ध्यान रखा गया है और पात्रों के अनुरूप शिक्षा तथा सामाजिक व्यवस्था आदि का आयोजन किया गया है। आपने प्रकृति का चित्रण भी उपयुक्त रूप से किया है।

३. अभिनय —

अभिनय नाट्य का प्राणभूत तत्व है। नाट्य को दृश्य काव्य कहा जाता है तथा नाटकीय घटनाओं को रंगमंच पर उपस्थित करके सामाजिकों को दिखलाया जाता है। अतः नाट्य को अभिनेय होकर सामाजिकों के चित्त को आकर्षित करने वाला होना चाहिये।

अभिनय की दृष्टि से रूपकों की समालोचना करने के लिये अभिनेयता पर विचार करने के साथ ही उनकी रंगमंचीय विशेषताओं पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है। नाट्य के अध्ययन से उनकी रंगमंचीय विशेषतायें भी अभिव्यक्त होती है। 'सामवतम्' नाटक में रंगमंच के पर्दों की विशेषतायें हैं जिनका उल्लेख स्वयं कवि ने इस नाटक के उपोद्घात में किया है। अतः 'सामवतम्' की अभिनेयता पर विचार करने के अनन्तर पर्दों की विशेषताओं पर भी विचार किया गया है।

(क) अभिनेयता का शास्त्रीय दृष्टिकोण

अभिनय शब्द अभि उपसर्ग पूर्वक "नी" धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ अभिमुख करना और प्रयोग करना है।[3] नाटकीय घटनाओं और संवादों के अभिनय में शरीर की शाखाओं, अंगों और उपांगों की चेष्टाओं द्वारा अनेक प्रकार के अर्थों को प्रकट किया जाता है।[4] विश्वनाथ के अनुसार अवस्थाओं का अनुकरण करना ही अभिनय है।[5] नाट्य, रूप और रूपक के ये तीनों नाम भी अभिनेयता के सूचक हैं।[6]

---

१. 'सामवतम्' ३.६। २. 'सामवतम्' ३.८।

३. अभिपूर्वस्तु णीञ् धातुराभिमुख्यार्थनिर्णये।
यस्मात् पदार्थान्नयति तस्मादभिनयः स्मृतः। 'भरतनाट्यशास्त्र' ८.६।

४. विभावयति यस्माच्च नानार्थान् हि प्रयोगतः।
शाखांगोपांगसंयुक्तस्तस्मादभिनयः स्मृतः। 'भरतनाट्यशास्त्र' ८.७।

५. भवेदभिनयोऽवस्थानुकारः। 'साहित्यदर्पण' ६.२।

६. अवस्थानुकृतिर्नाट्यं रूपं दृश्यतयोच्यते। रूपकं तत्समारोपात्। 'दशरूपक' १.७।

अभिनय, जिसका ग्रहण प्राचीन नाट्य परम्परा के अनुसार 'यजुर्वेद' से किया गया था, चार प्रकार का होता है—वाचिक, आंगिक, आहार्य और सात्विक।[1] इनमें सबसे प्रधान वाचिक अभिनय होता है और अन्य सब अभिनय इसी की व्यंजना करते हैं।[2] वाचिक अभिनय को पाठ्य भी कहा जा सकता है। पाठ्य की उत्पत्ति 'ऋग्वेद' से हुई।[3] यद्यपि इसका अन्तर्भाव अभिनय में ही हो जाता है, तथापि प्रधान होने से इसे पृथक् कहा गया।[4] आंगिक, आहार्य और सात्विक अभिनयों का ग्रहण 'यजुर्वेद' की अध्वर्यु प्रक्रियाओं से किया गया।[5] वाचिक अभिनय का सम्बन्ध वाणी से है। विभिन्न शब्द, संवाद, सम्बोधन, गीत और जो कुछ भी पढा जाता है, उसका प्रकाशन वाचिक अभिनय द्वारा होता है। शरीर की विभिन्न चेष्टायें, मुख द्वारा हंसना, रोना, मुसकराना आदि नेत्रों के कटाक्ष, भृकुटि आदि विभिन्न कृत्य आंगिक अभिनय के अन्तर्गत ग्रहण किये जाते हैं। आंगिक अभिनय शरीर, मुखज और चेष्टाकृत तीन प्रकार का होता है।[6] वस्त्र, आभूषण आदि की सज्जा आहार्य अभिनय है[7] और विभिन्न भावनाओं और सात्विक भावों का प्रदर्शन सात्विक अभिनय द्वारा किया जाता है।[8]

रूपकों के अभिनय में वृत्तियों का महत्वपूर्ण स्थान है। भरत मुनि ने वृत्तियों

---

१. आंगिको वाचिकश्चैव आहार्यः सात्विकस्तथा।
ज्ञेयस्त्वभिनयो विप्राश्चतुर्धा परिकल्पितः। 'भरतनाट्यशास्त्र' ८.९।

२. वाचि यत्नस्तु कर्तव्यो नाट्यस्येयं तनुः स्मृता।
अंगनेपथ्यसत्वानि वाक्यार्थं व्यंजयन्ति हि। 'भरतनाट्यशास्त्र' १५.२।

३. जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्। 'भरतनाट्यशास्त्र' १.१७।

४. अत एवाभिनयान्तर्भूतत्वेऽपि पृथगुपात्तम्। तद् ऋग्वेदाद् गृहीतम्। 'भरतनाट्यशास्त्र' १.१७ की अभिनवभारती टीका से।

५. आध्वर्यवकर्मप्रधाने तु यजुर्वेदेऽङ्गकर्मणां प्रदक्षिणगमनादिक्रम एव लोहितोष्णीषादेर्नेपथ्यस्य तेषु तेषु च कर्मसु विशिष्टप्रयत्नपुरुषसंपाद्यमानोपष्टम्भात्मनः सत्वस्य सम्भवात् ततोऽभिनयानां ग्रहणम्। 'भारतनाट्यशास्त्र' १.१७ की अभिनवभारती टीका से।

६. त्रिविधस्त्वांगिको दृष्टः शारीरो मुखजस्तथा।
तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखांगोपांगसंयुतः। 'भरतनाट्यशास्त्र' ८.११।

७. आहार्याभिनयो नाम ज्ञेयो नैपथ्यजो विधिः।
तत्र कार्यः प्रयत्नस्तु नाट्यस्य शुभमिच्छता। 'भरतनाट्यशास्त्र' २३.२।

८. 'भरतनाट्यशास्त्र' १.४१-४३।

का आश्रय लेकर ही प्रथम अभिनय किया था ।[1] 'भरत-नाट्य-शास्त्र' की वृत्तियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित पौराणिक गाथा[2] से यह अभिव्यक्त होता है कि नाट्य का अभिनय वृत्तियों द्वारा रस के अनुरूप किया जाना चाहिये । युद्ध करने वालों के शक्ति और उत्साह से सम्पन्न कार्यों को देख कर ब्रह्म कहते हैं कि यही आरभटी वृत्ति है ।[3] इससे ध्वनित होता है कि उत्साह रूप स्थायी भाव का अभिनय करने के लिये आरभटी वृत्ति का प्रयोग होता है । सम्भवतः इसी कारण नाट्यविज्ञान के आचार्यों ने विभिन्न वृत्तियों द्वारा विभिन्न रसों के अभिनय किये जाने का निर्देश किया है । इस प्रकार रस-अभिनय के प्रस्तुतीकरण की विधि को वृत्ति कहा जा सकता है और इसी दृष्टि से उसका वर्गीकरण किया गया प्रतीत होता है ।[4] अभिनेता अभिनय द्वारा विभिन्न भावों का प्रदर्शन करते हैं । विभिन्न भावनाओं का संचालक मन किसी रस-भावना से प्रभावित होने पर चेहरे के भावों, वाणी और शरीर की चेष्टाओं को प्रभावित करता है । शरीर के इस विशिष्ट व्यवहार को भी वृत्ति कह सकते हैं ।[5] विश्वनाथ ने वृत्तियों को नाट्य की जननी कहते हुये नायक आदियों का व्यापारविशेष प्रतिपादित किया । वृत्तियां अभिनयात्मक होने से अभिनेताओं (नटों) की व्यापारविशेष होनी चाहियें । आलम्बन विभाव आदि द्वारा प्रभावित पात्रों की शारीरिक, वाचिक और सात्विक चेष्टायें रसाभिव्यक्ति के उपादान के रूप में अनुभाव नाम से अभिहित की जाती हैं । ये व्यापार जब तक रसाभिव्यक्ति के उपादान के रूप में हैं तब तक अनुभाव कहे जा सकते हैं । शृंगार आदि रसों की अभिव्यक्ति करने वाले उपादानों का अभिनय रंगमंच पर अभिनेताओं द्वारा किया जाता है । इन अभिनेताओं का नायक आदि की भावनाओं से अभिभूत होना आवश्यक नहीं हैं । जब अभिनेता उन नायक आदि पात्रों के रूप में आरोपित होकर अभिनयात्मक व्यापार प्रस्तुत करते हैं, तब वह व्यापार वृत्ति कहा जाना चाहिये । इस प्रकार रसादि-अभिनय के प्रस्तुतीकरण की विधि वृत्ति के नाम से अभिहित हो सकती है ।

वृत्तियां चार प्रकार की होती हैं— भारती, सात्वती, आरभटी और कैशिकी ।[6] भारती वृत्ति वाचिक अभिनय प्रधान होती है, इसमें स्त्रियों का अभिनय नहीं रहता और पात्र संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं । इसका प्रयोग मुख्यतः

---

१. 'भरतनाट्यशास्त्र' १.४१-४३ ।
२. ,, अध्याय-२२ ।
३. ,, २२.१४ ।
४. मदनमोहन घोष द्वारा अनुवादित 'भरतनाट्यशास्त्र'(१९५० ई०) की इन्ट्रोडक्शन पृ० xlviii ।
५. सुरेन्द्रनाथ कृत 'लाज एण्ड प्रेक्टिस आफ संस्कृत ड्रामा' (चौखम्बा १९६१) पृ० ३१९ ।
६. चतस्रो वृत्तयो ह्येताः सर्वनाट्यस्य मातृकाः ।
स्युर्नायकादिव्यापारविशेषाः नाटकादिषु । 'साहित्यदर्पण' ६.१२३ ।

भरत अर्थात् नट किया करते हैं।[1] सात्वती वृत्ति महानुभावता, शौर्य, दान, दया और नम्रता से युक्त होती है। इसमें शोक का अभाव और हर्ष की उत्कटता रहती है।[2] आरभटी वृत्ति में इन्द्रजाल, क्रोध, उद्भ्रान्त आदि चेष्टायें रहती हैं। यह उद्धत वृत्ति है।[3] कैशिकी वृत्ति में संगीत, गीत, नृत्य, लालित्य, माधुर्य और उपभोग आदि का प्राधान्य रहता है । इस अभिनय में मुख्य रूप से स्त्री पात्रों की स्थिति रहती है।[4] वृत्तियों की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण शृंगार रस के अभिनय में कैशिकी वृत्ति, वीर-रस के अभिनय में सात्वती वृत्ति, एवं रौद्र और बीभत्स रसों के अभिनय में आरभटी वृत्ति का प्रयोग किया जाता है। भारती वृत्ति का प्रयोग प्रायः सभी प्रकार के रसों के अभिनय में किया जाता है।[5]

अभिनय के इन शास्त्रीय तत्वों पर विचार करते हुये नाटकों की अभिनेयता की विवेचना आधुनिक दृष्टिकोण से भी होनी चाहिये । अभिनेयता की दृष्टि से नाटक का रूप साधारणतः इतना बड़ा होना चाहिये कि उसका अभिनय तीन-चार घंटों में किया जा सके। नाटक के अंकों और दृश्यों के विभाजन में सन्तुलन का होना भी आवश्यक है।[6] अभिनेयता के इन तत्वों की दृष्टि से व्यास जी के रूपकों की विवेचना उपयोगी है।

(ख) व्यास जी के रूपकों की अभिनेयता

व्यास जी के रूपक रंगमंच पर अभिनय किये जाने योग्य हैं। इनकी अभिनेयता की परीक्षा निम्न क्रम के अनुसार की जा सकती है—

(१) रूपक का आकार और अंकों एवं दृश्यों का विभाजन
(२) क्रिया-व्यापार

---

१. या वाक्प्रधाना पुरुषप्रयोज्या स्त्रीवर्जिता संस्कृतवाक्ययुक्ता।
स्वनामधेयैर्भरतैः प्रयुक्ता सा भारती नाम भवेत्त वृत्तिः। 'भरतनाट्यशास्त्र' २२.२५।

२. या सात्वतेनेह गुणेन युक्ता न्यायेन वृत्तेन समन्विता च।
हर्षोत्कटा संहृतशोकभावा सा सात्वती नाम भवेतु वत्तिः। 'भरतनाट्यशास्त्र' २२.३८।

३. मायेहजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः
संयुक्ता वधबन्धाद्यैरुद्धतारभटी मता। 'साहित्यदर्पण' ६.१३२-१३३।

४. या श्लक्ष्णनैपथ्यविशेषचित्रा स्त्रीसंयुता या बहुनृत्तगीता।
कामोपभोगप्रभवोपचारा तां कैशिकी वृत्तिमुदाहरन्ति। 'भरतनाट्यशास्त्र' २२.४७।

५. शृंगारे कैशिकी वीरे सात्वत्यारभटी पुनः।
रसे रौद्रे च बीभत्से वृत्तिः सर्वत्र भारती। 'दशरूपक' २.६२।

६. 'शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त'—लेखक डा० गोविन्द त्रिगुणायत (द्वितीय भाग १९५९) पृ० २२८-२३२।

(३) वाचिक अभिनय
(४) आंगिक अभिनय
(५) आहार्य अभिनय
(६) सात्विक अभिनय
(७) वृत्तियां
(८) दृश्ययोजना का औचित्य
(९) रस-निष्पति

(१) **रूपक का आकार और अंकों एवं दृश्यों का विभाजन**—साधारणतः नाटक का आकार इतना बड़ा होना चाहिये कि उसका अभिनय तीन-चार घंटों से अधिक न हो, अन्यथा वह दर्शकों को उबाने वाला हो सकता है। 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' छोटे छोटे एक एक अंक के रूपक हैं तथा इनका अभिनय तीस तीस मिनट के अन्दर किया जा सकता है। 'सामवतम्' ६ अंकों का पूरा नाटक है। इसका अभिनय ३।। घंटे से चार घंटे में हो सकता है। अभिनय की सरलता और वैविध्य के आपादन के लिये अंकों का दृश्यों में विभाजन किया गया है। इससे रोचकता बनी रहती है और दर्शकों का चित्त ऊबता नहीं। फलप्राप्ति की संभावना से पूर्व चतुर्थ अंक तक अपेक्षाकृत कुछ बड़े अंकों की योजना की गई है और उसके बाद पंचम एवं षष्ठ अंक को कुछ छोटा करके नाटक समाप्त किया गया है। नाटक के दृश्य भी कुछ अधिक लम्बे नहीं हैं। सामवती-सुमेधा का वनप्रान्त का दृश्य कुछ लम्बा कहा जा सकता है, किन्तु शृंगार-रस की अभिव्यक्ति और नायक के धैर्य की व्यंजना करने वाला यह दृश्य रोचक और प्रभावशाली है।

(२) **क्रिया-व्यापार** —नाटक की सफलता उसके क्रिया-व्यापार पर निर्भर रहती है। सक्रियता लाने के लिये नाटककार सार्थक और शृंखलाबद्ध घटनाओं की योजना करता है। व्यास जी ने सार्थक और शृंखलाबद्ध घटनाओं को संयोजित करके अभिनय की गति कहीं भी शिथिल नहीं होने दी। स्थान स्थान पर हास्य, विस्मय, रति आदि भावों की अभिव्यक्ति करने वाली प्रकरण के अनुकूल घटनायें सामाजिकों के कुतूहल और उत्सुकता को बनाये रखती हैं।

(३) **वाचिक अभिनय** —सुन्दर गतिशील, भावनापूर्ण और वैविध्य से संभृत संवादों द्वारा व्यास जी ने नाटक को सौन्दर्य प्रदान किया है। दर्शकों में कुतूहल और उत्सुकता बनाये रखने के लिये गद्य, पद्य, भाव, भाषा, संवाद आदि का

प्रयोग नाटक में वैविध्यपूर्ण होना आवश्यक है ।[1] व्यास जी ने कहीं गद्य, कहीं पद्य, कहीं प्राकृत, कहीं संस्कृत, कहीं सर्वश्राव्य, कहीं नियतश्राव्य, कहीं अश्राव्य आदि अनेक प्रकार के भावों की अभिव्यंजना करने वाले संवादों का प्रयोग करके दर्शकों को कुतूहली और उत्सुक बनाये रखने का प्रयत्न किया है ।

(४) **आंगिक अभिनय** —व्यास जी ने आंगिक अभिनय की ओर विशेष ध्यान दिया । शरीर, शरीर के सिर आदि अंगों और नेत्र आदि उपांगों की चेष्टाओं द्वारा आंगिक अभिनय का यथोचित निर्वाह किया गया है । बन्धुजीव का कूद कर रंगमंच पर आना [2], जटिल ब्राह्मण का मुख को पोंछते हुये प्रवेश करना [3], ब्रह्मचारी और भिक्षुक का आकाश-मार्ग से उड़ते हुये जाना [4] आदि शारीरिक क्रियायें आंगिक अभिनय को प्रकट करती हैं । सुमेधा जब आकाश की ओर देखकर मदन को प्रणाम करता है[5] तो उस स्थल पर उद्वाहितक नामक शिरोभिनय और अंजलि नामक हस्ताभिनय प्रकट होता है । विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिये नेत्रों का सुन्दर अभिनय प्रस्तुत किया गया है । कहीं पर कुपित, कहीं परिचिकीषा-युक्त, कहीं क्रूर, कहीं सवाष्प और कहीं मुकुलित इस प्रकार से विविध भावाभिव्यंजक दृष्टियां 'सामवतम्' में विभिन्न स्थलों पर परिलक्षित होती हैं ।

संवादों और क्रियाओं के लिये व्यास जी ने स्थान स्थान पर निर्देश दिये हैं कि इन स्थलों पर इस प्रकार अंगसंचालन होना चाहिये । रूप से गर्वित होने के लिए बिब्बोक और अंगहार,[6] क्रोध प्रदर्शित करने के लिये भृकुटि,[7] आश्चर्य प्रदर्शित करने के लिये आश्चर्य मुद्रा[8], गणना करने के लिये अंगुलियों पर गणना करने का अभिनय करना,[9] रतिभाव की अभिव्यक्ति के लिये नायिका द्वारा नायक का हाथ पकड़ कर नेत्रों को मुकुलित कर लेना [10], देवता को प्रणाम करने के लिये साष्टांग

---

१. Variations it may be remembered, is the commonest and yet most important means of creating and sustaining interest. Monotony tends to be dull and mars interest, and variations of every sort is the best way to kill it. Variations of prose and verse, or of Sanskrit and Prakrit, or dialogues and monologues and soliloquies are the most used types of variations so far as the medium of thought in a play concerned.

जी० वी० देवस्थली कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक' पृ० १०७ ।

२. 'सामवतम्' पृ० २४ ।
३. 'सामवतम्' पृ० ५० ।
४. ,, ,, १३३ ।
५. ,, ,, १४६ ।
६. ,, ,, ११ ।
७. ,, ,, १२ ।
८. ,, ,, १७ ।
९. ,, ,, २३ ।
१०. ,, ,, १४१ ।

होकर भूमि पर गिरना[1] आदि अनेक प्रकार के अंग संचालन के निर्देश व्यास जी ने अपनी रचना में दिये हैं। अनेक स्थानों पर केवल अंगसंचालन द्वारा ही अभिनय का निर्वाह किया गया है। यथा, राजा सामवान् द्वारा की गई प्रशंसा को कुछ मुस्कराते हुये ग्रीवा झुका कर ही स्वीकार कर लेता है[2] और सारस्वत देवी के आदेश को अपनी भावमुद्रा से ही अंगीकार कर लेते हैं।[3]

(५) **आहार्य अभिनय**— आहार्य अभिनय का स्पष्टीकरण व्यास जी के नाटक में यथोचित रीति से नहीं हुआ। पात्रों की वेषभूषा, अलंकार-धारण आदि का निर्देश अपर्याप्त है। अभिनय करने वालों को स्वयं ही पात्रों की योग्यता के अनुसार वस्त्र आदि की योजना समझनी पड़ती है। इतना होते हुये भी इस विषय में कहीं कहीं स्वल्प संकेत अवश्य दिये गये हैं। यथा— कलि भयंकर रूप वाला है[4], अप्सराओं ने मुक्तामाला, नूपुर, चूडामणि और नासामुक्ता नामक आभूषण धारण किये हुये हैं[5], जटिल ब्राह्मण का मुख गुलाल से लिप्त है[6], राजनर्तकी ने कुण्डल और नूपुर पहिने हैं[7], सीमन्तिनी का उद्यानरक्षक दण्ड हाथ में लिये हुये है[8], पुरोहित कुशाओं को हाथ में लिये प्रवेश करता है[9], भिक्षुक तुम्बीपात्र हाथ में लिये है[10], ब्रह्मचारी कौपीन धारण कर तुम्बीपात्र हाथ में लिये प्रवेश करता है[11], और सामवान-सुमेधा दम्पति का रूप धारण किये वनप्रान्त में जाते हुये दिखाई देते हैं।[12] किन्तु सब पात्रों की वेषभूषा का स्पष्ट परिचय नाटक के पढने से उपलब्ध नहीं होता।

(६) **सात्विक अभिनय**— भावनाओं और सात्विक भावों की स्पष्ट अभिव्यक्ति व्यास जी ने अभिनय के द्वारा प्रस्तुत की है। विरह मुद्रा का अभिनय करते हुये[13] सामवती अपने स्वप्न का वर्णन करती हैं और उस समय सात्विक भावों की उत्पत्ति का निर्देश करती है।[14] भावों के अभिनय का उत्कृष्टतम स्थल चतुर्थ अंक में हैं। सुमेधा को सभ्रूभंग देखती हुई सामवती[15] रतिभाव की उत्पत्ति का, गहरा श्वास लेकर[16] कामव्यथा को प्रकट करने का और अंगहार द्वारा[17] मोहित करने का अभिनय करती है। सुमेधा के कर-संस्पर्श से उसने रोमांचित होने का[18], कुचों के निरावरण होने से लज्जा का और नेत्रों के निमीलन द्वारा हृदयान्तर्गत रति का[19]

१. 'सामवतम्' पृ० १९१।
२. 'सामवतम्' पृ० १११।
३. ,, ,, १९५।
४. ,, ,, ३२।
५. ,, ,, ४३।
६. ,, ,, ५०।
७. ,, ३.२४-२५।
८. ,, ,, ८६।
९. ,, पृ० १८२।
१०. ,, ,, १२४।
११. ,, ,, १२८।
१२. ,, ,, १३३।
१३. ,, ,, २०८।
१४. ,, ६.११।
१५. ,, ,, १३५।
१६. ,, पृ० १३६।
१७. ,, ,, १३७।
१८. ,, ,, १४०।
१९. ,, ,, १४१।

अभिनय किया है। अन्य स्थल पर सुमेधा द्वारा कामना पूरी न किये जाने पर वह छाती को पीटते हुये उन्मत्त एवं मूर्च्छित होकर निस्संज्ञतारूप कामदशा का अभिनय करती है।[1] इसी प्रकार से नाटक के विभिन्न स्थलों पर अनेक सात्विक भावों और अन्य भावनाओं का अभिनय व्यास जी ने कौशल से निबाहा है।

(७) **वृत्तियां**— अभिनय की दृष्टि से व्यास जी ने चारों वृत्तियों का प्रयोग अपने रूपकों में किया है। 'सामवतम्' नाटक में सूत्रधार के कथनों और सारस्वत-वेदमित्र के संवादों में भारती वृत्ति है। 'मित्रालापः' रूपक के संवाद में भी भारती वृत्ति है। आरभटी वृत्ति का अभिनय 'धर्माधर्मकलकलम्' रूपक में और 'सामवतम्' नाटक के कलि-दृश्य, अमात्य की नौका के डूबने के दृश्य, सारस्वत के क्रोधाभिव्यंजक संवाद और इसी प्रकार के अन्य स्थलों में है। सात्वती वृत्ति का अभिनय सुमेधा द्वारा राजा की स्तुति करने, ब्रह्मचारी-भिक्षु संवाद, सुमेधा के धैर्य-च्युत न होने और इसी प्रकार के अन्य प्रसंगों में हुआ है। कैशिकी वृत्ति इन्दुवदना और मदालसा के वसन्त गान, कलावती के राजसभा के नृत्य, सामवती द्वारा सुमेधा के सम्मुख की गई प्रणय-याचना और प्रेमियों के विरह प्रसंगों में अभिनीत की गई है। स्थान स्थान पर गीतों और नृत्यों की योजना करके कवि ने कैशिकी वृत्ति के अभिनय को चमत्कार से भर दिया है।

(८) **दृश्य-योजना का औचित्य** —संस्कृत के नाट्यशास्त्र की परम्परा के अनुसार रंगमंच पर कुछ विशेष प्रकार के दृश्यों का अभिनय अनुचित समझा जाता है।[2] यद्यपि साधारणतः व्यास जी ने इन वर्ज्य दृश्यों को रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं किया है, तथापि अभिनय की दृष्टि से एक दृश्य अनुचित है। सामवती अपने स्त्रीत्व को प्रमाणित करने के लिये सुमेधा से स्त्रीत्व-बोधक अंगों को देखने की प्रार्थना करती है और सुमेधा उसे एक कुंज में ले जाता है। वह उसके अंगों को देखते हुये कंचुकी को भी हटा कर कुचों को सर्वथा निरावृत्त कर देता है। इस दृश्य को छोड़ कर अन्यत्र सब स्थलों पर व्यास जी ने नाट्यशास्त्रीय औचित्य का पालन किया है।

(९) **रस-निष्पत्ति** —सामाजिकों का मनोरंजन करने वाले नाटक के अभिनय में रस का निष्पन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। सभी प्रकार के रूपक रस के ही आश्रित होते हैं।[3] शृंगार और अन्य अंगभूत रसों की अभिव्यक्ति 'सामवतम्' नाटक

---

१. 'सामवतम्' पृ० १५३।

२. दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवम्।
संरोधं भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्।
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न निर्दिशेत्। 'दशरूपक' ३.३४-३५।

३: दशधैव रसाश्रयम्। 'दशरूपक' १.२।

में उज्ज्वलता के साथ हुई है। रसों की निष्पत्ति का विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में रसाभिव्यक्ति के प्रकरण में है।

(ग) 'सामवतम्' नाटक की रंगमंचीय विशेषतायें

'सामवतम्' रंगमंच पर अभिनीत हो सकने वाला नाटक है। इसके अभिनय के लिये पर्दों की व्यवस्था पर कुछ विचार करना उपयोगी है। इस नाटक के दृश्यों की योजना कुछ इस प्रकार से की गई है कि उनका निर्विघ्न रूप से अभिनय करने के लिये और एक के बाद दूसरा दृश्य उपस्थित करने के लिये यवनिका और नैपथ्य के बीच में अन्य पर्दों की आवश्यकता होती है। इसके लिये व्यास जी ने पटी की व्यवस्था की है। प्रथम अंक के तपोवन के दृश्य के पश्चात् वन के दृश्य का अभिनय बिना व्यवधान के तभी हो सकता है, जब कि पटी के पीछे वन के दृश्य की रूपरेखा पहिले से ही तैयार रखी जावे और प्रथम दृश्य की समाप्ति के पश्चात् इस पटी को हटाकर दूसरा दृश्य उपस्थित कर दिया जावे। राजा की दुर्गा-स्तुति के समय पटी को हटाकर दुर्गा के अवतरण का ठीक प्रकार से अभिनय किया जा सकता है।

नाटक में अनेक बार इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है, कि प्रथम दृश्य के पात्र रंगमंच पर विद्यमान रहते हैं और साथ में द्वितीय दृश्य के पात्र भी वहां उपस्थित हो जाते हैं। प्रथम अंक में सुमेधा और सामवान् वन की शोभा का निरीक्षण करते हुये नेपथ्य संगीत की ध्वनि और अप्सराओं का संवाद सुनते हुये ही अप्सराओं को देखने के लिये उत्कण्ठित होकर रंगमंच पर विद्यमान माधवीलता की ओट में छिप जाते हैं। इसी समय पटी को हटा दिया जाता है और पहिले से तैयार हुई तथा गाती हुई अप्सराओं का दृश्य प्रस्तुत हो जाता है।[1] बीच का पर्दा उठा देने से इस प्रकार के दृश्यों का अभिनय अधिक स्वाभाविक हो जाता है। इन कारणों से व्यास जी ने नाटक के अभिनय के लिये यवनिका और पटी इन दो पर्दों की व्यवस्था की।

रंगभूमि के आगे अंक के प्रारम्भ में हटाया जाने वाला और अंक के अन्त में गिरा दिया जाने वाला और इस प्रकार अभिनय को द्योतित करने वाला पर्दा यवनिका (जवनिका) कहलाता है।[2] व्यास जी ने यवनिका का प्रयोग रंगमंच और दर्शकों के मध्य में किया है। यवनिका का प्रयोग इस कार्य के लिये होता था या

---

१. ततः प्रविशति पटीक्षेपेण यथावस्थिता मदालसा इन्दुवदना च। 'सामवतम्' पृ० ४५।

२. रंगभूमेरग्रतो वर्तमानांकस्यादावपसारितान्ते च पातिताभिनयभागद्योतिका जवनिकेत्युच्यते। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० ६।

नहीं, यद्यपि इस विषय में अनेक मतभेद हैं[1], तथापि व्यास जी ने रंगमंच और दर्शकों के मध्य में यवनिका (drop curtain) की स्थिति स्वीकार की है।

अनेक चित्रों से युक्त और क्षेपणमात्र से पिछले भाग में स्थित सुप्त आदि जन को प्रकट करने वाला पर्दा पटी कहलाता है।[2] पटी के क्षेप का पूर्ण विवरण व्यास जी ने प्रस्तुत किया है। पटी के हटाने या गिराने को क्षेपण कहते हैं, जो अनेक प्रकार से किया जाता है।[3] पटी के पीछे सोये या बैठे आदि स्थिति के पात्र अपने वेष आदि धारण करके तैयार रहते हैं तथा पटी के हटाने से वे सामाजिकों को दिखाई देते हैं।[4] प्राचीन रंगमंच पर पटी के प्रयोग के विषय में भी विवाद है। संस्कृत नाटकों के कुछ आलोचकों ने अभिनेयता को प्रदर्शित करते हुये नैपथ्य और यवनिका के मध्य में एक या दो पर्दों की आवश्यकता प्रतिपादित की है।[5] व्यास जी

---

१. विस्तृत विवरण के लिये देखें—
   (क) चन्द्रभान गुप्त कृत 'इन्डियन थियेटर' (१९५४) पृ० ५७-५८।
   (ख) 'भरतनाट्यशास्त्र' ५.११-१२ और इसकी अभिनवभारती टीका।
   (ग) 'भरतनाट्यशास्त्र' १२.३ और इसकी अभिनवभारती टीका।
   (घ) डो० आर० मनकड कृत 'एन्सिएंट इन्डियन थियेटर' (१९५०) पृ० २०।
   (ङ) एच० एच० विलसन कृत 'दी थियेटर आफ दी हिन्दूज' (१९५५) पृ० ४९।

२. अभिनीयमानविषयानुकारिगिरिवननगरसागरादिचित्रमयो, रंगभूमावेव पात्यमाना प्रसार्यमाणा च स्वक्षेपमात्रप्रवेशितसुप्तोपविष्टादिपात्रा अत्यन्तहारितया पातितापसारिता च कापि चित्रपटी पटीत्युच्यते। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० ९-१०।

३. अस्याः पातोऽपसारणमपि च क्षेपणमुच्यते। अयं च क्षेपश्चतुर्विधः, दक्षिणतो वामत उभयत उपरिष्टाच्च। एषा दक्षिणतः प्रहीयतेऽपकृष्यते च सोऽयं दक्षिणतः, तथैव च वामतः। पट्या द्वे खण्डे उभयतः सहैव क्षिप्यमाणे मध्ये मिलतः, सहैवापकृष्यमाणे च तिरोभवत इत्येष उभयतः क्षेपः। पटी हि उपरिष्टात् पात्यते उपरिष्टादेव समाकृष्यते च सोऽयमुरिष्टात् क्षेपः। प्रायः प्रचलितोऽत्यन्तमनोहारी चायं चरमः। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० १०।

४. पट्याः पृष्ठतः कृतनेपथ्यानि सुप्तोपविष्टादिपात्राणि सज्जीभूय तिष्ठन्ति। ततश्च पटी क्षिप्यते, तानि च रंगावस्थितानि सामाजिकैरवलोक्यन्त इति व्यवधानविघट्टनपूर्वकस्तत्सामाजिक-चक्षुर्विषयीभावरूपो विलक्षणस्तेषां प्रवेशः। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० १०।

५. Thus it follows that besides the nepathya and the javanika, the Indian stage was also equipped with one or two more curtains which could be dropped or lifted according to the requirements of the play.
   जी० बो० देवस्थली कृत 'इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ मुद्राराक्षस' (१९४८) पृ० १२९।

ने भी प्राचीन नाटकों के आधार पर पटी की स्थिति को सिद्ध किया है।[1] इस विवेचना से यह प्रकट होता है कि 'सामवतम्' नाटक का अभिनय करने के लिये यवनिका और पटी दोनों ही पर्दों की आवश्यकता है।

४. उद्देश्य

अभिनय द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किये जा सकने, अतः दृश्यकाव्य कहे जाने वाले रूपक की रचना के भी वे ही उद्देश्य होते हैं जो काव्य-रचना के कहे गये हैं।[2] किन्तु दृश्यकाव्य और श्रव्यकाव्य की प्रकृति में कुछ अन्तर है। अन्य काव्यों का आनन्द तो केवल पढने या सुनने के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है, परन्तु रूपक को पढने और सुनने के अतिरिक्त अभिनय द्वारा साक्षात् रूप से देखा भी जा सकने के कारण इसका आनन्द और प्रभाव अन्य काव्यों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है।[3] इस कारण कवि रूपक के माध्यम से अपने उद्देश्य को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकता है।

पाश्चात्य विचारधारा के अनुसार जिस प्रकार एक उपन्यासकार अपने उपन्यास में जीवनदर्शनविषयक विचारों को उपस्थित करता है उसी प्रकार-नाटककार भी इन्हें अपने नाटक में प्रस्तुत करता है।[4] किन्तु उपन्यासकार की अपेक्षा नाटककार इनको कुछ भिन्न प्रकार से उपस्थित करता है। उपन्यास में लेखक स्वयं अथवा पात्रों द्वारा अर्थात् प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से विचारों को उपस्थित करने में समर्थ है, जब कि नाटककार अपने पात्रों द्वारा ही, अर्थात् अप्रत्यक्ष रूप से

---

१. पटीक्षेपश्चेन्न व्यवाहारिष्यत तत् कथं प्रावेक्ष्यत शयनगतैरासनस्थैः शिलापट्टमधिशयानैश्च पात्रैः? कथं वा प्रावक्ष्यत नाटककारैः कविवर्यैरनवरतं पटीक्षेपेण प्रविश्येत्येवमादि। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० १०।

२. शिवराजविजय के उद्देश्यों की विवेचना करते हुये काव्य के उद्देश्यों का विवेचन किया जा चुका है।

३. नाटकपठनानन्दो लक्षगुणो भवति नाटकाभिनयैः। 'सामवतम्' १.५।

४. The more so, as in our considerations of the novelist's criticism of life the dramatist was specifically intended. Everything that was then said about the importance of the ethical element in any work of fiction, whether in the narrative or in the dramatic form and about the moral standards which have to be applied to it, may, therefore, be taken for granted without repetition.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० २५२।

ही विचार प्रस्तुत कर सकता है।[1] नाटक कवि का स्वनिर्मित संसार है। उसके पात्र, पात्रों की क्रियायें, पात्रों के उद्देश्य, सफलतायें और विफलतायें कवि की स्वयं की कृति और विचार हैं, जिनके लिये वह स्वयं उत्तरदायी है। इन्हीं विचारों की अभिव्यक्ति के लिये कवि नाटक की रचना करता है।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्य की विशेषताओं का विस्तार से वर्णन करते हुये इसके उद्देश्यों को भी विशद रूप से बताया है।[2] इनके अध्ययन से नाटक के दो उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं— उपदेश प्रदान करना और आनन्द प्रदान करना। नाटक के अभिनय द्वारा कवि दर्शकों को आनन्दित करता हुआ अपनी भावनाओं के अनुरूप जीवनदर्शन का उपदेश प्रदान करता है। व्यास जी के रूपकों में इस प्रकार के उद्देश्यों की स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति होती है।

व्यास जी के तीनों संस्कृत रूपकों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट है कि उनके मस्तिष्क में भारतीय धर्म और संस्कृति का एक विशेष आदर्श विद्यमान था, जिसको उन्होंने रूपकों के माध्यम से प्रचलित करने का प्रयत्न किया। 'सामवतम्' की भूमिका और प्रस्तावना से यह भी प्रकट है कि व्यास जी ने इस नाटक की रचना मिथिलानरेश लक्ष्मीश्वरसिंह के राज्याभिषेक-समारोह के निमित्त की थी। इन तथ्यों पर विचार करने के पश्चात् व्यास जी की रूपक-रचना के निम्न उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं—

(१) भारतीय संस्कृति का प्राचीन आदर्श प्रस्तुत करना।

(२) सनातन धर्म का प्रचार करना।

---

१. Thus as we have shown, the novelist may interpret life both indirectly by his exibition of it, and directly by his comments upon it. The dramatist is supposedly limited to the former indirect method.

डब्लू० एच० हडसन कृत 'एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ लिटरेचर' पृ० २५२।

२. हितोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।
एतद् रसेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियासु च॥
सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।
दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्॥
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्॥
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति॥ 'भरतनाट्यशास्त्र' १.११०-११३॥
विनोदजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति॥ 'भरतनाट्शास्त्र' १.११७॥

(३) सदुपदेश प्रदान करना ।
(४) मिथिलानरेश के राज्याभिषेकोत्सव के निमित्त नाटक की रचना करना।
(५) रसरूप आनन्द की प्राप्ति ।

(१) भारतीय संस्कृति का प्राचीन आदर्श प्रस्तुत करना—ऋषियों के आश्रम के दृश्य से नाटक को प्रारम्भ करके व्यास जी ने अभिव्यक्त किया है कि प्राचीन युग में नगरों के बाहर ऋषियों के आश्रम होते थे । इनमें रहने वाले ऋषि धार्मिक कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुये शिष्यों को विद्या का उपदेश करते थे । इसके साथ ही ये ऋषि गृहस्थ धर्म का पालन करते हुये सांसारिक व्यवहार की मर्यादा की भी रक्षा करते थे। आश्रमों का जीवन त्याग और तपस्या का होता था । विशेष अवसरों पर यदि आश्रमवासियों को धन की आवश्यकता होती थी तो उसकी पूर्ति राजा द्वारा की जाती थी । उस युग में ब्राह्मणों का महत्व सबसे अधिक था । राजा उनका आदर करते थे और उनको अप्रसन्न करने का साहस नहीं करते थे । असावधानतावश ब्राह्मणों की अवहेलना करने पर उसका दुष्परिणाम उन्हें भुगतना पड़ता था ।

(२) सनातन धर्म का प्रचार करना —'मित्रालापः' और 'धर्माधर्मकलकलम्' इन दोनों रूपकों की रचना इसी उद्देश्य के लिये की गई थी । उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहनराय और ऋषि दयानन्द द्वारा स्थापित ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज के धार्मिक एवं सामाजिक सुधार करने वाले आन्दोलनों को सनातन धर्म के विरुद्ध मान कर [1] व्यास जी ने इनका विरोध कर उस प्राचीन रूढिवादी धर्म का प्रचार किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये अन्य प्रयत्नों के साथ ही रूपकों की भी रचना की ।

(३) सदुपदेश प्रदान करना —व्यास जी ने इन रूपकों के द्वारा अनेक उपदेश भी प्रदान किये । 'सामवतम्' का मुख्य उद्देश्य है कि यद्यपि युवकों में शृंगार की स्वाभाविक भावना होती है, तथापि उनको परकीया-विषयक प्रेम में प्रवृत्त होकर अपने को कलुषित नहीं करना चाहिये और धैर्यधारण करके सामाजिक

---

१. तत्रापि अयं ब्राह्मसमाजोऽयमार्यसमाजोऽयं च विश्वजनीनैक्यसमाज इति नाममात्रेण पविद्या वस्तुतस्तु तत्सम्बन्धेन अपवित्रतापरम्परामेव पल्लवयन्तो विधर्मसमाजाः स्वभावभ्रष्टान् बालकान् अधिकाधिकं संशयसमुद्रे निमज्जयन्ति । एवं हि अधर्मगर्जननिर्घातभिन्नहृत्कर्णाः के नामाकर्णयिष्यन्ति भवत्समा भ्रमरीझंकारान्........अत एव सम्प्रत्यावश्यकता धर्मविजयघोषणायाः । 'मित्रालापः' ।

मर्यादा का पालन करते हुये अपने चरित्र की रक्षा करनी चाहिये।[1] इसके अतिरिक्त प्रसंग रूप से आपने अन्य अनेक उपदेश दिये हैं। इनमें से कुछ को नीचे उद्धृत किया जाता है—

(क) दूसरे को प्रसन्न करने वाले हास्य की ही योजना करनी चाहिये।[2]
(ख) सज्जन पुरुष स्वाभाविक रूप से दूसरों की प्रशंसा करते हैं।[3]
(ग) बुद्धिमानों को सोच विचार कर बोलना चाहिये।[4]
(घ) दुष्ट मनुष्यों के साथ वाद-विवाद नहीं करना चाहिये।[5]
(च) पूजनीयों के प्रति छल का व्यवहार नहीं करना चाहिये और नाहीं उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिये।[6]
(छ) अपने किये हुये का फल भोगना ही पड़ता है।[7]
(ज) जिसका हृदय निष्कलुष होता है, वह अवश्यमेव सिद्धि को प्राप्त करता है।[8]

(४) मिथिलानरेश के राज्याभिषेकोत्सव के निमित्त नाटक की रचना करना— मिथलानरेश के राज्याभिषेकोत्सव के अवसर पर मिथलानरेश के पण्डित नवलकिशोर पाठक द्वारा आज्ञा पाकर व्यास जी ने 'सामवतम्' नाटक की रचना की थी।[9] 'सामवतम्' की प्रस्तावना में भी व्यास जी ने इस तथ्य को प्रकट किया है।[10] किन्तु इस नाटक का अभिनय इस अवसर पर हुआ था, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होता।

(५) रसरूप आनन्द की प्राप्ति —'स्कन्दपुराण' के ब्रह्मोत्तरखण्ड की एक रोचक कथा को व्यास जी ने नाटकीय रूप प्रदान करके तथा इसमें रस आदि की सम्यक् योजना करके इसके द्वारा आनन्द की सृष्टि की। इस नाटक का अंगी-रस

---

१. ये च यथा काव्येषु परकीयाविषयकप्रेमपूरं परिकलय्य न भवेयुरतिकलुषमनसो न वा विघट्टयेयुर्धैर्यधुर्यमर्यादाम्, तथा विशिष्यास्मिन् सच्चरितानुष्ठानमेवाशंस्यत इति स्वयमेव विभावयिष्यन्ति भावुकाः। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० ६।

२.	'सामवतम्'	२.२।	३.	'सामवतम्'	पृ० १०६।
४.	,,	३.३०।	५.	,,	३.३१।
६.	,,	२.३२-३३।	७.	,,	पृ० १६४।
८.	,,	५.२८।			

९. 'बिहारी-विहार' (निजवृत्तान्त पृ० ७)।

१०. तस्माच्च सुमनसः सुमनसः फलमिव श्रीलक्ष्मीश्वरसिंहः समजनि। स च महाराजो राज्यं प्रशास्त्येवाधुना यद् राज्याभिषेकोत्सवे एतन्नाटकमभ्युदियाय। 'सामवतम्' पृ०२१।

श्रृंगार है जिसका प्रधान सहकारी अद्भुत-रस है। इसके साथ ही अन्य रसों– हास्य, रौद्र, भयानक आदि की योजना सामाजिकों को विगलितवेद्यान्तर आनन्द का आस्वादन कराती है।[1] आनन्द की वृद्धि के लिये कवि ने यथा-अवसर मनोहारी संगीत-नृत्य, और गीतों आयोजन किया है।[2]

---

१. अंगी श्रृंगारो रसः............अद्भुतोऽस्य प्रधानोंऽगिनः सहकारी, अन्यैरपि च रसैः पारम्पर्येण व्याप्तोऽस्त्येतस्य सर्वोऽपि भागः। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० ९।

२. अस्य वैचित्र्यविशेषशालित्वेऽपि आनन्दस्रोतस्स्राविते तु न केवलतर्कसम्पर्ककर्कशानि न वा केवलव्याकृतिसंस्कृतिप्रकृतिनिकृतिविकृतानि हृदयानि किन्तु अंगीकृतसंगीतभंगीनि साहित्य-सुधासमुद्रस्नातानि सहृदयानामेव हृदयानि प्रमाणम्। 'सामवतम्' उपोद्घात पृ० ९।

नवम अध्याय

व्यास जी का नाट्य साहित्य-(३)

रचनाशैली - रसाभिव्यक्ति

नाट्य-साहित्य के कथानक, चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल, अभिनय और उद्देश्य की आलोचना करके अब रचना-कौशल और रसाभिव्यक्ति का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

रचना-कौशल

रूपकों की रचना में उनके बाह्य और आन्तरिक दोनों रूपों का सम्यक् रूप से विधान किया जाता है। रूपक का बाह्य रूप नान्दी, प्रस्तावना, अंक और दृश्य, अर्थोपक्षेपक तथा भरतवाक्य द्वारा निर्मित होता है। भाषा, गुण, रीति और अलंकार आन्तरिक रूप का निर्माण करके रसों को अभिव्यक्त करते हैं। यद्यपि भाषा आदि से रस निष्पन्न होने के कारण रसाभिव्यक्ति का समावेश रचना कौशल के आन्तरिक विधान में किया जा सकता है और रसाभिव्यक्ति की अपेक्षा से भाषा आदि का समावेश बाह्य विधान में किया जा सकता है तथापि रूपकों के रसाश्रित होने के कारण [1], रस की प्रधानता होने से भाषा आदि की समालोचना आन्तरिक विधान के अन्तर्गत और रसाभिव्यक्ति की समालोचना पृथक शीर्षक द्वारा की गई है। रचना-कौशल की समालोचना को बाह्य विधान और आन्तरिक विधान इन दो भागों में विभक्त करके प्रथम बाह्य विधान पर विचार किया जा रहा है।

१. बाह्य विधान

रूपक की बाह्य रूप-रेखा का निर्माण नान्दी, प्रस्तावना आदि द्वारा किया जाता है। व्यास जी के 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' रूपकों में नान्दी आदि की योजना के न होने के कारण इनके बाह्य विधान के स्वरूप का विवेचन अपेक्षित नहीं है। अतः 'सामवतम्' के ही बाह्य विधान की समालोचना की गई है। इस समालोचना के लिये नान्दी, प्रस्तावना, अंक और दृश्य, अर्थोपक्षेपक और भरतवाक्य की योजनाओं पर विचार करना अपेक्षित है।

---

१. दशधैव रसाश्रयम्। 'दशरूपक' १.१।

नान्दी —प्रस्तावना द्वारा रूपक को प्रारम्भ करते हुये कवि सर्वप्रथम मंगलाचरण रूप में गान प्रस्तुत करता है। संस्कृत नाट्यशास्त्र में इस मंगलाचरण के लिये नान्दी शब्द का प्रयोग किया गया है। रूपक के अभिनय को प्रारम्भ करते हुये सबसे पहले देव, द्विज, नृप आदि की स्तुति करते हुये आशीर्वादात्मक पद्यों द्वारा विघ्नों की शान्ति नान्दी द्वारा की जाती है।[1] यह नान्दीपाठ ८ अथवा १२ पदों द्वारा किया जाता है।[2] नान्दी आशीर्वादात्मक होती है, काव्यार्थसूचक होती है और ८ या १२ चरणों से युक्त होती है।[3]

व्यास जी ने १२ चरणों (तीन श्लोकों) की नान्दी का प्रयोग किया है। प्रथम श्लोक से नाना रस विशिष्ट और पार्वती से सेवित शिव की, द्वितीय से विघ्न-विनाशक गणेश की और तृतीय से कौतूहली शिव की आशीर्वादात्मक रूप से स्तुति की गई है। इस नान्दी-पाठ से काव्यार्थ की सूचना भी प्राप्त होती है। प्रथम श्लोक से पार्वती के लज्जानुभव तथा आश्चर्यप्रदर्शन द्वारा सामवान् का स्त्री-भाव को प्राप्त होना और काममथन पद से नाटक के नायक का कामुक न होकर कामदेव के प्रेरक कारणों के उपस्थित होने पर भी अविकृत रहते हुये धीर उदात्त भाव प्रदर्शित करना सूचित होता है। दूसरे श्लोक से ब्रह्मचारी और भिक्षुक का गीतिमय वृत्तान्त द्योतित किया गया है। तीसरे श्लोक से स्त्रीत्व को प्राप्त सामवान् का सुमेधा के साथ विवाह होना व्यंजित हुआ है।

नान्दी के स्वरूप और उच्चारणकर्ता के विषय में विश्वनाथ ने कुछ भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। वह यह है कि कवि नान्दी की स्वयं रचना नहीं करता। यह रंगद्वार से पूर्व नटों द्वारा गाई जाती है, अतः नाटक का अंग नहीं है। नाटकों के आरम्भ में मंगलाचरण रूप स्तुति पूर्वरंग है, जिसका पाठ करके सूत्रधार प्रस्तावना को प्रारम्भ करता है। इसी कारण 'विक्रमोर्वशीयम्' के प्राचीन संस्क-

---

१. यस्मादुत्थापयन्त्यादौ प्रयोगं नान्दिपाठकाः ॥
पूर्वमेव तु रंगेऽस्मिन् तस्मादुत्थापनं स्मृतम् ।
यस्माच्च लोकपालानां परिवृत्य चतुर्दिशम् ॥
वन्दनानि प्रकुर्वन्ति तस्मात्तु परिवर्तनम् ।
आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात् प्रवर्त्तते ॥
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता ॥ 'भरत-नाट्यशास्त्र'
५.२२-२५।

२. पदैर्युक्ता द्वादशभिरष्टाभिर्वा पदैरुत । 'साहित्यदर्पण' ६.२५ ।

३. (i) It must be benedictory in nature. (ii) It should suggest the subject matter of the plot. (iii) It should have 4, 8 or 12 चरणs. डी० आर० मनकड कृत 'टाइप्स ऑफ संस्कृत ड्रामा' (१९३६) पृ० १८२ ।

रणों में "नान्यन्ते सूत्रधारः" इस प्रकार लिखकर ही "वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषम्" का पाठ है। जहां श्लोक के पश्चात् "नान्यन्ते सूत्रधारः" लिखा मिलता है, वहां यह अर्थ समझना चाहिये कि नान्दी के अन्त में सूत्रधार ने यह श्लोक पढा और अब कवि नाटक को प्रारम्भ कर रहा है।[1] सम्भवतः भास ने भी नान्दी को कवि-कृत कर्म स्वीकार न करने के कारण ही "नान्यन्ते ततः प्रविशति सूत्रधारः" के पश्चात् मंगलाचरण रूप श्लोकों की रचना की। भरत के "नाट्यशास्त्र" से यह उलझन और भी बढ़ जाती है। एक स्थान पर तो इसमें "नान्दिपाठकाः" शब्द का प्रयोग होने से यह प्रतीत होता है कि नाटक आरम्भ करने से पूर्व अनेक व्यक्ति नान्दी का पाठ करते होंगे[2], दूसरे स्थान पर लिखा है कि सूत्रधार नान्दी का पाठ करे।[3] व्यास जी ने मंगलाचरण रूप तीन श्लोकों के आरम्भ करने से पूर्व नान्दी-पाठ का लेखन करके उक्त श्लोकों की रचना नान्दी के रूप में ही की है तथा नान्दी के अन्त में सूत्रधार द्वारा प्रस्तावना को प्रारम्भ करा कर यह भी प्रतिपादित किया है कि इसका गान सूत्रधार द्वारा नहीं किया गया।

प्रस्तावना— नान्दी के अनन्तर प्रस्तावना में सूत्रधार रंगमंच पर उपस्थित होकर सामाजिकों को नाटक के कथासूत्र की सूचना देता है।[4] वह नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक के साथ संलाप करता हुआ सामाजिकों को अपने कार्य का प्रतिपादन करने वाले हृदयाकर्षक वाक्यों द्वारा नाटक तथा नाटककार का परिचय देता है[5] और प्रस्तावना के अन्त में किसी वाक्य या घटना से नाटक को प्रारम्भ करता है।[6] व्यास जी ने नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना की रचना करके उसमें

---

१. विस्तृत विवेचन के लिये 'साहित्यदर्पण—शालिग्राम टीका द्वितीय आवृत्ति १९४१ का २४३-२४४ पृष्ठ देखना चाहिये।

२. 'भरतनाट्यशास्त्र' ५.२२।

३. सूत्रधारः पठेन्नान्दीं मध्यमं स्वरमाश्रितः। 'भारतनाट्यशास्त्र' ५.१०६।

४. नाटकीयकथा सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।
रंगभूमि समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।

५. नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं ततु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनापि सा। 'साहित्य-दर्पण' ६.३१-३२।

६. (i) It should occur in the beginning of the play (ii) It is सूत्रधार who should converse with his wife who is called नटी or his attendent who is called नटी or सारथि or विदूषक. (iii) In the course of this conversation or speech the audience should be informed about the name of the play, the name of the author and his history. (iv) Before closing the प्रस्तावना the सूत्रधार should introduce the character of the incidents of the actual beginning of the first Act.
डी० आर० मनकड कृत 'टाइप्स आफ संस्कृत ड्रामा' (१९३६) पृ० १८८।

सूत्रधार और नटी के संलाप द्वारा नाटक और नाटककार का परिचय देकर प्रस्तावना के अन्त में नटी के वाक्य " एदं जेव्व कीलिदं भोदु" से नाटक को प्रारम्भ किया ।

प्रस्तावना की योजना कवि तथा कविकर्म का परिचय देने के साथ ही सामाजिकों की उत्सुकता को उद्दीप्त करने के लिये भी की जाती है । व्यास जी ने प्रस्तावना में नाटक तथा नाटककार का परिचय तो दिया, किन्तु आपने सहृदयों के चित्त को आकर्षित करने के लिए प्राचीन नाटकों की परम्परा से भिन्न[1] किसी गीत का सहारा न लेकर नटी के सौन्दर्य का आश्रय लिया ।[2] व्यास जी की यह प्रस्तावना आवश्यकता से अधिक लम्बी है । ३२ पद्यों की यह प्रस्तावना अधिकांश भाग में मिथिला और मिथिलानरेश की विशेषताओं को प्रदर्शित करती हुई सामाजिकों का धैर्य लुप्त करती है । व्यास जी प्राचीन कवियों के सदृश विनम्र भी नहीं हैं । वे अपनी कृति की प्रशंसा करते हैं, और 'शाकुन्तलम्' की शकुन्तला के विरह-वर्णनों में भी खेद का अनुभव करते हैं ।[3]

प्रस्तावना के अन्तिम भाग को नाटकीय कथावस्तु के प्रारम्भ के साथ संयोजित करने की दृष्टि से इसके पांच भेद किये गये हैं— उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्त्तक और अवगलित ।[4] 'सामवतम्' नाटक में कथोद्घात नामक प्रस्तावना है । जहां सूत्रधार द्वारा कहे गये किसी वाक्य या वाक्यार्थ को लेकर कोई पात्र रंगमंच पर प्रवेश करता है, वह प्रस्तावना कथोद्घात कहलाती है ।[5] यदि इस स्थल पर सूत्रधार से अभिप्राय सूत्रवार और उसके सहयोगी लिया जावे तो प्रस्तुत नाटक में सूत्रधार के साथ वार्ता करती हुई नटी के "एदं जेव्व कीलिदं भोदु" वाक्य को उच्चारण करते हुये बन्धु-जीव का प्रवेश होने से इस नाटक की प्रस्तावना को कथोद्घात कहा जा सकता है ।

अंक और दृश्य—'सामवतम्' छः अंकों का नाटक है । प्रत्येक अंक में लिखित रूप से तो नहीं, अपितु प्रयोग की दृष्टि से अनेक दृश्य हैं । संस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक में ५-१० अंक होने चाहिये ।[6] व्यास जी ने इन निर्देशों का

---

१. 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्', 'वेणीसंहार' आदि नाटकों में ऋतु-सम्बन्धी गीत गाये गये हैं ।

२. 'सामवतम्' १.६ ।

३. 'सामवतम्' पृ० १२ ।

४. उद्घात्यकः कथोद्घातः प्रयोगातिशयस्तथा ।
प्रवर्तकावगलिते पंञ्च प्रस्तावनाभिदाः । 'साहित्यदर्पण' ६ ३३ ।

५. सूत्रधारस्य वाक्यं वा समादायार्थमस्य वा ।
भवेत् पात्रप्रवेशश्चेत् कथोद्घातः स उच्यते । 'साहित्यदर्पण' ६.३५ ।

६. पंचावरा दशपरा ह्यंका स्युर्नाटके प्रकरणे च । 'भरतनाट्यशास्त्र' २०.१६ ।

समुचित निर्वाह किया। अंकों के दृश्य-विभाजन की योजना में कुछ विचार अपेक्षित है। सामान्यतः आलोचकों की यह धारणा है कि संस्कृत नाट्यशास्त्र अंकों को दृश्यों में विभक्त करने की अनुमति नहीं देता।[1] जी० बी० देवस्थली ने 'मृच्छकटिक' में अंकों के दृश्यों में विभाजन का उल्लेख करते हुये भी संस्कृत नाट्यशास्त्र में दृश्य-विभाजन की परम्परा के अभाव का समर्थन किया।[2] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी अंकों में दृश्य-विभाजन को आधुनिक युग की ही देन बतलाया।[3] वास्तविकता यह है कि संस्कृत के नाट्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों में इस विभाजन का न तो आदेश है और न निषेध। संस्कृत के कुछ नाटकों जैसे कि 'मृच्छकटिक' में ही इस पद्धति का प्रयोग है। यह भी संभव है कि आधुनिक युग के नाटकों की दृश्य-योजना ने व्यास जी को अंकों के दृश्य-विभाजन की प्रेरणा दी हो।

'सामवतम्' नाटक के प्रथम अंक में ४ दृश्य हैं। प्रथम दृश्य में बन्धुजीव की उछल-कूद, द्वितीय में सारस्वत और वेदमित्र द्वारा सामवान् और सुमेधा को विदर्भनगर के लिये प्रस्थान कराना, तृतीय में कलि एवं चतुर्थ में सामवान् और सुमेधा का विदर्भवन-मार्ग से जाना, अप्सराओं का गान और दुर्वासा का शाप प्रदर्शित हैं। द्वितीय अंक तीन दृश्यों का है। प्रथम दृश्य में होली में उच्छृंखलता प्रदर्शित करने के कारण वसन्तक को राजभट बांध कर ले जाता है। द्वितीय में सामवान्, सुमेधा और देवशर्मा नगर-परिभ्रमण करते हैं और उनके जाने पर विदूषक आकर नृत्य-ध्वनि सुनकर राजसभा में चला जाता है। तृतीय दृश्य आमोद-प्रमोद के वातावरण से युक्त राज-सभा का है। तृतीय अंक का विभाजन तीन दृश्यों में है। प्रथम दृश्य सीमन्तिनी के उद्यान-रक्षक से प्रारम्भ होकर वसन्तक के राजसभा में जाने पर समाप्त होता है। द्वितीय में सामवान् और सुमेधा देवशर्मा के साथ राज-सभा की ओर जाते हुये दिखाई देते हैं। अन्तिम दृश्य में राजसभा का प्रदर्शन है। चतुर्थ अंक की योजना दो दृश्यों की है। प्रथम दृश्य में वनप्रान्त में सामवती-सुमेधा का प्रणय प्रसंग है और उनके जाने के पश्चात् ब्रह्मचारी तथा भिक्षुक का वहां आते हैं।

---

१. Rules of Sanskrit dramaturgy do not allow the division of an Act in to scenes. An Act constitutes so as to say one long scene, for the stage is not to be left vacant during it's course.
ए० बी० गजेन्द्रगडकर कृत 'वेणीसंहार : ए क्रिटिकल स्टडी' (१९३४) पृ० ३५।

२. An Act in a Sanskrit drama is not divided in to scenes as in a modern drama, and yet it may be observed that Act i of Mrichhakatika represents a series of scenes.
जी० बी० देवस्थली कृत 'इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी आफ मृच्छकटिक' प्रथम संस्करण

३. श्यामसुन्दर-सम्पादित 'भारतेन्दुनाटकावली' परिशिष्ट पृ० ७९५।

दूसरे में सारस्वत और वेदमित्र विदर्भनगर में पुत्रों के साथ घटित घटना को ब्रह्मचारी से सुनते हैं। पंचम अंक में दो दृश्य हैं। पहिले दृश्य में राजा के शयन से लेकर देवी की पूजा के लिये जाने तक का दृश्य अंकित है। दूसरा दृश्य देवी की पूजा से प्रारम्भ होकर राजा द्वारा सामवती के विवाह के लिये सामग्री भेजने के आदेश देने पर समाप्त होता है। षष्ठ अंक में दो दृश्यों की योजना है। प्रथम दृश्य में सुमेधा की विरह दशा का चित्रण है। द्वितीय दृश्य सामवती की विरह-दशा के चित्रण के वर्णन से प्रारम्भ होकर नाटक के अन्त तक समाप्त होता है। व्यास जी की दृश्य-योजना नाटक के अभिनय को सफल बनाने के लिये महत्वपूर्ण है।

अर्थोपक्षेपक — नाटकीय कथावस्तु की कुछ घटनायें या तो स्थान और समय की दीर्घता के कारण अथवा अभिनय की दृष्टि से अनौचित्य के कारण[1] रंगमंच पर उपस्थित नहीं की जा सकतीं, किन्तु नाटकीय कथासूत्र को समझने के लिये सामाजिकों को इन घटनाओं का समझाना आवश्यक होता है। दर्शकों को इन घटनाओं की सूचना अर्थोपक्षेपकों द्वारा दी जाती है।[2] ये अर्थोपक्षेपक पांच प्रकार के होते हैं— विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अंकावतार और अंकमुख।[3] 'सामवतम्' में प्रवेशक और विष्कम्भक का प्रयोग है। द्वितीय अंक के आरम्भ में प्रवेशक और तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ अंक के आरम्भ में विष्कम्भक है।

दो अंकों के बीच की कथा का निदर्शन कराते के लिये प्रवेशक का प्रयोग किया जाता है। इसमें निम्न कोटि के पात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं और यह प्रथम अंक के आरम्भ में प्रयुक्त नहीं होता।[4] व्यास जी ने द्वितीय अंक के आरम्भ

---

१. दूराध्वानं वधं युद्धं राज्यदेशादिविप्लवं। संरोधः भोजनं स्नानं सुरतं चानुलेपनम्।
अम्बरग्रहणादीनि प्रत्यक्षाणि न कारयेत्। 'दशरूपक' ३.३४-३५।

२. अंकेष्वदर्शनीया या वक्तव्यैव च सम्मता। या च स्याद् वर्षपर्यन्तं कथा दिनद्वयादिजा।
अन्या च विस्तरा सूच्या सार्थोपक्षेपकैर्बुधैः। 'साहित्यदर्पण' ६.५१-५२।

३. अर्थोपक्षेपकाः पंच विष्कम्भकप्रवेशकौ।
चूलिकांकावतारोऽथ स्यादंकमुखमित्यपि। 'साहित्यदर्पण' ६.५४।

४. (क) प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः। अंकद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।
'साहित्यदर्पण' ६.५७।

(ख) केचित् प्रवेशकं प्रथमांकस्यादौ नेच्छन्ति। 'नाट्यदर्पण' '(ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ोदा १९५९) पृ० ३५।

(ग) (i) It should not occur in the beginning of the first Act. It can occur in the beginning of any other Act. (ii) In it all the characters should speak in Prakrit, i. e. all the characters figuring therein are low ones.
डी० आर० मनकड कृत टाइप्स आफ संस्कृत ड्रामा' (१९३६) पृ० १८७।

में प्रवेशक का प्रयोग करके प्रथम अंक में विदर्भनगर को चले हुये सामवान् और सुमेधा के विदर्भनगर पहुँचने की सूचना दी है।[1] वस्तुतः इस स्थान पर प्रवेशक का प्रयोग उपयुक्त नहीं है। इस प्रवेशक से प्रथम और द्वितीय अंक के मध्य होने वाली किसी घटना की सूचना प्राप्त नहीं होती। देवशर्मा के साथ सामवान् और सुमेधा को विदर्भनगर के मार्ग में देखकर दर्शक स्वयं ही उनके नगरागमन को समझ सकते हैं। सम्भवतः व्यास जी ने इस प्रवेशक की जटिल ब्राह्मण की घटना द्वारा हास्य उत्पन्न करने की चेष्टा की है, जिसका द्वितीय अंक की कथा के साथ कोई सीधा सम्बन्ध नही। अतः यह प्रवेशक अधिक उपयोगी प्रतीत नहीं होता। इसके प्रयोग में व्यास जी ने नाट्यशास्त्रीय नियमों का भी उल्लंघन किया है। प्रवेशक में निम्न कोटि के पात्र प्राकृत का प्रयोग करते हैं।[2] व्यास जी ने इसमें संस्कृत बोलने वाले जटिल ब्राह्मण और अमात्य को प्रयोजित किया।

दो अंकों के मध्यवर्ती कथांश को सूचित करने के लिये विष्कम्भक का प्रयोग किसी भी अंक के आरम्भ में किया जा सकता है। यह दो प्रकार का होता है— शुद्ध और संकीर्ण। शुद्ध विष्कम्भक संस्कृत बोलने वाले एक अथवा दो मध्यम पात्रों से प्रयोजित होता है।[3] तृतीय अंक के विष्कम्भक में कलि वसन्तोत्सव जनित मदोन्मत्तता की सूचना देता है, जिससे मुनिपुत्रों के अहित-सम्पादन की अभिव्यक्ति होती है। यह विष्कम्भक संस्कृत बोलने वाले एक ही पात्र द्वारा प्रयोजित होने के के कारण शुद्ध विष्कम्भक है।

चतुर्थ अंक के विष्कम्भक द्वारा व्यास जी ने तृतीय-चतुर्थ अंकों के मध्य की घटनाओं की सूचना दी है— मुनिपुत्रों की अवहेलना के कारण राज्यव्यापी उपद्रव हुये, सामवान् और सुमेधा के दम्पति के रूप में सीमन्तिनी के घर जाने और उसके द्वारा उसी रूप में पूजित होने के कारण सामवान् स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गया और अब वे वन मार्ग-से अपने घर जा रहे हैं। यह विष्कम्भक कथानक की दृष्टि से उपयोगी है, किन्तु इसमें भाषोच्चारण विषयक अनौचित्य है। यद्यपि संस्कृत

---

१. 'सामवतम्' पृ० ५३। २. एवं प्रवेशको नीचैः पदार्थैः प्राकृतादिना। 'नाट्यदर्पण' १.२५।

३. (क) वृत्तावर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः। संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावंकस्य दर्शितः॥
मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रजोजितः। शुद्धः स्यात् स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः॥
'साहित्यदर्पण' ६.५५-५६।

(ख). (i) It can occur in the beginning of any Act, even the first.
(ii) It is called शुद्ध if all the characters therein are such as use Sanskrit only, and it is called संकीर्ण if some of the characters speak in Sanskrit and some in Prakrit.
डी० आर० मनकड कृत 'टाइप्स आफ संस्कृत ड्रामा' (१९३६) पृ० १८७-१८८।

भाषा बोलने वाले दो पात्रों ब्रह्मचारी और भिक्षुक द्वारा प्रयोजित होने के कारण इसे शुद्ध विष्कम्भक कहा जा सकता है, तथापि नाट्यशास्त्रीय परम्परा के अनुसार भिक्षु को प्राकृत का उच्चारण करना चाहिये।[1]

पंचम अंक के विष्कम्भक द्वारा चतुर्थ-पंचम अंकों के मध्य की घटनाओं की सूचना दी गयी है। चतुर्थ की समाप्ति पर सारस्वत राजा को दण्ड देने का निश्चय करते हैं और पंचम अंक में वे राजमहल में दिखाई देते हैं। सारस्वत के तपोवन से प्रस्थान करने और उसी दिन विदर्भनगर पहुंच जाने की सूचना ब्रह्मचारी के कथन द्वारा दी गयी है[2] और अमात्य को पुष्प देकर[3] राजा की रक्षा भी अभिव्यक्त की गई है। वेश बदल कर नदी-मार्ग से आते हुये अमात्य द्वारा यह भी सूचित किया गया है कि तृतीय अंक में वन्यों को पराजित करने के लिये भेजा गया अमात्य उनसे ही पराजित होकर विदर्भनगर लौट रहा है[4] और इसका कारण राजा का अनाचार है[5]। वस्तुतः यह विष्कम्भक इस स्थान पर अनावश्यक है। सारस्वत के तपोवन से प्रस्थान करने का बोध उनके विदर्भनगर पहुंचने के द्वारा सामाजिकों को स्वयं ही हो जाता है, ब्रह्मचारी द्वारा प्रदत्त पुष्प से राजा की रक्षा करने में किसी प्रकार की सहायता कवि ने प्रदर्शित नहीं की और अमात्य के हार कर आ जाने का समाचार उसके पत्र द्वारा सामाजिकों को मिल जाता है। इस विष्कम्भक में प्रकृति-चित्रण, उपदेश और विचित्र घटनाओं का अनावश्यक विस्तार करके भी कवि ने इसकी प्रकृति की रक्षा नहीं की। संस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओं का प्रयोग करने वाले पात्रों से प्रयोजित होने के कारण यह विष्कम्भक संकीर्ण है।

पंचम-षष्ठ अंकों के मध्यवर्ती कथा के अंश की सूचना षष्ठ अंक के विष्कम्भक द्वारा दी गयी है। अपनी पुत्री का विवाह करने के लिये सारस्वत विदर्भनगर से चलकर तेजी से आश्रम की ओर आ रहे हैं। संस्कृत-प्रयोग करने वाले एक पात्र से प्रयोजित होने के कारण यह विष्कम्भक शुद्ध विष्कम्भक कहा जा सकता है, किन्तु भिक्षु द्वारा संस्कृत भाषा का प्रयोग नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुकूल नहीं है।

भरत वाक्य—संस्कृत नाटकों में अभिनय की समाप्ति पर भरत वाक्य के रूप में आशीर्वादात्मक पद्य का गान किया जाता है। यद्यपि इस प्रयोग का विधान किसी नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ में नहीं है, तथापि यह परम्परा संस्कृत रूपकों के

---

१. व्याजलिंगप्रविष्टानां श्रमणानां तपस्विनाम्।
भिक्षु चाप्टचराणां च प्राकृतं सम्प्रयोजयेत्। 'भरत-नाट्यशास्त्र'-१८.३२-३३।

२. 'सामवतम्' पृ० १७५। ३. 'सामवतम्' पृ० १७६।

४. ,, ५.४। ५. ,, ५.६।

प्रारम्भिक युग से ही है । नाटक का अभिनय समाप्त होने पर कवि नाटक के मुख्य पात्र द्वारा आशीर्वादात्मक पद्य से सामाजिकों के मंगल की आशंसा करता है । इस समय नट इस पद्य का उच्चारण किसी पात्र के रूप में नहीं, अपितु नट के ही रूप में करता है । सम्भवतः नाट्य-विज्ञान के संस्थापक भरत मुनि के प्रति आदर प्रदर्शन के लिये इस पद्य को भरत-वाक्य की संज्ञा प्रदान की गयी थी ।[1] कुछ विद्वानों की मान्यता है कि भरत-वाक्य का गान सभी नट सम्मिलित रूप से किया करते थे ।[2] 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के टीकाकार राघवभट्ट का कथन है कि भरत-वाक्य नट-वाक्य है । नाटक के अभिनय के अनन्तर नट के द्वारा सामाजिकों को आशिष् दिया जाता है । प्रस्तावना के अनन्तर नट-वाक्य के अभाव के कारण इसे भरत वाक्य कहते हैं ।[3] भरत-वाक्य को निर्वहण सन्धि का अन्तिम अंग प्रशस्ति भी कहा जा सकता है ।[4]

संस्कृत नाटकों की इस परम्परा के पालन में भी व्यास जी ने स्वतन्त्र प्रवृत्ति ग्रहण की है । प्राचीन संस्कृत रूपकों में 'भरत-वाक्यम्' शब्द लिखने के अनन्तर आशीर्वादात्मक पद्य लिखने की परम्परा है, किन्तु व्यास जी ने आशिष् लिखने के पूर्व न तो 'भरतवाक्यम्' शब्द का प्रयोग किया और नाहीं इसे इस रूप में निबद्ध किया । इसके लिये आपने अनेक पद्यों की रचना की और अनेक पात्रों से भिन्न भिन्न पद्यों का गान कराया । प्राचीन नाटकों की परम्परा से भिन्न 'सामवतम्' नाटक के नट पात्रों के रूप में ही इन पद्यों का गान करते हैं । कवि ने सारस्वत के दान से सन्तुष्ट हुये विप्रों से दो पद्यों द्वारा और वेदमित्र से एक पद्य द्वारा सामाजिकों के लिए आशीर्वाद प्रदान कराकर सारस्वत द्वारा स्वयं अपने लिये भी धन और मान की प्राप्ति की आशंसा कराई है । प्राचीन नाटकों में भरतवाक्य के बाद सब पात्र रंग-मंच से चले जाते हैं, किन्तु कवि इस नाटक में भरतवाक्यों से सन्तुष्ट न होकर बन्धुजीव द्वारा मोदकभक्षण की कामना व्यक्त कराकर जिह्वा के माधुर्य को अभिव्यक्त करता हुआ यवनिका के पात का निर्देश करके नाटक की समाप्ति करता है ।

---

१. 'अभिज्ञान-शाकुन्तम्'—एम० आर० काले द्वारा सम्पादित और सुरेश उपाध्याय कृत टिप्पणी सहित (अष्टम संस्करण १९५७) टिप्पणी पृ० २०० ।

२. डी० आर० मनकड कृत 'टाइप्स आफ संस्कृत ड्रामा' (१९३६) पृ० १८९ ।

३. भारतवाक्यं नटवाक्यम् । नाटकीयाभिनयसमाप्तौ सामाजिकेभ्यो नटेनाशीर्दीयते । प्रस्तावनानन्तरं नटवाक्याभावादत्र भरतवाक्यमित्युक्तिः । 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'—राघवभट्ट टीका (निर्णयसागर प्रेस १९५८) पृ० २७१-२७२ ।

४. भरतः नट. तस्य प्रस्तुतानुकार्यभेदेन मंगलाशासनतत्परं वाक्यमित्यर्थः । 'निर्वहणसन्धेरन्त्यं प्रशस्तिरूपमंगलमिदम् । 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'— नारायणशास्त्री खिस्ते कृत टीका (खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स १९५७) पृ० ६५० ।

२. आन्तरिक-विधान—

रूपक की आन्तरिक रूप-रेखा का निर्माण, भाषा, गुण, रीति और अलंकारों द्वारा किया जाता है। यद्यपि भाषा आदि अभिव्यक्ति के बाह्य तत्व हैं, तथापि कवि के विवक्षित विचारों और भावों की अभिव्यक्ति इन्हीं तत्वों द्वारा होती हैं। रूपकों की आलोचना करते हुये नान्दी आदि का ग्रहण बाह्य विधान के रूप में करने के अनन्तर इन तत्वों को आन्तरिक विधान के रूप में ग्रहण करना उपयुक्त है। साहित्य-कार अपने व्यक्तित्व के विशिष्ट विधानों की संयोजना में तत्पर होता है। रचना कौशल के इस आन्तरिक विधान पर विचार करते हुये सर्व-प्रथम भाषा अर्थात् शब्दचयन और उनके प्रयोग आदि का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इस अध्ययन में निम्न अनुक्रम ग्रहण किया गया है—

(क) शब्द-शक्तियों का उपयोग।
(ख) अनुगुण शब्दों का प्रयोग।
(ग) शब्द और ध्वनि वैशिष्ट्य।
(घ) व्याकरण सम्बन्धी विशेषतायें।
(च) भाषा की सशक्तता।
(छ) लोकोक्तियाँ।
(ज) भाषा-गत दोष।
(झ) पद्य-योजना।
(ट) प्राकृत का प्रयोग।

(क) शब्द शक्तियों का उपयोग :—रूपकों में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना तीनों शब्द-शक्तियों (वृत्तियों) का प्रयोग है। अभिधा वृत्ति का प्रयोग सामान्यतः हर एक प्रकार के अर्थ के प्रकाशन में है ही, अतः लक्षणा और व्यञ्जना वृत्तियों के प्रयोग के उदाहरण दिये जाते हैं—

लक्षणा वृत्ति—

लुलद्रोलम्बालीकलितकमलस्पर्द्धिरुचयः
कटाक्षा बालानां प्रकृतिचपला घ्नन्ति हृदयम्।[1]

कटाक्ष में हत करने की सामर्थ्य न होने से घ्नन्ति - हत करते हैं, इस वाच्य अर्थ के बाधित होने के कारण आकर्षित करते हैं, इस लक्ष्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है और इसका प्रयोजन बालाओं के कटाक्ष की अद्भुत शक्ति की प्रतीति कराना है।

चण्डिका बहुवरदानैः राजानमजीवयत्।[2]

राजा के मृत न होने से अजीवयत् — जीवित कर दिया, इस वाच्य अर्थ के

१. 'सामवतम्' १.३८। २. 'सामवतम्' पृ० २००।

बाधित होने से आश्वासित किया, इस लक्ष्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है और इसका प्रयोजन राजा की अतिपीडायुक्त असहायावस्था की प्रतीति कराना है।

व्यंजना वृत्ति—

इस वृत्ति का प्रयोग प्राचुर्य से किया गया है। लक्षणामूला व्यंजना के उदाहरण ऊपर लिखे गये दोनों उदाहरणों में देखे जा सकते हैं, जहां प्रयोजनों की प्रतीति व्यंजना द्वारा होती है। अभिधामूला शाब्दी व्यंजना निम्न पद्य में है।

विरचितसुरुचिरकाव्ये विदुषां सदसि च सदा सदासाद्ये।
लक्ष्मीश्वरः प्रसन्नो भवतुतरामम्बिकादत्ते ॥[1]

प्रकरण के अनुसार यहां लक्ष्मीश्वर का अर्थ विष्णु में और अम्बिकादत्त का अर्थ अम्बिका देवी द्वारा प्रदत्त वर में नियन्त्रित हो जाने के पश्चात् भी यहां व्यंजना वृत्ति द्वारा लक्ष्मीश्वर शब्द से मिथिला-नरेश लक्ष्मीश्वरसिंह और अम्बिकादत्त शब्द से नाटककार अम्बिकादत्त की प्रतीति होती है और तदनन्तर विष्णु और मिथिला-नरेश में सादृश्य की प्रतीति होने से उपमा अलंकार व्यंजित होता है।

निम्न पद्यों में अभिधामूला आर्थी व्यंजना का प्रयोग है—

येन शूकरतां नीतः पुरुषः परमेश्वरः।
अधर्मं मर्मभेत्तारं तमेनं वेत्ति नैव कः।[2]

'येन' पद अधर्म में पुरुष-परमेश्वर को भी शूकर रूप बना देने की शक्ति की उद्भावना करता है और उसके द्वारा जो अधर्म परमेश्वर की भी दुर्दशा कर सकता है, वह परमेश्वर के आश्रय में रहने वाले का पराभव तो कर ही सकता है, यह वस्तु अभिव्यक्त होती है।

श्रुतं मया वन्हिसमाह्नित नारी तथाज्यतुल्यः पुरुषो मतोऽस्ति।
अहं तु कीलाकुलितास्मि किंतु कीलालवत् त्वं किल शान्त एव।[3]

यहां तुम मुझसे समागम करो इस वस्तु रूप अभिव्यंजना द्वारा शृंगार रस की अभिव्यक्ति होती है।

(ख) अनुगुण शब्दों का प्रयोगः—व्यास जी ने इन रूपकों में काव्यानुगुण शब्दों का प्रयोग किया है। इससे इनकी व्यंजना शक्ति के प्रयोग की समर्थता भी सूचित होती है। सुमेधा के साथ रमण करने की अभिलाषा को प्रकट करती हुई सामवती "मां तरुणीं रमणीभवेहि"[4] कहती है। यहां रमण करने की अभिलाषा

१. 'सामवतम्' ६.२१।
२. 'धर्माधर्मकलकलम्'-१३।
३. ,, ४.१८।
४. 'सामवतम्' पृ० १३७

रखने वाली यौवन-सम्पन्न नारी के लिये युवती आदि अन्य शब्दों की अपेक्षा रमणी शब्द काव्य के अधिक अनुगुण है। भगवती दुर्गा की आराधना करते हुये राजा देवी के सुखद और रक्षा करने वाले मातृ-भाव का स्मरण करते हुये अम्बिका शब्द का[1], गिरीश को गौरव प्रदान करने वाले भाव का स्मरण करते हुये गौरी का[2], राक्षसों की विनाशक शक्ति का ध्यान करते हुये कालिका का[3] और चण्ड-मुण्ड-विनाशक रूप की स्तुति करते हुये चामुण्डा[4] शब्द का प्रयोग करता है। काव्य में इन शब्दों का प्रयोग अर्थाभिव्यक्ति के अधिक अनुकूल है।

(ग) शब्द और ध्वनि वैशिष्ट्य:— कुछ स्थलों पर व्यास जी ने शब्दों की योजना करते हुये बुद्धि का चमत्कार प्रदर्शित किया है। प्रथम अंक के सप्तम श्लोक में से लकार का लोप करके शोक की और तीसवें श्लोक के प्रत्येक पाद के द्वितीय वर्ण को लेकर दरभंगा की रचना की। कवि की वर्गों के प्रथम और तृतीय वर्णों के साथ पंचम वर्ण को संयुक्त करके प्रयोग करने की प्रवृत्ति अधिक है। माधुर्य गुण[5] और ओजोगुण[6] व्यंजक दोनों प्रकार की रचनाओं में ये प्रयोग मिलते हैं। व्यास जी इन रूपकों में ड़ ध्वनि का प्रयोग करके[7] संस्कृत वर्णमाला में इसकी आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। अनुकरणात्मक तथा मनोभावाभिव्यञ्जक शब्दों का प्रचुर प्रयोग इन रूपकों में प्राप्त होता है। तबले की अनुकरणात्मक ध्वनि धि धि धि आदि द्वारा[8], सारंगी की चिंचा द्वारा,[9], मंजीरे की क्षक्ष द्वारा, कबूतर की घूं घूं घुटनक शब्द द्वारा[10] और विद्युच्चमत्कार सहित मेघगर्जन की हलहला शब्द द्वारा[11] वर्णित की गई है। क्रोध, विस्मय, हर्ष, शोक और भय आदि के बोधन के लिये अरे, अहह, आः, होहो, हाहा आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। भावों की तीव्रता की अभिव्यक्ति के लिये शब्दों में वीप्सा है। अनुकरणात्सक शब्दों में पाश्चात्य अलंकार ध्वन्यार्थव्यंजना की योजना है, किन्तु सम्भवतः उनका यह प्रयोग पाश्चात्य साहित्य के अनुकरण में नहीं है।

(घ) व्याकरण संबन्धी विशेषतायें—व्यास जी ने अनेक शब्दों का प्रयोग व्याकरण के नियमों के प्रदर्शन के लिये किया है। 'तन्त्री':[12] शब्द में सु का लोप न करने में "अवीलक्ष्मीतरीतन्त्रीह्रीधीश्रीणामुणादितः इति स्त्रीलिंगानाममीषां तु न

---

१. 'सामवतम्' ४.२१।
२. 'सामवतम्' पृ० १८६।
३. ,, ५.२१।
४. ,, ५.२१।
५. ,, पृ० ३८,८४।
६. ,, पृ० १८६।
७. ,,
८. ,, २.२६।
९. ,, २.३०।
१०. ,, पृ० ३५।
११. ,, पृ० १७१।
१२. ,, १.५।

सुलोपः'' इस व्याकरण के नियम का निर्वाह है। 'कृते इव', 'इमे अपि', 'दिशे एते'[१] में ''ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्'' इससे प्रगृह्य संज्ञा होने के कारण ''प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्'' इस प्रकृतिभाव के नियम का और 'हृत्कण्ठशिरः'[२] में प्राण्यंग होने से द्वन्द्व में एकवद्भाव के नियम का निर्वाह किया गया है। सन्नन्त धातुओं के प्रयोग में व्यास जी ने विशेष रुचि प्रदर्शित की है। अभिनिनीषामि[३], दिदृक्षवः[४], परिचिकीषया[५], शुश्रूषे[६], जिहीर्षुणा[७], तिष्ठासामि[८], चिकारयिषति,[९], अनुजिगमिषामि[१०], समनुमित्सति[११], चुचुम्बिषुः[१२], रुरुदिषति[१३], पिपतिषति,[१४] जिगमिषति[१५], पद इस कथन को पुष्ट करने में प्रमाण है।

(च) भाषा की सशक्तता—व्यास जी ने रूपकों में सशक्त भाषा का प्रयोग किया है। किसी भी कथन के प्रतिपादन के लिये आप शब्दों और प्रमाणों की परम्परा बांध देते हैं। अपने कथन की पुष्टि के लिये आपके पास शब्दों की कमी नहीं है। 'सामवतम्' नाटक की मनोमोहकता आपने निम्न शब्दों के नैरन्तर्य से की है—

युक्तं हि, कस्य हृदयं न हरति सामवतं नाम नाटकम्? यस्मिन् सामवत्सुमेधसोर्मित्रता, सामवतो धीरस्यापि मदालसासाक्षात्कारेण कामवशवदता, अल्पापराधेऽपि दुर्वाससः कठिनशापता, तपस्तापितस्यापि कलेः पापता, निरर्गलहोलिकोत्सवस्य दुरन्तता, राजप्रमादस्यागन्तता, कपटस्य दुःखदता, भक्तिभावस्यापूर्वसामर्थ्यता, काममार्गणानां दुर्वारता, धीरधौरेयस्यापि सुमेधसो धन्यता, विप्रकोपस्य भयंकरफलता, दैवघटनायाश्चावश्यंभाविता, सहृदयहृदयहारिरसोल्लासभंगीभिर्बहुधा प्रदर्शिता।[१६]

कलि के बल का प्रदर्शन करने के लिये व्यास जी एक युक्ति से ही सन्तुष्ट नहीं होते, अपितु अनेक युक्तिगर्भित वाक्यों से इसे पुष्ट करते हैं।[१७] कपट की त्याज्यता के प्रतिपादन के लिये आप उदाहरण पर उदाहरण प्रस्तुत करते चले जाते हैं।[१८] कामावस्था की वृद्धि के हेतुओं को आपने बलपूर्वक उपस्थित किया है—

---

१. 'सामवतम्' २.२३। २. 'सामवतम्' ४.१०।
३. ,, पृ० १२। ४. ,, पृ० १३।
५. ,, ,, ६३। ६. ,, ,, ६४।
७. ,, ,, १२५। ८. ,, ४-६।
९. ,, ,, १३२। १०. ,, पृ० १३२।
११. ,, ४ २२। १२. ,, ,, १६०।
१३. ,, ५.१०। १४. ,, ५.१०।
१५. ,, ५.१०। १६. ,, पृ० ७।
१७. ,, पृ० ८१-८२। १८. ,, ,, ११६,३.३४।

हा प्रथमतस्तु मनः स्वभावत एव विषयलोलुपं भवति, ततोऽपि ऋतुराजराजितं वनमेतत्, ततोऽपि च प्रदेशोऽयं निर्जनः, तत्रापि सहानुगता रूपवती रमणी, अहह सापि च स्वयमेव सुरतप्रार्थनां करोति। हा कष्टं, भो मदन रतिनाथ त्वमपि किमस्मिन्नेवावसरे निजां शरक्षेपचातुरीं दर्शयसि ?[१]

इस प्रकार के प्रयोग इन रूपकों में स्थान स्थान पर हैं। अपने कथन को अधिक सशक्त बनाने के लिये इसको अनेक स्थलों पर निषेध युक्त प्रश्नवाचक रूप में लिखा है। यथा—"युक्तं हि कस्य न हृदयं हरति सामवतं नाटकं"[२], गणेशं पदकमलं कमलं कर्तुं समर्थं न"[३] आदि प्रयोग इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार के वाक्यों का प्रयोग व्यास जी ने बहुलता से किया है।

(छ) लोकोक्तियां—व्यास जी के रूपकों में लोकोक्तियों और सूक्तियों का प्रयोग भी प्राचुर्य से है। कई लोकोक्तियां हिन्दी से ली गई हैं। यथा—"हाथ कंगन को आरसी क्या" इस कहावत को "तत् किं कंकणस्यापि दर्पणे साक्षात्कारः" इस रूप में रखा है। लोकोक्तियों के कुछ उदाहरण नीचे हैं—

(१) कठिनं बधिरस्य जीवितम्।[४]
(२) यतो विज्ञाः परार्थिनः।[५]
(३) नित्यं दध्योदनं भक्षयतु वयस्यः।[६]
(४) प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा।[७]
(५) दिष्ट्या परास्तोऽयं गलग्रहः।[८]
(६) भस्मतां गतोऽपि नो जहाति रज्जुपाशको ग्रन्थिबन्धवक्रतां प्रसिद्धमस्ति भूतले।[९]
(७) स्वयं विनष्टः परनाशने पटुः।[१०]
(८) कुण्डलमण्डलरचने कोऽन्यं चामीकरादन्यः।[११]
(९) श्रुतं मया वन्हिसमास्ति नारी तथाज्यतुल्यः पुरुषो मतो मे।[१२]
(१०) तत् किं कंकणस्यापि दर्पणे साक्षात्कारः।[१३]
(११) पशुमारं मारणीयः।[१४]

१.	'सामवतम्'	पृ० १४८।	२.	'सामवतम्'	पृ० ७।
३.	,,	१.३४।	४.	,,	,, ५२।
५.	,,	२.२१।	६.	,,	,, ७९।
७.	,,	पृ० ९५।	८.	,,	,, १३४
९.	,,	४.३२।	१०.	,,	,, १४७।
११.	,,	४.४६।	१२.	,,	४.१८।
१३.	,,	पृ० १३८।	१४.	,,	पृ १४९।

(१२) दग्धे इव लवणप्रक्षेपः ।[1]

(१३) दूरस्थानामपि हृदामवितर्क्यः सम्बन्धः ।[2]

(१४) क्षणाः इव व्यतियान्ति दिवसाः ।[3]

(ज) भाषा-गत दोषः—रूपकों की भाषा में शब्द-गत दोष कहीं कहीं दृष्टिगोचर होते हैं। कुछ अर्थगत दोष भी हैं। यथा—'कामवशवदता'[4] के स्थान पर 'कामवशंवदता' होना चाहिये। व्याकरण की अशुद्धि होने के कारण यहां शब्दगत च्युतसंस्कृति दोष है। 'अहं सेना नयन्'[5] इस वाक्य में कर्ता में प्रथमा होने से कर्म में 'द्वितीया' होकर 'सेनां' या 'सेनाः' होना चाहिये। यहां वाक्यगत च्युत-संस्कृति दोष है।[6] 'कण्ठग्रहोद्दीपितः'[7] यह शब्द आलिंगन से उदीप्त हुआ इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। 'कण्ठग्रह' का 'कण्ठालिंगन' तथा 'बलात् गले पड़ा हुआ' दोनों अर्थ हो सकते हैं। इनमें दूसरा अर्थ अधिक प्रसिद्ध है, अतः यहां निहतार्थत्व दोष है।[8] सारस्वत के कोप के निवारण के लिये राजा देवी अम्बिका से वर मांगते हैं कि 'अपुत्रतातिविकल' सारस्वत मुझे भस्मसात् न करें। यहां 'अपुत्रता' का अभिप्राय है कि सारस्वत का पहिले पुत्र था किन्तु अब नहीं है। इससे यह अर्थ भी ध्वनित हो सकता है कि सारस्वत प्रारम्भ से ही पुत्र रहित थे। इस प्रकार विपरीत अर्थ के बोधन होने से यहां प्रकाशितविरुद्धत्व दोष है। यदि 'पुत्रनाशातिविकलः' शब्द का प्रयोग किया जाता तो अधिक उपयुक्त होता। 'अविशुद्ध'[9] शब्द का प्रयोग 'अतिनिर्मल' अर्थ के लिये किया गया है। "विगता शुद्धिर्यस्मात् तत् विशुद्धम्, न शुद्धम् अविशुद्धम्" इस प्रकार इस शब्द का निर्मल अर्थ हो सकता है। साहित्य में "विशेषेण शुद्धं विशुद्धं, न विशुद्धम् अविशुद्धम्" इस प्रकार इसका मलिन अर्थ अधिक प्रयुक्त होता है। यहां विरुद्ध अर्थ की प्रतीति होने से विरुद्धमतिकृत् दोष है। सूर्य की स्तुति करते हुये कवि ने प्रथम और द्वितीय चरण में "चलतु" इस एकवचन का प्रयोग किया है, तृतीय चरण में "आचरन्तु" इस बहु वचन का प्रयोग

---

१. 'सामवतम्' पृ० १६४। २. 'सामवतम्' पृ० १६६।
३. 'मित्रालापः'। ४. ,, ,, ७,
५. सामवतम् पृ० १८१।
६. च्युतसंस्कृति व्याकरणलक्षणविहीनम्। 'काव्यप्रकाश' पृ० १११।
७. 'सामवतम्' पृ० १५६।
८. निहतार्थं यदुभयार्थमप्रसिद्धेऽर्थे प्रयुक्तम्। 'काव्यप्रकाश' पृ० १११।
९. सामवतम् ४.५४।

किया है ।[1] यहां भग्नप्रक्रमत्व दोष है ।

(झ) पद्य-योजना—

रूपकों की भाषा गद्यपद्यमयी होने के कारण और पद्य रचना में विशेष बन्धन होने के कारण पद्यों की योजना पर विचार आवश्यक है । श्लोकों और गीतों की रचना में अनेक छन्दों का प्रयोग है । सामान्यतः संस्कृत के छन्दों का प्रयोग तो है ही साथ में हिन्दी के भी कुछ छन्दों का उपयोग है । अधिकांश पद्यों में छन्दःशास्त्र के अनुसार लक्षण प्राप्त हो जाते हैं । कुछ छन्दों में निश्चित लक्षण नहीं हैं । तथापि इन स्थानों पर छन्दों के वर्ण और कुछ मात्राओं की संख्या में नियमबद्धता है । इन पद्यों में से कुछ को ताल आदि का निर्देश करके संगीतशास्त्र के अनुकूल निबद्ध किया गया है । निम्न तालिका में छन्दों का पूरा चित्र है—

१. 'सामवतम्' ३.६ ।

संख्या	छंद नाम	'सा म व त म्' प्रथम अंक	द्वितीयअंक	तृतीय अंक	चतुर्थ अंक	पंचम अंक	षष्ठ अंक	'धर्माघ-मंकल-कलम्'	'मित्रा-लाप'	योग
१	अनुष्टुप्	६,७ ११,२२ २७,४१ ४२,४४ ४५,५५ ५६,५७ ६१,६४	२,६, १०,१६, २०,२१, २३,२७, ३०,३४, ३५	२,१०, ११,१२, १५,२३, २७,२९ ३०,३१, ३२,३३, ३४,३६, ३७,३८, ३९	३,५, ८,९, ११,१३, १६,२०, २२,२३, २४,२७, ४४,४६, ४८,५०, ५१,५२ ५३,५४, ५५,५६	२,६, ७.१३, १४, १५, २४, २५, २६, २७, २९, ३०,	३,४, ५,६, १०	१,८, ९,११ १३		८६
२	आर्या	४,२१, ३१,३२ ३३,५१, ५६	८, १३,१७	१,५, २१	२८, ३७	—	२०, २१, २२			१८
३	गीति	२,५, २३, ५०	१४,१८	१३,३५	१०,२१ २६,२९ ३९	—	९,२६	—	—	१५
४	उपगीति	१४,१७ १८,१९ ४९,५८	७	—	३०,३८ ४१,४२ ४९	१८,१९ २०	८,१२, १९	६	—	१९
५	उद्गीति	१०,१४	—	१४	—	—	—	७	—	४
६	इन्द्रबज्रा	२८,२९	—	—	—	—	—	—	—	२

संख्या	छंद नाम	'सा म व त म्'						'धर्माध मंकल-कलम्'	'मित्रा-लाप'	योग
		प्रथम ग्रंक	द्वितीय ग्रंक	तृतीय ग्रंक	चतुर्थ ग्रंक	पंचम ग्रंक	षष्ठ ग्रंक			
७	उपेन्द्रबज्रा	२६	—	—	—	—	—	—	—	१
८	उपजाति	८,६, १२,१३ १५,१६ ३०,३७ ५६,६५	६,२६	१६,२४ २५,२८	७,१७ १८,१६	—	१८	१०	—	२२
६	वसन्ततिलका	३५,३६ ४६,४७ ५२,५३ ६०	१२	२०	१४	—	२,२३	—	—	१२
१०	स्रग्धरा	३,४३	३१	६,७ ४०	३१	४,१२ १६	२४	१४	४,५	१४
११	मालिनी	—	११,१५ ३६	१६, २६	६, ४०	११	—	—	—	८
१२	शिखरिणी	१,१५,३८	—	८	—	—	७	१२	६	७
१३	रथोद्धता	—	—	—	—	२१,२२,२३	—	—	—	३
१४	मन्दक्रान्ता	६३	१	—	—	—	—	—	—	२
१५	वंशस्थ	२०	—	—	—	—	१३	—	—	२
१६	तोटक	२६	—	—	३६	—	—	—	—	२
१७	द्रुतविलम्बित	४८	१६	—	—	—	—	—	—	२
१८	वियोगिनी	—	—	१८,२०	—	—	—	—	—	२
१६	पुष्पिताग्रा	२४	—	—	—	—	—	—	—	१
२०	शालिनी	—	—	—	१२	—	—	—	—	१

२१	चौपाई	—	—	—	२५,३३ ३४,३५	—	—	—	—	४
२२	त्रिभंगी	—	२४,२५	—	—	—	—	—	—	२
२३	चामर	—	—	—	३२	—	१४	—	—	२
२४	हरिपद	—	—	—	—	जागृहिवीर गीत १०	—	—	—	१
२५	किरीट	—	—	—	—	—	—	—	२	१
२६	अमृतधुनि	—	—	—	—	—	—	—	१	१
२७	अवतारी वर्ग का दिगपालः	६२	—	—	—	—	—	—	—	१
२८	वासव वर्ग का भेद	—	२८	—	—	—	—	—	—	१
२९	आदित्य वर्ग का भेद	—	—	—	—	१	—	—	—	१
३०	मात्रिक अर्धसम विषम पाद १६ मात्रा समपाद १३मात्रा	—	३	—	—	—	—	—	—	१
३१	मात्रिक अर्धसम विषमपाद १४ मात्रा समपाद २६ मात्रा	—	—	—	—	६	—	—	—	१
३२	मात्रिक विषम छन्द प्रथम पाद ६ मात्रा द्वितीय पाद ६ मात्रा	—	—	—	१	—	—	—	—	१

संख्या	छंद नाम	'सा म व त म्'						'धर्माध-मंकल-कलम्'	'मित्रा-लाप'	योग
		प्रथम अंक	द्वितीय अंक	तृतीय अंक	चतुर्थ अंक	पंचम अंक	षष्ठ अंक			
३३	तृतीय पाद १२ मात्रा चतुर्थ ६ मात्रा मात्रिक विषम छन्द प्रथम पाद १२ मात्रा द्वितीय पाद १२ मात्रा तृतीय पाद १२ मात्रा चतुर्थ पाद १० मात्रा	—	—	—	—	३	—	—	—	१
३४	विषम छन्द प्रथम पाद हंसी छन्द द्वितीय पाद शशि वदना छन्द तृतीय पाद स्रग्धरा छन्द चतुर्थपाद श्री छन्द	—	३३	—	—	—	—	—	—	१
३५	शार्दूल विक्रीडित	५४	४,५, २२,२६	३,४, ६,१७	२,१५, ४३,४७	५,८, १७,२८	१,११ १७,२५	२,३, ४,५	३	२६
३६	लय	—	३२	—	४,४५	—	१५.१६	—	—	५
३७	विराट-स्थाना	४०	—	—	—	—	—	—	—	१
	कुलयोग	६६	३६	४०	५६	३०	२६	१४	६	२७४

(ट) प्राकृत का प्रयोग– 'सामवतम्' में शौरसेनी और मागधी प्राकृतों का प्रयोग है। पंचम अंक के विष्कम्भक में मागधी प्राकृत तथा अन्य स्थानों पर शौरसेनी प्राकृत है। नाट्यशास्त्रीय नियमों के अनुसार संस्कृत रूपकों में निम्न कोटि के पात्रों को या तो अपनी देशज भाषाओं का अथवा शौरसेनी का प्रयोग करना चाहिये।[1] संस्कृत रूपकों में प्राकृत के प्रयोग के विषय में पाश्चात्य विद्वानों की यह धारणा है कि संस्कृत रूपक प्राकृत भाषाओं से विकसित हुये थे,[2] और शौरसेनी बोलने वाली जनता में इन्होंने सर्वप्रथम निश्चित रूप धारण किया।[3] अतः नाटकों में शौरसेनी के प्रयोग का सर्वाधिक प्रचार हुआ। सम्भवतः संस्कृत रूपकों में प्राकृतों के प्रयोग की योजना स्वाभाविकता के लिये की गई होगी। संस्कृत रूपकों के विकास के युग में अध्ययन अध्यापन के लिये संस्कृत की प्रधानता होने पर भी यह भाषा जनसाधारण की बोलचाल की भाषा नहीं रह गई होगी, अतः निम्न वर्ग के पात्रों के लिये प्राकृतों के प्रयोग का विधान किया गया होगा। इतना होने पर भी नाटकों की रचनाओं से यह तो निश्चित है कि जनसामान्य बोलचाल में संस्कृत का प्रयोग न करते हुये भी इसे समझते अवश्य होंगे। प्रारम्भिक युग में प्राकृत का प्रयोग जनसाधारण की भाषा के रूप में अवश्य रहा होगा, किन्तु उत्तरकाल में यह रूढ़ और कृत्रिम होता गया। कवियों ने प्राकृत के व्याकरण के नियमों के अनुसार संस्कृत को प्राकृत में रूपान्तरित करके इसका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। कीथ ने भवभूति के नाटकों में इस प्रवृत्ति का निर्देश किया है।[4]

संस्कृत नाट्य-परम्परा का पालन करते हुये व्यास जी ने मल्लाहों को अत्यन्त नीच पात्र मानते हुये उनके संवाद में मागधी का[5] तथा अन्य स्थलों पर शौरसेनी का प्रयोग किया है। व्यास जी के समय में जनसामान्य की भाषा इन प्राकृत भाषाओं से भिन्न थी। अतः आपने हेमचन्द्र, वररुचि आदि के प्राकृत के व्याकरणों के अनुसार संस्कृत को इन प्राकृतों में परिवर्तित करके 'सामवतम्' में नियोजित किया। व्याकरण के नियमों के अनुसार ये परिवर्तन 'सामवतम्' की प्राकृतों में दृष्टिगोचर होते हैं। संस्कृत की अनेक ध्वनियां प्राकृत में अन्य ध्वनियों में परिवर्तित होती हैं। प्राकृत में ऋ, लृ, ऐ, और औ तथा ष का प्रयोग नहीं होता, केवल

---

१. शौरसेनीं समाश्रित्य भाषां काव्येषु योजयेत्।
अथवा छन्दतः कार्या देशभाषा प्रयोक्तृभिः॥
नानादेशसमुत्थं हि कार्यं भवति नाटके। 'भरतनाट्यशास्त्र' १८.३४-३५।

२. कीथ कृत 'संस्कृत ड्रामा' पृ० ७१।

३. ,, ,, ,, ४१।

४. ,, ,, ,, २०३।

५. पिशाचात्यन्तनीचादौ पशाचं मागधं तथा। 'दशरूपक' २.६५।

मागधी में ष ध्वनि है।[1] यदि शब्द के स्वरों में आदि स्वर ऋ हो और उससे पूर्व कोई व्यंजन हो तो इसे अ, इ अथवा उ हो जाता है।[2] यदि ऋ आदि में हो तो इसे रि होता है।[3] त के स्थान पर द, न के स्थान पर ण और य के स्थान पर ज प्रायः हो जाता है। ये परिवर्तन व्यास जी ने प्रायः किये हैं। 'नृत्ये' को 'णच्चे'[4] करके, 'कृतपुण्यः' को 'किदपुणो'[5] करके, 'हृदय' को 'हिअअ'[6] करके, 'संवृत' को 'सम्वुत्तो'[7] करके, 'ऋक्ष' को 'रिच्छ'[8] करके और 'ऋचः' को 'रिचा'[9] करके व्यास जी ने ध्वनि परिवर्तन के नियम स्वीकार किये हैं। अब 'सामवतम्' में प्रयुक्त शौरसेनी और मागधी प्राकृतों के नियमों पर विचार किया जाता है।

शौरसेनी का आधार संस्कृत भाषा है।[10] पिशेल ने इसके मूल में शौरसेन प्रदेश में बोली जाने वाली बोली बतलाई है।[11] वररुचि ने 'प्राकृतप्रकाश' के द्वादश परिच्छेद में इसके २९ नियम देकर शेष को महाराष्ट्रीवत् कहा।[12] हेमचन्द्र ने अष्टम अध्याय चतुर्थ पाद २५९-२८५ सूत्रों में इसके २७ नियमों को बतलाकर शेष नियम प्राकृतवत कहे[13]। दोनों व्याकरणों में यद्यपि अनेक समानतायें, हैं तथापि कुछ अन्तर भी हैं। दोनों व्याकरणों में त के स्थान पर द, थ के स्थान पर ध[14] और क्त्वा के स्थान पर इय होता है।[15] हेमचन्द्र के कुछ नियम प्राकृत-प्रकाश नहीं हैं, यथा— विस्मय और निर्वेद के लिये 'हीणामहे' का प्रयोग,[16] विदूषक के हास्य के लिये 'ही

---

१. 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण'—पिशेल—पृ० ६५।
२. ऋतोऽत् १२.२७, इदृष्यादिषु १२.२८, उदृत्वादिषु १२.२९। 'प्राकृतप्रकाश'।
३. अयुक्तस्य रिः १२.३०। 'प्राकृतप्रकाश'।
४. 'सामवतम्' पृ० ११। ५. 'सामवतम्' पृ० १५।
६. ,, ,, ४६। ७. ,, ,, १५।
८. ,, ,, ५६। ९. ,, ,, २१०।
१०. प्रकृतिः संस्कृतम् १२.२। 'प्राकृतप्रकाश'।
११. 'प्राकृत भाषाओं का व्यावरण'—पिशेल—पृ० ३९।
१२. शेषं महाराष्ट्रीवत् १२.३२। 'प्राकृतप्रकाश'।
१३. शेषं प्राकृतवत् ८.४.२८५। 'हेमचन्द्र'।
१४. तो दोऽनादौ शौरसेन्यामयुक्तस्य ८.४.२५९, थो धः शौरसेन्याम् ८.४.२६६। 'हेमचन्द्र'। अनादावयुजोस्तथयोर्दधौ १२.३। 'प्राकृतप्रकाश'।
१५. क्त्व इयदूणौ ८.४.२७०। हेमचन्द्र। क्त्व इयः 'प्राकृतप्रकाश' १२.९।
१६. हीणामहे विस्मयनिर्वेदे ८.४.२८१। 'हेमचन्द्र'।

ही' का प्रयोग ।[1] 'प्राकृत प्रकाश' के कुछ नियम 'हेमचन्द्र' में नहीं है, यथा—'स्त्री' को 'इत्थी' होना[2] और 'स्था' के स्थान पर 'चिट्ठ' होना ।[3] व्यास जी ने इन सभी नियमों का प्रयोग किया है। 'झंकृत' तथा 'लसित' के स्थान पर 'झंकिद' तथा तथा 'लसिद'[4] करके त के स्थान पर द, 'अकथनीयं' और 'कथं' के स्थान पर 'अकधणीयं'[5] और 'कधं'[6] करके थ के स्थान पर ध, 'गृहीत्वा' और 'भूत्वा' के स्थान पर 'गेह्णिय'[7] और 'भविय'[8] करके क्त्वा के स्थान पर इअ, विस्मय बोधन के लिये 'हीणामहे'[9], वसन्तक और वन्धुजीव के हास्य के लिये 'ही ही',[10] 'स्त्रीत्वम्' और 'स्त्रियं' के स्थान पर 'इत्थीअन्तणं',[11] 'इत्थिअं',[12] करके 'स्त्री' के स्थान पर 'इत्थी', 'तिष्ठ' के स्थान पर 'चिट्ठ',[13] इन प्रयोगों में ये नियम स्पष्ट रूप से भासित होते हैं।

मागधी प्राकृत का आधार शौरसेनी है।[14] वररुचि ने 'प्राकृतप्रकाश' के एकादश परिच्छेद में और हेमचन्द्र ने अष्टम अध्याय चतुर्थ पाद २८६-३०१ सूत्रों में इसके नियम बताये हैं। मागधी की ध्वनियों की मुख्य विशेषतायें ये हैं कि इनमें र के स्थान पर ल, स के स्थान पर श, ज के स्थान पर य होता है। य अपरिवर्तित रहता है। द्य, र्ज और र्य को य्य होता है; ण्य, न्य, और ज्ञ को ञ्ज होता है, च्छ को श्च होता है, ह और ष्ट को स्ट होता है और अकारान्त संज्ञायें एकान्त हो जाती हैं।[15] मागधी प्राकृत में भी हेमचन्द्र और वररुचि दोनों के व्याकरणों में यद्यपि पर्याप्त समानतायें हैं, यथा— स को श हो जाना[16], 'तिष्ठ' को 'चिष्ठ' होना[17] और 'अहं' को 'हगे' होना,[18] तथापि कुछ भिन्नतायें भी हैं। हेमचन्द्र ने 'प्रेक्ष' और चक्ष' धातु में ही क्ष को स्क किया तथा सामान्य क्ष के स्थान पर क

---

१. ही ही विदूषकस्य ८.४.२८४ । 'हेमचन्द्र' ।

२. स्त्रियामित्थी १२.२२ । 'प्राकृतप्रकाश' ।

३. स्थश्चिट्ठः १२.१६ । 'प्राकृतप्रकाश' ।

४. 'सामवतम्' पृ० ७६ । ५. 'सामवतम्' पृ० २०२ ।

६. ,, ,, २०६ । ७. ,, ,, ६५ ।

८. ,, ,, २१८ । ९. ,, ,, ५२ ।

१०. ,, ,, ६४ । ११. ,, ,, ३० ।

१२. ,, ,, १५६ । १३. ,, ,, १५ ।

१४. प्रकृतिः शौरसेनी ११.२ । 'प्राकृतप्रकाश' ।

१५. 'प्राकृत भाषाओं का व्याकरण'—पिशेल—पृ० ४६ ।

१६. षसोः शः ११.३ । 'प्राकृतप्रकाश' । रसोर्लशौ—८.४.२८७ ।

१७. तिष्ठस्य चिष्ठः ११.४ । 'प्राकृतप्रकाश' । तिष्ठश्चिष्ठः ८.४.२९७ । 'हेमचन्द्र' ।

१८. अहं वयमार्हगे ७.४.३०० । 'हेमचन्द्र' ।

(उपध्मानीय सहित क) किया है ।[1] किन्तु वररुचि ने प्रत्येक क्ष के स्थान पर क्ष को स्क किया है ।[2] हेमचन्द्र र को ल करने का विधान करते हैं[3], किन्तु वररुचि ने इस प्रकरण में ऐसा नहीं किया है । वररुचि सम्बोधन में अदन्त अ को दीर्घ करने का विधान करते हैं[4], किन्तु हेमचन्द्र नहीं करते । हेमचन्द्र सु परे होने पर अ को नित्य रूप से ए करते हैं[5] किन्तु वररुचि ए और इ दोनों का विधान करते हैं ।[6] 'सामवतम्' की प्राकृत में इन नियमों के उपयोग स्पष्ट रूप से परिलक्षित होते हैं । र के स्थान पर ल "अलेले" में[7], स के स्थान पर श "शमाशादिता"[8] में, सम्बोधन में दीर्घ "खंखणआ" और "झंझणआ"[9] में, च्छ को श्च "पुश्चसि" में[10], क्ष को स्क "पेस्कदु" में[11], "तिष्ठ" को "चिष्ठ" "चिष्ठदु" में[12], "अहं को "हगे" "हगे कि वि गाअेमि" में[13], अ को ए "तडे" में[14], और क्ष कोकल कदि[15] में दृष्टिगोचर होता है ।

प्राकृत व्याकरण के नियमों के अनुसार कृत्रिम रूप से प्राकृतों के निर्माण में कुछ स्थानों पर व्यास जी की असावधानता भी प्रकट होती है । यथा—मागधी में स को श होता है, परन्तु 'पृच्छसि' के मागधी रूपान्तर में च्छ को श्च तो कर दिया गया है पर स को श नहीं किया गया । शौरसेनी में त को द तो होता है पर आदि के त को नहीं । इस नियम की विशृंखलता अनेक स्थानों पर है— 'तु' को 'दु'[16] और 'तावत्' को 'दाव'[17] बनाने में आदि त को द कर दिया है, परन्तु 'तद्' को 'ता'[18] और 'तडाग' को 'तलाओ'[19] बनाने में त का त ही रह गया है । 'यज्ञदत्त' को 'जणदत्त' बनाया गया है । प्राकृत के नियमानुसार य को ज तो हो ही जाता है,[20]

---

१. स्कः प्रेक्षाचक्ष्योः ८.४.२९६ । 'हेमचन्द्र' । क्षस्य कः ८.४.२९५ ।
२. क्षस्य स्कः । 'प्राकृतप्रकाश' ।
३. रसोर्लशौ ८.४.२८८ । 'हेमचन्द्र' ।
४. अदीर्घः सम्बुद्धौ ११.१३ । 'प्राकृत-प्रकाश' ,
५. अत एत्सौ पुंसी मागध्याम् ८.४.२८६ । 'हेमचन्द्र' ।
६. अत इदेतौ लुक् च ११.१० । 'प्राकृत-प्रकाश' ।
७. 'सामवतम्' पृ० १७० ।
८. 'सामवतम्' पृ० १७१ ।
९. ,, ,, १७० ।
१०. ,, ,, १७० ।
११. ,, ,, १७१ ।
१२. ,, ,, १७१ ।
१३. ,, ,, १७० ।
१४. ,, ,, १७२ ।
१५. ,, ,, १७१ ।
१६. ,, ,, ११ ।
१७. ,, ,, ५६ ।
१८. ,, ,, ५६ ।
१९. ,, ,, ७६ ।
२०. आदेर्योजः १२.३६ । 'प्राकृत-प्रकाश' ।

पर ज्ञ को ण हर एक स्थान पर नहीं होता। शौरसेनी प्राकृत में 'सर्वज्ञ' और 'इंगितज्ञ' के ही ज्ञ को ण होता है,[1] 'यज्ञ' शब्द के ज्ञ को तो ञ्ज ही होता है।[2]

'बिहारी-बिहार' में अपनी कृतियों की सूची में व्यास जी ने 'प्राकृतविचित्र-शब्दार्थकोष' नामक पुस्तक का उल्लेख किया है। यह रचना 'सामवतम्' के प्रथम संस्करण के अन्त में मुद्रित है और इसमें ५०४ प्राकृत शब्दों के संस्कृत रूपातर हैं। व्यास जी ने इन शब्दों का संग्रह संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त होने वाली प्राकृत को समझने और प्राकृत से संस्कृत रूप परिवर्तित करने का ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा रखने वाले विद्यार्थियों के लिये किया होगा। इस विचित्रशब्दार्थकोष का सम्बन्ध प्रस्तुत 'सामवतम्' नाटक से ही हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। इसके अनेक शब्दों—अंसो (अश्वः), अंकोलो (अंकोठः), अट्ठारह (अष्टादश), अणिरिणे(अनृणः); अदिअत्थं (अत्यर्थम्) आदि 'सामवतम्' में नहीं हैं'।

गुण

गुणों और रीतियों के शास्त्रीय पक्ष का विवेचन 'शिवराजविजय' की आलोचना में किया जा चुका है, अतः यहां उनके शास्त्रीय पक्ष पर विचार नहीं किया जा रहा। 'सामवतम्' नाटक के शृंगार-रस प्रधान होने से इसमें माधुर्य-गुण-अभिव्यंजक वर्णों की प्रधानता और तदनुरूप रचना-संघटन होना चाहिये, तथापि अनेक स्थलों पर इस औचित्य का पूर्ण रूप से निर्वाह नहीं है। इसी प्रकार ओजोगुण अभिव्यंजक स्थलों में, जो थोड़े से ही हैं, उनके अनुरूप वर्णों की योजना और रचना-संघटन का समुचित प्रयोग नहीं है। यही स्थिति 'धर्माधर्मकलकलम्' के उद्धत संवाद में है। तथापि इन रूपकों में माधुर्य, ओज और प्रसाद गुणों की अभिव्यंजना करने वाले वर्णों और रचना-संघटनों की योजना अनेक स्थानों पर है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(क)माधुर्य गुणः — अहो महिमा स्वरविद्यायाः। इतः पश्य, इमे रसालमंजरीलग्नचंचवोऽप्यनास्वादयन्तो अर्द्धोन्मीलितनयनाः वाचंयमा शुक पिकसारिकादय आनन्दवशंवदा इव संजाताः। द्रुमा अपि च मन्दमन्दविगलन्मरन्दानन्दाश्रुभिः पुलकं प्रकटयन्तीव।[3]

संगीत के स्वरों के आनन्द की अभिव्यंजना करने वाली इस रचना में कोमल वर्णों के प्रयोग द्वारा माधुर्य-गुण की अभिव्यक्ति होती है। अथवा—

---

१. सर्वज्ञेगितज्ञयोर्णः १२.८। 'प्राकृतप्रकाश'।

२. ब्रह्मण्यविज्ञयज्ञकन्यकानां ण्यज्ञन्यानां ञ्जो वा १२.७। 'प्राकृतप्रकाश'।

३. 'सामवतम्' पृ० ३८-३६।

सेव्यतां च मया सह यमुनातुंगतरंगभंगमंगलीकृता वृन्दारकवृन्दवन्दिता वृन्दावनभूमिः ।[1]

शान्त-रस का अभिव्यंजक यह वाक्य माधुर्याभिव्यंजक वर्णों से घटित हुआ है ।

(ख) ओजोगुणः— ओजोगुण की स्थिति 'धर्माधर्मकलकलम्' के औद्धत्यपूर्ण संवाद में, 'सामवतम्' में सारस्वत के क्रोधपूर्ण उद्‌गारों में और दुष्टों का दलन करने वाली दुर्गा के स्तवनों में परिलक्षित होती है ।

हंहो ! पाटच्चर ! अवश्यं व्याहिण्डमानो ग्रामटिकातो ग्रामटिकां वश्रयंश्च नटविटमद्यपदारादरींश्चिराय वन्यगज इव गर्वितोऽसि, तन्मामकपरमाचार्यवर्या हर्यक्षा इव स्वकीयकोटिकोटिनखकोटिभिस्त्वां विपाट्य कर्कशतर्कविकटसटापट-लास्फाटनैश्च त्वत्सहचरान् विद्राव्य जयघोषणां करिष्यन्तीति ।[2]

धर्म के इस ओजोगुणाभिव्यंजक कथन में कठोर वर्णों का प्रयोग उसकी उज्ज्वलता को और भी प्रवृद्ध कर देता है ।

(ग) प्रसाद गुणः— प्रसाद-गुण की अभिव्यक्ति तीनों रूपकों में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होती है ।

एते हि अस्माकं बालकाः केवलमांगलशिक्षयैव शिक्ष्यन्ते । स्वधर्ममंजूषायाः संस्कृत-भाषायास्तु स्वप्नमपि नानुभवन्ति । इतौ मातापितृभ्यां पाठशालाध्यक्ष- कर-कमलेष्वर्प्यन्ते, ततश्च तैरपि नियतपुस्तकरटनमात्रेण पितर इव तर्प्यन्ते । अहह इमे शुद्धहृदयाः नवयुवका इतस्ततश्च विलोठिताः कान्दिशीका इव यां कांचिदपि दिशं श्रयन्ति तत्र को नाम दोषोऽस्माकं धर्मपशूनां शिशूनाम्, अत एवास्माभिः सभासु बालकास्तदध्यक्षाश्च चेत्यन्ते, यत्सावधानाः भवन्तु स्वधर्मकर्मकरणेषु ।[3]

स्पष्ट रूप से अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाले इस वाक्य में प्रसाद-गुण की अभिव्यंजना होती है ।

रीति

शृंगार-रस प्रधान 'सामवतम्' नाटक में माधुर्य-गुण प्रधान पांचाली-रीति की प्रधानता होनी चाहिये, किन्तु इस औचित्य का समुचित निर्वाह नहीं है । ओजो-गुणाभिव्यंजक स्थलों में भी गौडी-रीति का प्रयोग कम ही है । व्यास जी ने शब्दों के गुम्फन और रचना-संगठन के लिये प्रायः वैदर्भी-रीति का आश्रय लिया है । तो भी कठोर और कोमल रसों और गुणों के अभिव्यंजक स्थलों में गौडी और पांचाली रीति से निबद्ध रचना-संगठन यत्र-तत्र हैं । इस प्रकार इन रूपकों में तीनों प्रकार की रीतियों के उदाहरण प्राप्त किये जा सकते हैं ।

---

१. 'सामवतम्' पृ० १७५, १७६ ।

२. 'धर्माधर्मकलकलम्' ।

३. 'मित्रालाप.' ।

(क) पांचाली-रीति—

महुअरझंकिदमहुरो । कयविरहिदजणविहुरो ।।
पसरिददक्खिणपवणो । मअणमहूसवभवणो ।।
कोइलकूजिदसहिदो । सोहणमण्डलमहिदो ।।
हिअअं कुसुमलसन्तो । कस्स ण हरदि वसन्तो ।।[1]

माधुर्य-गुण अभिव्यञ्जक शृंगाररसवती यह रचना पांचाली-रीति से निबद्ध है । अथवा—

विलुलितहिमकणसुललितकमलं
निन्दति गण्डयुगलमिदममलम् ।
रोम्णां निचयोऽप्यंचित एषः
दुर्मदमदनमदांकुरवेषः ।।[2]

शृंगार रस के सात्विक अनुभावों का कथन करने वाली माधुर्यगुणवती यह रचना पांचाली-रीति से संगठित की गई है ।

(ख) गौडी-रीति—

त्वमेव चातिप्रचण्डकोदण्डमण्डितभुजदण्डचण्डमुण्डखण्डनकारिणी दुर्दण्डदैत्याखण्डलमुण्डकुण्डलमण्डलमण्डितगण्डयुगा चामुण्डा ।[3]

दैत्यों का संहार करने वाली दुर्गा के रौद्र रूप की इस स्तुति की रचना गौडी-रीति से की गई है ।

(ग) वैदर्भी-रीति—

विप्रस्त्रीणां मण्डलीमध्यसंस्थो, दुर्गाबुद्धया पूजितः पूज्यरीत्या ।
सीमन्तिन्या भक्तिभावप्रभावात्, चित्रं चित्रं सामवान् स्त्रीत्वमाप ।।[4]

सीमन्तिनी के प्रभाव का कथन करने वाली अद्भुत रसाभिव्यंजक इस श्लोक की रचना के लिये वैदर्भी-रीति का प्रयोग किया गया है ।

अलंकार

अलंकारों के प्रयोग द्वारा व्यास जी के रूपकों की भाषा उज्ज्वल रूप से शोभायमान है । शब्दालंकारों और अर्थालंकारों की योजना के साथ ही इस में अलं-

१. 'सामवतम्' १.६२ ।
२. 'सामवतम्' ४.२५ ।
३. ,, पृ० १८६ ।
४. ४.१२ ।

कारों की संसृष्टि और संकरों का भी मनोहर सन्निवेश है। यह अलंकार-योजना चमत्कार-पूर्ण और सौन्दर्यशालिनी होने पर भी कहीं-कहीं कृत्रिम है। ऐसे स्थलों पर पाण्डित्य का प्रदर्शन करने के लिये ही अलंकार नियोजित किये गये हैं। अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन और तत्तत् अलंकारों के लक्षण 'शिवराजविजय' की आलोचना में कर दिये जाने के कारण इस स्थल पर विस्तार में न जाते हुये केवल उन्हीं अलंकारों के लक्षण उद्धृत हैं, जिनका वहां उल्लेख नहीं है। इन रूपकों में निम्नलिखित अलंकारों के प्रयोग देखे जा सकते हैं—

(१) अनुप्रास-अलंकार— अनुप्रास-अलंकार के निम्नलिखित भेदों के उदाहरण प्राप्त होते हैं—

(क) छेकानुप्रास—

१. हर्षवर्षविधायिनी।[1]

२. यशःपयःपात्रितभूप्रदेशः।[2]

३. चन्द्रचन्दिरयशोलाभवान्।[3]

४. स शेयो वैर्यधूर्वहः।[4]

(ख) वृत्त्यनुप्रास—

१. अगणितमणिगणधरणकिरणस्ते माणवको गुणिगण्यो भूयात्।[5]

२. रिंगद्गंगातरंगभंगरंगसंगलसदुत्तमांगस्य।[6]

३. नितान्तदन्तुरितदैत्यदन्तावलदन्तनिकृन्तनकरालकरवालव्यालसत्करा।[7]

४. लीलालोलविलासिनीविलसितैरत्यन्तमुल्लासिता।[8]

(ग) अन्त्यानुप्रास—

सिंजन्मंजीरं स्मितहृतवीरं मोदितधीरं चित्तहरम्
चलनयनललामं पूरितकामं कटिगतिवामं कान्तिधरम्।
संगीतसुसंगं रणितमृदंगं सांगविभंगं मोदपरम्
नृत्यति हरदग्वाजननविदग्धा मधुरा मुग्धा परमवरम्॥[9]

(२) यमक-अलंकार—

१. अनिलबलोऽसावनिलान् भूषितदेहोऽथ भूषितान् शत्रून्।

---

१. 'सामवतम्' पृ० १२। २. 'सामवतम्' १.१५।
३. ,, पृ० १०७। ४. ,, ४.४४।
५. ,, २.२८। ६. ,, पृ० १८६।
७. ,, पृ० १६०-१६१। ८. ,, ३.४।
९. ,, २.२५।

विद्रुमगणगुणशोभो विद्रुमगणसंस्थितांश्चके ।।[१]

२. कृष्णवर्त्मसमाश्लिष्टः कृष्णवर्त्ममयोऽभवत् ।
कृष्णवर्त्मा कृष्णवर्त्मास्य राज्ञः समसूसुचत् ।[२]

३. विकसति विमला कमला कमलावलिकलितललिततटा ।
कमलेव द्रवरूपा विलोडयन्ती यदीयरेणुकणान् ।।[३]

४. स्वकीयकोटिकोटिनखकोटिभिस्त्वां विपाट्य ।।[४]

(३) वक्रोक्ति-अलंकारः— वक्ता द्वारा किसी अभिप्राय से कहे जाने वाले का, सुनने वाला यदि दूसरा अभिप्राय ग्रहण करे तो वहां वक्रोक्ति अलंकार होता है । यह श्लेष और काकु भेद से दो प्रकार का होता है ।[५] काकु वक्रोक्ति का निम्न उदाहरण हैः—

जित्वा विवादे बहुवादिविज्ञान् वित्तं गृहीत्वापि च राजदत्तम् ।
सानन्दमत्रागतयोः शुभंयुर्भूयाद् विवाहो भवतोर्भवाय ।।[६]

यहाँ सारस्वत के कथन का अभिप्राय तो यह है कि तुम दोनों का मंगल-दायक विवाह हो, किन्तु बन्धुजीव इसका यह अभिप्राय निकालता है कि दोनों का परस्पर ही विवाह हो जावे ।

(४) शब्दश्लेष-अलंकार— एक शब्द से अनेक वाच्य अर्थ होने पर श्लेष अलंकार होता है । यह शब्द-श्लेष और अर्थश्लेष दो प्रकार का होता है । शब्दश्लेष में दो अर्थ एक शब्द का आश्रय लेकर उपपन्न होते हैं ।[७] अतः इन स्थलों पर शब्द परिवर्तन नहीं किया जा सकता । किन्तु अर्थश्लेष में शब्द-परिवर्तन करने पर भी श्लेष खण्डित नहीं होता ।[८] शब्दश्लेष का निम्न उदाहरण है—

इतः शिखी प्रसरति, ततश्च स्वांगमान्दोलयन् केसरिकदम्बः समुज्जृम्भते, स्थानमेतत् कुंजरोचितम्, परितश्च पलाशिनः, वीक्ष्यते चायमच्छकोविदारकः, हन्त भूप्रदेशोऽयं व्याघ्रपादासादितः ।[९]

---

१. 'सामवतम्' ३.२१ । २. 'सामवतम्' ४.३ ।
३. ,, १.१० ।
४. 'धर्माधर्मकलकलम्' ।
५. यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथान्येन योज्यते । श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ॥ 'काव्यप्रकाश' ९.७९ ।
६. 'सामवतम्' १.३९ ।
७. वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृशः । श्लिष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसौ । 'काव्यप्रकाश' ९.८४
८. अर्थश्लेषस्य तु स विषयः यत्र शब्दपरिवर्तनेऽपि न श्लेषत्वखण्डनम् । 'काव्यप्रकाश' नागेश्वरी टीका (चौखम्बा १९५१) पृ० २१२ ।
९. 'सामवतम्' पृ० १९१

यहां शिखी आदि शब्दों के अग्नि और मयूर आदि अर्थ किये जाते है।

(५) उपमा-अलंकार:—

(क) शाब्दी पूर्णोपमा—

धातुसूत्रसमायुक्ता साधुशब्दस्य साधिका।
क्व वाद्यत इयं वीणा पुस्तिका व्याकृतेरिव ॥[1]

यहां वीणा उपमेय, पुस्तिका उपमान, इव उपमा वाचक और धातुसूत्रसमायुक्ता आदि साधारण धर्म हैं। यहाँ केवल शब्द-साम्य है।

(ख) आर्थी पूर्णोपमा—

रसाल इव सानन्दं ललितां मालतीलताम्।
कदा तां परिरप्स्यऽहं बालां सामवतीं प्रियाम् ॥[2]

यहां अहं और बाला उपमेय, रसाल और मालती-लता उपमान, इव उपमा-वाचक और आलिंगन करना साधारण धर्म हैं।

(६) उत्प्रेक्षा-अलंकार—

१. द्वारोपरिस्थबहुदुन्दुभिमेघनादं, श्रुत्वैव नीलमणिमण्डितमंजुवेषः।
सुच्छायपुच्छनिकरो बहुहर्षवर्षानन्दादिवेह जडतां समगान्मयूरः ॥[3]

यहां हेतूत्प्रेक्षा है। अथवा—

२. रात्रौ चन्द्रेण भुक्तामममरपतिदिशं वीक्ष्य भानुः स्वकीयां।
क्रोधादारुण्ययुक्तस्तरणिरपि करं कैरविण्यां चकार।
दृष्ट्वा तं चैव चन्द्रः कमलविहसितः खेदपाण्डूकृतांगः
मन्ये पीत्वा विषं वै गिरिषु निपतितो लांछनस्य छलेन ॥[4]

यहां अपह्नुतिगर्भा उत्प्रेक्षा है।

(७) रूपक-अलंकार—

यस्य हि सुयशोहंसो वैरिवधूवदनपुटसंस्थम्।
पीत्वा तु हास्यदुग्धं तत्याज तदश्रुजलनिचयम् ॥[5]

यहां यश पर हंस, वदन पर पुट, हास्य पर दुग्ध और अश्रु पर जल का आरोप है।

(८) प्रतीप-अलंकार—यदि उपमान की उपमेय के रूप में कल्पना की जावे तो प्रतीप अलंकार होता है।[6]

---

१. 'सामवतम्' पृ० १.५६।
२. 'सामवतम्' ६.५।
३. ,, २.१२।
४. ,, ३.७।
५. 'सामवतम्' २.७।
६. प्रतीपमुपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्। 'कुवयानन्द' (चन्द्रालोक) १२।

विबुधैः सेव्यमानस्य सर्वविद्याभिदां निधेः ।
श्रीमहेश्वरसिंहस्य सम आसीत् महेश्वरः ॥[1]

यहां उपमान महेश्वर (शिव) को उपमेय के रूप में प्रदर्शित किया गया है।

(९) भ्रान्तिमान्-अलंकार—

अपि कथमियं नासायां मणिमुक्तादीनपहाय गुंजां धारयति ।[2]

यहां कान्ति से रंजित मुक्ता को देखकर गुंजा के भ्रम का कथन किया गया है।

(१०) अपह्नुति-अलंकार—

निशाव्यालीग्रस्तं जगति सकलं जीवनिचयं
चिरं मूर्छामाप्तं स्मृतिविरहितं स्वापकपटात् ॥[3]

यहां उपमेय स्वाप का कपट शब्द से निषेध करके उपमान मूर्छा की स्थापना किये जाने से अपह्नुति अलंकार है।

(११) अतिशयोक्ति-अलंकार—

क. भवति प्रथमं हि कवीन्द्रगणो मणिबन्धलसन्मणिबन्धयुगः ।
तदनन्तरमेष करोतितरां वरवर्णनमस्य नराधिपतेः ॥[4]

कवियों को मणि आदि प्राप्ति रूप कार्य का कथन पहिले तथा राजा का वर्णन रूप कारण बाद में कहा गया है। अतः कार्य कारण के पौर्वापर्य के व्यतिक्रम के होने के कारण अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है।

ख. सर्वतः पतितैः स्वीयैः प्रतिबिम्बैर्भवत्युत ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥[5]

यहां मनुष्य के सहस्रशीर्ष आदि रूप के सहस्रशीर्ष भगवान् से सम्बन्धित न होने पर भी उस सम्बन्ध के कथन करने से सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार है।

(१२) तुल्ययोगिता-अलंकार —

उत्कण्ठतेऽयं रसिकस्य सर्वा मदीय उत्साहगणश्च कान्ते ।

---

१. 'सामवतम्' १.२७ ।
२. 'सामवतम्' पृ० ४३ ।
३. ,, ३.८ ।
४. ,, १.२६ ।
५. 'सामवतम्' ४.१५ ।

लीलासु चातुर्यमथो सखीनां श्रितं तव भ्रूलतिकामिहाद्य ॥[१]

यहां रसिकों की सम्पूर्ण उत्कण्ठता, सूत्रधार का उत्साह, सखियों का अभिनयचातुर्य इन सभी प्रस्तुतों के एक धर्म 'नटी की भ्रूलतिका का आश्रय लेना' का कथन करने से तुल्ययोगिता अलंकार है।

(१३) निदर्शना-अलंकार—

दृश्यानामानन्दं पठनैः श्रवणैर्हि लिप्सते यो वै।
नूनं समीहतेऽसौ चम्पकमालां दृशा घ्रातुम् ॥[२]

दृश्य काव्यों के पठन और श्रवण का चम्पकमाला के आंखों के सूंघने से कोई सम्बन्ध न होने पर भी सम्बन्ध की कल्पना करने से निदर्शना अलंकार है। यह निदर्शना मिथ्याध्यवसिति गर्भ है, क्योंकि आंखों से सूंघने रूप मिथ्या वस्तु की कल्पना की गई है।

(१४) दृष्टान्त-अलंकार—

नाटकपठनानन्दो लक्षगुणो भवति नाटकाभिनयैः।
करसंस्पृष्टा तन्त्री क्वणिता पीयूषवर्षमातनुते ॥[३]

यहां अभिनय के द्वारा नाटक के पढने के आनन्द की वृद्धि इस उपमेय वाक्य और करसंस्पृष्ट तन्त्री का बजाने द्वारा अमृतवर्षा करना इस उपमान वाक्य में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलंकार है।

(१५) दीपक-अलंकार—

संकोचयति तरलयति विस्तारयति प्रफुल्लयति।
निजपक्षौ कूजन्ती पंजरगा यत्र कृत्रिमा चटका ॥[४]

यहां संकोचयति आदि अनेक क्रियाओं का एक ही कारक चटका के साथ अन्वय होने से दीपक अलंकार है।

(१६) व्यतिरेक अलंकार :—

भो भोः क्षत्रियवान्धवाः धनमदोन्मत्ताः महामानिनो
नाहं भार्गववत् पुनः परशुना छेत्स्यामि युष्मान् रणे।
हुंकारेण हि कोपपावकभरे हुत्वाथ हव्यं यथा
शेषैस्त्र्यायुषमुद्रयेव भसितैरंगानि सम्मर्दये ॥[५]

---

१. 'सामवतम्' १.६। २. 'सामवतम्' १.४।
३. ,, १.५। ४. ,, ३.१४।
५. ,, ५.१७।

यहां उपमान परशुराम की अपेक्षा उपमेय सारस्वत में अधिक समार्थ्य का प्रदर्शन करने के कारण व्यतिरेक अलंकार है।

(१७) समासोक्ति-अलंकार—

कुमुदिनीं मधुपैः सह संगतां समवलोक्य निजां रमणीमिमाम्।
कलितकोपसुकोकनदच्छविश्चलकरः समुपैति जवाद् विधुः ॥[1]

यहां प्रस्तुत चन्द्र-कमलिनी वृत्तान्त द्वारा अन्य पुरुष द्वारा अपनी प्रिया के साथ संगम करने से क्रुद्ध प्रेमी, इस अप्रस्तुत का वर्णन करने से समासोक्ति अलंकार हैं।

(१८) अप्रस्तुतप्रशंसा-अलंकार—

चंचूपुटं चटुलयन् मृतश्चीत्कृत्य चातकः।
घनैर्घनरसैः किं नु ततः कुर्यात् घनाघनः ॥[2]

यहां अप्रस्तुत चातक के वृत्तान्त द्वारा प्रस्तुत पिपासित भिक्षु का वृत्तान्त व्यंजित होता है।

(१९) प्रस्तुतांकुर-अलंकार— जहाँ एक प्रस्तुत वृतान्त से दूसरे प्रस्तुत वृत्तान्त की व्यंजना हो, वहां प्रस्तुतांकुर अलंकार होता है।[3]

परिक्रमां केसरपुष्पशम्भोर्युतो भ्रमर्या भ्रमरः करोति।
कयापि मन्ये स्मरबाणविद्धो गान्धर्वमुद्वाहमयं तनोति ॥[4]

यहां प्रस्तुत भ्रमर-भ्रमरी के वृत्तान्त से प्रस्तुत सामवती-सुमेधा का वृत्तान्त व्यंजित होता है।

(२०) परिकर-अलंकार—

भवान्याः सन्तुष्टो वितरतु सुखं काममथनः।[5]

सुखी शिव ही सुख प्रदान कर सकते हैं, अतः "भवान्याः सन्तुष्टः" शिव के इस विशेषण के अभिप्राय-गर्भित होने से यहां परिकर अलंकार है।

(२१) विरोध-अलंकार—

यशो न सान्तं न नृपोऽप्यदन्तः, ख्यातोऽप्युदन्तोऽस्ति न चापवादः।

---

१. 'सामवतम्' २.१६। २. 'सामवतम्' ४.८।

३. प्रस्तुतेन प्रस्तुतस्य द्योतने प्रस्तुतांकुरः। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक). ६७।

४. 'सामवतम्' ४.१७। ५. 'सामवतम्' १.१।

भूमिः सवृद्धिः सगुणोऽथ राजास्त्यत्राखिलं व्याकरणैर्विरुद्धम् ॥[1]

यहां यशस् आदि के व्याकरण के विरुद्ध न होने पर भी विरोध का कथन करने से विरोधालंकार है।

(२२) अर्थश्लेष-अलंकार—

नूनं कनकसमाख्यां बिभर्तु धूर्तोऽपि धूर्त्ततरः।
कुण्डलमण्डलरचने कोऽलं चामीकरादन्यः ॥[2]

बुद्धि-विकार उत्पन्न करने में पटु धूर्त्त (धतूरा अथवा धूर्त्त मनुष्य) कनक (कनक अथवा शोभनीय) नाम धारण करे। इस वाक्य में दो अर्थों के लिये धूर्त शब्द के स्थान पर कितव शब्द का प्रयोग करने से भी इसी अर्थ की प्रतीति होने से यहां अर्थश्लेष अलंकार है।

(२३) असंगति-अलंकार—

जानीहि हाटक निजं बहुधन्यधन्यं
यद् गुंजयाद्य तुलितं ललितं न चेद् भोः।
क्व त्वं प्रियाचरणनूपुरबन्धयोग्यं
क्वैषा तदीयमुखचुम्बनचंचुरास्ति ॥[3]

चरणनूपुर के योग्य स्वर्ण की मुखचुम्बनचंचुरा का कथन करने से यहां असंगति अलंकार है।

(२४) विषम-अलंकार—

(क) तूर्णं यस्मिन् स्फुरणमुचितं घर्षणं कम्पनं च
स्वीकर्तव्या किल तरलता मन्दता वै कदाचित्।
उत्प्लुत्याशु प्रयतनमथो सर्पणं वै तथेत्थं
वीणावादः क्व कठिनतरः कोमला चांगुलिः क्व ॥[4]

यहां कठोर वीणावादन और कोमल अंगुलि की घटना के वर्णन करने से विषम अलंकार है।

(ख) अये ! स्मरधनुः ! त्वं नु इक्षुमयमसि, यस्य पीडनेनापि जनो मधुररसं विन्दते, त्वं कथं परान् पीडयसि।[5]

यहां मधुरस युक्त कामदेव के धनुष से पीडा की उत्पत्ति कराई गई है।

---

१. 'सामवतम्' २.६। २. 'सामवतम्' ४.४६।
३. ,, १.६०। ४ १.६३।
५. ,, पृ० १४९-१४८।

(२५) सम-अलंकार—

इत एषा सुमेधसा चिरं वंचिता सामवत्यपि मदनमर्दिता विरहेणोष्णं निश्वसिति, ततश्चैष सामवतीसमाश्लेषप्रार्थनाद्युपद्रवजागरितमनसिजः सुमेधा अपि गच्छंस्तिष्ठन् वदन् स्वयंस्तामेव चिन्तयति, तदेवमेनौ प्रणयपूरेण पूर्वमेव कृतमानसपरिणयौ यदि साक्षादपि कलयेतां विवाहसुखं, तत् किमधिकं मंगलमाशासनीयम् ।[1]

यहां परस्पर योग्य सामवती और सुमेधा के मिलन की सम्भावना का कथन करने से सम अलंकार हैं।

(२६) एकावली-अलंकार—जहां पहली पहली वस्तु दूसरी दूसरी वस्तु के विशेषण के रूप में स्थापित या निषिद्ध की जावे वहां एकावली अलंकार होता है।[2]

वामापि दक्षिणा, दक्षिणापि कलितालका, कलितालकापि नयमोदितयशाः ।[3]

यहां दक्षिणा आदि पूर्व पूर्व अपर अपर वस्तु के विशेषण के रूप में स्थापित करने के कारण एकावली अलंकार है। यहां यह एकावली विरोध-गर्भ है।

(२७) सार-अलंकार—जहां वस्तु उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त हो, वहां सार अलंकार होता है।[4]

पूर्वं च्युतायां व्यलसल्लतायां च्युता च चामीकरतोलिकाभूत् ।
ततोऽथ वामावरनासिकाग्रे विन्यस्यते व मुकुटे मुरारेः ।।[5]

यहां गुंजा के उत्तरोत्तर उत्कर्ष को प्राप्त होने के कारण सार अलंकार है।

(२८) यथासंख्य-अलंकार—क्रम से कहे गये पदार्थों का उसी क्रम से समन्वय किया जाने पर यथासंख्य अलंकार होता है।[6]

मुक्तामाणिक्यायितयशःप्रतापावलिं ललिताम् ।
कलयन्ती निजवक्षसि वसुधा भेजे विलक्षणां शोभाम् ।।[7]

यहां जिस क्रम से मुक्ता और माणिक्य का कथन है उसी क्रम से उनके साथ यशस् और प्रताप के समन्वय का कथन है, अतः यथासंख्य अलंकार है।

(२९) परिसंख्या अलंकार—एक स्थान पर किसी वस्तु का निषेध करके उसे अन्य

---

१. 'सामवतम्' पृ० २०१ ।
२. स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथा पूर्वं परं परम् ।
विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा । 'काव्यप्रकाश' १०.१३१ ।
३. 'सामवतम्' पृ० ६२ ।
४. उत्तरोत्तरमुत्कर्षः भवेत्सारः परावधिः । 'काव्यप्रकाश' १०.१२३ ।
५. 'सामवतम्' १.५६ ।
६. यथासंख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १०६ ।
७. 'सामवतम्' १.२१ ।

स्थान पर स्थापित करने से परिसंख्या अलंकार होता है।[1]

न कामिकामकलनं न स्तनन्धयतर्पणम् ।
असौ कुचयुगं धत्ते दर्शनायैव केवलम् ।।[2]

कुचों के उपयोग का कामिकामकलन और स्तनन्धयतर्पण से निषेध करके दर्शन में ही स्थापित कर देने से यहां परिसंख्या अलंकार है।

(३०) अर्थापत्ति-अलंकार—जहां कैमुत्यन्याय से अर्थ की सिद्धि की जावे, वहां अर्थापत्ति अलंकार होता है।[3]

नासत्यौ न हि सत्यतां कलयतो धन्यो न धन्वन्तरि-
र्हीणः संश्चरतीह नापि चरकः काशीश ईशो न च ।
काव्येनापि न भाव्यते च नकुलो बोभोति चिन्ताकुलो
दुर्दान्तं मदनज्वरं शमयितुं शक्नोति किं मादृशः ।।[4]

इतने चिकित्सक भी जिसे शान्त नहीं कर सकते उसे मेरे जैसा कैसे शान्त कर सकता है, इस प्रकार मदनज्वर की असाध्यता को कैमुत्य से सिद्ध करने के कारण अर्थापत्ति अलंकार है।

(३१) काव्यलिंग-अलंकार—समर्थन करने योग्य वस्तु का समर्थन किये जाने पर काव्यलिंग अलंकार होता है।[5]

द्यूतक्रीडां करिष्ये न हि न हि भवता साकमम्भोजनेत्र
गृह्णासि त्वं मदीयाः किल निजविषये हारकेयूरकांचीः ।
शूलं व्यालं कपालं डमरुमथ ददासीश मे मज्जये त्वम्
इत्थं देव्याः वचोभिः प्रहसितवदनः पातु नश्चन्द्रचूडः ।।[6]

यहां देवी पार्वती का शिवजी के साथ द्यूतक्रीडा न करने के कथन का समर्थन अगले वाक्यार्थ से किया जाने के कारण काव्यलिंग अलंकार है।

---

१. परिसंख्या निषिध्यैकमेकस्मिन् वस्तुयन्त्रणम् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) ११३ ।
२. 'सामवतम्' पृ० ३.२७ ।
३. कमुत्येनार्थसंसिद्धिः काव्यार्थापत्तिरिष्यते । 'कुवलयानन्द' '(चन्द्रालोक) १२० ।
४. 'सामवतम्' ४.४३ ।
५. समर्थनीयस्यार्थस्य काव्यलिंगं समर्थनम् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १२१ ।
६. 'सामवतम् १.३ ।

(३२) अर्थान्तरन्यास-अलंकार—

संसारतमसां स्तोमं हन्ति धावन् कलाधरः ।
न तु स्वांके समालग्नं यतो विज्ञा परार्थिनः ॥[1]

यहां विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

(३३) संभावना-अलंकार—

कथमिह पथि पथिकजनो विन्देतामन्दमानन्दम् ।
यदि तरुनिकरः स भवेत् फलपुष्पच्छदभुजो न वने ॥[2]

यहां तरुनिकर के अभावरूप तर्क की कल्पना करके पथिकों के उस समय आनन्द के प्राप्त न करने की सम्भावना सिद्ध की जाने से संभावना अलंकार है।

(३४) विकस्वर-अलंकार—

यदवधि मुनिपुत्रौ हैलितौ दीप्तिमन्तौ
तदवधि नरराजो निष्प्रतापो बभूव ।
कृतमुनिकुलमन्तुर्मथ्यते सर्वभूतैः
प्रभवति जलराशौ किं नु नक्रापराधी ॥[3]

यहां विशेष का सामान्य से, पुनः विशेष से सामान्य का समर्थन किया जाने के कारण विकस्वर अलंकार है।

(३५) लेश-अलंकार—जहां दोष में गुण और गुण में दोष की कल्पना की जावे, वहां लेश अलंकार होता है।[4]

स्वच्छन्दं किल काकाः क्रीडन्तः संचरन्ति वने ।
यूयं पिंजरपतिताः मधुरगिरामस्ति दोषोऽयम् ॥[5]

यहां वाणी के माधुर्य रूप गुण में दोष का कथन करने से लेश अलंकार है।

(३६) मुद्रा-अलंकार—प्रकृत अर्थ वाले पदों से सूचना देने योग्य वस्तु की सूचना देने पर मुद्रा अलंकार होता है।[6]

---

१. 'सामवतम्' २.२१ । २. 'सामवतम्' १.४६ ।
३. ,, ४.६ ।
४. लेशः स्याद् दोषगुणयोः गुणदोषत्वदर्शनम् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १३८ ।
५. 'सामवतम्' २.१३ ।
६. सूच्यार्थसूचनं मुद्रा प्रकृतार्थपरैः पदैः । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १३९ ।

सलज्जैर्निर्वस्त्रं भयशिथिलितैः नागविभवं
भवं दृष्ट्वा चन्द्रांकितकलजटं किं च चकितैः ।
कटाक्षैरुन्मीलन्मधुपजलजातद्युतिहरैः
भवान्याः सन्तुष्टो वितरतु सुखं काममथनः ॥[1]

यहां शिव को पार्वती से सुख मिलने के द्वारा नायक-नायिका मिलन और काममथनः पद द्वारा नायक की जितेन्द्रियता सूचित किये जाने से मुद्रा अलंकार है।

(३७) तद्गुण-अलंकार—

भ्राजद्भास्वरभानुभानुकिरणैः शोणीकृते भूतले
पाषाणः प्रविभाति रत्नवदयं रक्ताब्जवत् कैरवम् ।
मुक्तानां निकरः प्रवालसदृशो रौप्यं च ताम्रप्रभं
लोहं तप्तमिवावभाति सकलं सिन्दूरवत् कज्जलम् ॥[2]

यहाँ सूर्य की किरणों से भूतल द्वारा लाल गुण ग्रहण करने से तद्गुण अलंकार है।

(३८) उन्मीलित- अलंकार—दो वस्तुओं का भेद स्पष्ट होने पर उन्मीलित अलंकार होता है।[3]

विभाति भानुकिरणारुणीकृतशरीरयोः ।
संकोचनविकासाभ्यां विभेदः कैरवाब्जयोः ॥[4]

कैरव और कमल का भेद स्पष्ट होने से यहां उन्मीलित अलंकार है।

(३९) स्वभावोक्ति-अलंकार—

स्वैरं कैरवकोरकान् विदलयन् सिन्धुं समुद्वेलयन्
स्वीयास्त्रैर्निजसुन्दरीविरहिणां यूनां मनः खेदयन् ।
संसारं किरणैरतिप्रसरणैर्दुग्धैरिवापूरयन्
मन्दं मन्दमयं प्रयाति नितरामानन्दकन्दः शशी ॥[5]

यहां चन्द्रमा की स्वाभाविक क्रियाओं का वर्णन करने से स्वाभावोक्ति अलंकार है।

(४०) लोकोक्ति-अलंकार—

येन चापलेन दग्धदेहतां गतोऽस्त्ययं
दोषमेष तं जहाति नो इतोऽपि मन्मथः ।

---

१. 'सामवतम्' १.१ । २. 'सामवतम्' ५.८ ।
३. भेदवैशिष्ट्ययोः स्फूर्तावुन्मीलितविशेषकौ । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १४८ ।
४. 'सामवतम्' ५.७ । ५. 'सामवतम्' २.२२ ।

भस्मतां गतोऽपि नो जहाति रज्जुपाशको
ग्रन्थिबन्धवक्रतां प्रसिद्धमस्ति भूतले ।[1]

यहां रस्सी जल जाय पर ऐंठन न जाय इस लोकापवाद का अनुकरण करने से लोकोक्ति अलंकार है।

(४१) उदात्त-अलंकार—

द्राग्दारिद्र्यमुद्राविद्रावणद्रविणदानसधनीकृतावनीवनीपकः ।[2]

यहां राजा की सम्पत्ति से धनी किये गये याचकों की समृद्धि का वर्णन करने से उदात्त अलंकार है।

(४२) अत्युक्ति-अलंकार— अद्भुत मिथ्यारूप उदारता आदि का कथन करने से अत्युक्ति अलंकार[3] होता है।

व्यतरदखिलयाचितं स राजा किमिति मृषा कथनीयमत्र बाले ।
अभावादिह न कोऽपि याचकोऽस्मिन् जनसुखदे नृपतौ प्रशासति क्ष्माम् ।।[4]

यहां राजा की अद्भुत उदारता का मिथ्यारूप वर्णन है।

(४३) निरुति-अलंकार—योगवश एक नाम से दूसरे अर्थ की कल्पना करना निरुक्ति-अलंकार है।[5]

आचारलक्ष्मीमपि राज्यलक्ष्मीं माधुर्यलक्ष्मीमपि धैर्यलक्ष्मीम् ।
चातुर्यलक्ष्मीमपि शौर्यलक्ष्मीं बिभ्रत् स लक्ष्मीश्वर इत्यभाणि ।।[6]

यहां विष्णु वाचक लक्ष्मीश्वर पद से लक्ष्मीश्वरसिंह नामक राजा का प्रकल्पन करने के कारण निरुक्ति अलंकार है।

(४४) विधि-अलंकार—पहले से ही सिद्ध वस्तु का पुनः विधान करने से विधि अलंकार होता है।[7]

स्त्रीपुंसयोः पारस्परिकोत्कण्ठाजन्यां पीडां त्वं कथं ज्ञास्यसि ?यतः शाब्दिकाचायः क्लैव्य प्रापितोऽसि ।[8]

---

१. 'सामवतम्' ४.३२। २. 'सामवतम्' पृ० १०८।
३. अत्युक्तिरद्भुतातथ्यशौर्योदानादिवर्णनम् । 'कुवलयानन्द' । (चन्द्रालोक) १६३ ।
४. 'सामवतम्' १.२४ ।
५. निरुक्तिर्योगतो नाम्नामन्यार्थत्वप्रकल्पनम् 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १६४ ।
६. 'सामवतम्' १.२८ ।
७. सिद्धस्यैव विधानं यत्तादाहुर्विध्यलंकृतिम् । 'कुवलयानन्द' (चन्द्रलोक) १६६ ।
८. 'सामवतम्' पृ० १४८ ।

प्रेमियों की कामपीडा को अनुभव करने की कामदेव की पहिले से सिद्ध विशेषता को "यतः क्लैव्यं प्रापितोऽसि" इस कथन द्वारा पुनः विहित करने से यहां विधि अलंकार है।

(४४) समाधि-अलंकार —

आधिपत्यमदैर्मत्तो राजैव भयकारणम्।
तत्रापि मदकालोऽयं कस्य नैव भयप्रदः।[1]

आधिपत्य के मद से मत्त राजा के ही भय का कारण होने पर भी यहां मद-काल को उसकी सहायता के लिये उपस्थित कर देने के कारण समाधि अलंकार है।

(४६) समुच्चय अलंकार—

यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।
आसवः खलसंसर्गः सर्वं कष्टमुपस्थितम् ॥[2]

यौवन आदि में से एक के ही कष्टकर होने पर भी अनेक हेतुओं का कथन करने से यहां समुच्चय अलंकार है।

(४७) अनुमान-अलंकार—

अहो महान् ऋषिसमुदायोऽनुमीयतेऽत्र वैदर्भवने। यतः—
नवपत्रात्र कुशलता न कुशलता सम्बिभर्ति सूत्खाता।
धूमश्यामलपलाशास्तरवो रुरवो नृभयरहिताः ॥[3]

यहां कुशलता आदि की स्थिति रूप साधन से वैदर्भवन में ऋषियों की उप-स्थिति रूप साध्य का अनुमान किये जाने से अनुमान अलंकार है।

(४८) हेतु-अलंकार — जहां कार्य के साथ कारण का कथन किया जावे वहां हेतु अलंकार होता है।[4]

रुरुदिषति जनो यो भृष्टभाग्यप्रवाहः
पिपतिषति पदाद् यः पूजनीयात् परोच्चात्।
जिगमिषति च दीनो दुर्गतिं दुःखदात्रीं
जगति स हि मनुष्यः कोपयत्याशु विप्रान् ॥[5]

---

१. 'सामवतम्' २.५। २. 'सामवतम् ३.२९।
३. ,, १.५१।
४. हेतोर्हेतुमता सार्धं वर्णनं हेतुरुच्यते। 'कुवलयानन्द' (चन्द्रालोक) १६७।
५. 'सामवतम्' ५.१०।

यहां रोदन, पतन और दुर्गति-गमन रूप कार्यों के साथ विप्रों को कुपित करना रूप कारण का कथन किये जाने से हेतु अलंकार है।

(४९) संसृष्टि-अलंकार—

जह्नु भयादिव गंगा कुचगिरिगहने सुदुर्गेऽस्मिन् ।
मुक्तामालाव्याजादाच्छन्नास्तीति मन्येऽहम् ॥[१]

यहाँ प्रथमार्द्ध में उत्प्रेक्षा और रूपक के तथा द्वितीयार्द्ध में अनुप्रास के परस्पर निरपेक्ष भाव से विद्यमान होने के कारण अलंकारों की संसृष्टि है।

(५०) संकर-अलंकार—

(क) अंगांगिभावसंकर —

द्वारोपरिस्थबहुदुन्दुभिमेघनादं श्रुत्वेव नीलमणिमण्डितमंजुवेषः ।
सुच्छायपुच्छनिकरो बहुहर्षवर्षानन्दादिवेह जडतां समगान्मयूरः ॥[२]

यहाँ दन्दुभि के स्वर में मेघ-गर्जन की भ्रान्ति होने रूप भ्रान्तिमान् अलंकार की सिद्धि होने पर "आनन्दादिव जडतां समगात्" इस उत्प्रेक्षा की सिद्धि होती है, अतः यहाँ अंगांगिभावसंकर है।

(ख) सन्देहसंकर —

कीर्तिप्रचयप्रचारकसुमधुरसद्ग्रन्थकारांस्तु कवीन् ।
दानैरपि बहुमानैर्नित्यं सम्मानयन्तु भूपतयः ॥[३]

यहाँ राजाओं द्वारा कवियों को दान तथा मान की प्राप्ति इस प्रस्तुत से राजा लक्ष्मीश्वरसिंह से कवि अम्बिकादत्त को दान तथा मान की प्राप्ति यह अप्रस्तुत वस्तु व्यंजित होने से समासोक्ति अलंकार है, अथवा पूर्वोक्त प्रस्तुत को अप्रस्तुत तथा अप्रस्तुत को प्रस्तुत समझते हुये अप्रस्तुत से प्रस्तुत व्यंजित होने के कारण अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है, इसका निश्चय न हो सकने के कारण संन्देह-संकर अलंकार है।

(ग) एकावाचकानुप्रवेशसंकर —

कुचकुम्भगलितस्वर्धुनीवारिधाराप्रचारमिव ।[४]

यहां एक ही कुचकुम्भ में शब्दालंकार अनुप्रास और अर्थालंकार रूपक की स्पष्ट रूप से स्थिति होने के कारण एकवाचकानुप्रवेशसंकर है।

---

१. 'सामवतम्' ६.१२ ।
२. 'सामवतम्' २.१२
३. ,, ६.२६ ।
४. ,, पृ० ४३ ।

३. रसाभिव्यक्ति

संस्कृत रूपकों की मूल आत्मा रस है। उनके रसाश्रित होने से [1] उनकी रचना रस-प्रधान होती है। यद्यपि प्रबन्ध काव्यों में अनेकों रसों का निबन्धन होने पर एक रस को अंगी रूप से निर्धारित करके अन्य रसों को उसके सहकारी रूप में निर्धारित किया जाता है[2], तथापि रूपकों में श्रृंगार अथवा वीररस की प्रधान रूप से आयोजना की जाती है और अन्य रसों को उसके अंग रूप से निबद्ध करते हुये निर्वहरण सन्धि में अद्भुतरस का निबन्धन किया जाता है।[3] व्यास जी ने इस परम्परा का निर्वाह करते हुये 'सामवतम्' में श्रृंगाररस को प्रधान रूप से निबद्ध करके अद्भुत रस को उसके प्रधान सहकारी का पद दिया है। इसके साथ ही इसमें हास्य, करुण, वीर, रौद्र, भयानक और बीभत्स रस भी प्रकरण के अनुसार संजोये गये हैं। श्रृंगार-रस को प्रधानता देते हुये भी आपने परस्त्री आदि नायिकाओं का समावेश न करके सच्चरित का अनुष्ठान किया है और इस प्रकार सामाजिक दाम्पत्य-भाव की मर्यादा का पालन किया है।[4] अनेक स्थलों पर उनके वर्णन पूर्ण रस की अवस्था को प्राप्त नहीं हो सके हैं, अतः इन रूपकों में भाव, रसाभास, भावाभास आदि के भी उदाहरण तत्तत् स्थलों पर हैं।

---

१. दशधैव रसाश्रयम्। 'दशरूपक' १.२।

२. प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धानां नानारसनिबन्धने।
एकोरसोऽगीकर्तव्यस्तेषामुत्कर्षमिच्छता॥ 'ध्वन्यालोक'। ३.२१।

३. एको रसोऽगीकर्तव्यो वीरः श्रृंगार एव वा।
अंगमन्ये रसाः सर्वे कुर्यान्निर्वहणेऽद्भुतम्॥ 'दशरूपक' ३.३३-३४।

४. इस सम्बन्ध में व्यास जी 'सामवतम्' की भूमिका में लिखते हैं —
यद्यप्यत्रांगी श्रृंगारो रसः, तथापि नैव परकीयां सामान्यनायिकां वा समालम्ब्य प्रवृत्तो न वा गान्धर्वादिविवाहाश्रयः, न नायकधैर्योदार्यादिविघट्टकवशंवदताविलः, न च तादृशत्वेऽपि विच्छिन्नविच्छित्तिरस्ति। अस्य वैचित्री विशेषशालित्वेऽपि आनन्दस्रोतस्स्रावित्वे तु न केवलं तर्क-सम्पर्ककर्कशानि न वा केवलव्याकृतिसंस्कृतिप्रकृतिनिकृतिविकृतानि हृदयानि किन्तु अंगीकृतसंगीतभंगीनि साहित्यसुधासमुद्रस्नातानि हृदयानि प्रमाणम्। सम्प्रति हि स्वभावत एव विषयलोलुप-चेतसो भवन्ति नवयुवकाः। ते च यथा काव्येषु परकीयाविषयकप्रेमपूरं परिकलय्य न भवेयुरतिकलुषमनसो न वा विघट्टयेयुर्धर्मधुर्यमर्यादाम् तथा विशिष्यास्मिन् सच्च-रितानुष्ठानमेवाऽऽशंस्यत इति स्वयमेव विभावयिष्यन्ति भावुकाः। अद्भुतोऽत्र प्रधानोऽगिनः सहकारी, अन्यैरपि च रसैः पारम्पर्येण व्याप्तोऽस्त्येतस्य सर्वोऽपि भागः इति न तिरोधास्यति किमपि समालोचकानां पुरतः।

'सामवतम्' उपोद्घातः पृ० ६।

(१) शृङ्गार-रस

शृङ्गार-रस 'सामवतम्' नाटक का अंगी रस है। इस की अभिव्यक्ति प्रधानतः चतुर्थ अंक के सामवती-सुमेधा संवाद में और षष्ठ अंक में विरहावस्था के अभिनयों में हुई है। चतुर्थ अंक में शृङ्गार की संयोग और विप्रलम्भ दोनों अवस्थाओं की निष्पत्ति है। षष्ठ अंक में केवल विप्रलम्भ शृङ्गार है। शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति में सामवती के लिये सुमेधा और सुमेधा के लिये सामवती आलम्बन विभाव हैं; वन की प्राकृतिक सुषमा, सामवती की आलिंगन आदि चेष्टायें उद्दीपन विभाव हैं; सामवती और सुमेधा की विभिन्न शारीरिक क्रियायें और वाचिक चेष्टायें अनुभाव हैं; स्वेद कम्पन आदि सात्विक अनुभाव हैं; औत्सुक्य, लज्जा, चिन्ता और गर्व आदि व्यभिचारी भाव हैं। इनके द्वारा व्यक्त होता हुआ रति रूप स्थायी भाव रसदशा को प्राप्त होता है।

सुमेधा सामवती रूप में परिवर्तित हुये मित्र के साथ कानन मार्ग से अपने आश्रम की ओर जा रहा है। वसन्त की प्राकृतिक सुषमा से आलिंगित कानन की रमणीयता और भ्रमर-भ्रमरी का सम्पर्क—

मकरन्दमदोन्माद्यन्नयनो मदनातुराम्।
भ्रमरो मधुरं गुंजन् भ्रमरीमविगच्छति।[1]

सामवती के हृदय में सुमेधा के प्रति रति-भाव को उद्दीप्त कर देता है। वह अपनी शारीरिक चेष्टा रूप अभिनय—

"इति शिथिलितेन हस्तेन सुमेधसो हस्तं विगृह्य ससात्त्विकभावं नेत्रे मुकुलयति।[2]" द्वारा अपने अभिप्राय को सुमेधा पर प्रकट करती है। इन चेष्टाओं द्वारा भी सुमेधा के आकृष्ट न होने पर वह वाचिक चेष्टा रूप अभिनय—

नव्यामपि भव्यामपि तापविशेषाद् विशीर्णवरवर्णाम्।
त्वं मा विद्धि प्रियवर कलिकामिव बहुशिलीमुखैर्विद्धाम्॥
कुरु परिरम्भं गाढं चुम्बनदानैस्तृषां शमय।
माद्दशरमणीरमणैरधरीकुरु सुरनिवाससुखम्॥[3]

द्वारा अपना अभिप्राय स्पष्ट रूप से सुमेधा पर प्रकट करती है। सामवती के ये अनुभाव उसके हृदय के रति-भाव को अभिव्यक्त करते हैं। इसके साथ ही—

---

१. 'सामवतम्' ४.१६।
२. 'सामवतम्' पृ० १४१।
३. ,, ४.२९-३०।

विलुलितहिमकणसुललितकमलं निन्दति गण्डयुगलमिदममलम् ।
रोम्णां निचयोऽप्यंचित एष दुर्मदमदनमदांकुरवेषः ॥[1]

स्वेद और रोमांच नामक सात्विक अनुभावों द्वारा उसकी रति अभिव्यक्त होती है। सात्विक अनुभावों का समग्र रूप में कथन सामवती के स्वप्नवर्णन में है।

वैवर्ण्यं वदने तथा नयनयोरानन्दवाष्पोदयो ।
देहे वेपथुरप्यभूत् सखि ततः स्वेदाम्बुवाष्पव्रजः ।
रोमांचः परितोऽपि विस्मृतिरथ स्तम्भोऽपि तस्मिन् क्षणे
कः को न प्रियसंगतो प्रभवति प्रायः विकारः प्रियः ॥[2]

इस श्लोक में कमशः वैवर्ण्य, अश्रु, वेपथु, स्वेद, रोमांच और स्तम्भ नामक सात्विक अनुभावों द्वारा शृंगाररस निष्पन्न हुआ है।

इन विभावों और अनुभावों के अतिरिक्त औत्सुक्य,[3] चिन्ता,[4] स्मृति,[5] गर्व[6] आदि व्यभिचारी भावों की अभिव्यक्ति भी शृंगाररस की निष्पत्ति में कारण हुई है।

संयोग-शृंगार के अनेक भेदों में से आलोकन और आलिंगन अवस्थाओं की अभिव्यक्ति चतुर्थ अंक में हुई है। सुमेधा सामवती के अंगों को देखकर काम-विकार का अनुभव करता है—

(कुचावलोक्य) अहो अवलोकनं कुचयोः। इमौ तु सुवर्णसम्पुटशोभाजिष्णू चम्पकरुचिनिराकरिष्णू कन्दर्पकन्दुकसाम्यसहिष्णू स्तनावलोक्य को न धुतधैर्यो भवति ? हन्त यथा रागतानपरतन्त्रान् हरिणकान् व्याधा व्यापादयन्ति, तथैव रमणी-रूपपरवतः कुसुमशरोऽपि स्वशरलक्ष्यान् करोति। (निःश्वस्य) अहह व्यथयति मां मन्मथः ।[7]

इस स्थान पर कुचों को देखकर सुमेधा के चित्त के कामवश होने से आलोकन नामक शृंगाररस की अभिव्यक्ति हुई है और—

सामवती—(तत्कुंजमासाद्य) अथ इतोऽपि परं क्व यासि ? सोऽयं कदम्ब-पादपः, सा चेयं मल्लीवल्लीपरित्यक्ता, तच्चैतत् कुंजम्। (इति सुमेधसः कण्ठे बाहुमर्पयति)

सुमेधाः—(किंचिन्मदनाहत इव) (स्वगतम्) आः गृह्णात्येषा कण्ठम्। अहह एतत् कण्ठग्रहोद्दीपितो विकारो व्याप्नोति पुनर्मदीयं हृदयम्।[8]

---

१. 'सामवतम्' ४.२५ ।
२. 'सामवतम्' ६.११ ।
३. ,, ६.५ ।
४. ,, ६.२ ।
५. ,, ६.२ ।
६. ,, ६.१३ ।
७. ,, पृ० १४२ ।
८. ,, पृ० १५६ ।

इस स्थान पर सामवती द्वारा आलिंगन करने और सुमेधा के कामव्यथित होने से आलिंगन नामक संयोग-शृंगार अभिव्यक्त हुआ।

अभिलाष, ईर्ष्या, विरह, प्रवास और शापहेतुक इन पांच प्रकार के विप्रलम्भ शृंगारों में से 'सामवतम्' नाटक में अभिलाष और विरह की अभिव्यक्ति हुई है—

कदाऽहं कान्तायाः नलिननयनायाः करतलं
गृहीत्वा सानन्दं निजकरतलेनातिरुचिरम्।
सुधापारावाराप्लुतमिव मनः स्वं विरचयन्
शचीयुक्तं जिष्णुं चिरमुपहसिष्यामि मुदितः॥[1]

इस पद्य में अभिलाष नामक विप्रलम्भ-शृंगार है। तथा—

मधुरवचना—हला ! पिय सहि ! कधं अणहिअआ विअ चिट्ठसि, मए कधिदं किं वि न सुणेसि !

सामवती—(सशैथिल्यम्) सहि तुए किं कहिदम् ?

मधुरवचना—मए एदं जेव्व कहिदं जा कधं हत्थे कबोलविण्णासं कदुअ चिन्तां करेसि ? कधं ताव सुस्सन्तदसणवसणा खिण्ण विअ लक्खीअसि ?

सामवती—तदो मए किं कहिदम् ?[2]

इन वाक्यों से विरह नामक विप्रलम्भ-शृंगार व्यक्त होता है।

शृंगार रस को अभिव्यक्त करते हुये कवि ने कुछ कामदशाओं के भी संकेत दिये हैं। यथा—

सत्यमस्म्यहं बाला, तत् कथं धैर्यं दध्याम्। क्वाहं यौवनमदपरवती क्वेयं धैर्य-घस्मरस्य स्मरस्य शरसन्धानचातुरी, क्वायं वसन्तस्य सर्वसुखमयः समयः, क्वैतन्मं-जुगुंजदलिपुंजावृतं वनं, क्व च करेणो कोरकविशेष इव भावत्को उपदेशः ? अतो मा स्म वंचितो भूः।[3]

यहां गुणकथन और अभिलाष नामक कामदशायें व्यंजित हुई हैं, और—

कष्टं, पुनरपि विपरीतमिवोपदिशसि ? (निःश्वस्य) हृदय ! सुखस्य प्रत्याशां त्यज। अहो ! विलक्षण ! व्याध ! मन्मथ ! त्वमपि शरसन्धानपरिश्रमं विजहीहि, यतः स्वयमहं प्राणांस्त्यजामि। (सशोकं प्राकृतमाश्रित्य)—

पडिवांछिदविविणमहो, णिज्जणदेसो वि बहुमहुरो।
अच्चरिअं अच्चरिअं, तहे वि मरणं हि सरणं मे॥[4]

(इति वक्षः संताड्य निपतति मूर्च्छति च)

---

१. 'सामवतम्' ६.७।
२. 'सामवतम्' पृ० २०८-२०९।
३. ,, पृ० १४५।
४. ,, ४.११।

यहां कमशः उद्वेग, चिन्ता, प्रलाप, उन्माद और मूर्च्छा नामक कामदशाओं की अभिव्यंजना है।

(२) अद्‌भुत-रस

'सामवतम्' में अद्‌भुत रस शृंगाररस के प्रधान सहकारी के रूप में है। इस नाटक में अद्‌भुत रस की अभिव्यंजना करने वाली कोई प्रासंगिक कथा नहीं है, किन्तु प्रकरणवश उपयुक्त स्थलों पर अद्‌भुतरस की अभिव्यक्ति होती है। अद्भुतरस के अभिव्यंजक कुछ स्थल यहां प्रस्तुत किये जाते हैं—

प्राणानप्यपहाय मंजुलवनाद् धावन्ति नूनं मृगाः
त्यक्त्वा कुण्डलमुन्नतीकृतफणाः स्वस्वालयाद् भोगिनः
आनन्दं परमाप्नुवन्ति च यतो मर्त्या अमर्त्या अपि
सोऽयं मोहनमन्त्र एष विधिना संगीतसंज्ञः कृतः ।।[1]

यहां संगीत की आश्चर्यजनक महिमा के कथन द्वारा विस्मय रूप स्थायी भाव के व्यक्त होने से अद्‌भुतरस अभिव्यक्त हुआ है।

सर्वतः पतितैः स्वीयैः प्रतिबिम्बैर्भवत्युत ।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।।[2]

यहां मुकुरभवन की विचित्रता विस्मय का आविर्भाव करके अद्‌भुतरस की अभिव्यंजना करती है।

कर्णौ पिधाय चिबुकं हृदि सन्निधाय
नासाग्रभागयमितां च दृशं विधाय ।
श्रोतुं च द्रष्टुमखिलं विधिना विसृष्टं
योगांगधूतकलुषा बत पारयामः ।।[3]

यहां योगाभ्यास जनित अलौकिक सामर्थ्य अद्‌भुतरस का अभिव्यंजक है।

भिक्षुः—(आकाशस्थः साश्चर्यं स्वगतम्) अहो कथं देहो ममातिलघुरिव संवृतः ? अद्य जले इव वातेऽपि तरामि, इतो वृक्षास्ततो पक्षिणः। दक्षिणा एष ग्रामोऽधस्तादेष जलाशयः। अहो दूरतो भूभागं पश्यतः कम्पेते इव मे नयने।[4]

यहाँ पत्रप्रलेप द्वारा उत्पन्न आकाश-गमन का सामर्थ्य विस्मय को उत्पन्न करके अद्‌भुतरस को निष्पन्न करता है।

विप्रस्त्रीणां मण्डीमध्यसंस्थो दुर्गाबुद्धया पूजितः पूज्यरीत्या ।
सीमन्तिन्याः भक्तिभावप्रभावाच्चित्रं चित्रं सामवान् स्त्रीत्वमाप ।।[5]

---

१. 'सामवतम्' १.५४।
२. 'सामवतम्' ३.१५।
३. ,, ४.१४।
४. ,, पृ० १३३
५. ,, ४.१२।

यहां सीमन्तिनी का लोकोत्तर भक्ति-भाव-जनित सामर्थ्य सामाजिकों को विस्मित करके अद्भुत रस को निष्पन्न करता है। वस्तुतः इसी स्थल पर अद्भुत रस को शृंगार रस का प्रधान सहकारी कहा जा सकता है, क्योंकि इस भक्तिभाव के प्रभाव से सामवान् के स्त्रीरूप में परिणत होने के कारण ही इस नाटक में शृंगार रस की सृष्टि की जा सकी है।

(३) अन्य रसों की योजना

शृंगार और अद्भुत रसों के अतिरिक्त अन्य अंगभूत हास्य, करुण आदि रसों की निष्पत्ति भी व्यास जी ने यथास्थान की है। इन की यहां क्रमशः विवेचना की जाती हैं।

हास्य रस की अभिव्यक्ति बन्धुजीव, जटिल ब्राह्मण और वसन्तक की क्रियाओं और संवादों द्वारा होती है। प्रथम अंक में बन्धुजीव का "ही ही भो ए—ए—ए—एदं एदं जेव्व" कहते हुये रंगमंच पर आना, सामवान् और सुमेधा के साथ परिहास करने की योजना बनाना, कुछ हंस कर उछलते हुये रंगमंच पर से चले जाना[1] तथा पुनः आकर सामवान् और सुमेधा का परस्पर विवाह सम्पन्न करने के लिये कहना[2] हास्य को संचरित करते हैं। षष्ठ अंक में सामवती-सुमेधा के विवाह के समय भी अंगभंगियों के साथ नाच-गाकर पुनः पुनः दक्षिणा लेने का उद्योग करके वह हास्य को आयोजित करता है। तदनन्तर नाटक के अन्त में वह—

(नृत्यन्) मादिसो णिच्चं लड्डुअं भक्खेदु कहकर हास्य के साथ नाटक की समाप्ति करता है।

जटिल वणिक् का हास्यमय चित्रण द्वितीय अंक के प्रवेशक में है। होली की तरंग में मस्त बालकों द्वारा गुलाल से लिप्त हुये जटिल बधिर ब्राह्मण की चेष्टायें और क्रोध में भी कहे गये सवीप्स कथन हास्य को ही उत्पन्न करते हैं। विदूषक के रूप में वसन्तक की सृष्टि भी व्यास जी ने हास्य निष्पन्न करने के लिये की है। किन्तु प्रारम्भ में वसन्तक अपनी क्रियाओं द्वारा हास्य को उत्पन्न करते हुये भी मुनि-पुत्रों के प्रति कदर्य आचरण करके सामाजिकों को विक्षुब्ध ही करता है। दूसरे अंक में विदूषक द्वारा होली का गान, राजभट को रंगना और राजसभा में भावकलावती का वर्णन करना हास्य को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। तृतीय अंक में सीमन्तिनी के राजपुरोहित–विदूषक संवाद द्वारा व्यास जी ने हास्य की योजना का प्रयत्न किया है, किन्तु इस संवाद में सदाचार का निर्वाह करने के लिये वसन्तक की लोलुपता का कुत्सित प्रदर्शन करके हास्य की समाप्ति सी कर दी गई। हास्य की निष्पत्ति को

---

१. 'सामवतम्' पृ० २४। २. 'सामवतम्' पृ० ३०।

दृष्टि से तृतीय अंक की राजसभा में वसन्तक के कथनों और योजनाओं के औचित्य की भी सराहना नहीं की जा सकती।

करुणरस की अभिव्यंजना 'सामवतम्' में प्रकरण के अनुसार है। उपद्रवियों द्वारा जलाये और लूटे गये ग्रामों की निम्न अवस्था—

द्यो यस्मिन् सुमृदंगसंगलसिता वंशीरवामिश्रिता
अश्रूयन्त सुमंजुमूर्छितयुतास्तानैस्तता गीतिकाः।
ज्वालाजालवलीढसर्वसदने ग्रामेऽथ तस्मिन्नमी
झंझारूषितरेणवस्तरुतले क्रन्दन्ति हा मानवाः।[1]

करुणरस की अभिव्यंजना करती है। मित्र सामवान् के वनिताभाव को प्राप्त हो जाने से गहन वेदना से पीडित हुये सुमेधा का यह कथन—

परन्तु हा ! कथं त्वं मत्सखः सकलविचारपारावारपारगः कुशाग्रधिषणो विद्वानपि गर्हितमिमं वनिताभावं प्राप्तः ? हा ! मम तु तदैव कम्पितमिव हृदयं यदा पथि सम्मुखमेव बन्धुजीवस्य छिक्का जाता।[2]

करुणरस-अभिव्यंजक है। 'मित्रालापः' में भारतीय संस्कृति की गिरती हुई अवस्था से पीड़ित मित्रों के संवाद में शोक के व्यक्त होने के कारण करुणरस की उद्भावना हुई है।

रौद्ररस की अभिव्यक्ति 'सामवतम्' नाटक में कलि के कथनों और सारस्वत की गर्जनाओं में होती है। भयंकर रूप वाले कलि का यह उद्गार—

माध्वीकोन्मत्तनेत्रो लशुनरसकणक्लिन्ननिः श्वासवातो
गोरक्तारक्तदन्तो द्विजनिकररिपुर्यविनीबद्धवार्तः।
वेदच्छेदेष्वखेदः प्रविघटनपटुर्भक्तिभावस्य भूतेः।
काकालिकालकान्तिः कलिरिह कुहकः कोपितः कस्य हेतोः॥[3]

क्रोध को व्यक्त करके रौद्ररस को निष्पन्न करता है। पंचम अंक में सारस्वत की क्रोधपूर्ण उक्तियों में रौद्ररस निहित है। पुत्र के राहित्य से उत्पन्न विक्षुब्धता के कारण सारस्वत सम्पूर्ण क्षत्रियों सहित राजा को भस्मसात् करने की घोषणा करते हैं—

भो भोः क्षत्रियबान्धवाः धनमदोन्मत्ताः महामानिनो
नाहं भार्गववत् पुनः परशुना छेत्स्यामि युष्मान् रणे।
हुंकारेण हि कोपपावकभरे हुत्वाथ हव्यं यथा
शेषैस्त्यायुषमुद्रयेव भासतैरंगानि सम्मर्दये॥[4]

---

१. 'सामवतम्' ४.२।
२. 'सामवतम्' पृ० १४३।
३. ,, १.४३।
४. ,, ५:१७।

उनकी यह क्रोधपूर्ण गर्जना रौद्ररस को अभिव्यक्त करने में समर्थ होती है। रौद्ररस की अभिव्यक्ति 'धर्माधर्मकलकलम्' रूपक में धर्म और अधर्म के सम्वाद में भी होती है—

अरे ! दुष्ट ! चिरं सोढानि ते वाक्यानि। अधुनापि तिष्ठ ! त्वामनेन कृपाकृपणेन कृपाणेन खण्डशः करोमि (इति कृपाणं कोषादाकृष्य धर्मं कचेषु ग्रहीतुम् उद्युंक्ते)।

यद्यपि व्यास जी ने इन रूपकों में वीररस की योजना विशेष रूप से नहीं की, तथापि चार प्रकार के वीर-रसों में से युद्धवीर, दानवीर, और धर्मवीर की अभिव्यक्ति राजाओं की प्रशंसाओं में है। यथा—

अनिलबलोऽसावनिलान् भूषितदेहोऽथ भूषितान् शत्रून्।
विद्रुमगणगुणशोभो विद्रुमगणसंस्थितान् चक्रे ॥[1]

राजा के शौर्य रूप उत्साह के व्यक्त होने से यहां युद्धवीर-रस की अभिव्यंजना होती है।

अनवरतदानवारिप्रपातपंकीकृतक्षितिविभागाः।
यस्य गजा अपि कृतिनस्तस्य नु किं वच्मि दानशूरत्वम् ॥[2]

इस स्थल पर दान के प्रति राजा छत्रसिंह के उत्साह का वर्णन करने के कारण दानवीर-रस अभिव्यक्त होता है।

तथा मे हृदयं स्वच्छं विधेहि जगदम्बिके।
किमप्यनुचितं कर्म यथा न विदधाम्यहम् ॥
प्रसीदन्तु प्रजाः पूर्णं दयन्तां देवताः द्विजाः।
वसुधा वसुदा भूयात् शस्यं सस्यं च जायताम् ॥[3]

अम्बिका द्वारा वर मांगने के लिये प्रेरित किया जाने पर राजा व्यक्तिगत और राजकीय धर्म की स्थिरता की याचना करके धर्म के प्रति अपना उत्साह प्रकट करता है, अतः इस स्थल पर धर्मवीर-रस की अभिव्यक्ति होती है।

सुमेधा के इस कथन से भी धर्मवीरता अभिव्यक्त होती है—

आः क एषः ते चित्तविक्षोभः ? कथं धैर्यं नावहसि, कथं वा न स्मरसि पूर्ववृत्तान्तस्य। यद्यपि सीमन्तिन्या सबहुभक्ति दृढनिष्ठया पार्वतीधिया पूजितः सीमन्तिनीत्वमेव गतोऽसि, तत् किं क्षणमात्रेणैव एवं धैर्यशून्येन भाव्यम् ? तपःपारावारावावयोः पितरौ कदाचिदद्यैव त्वां पुनः पूर्ववत् कुर्याताम्, अथवा यदि दैवाद् दुर्वार एवास्ति ते रमणीभावः, तर्हि वेदविधिना स्वपित्रा दत्ता मया सबहुमानं परिणीता सुखेन रंस्यसे। न शोभते बालानामिव ते चापलमूलको हठः।[4]

---

१. 'सामवतम्' ३.२१। २. 'सामवतम् १.२३।
३. ,, ५.२६-२७। ४. ,, पृ० १४४-१४५।

वसन्त से आलिंगित वन के एकान्त में मदभरी यौवनवती सुन्दरी द्वारा काम-याचना किये जाने पर भी सुमेधा का धर्मनिष्ठा के प्रति उत्साह व्यक्त होने से यहां भी धर्मवीर-रस की निष्पत्ति हुई है।

'सामवतम्' के कुछ स्थलों पर भयानक-रस की भी निष्पत्ति होती है। भगवान् विष्णु के नाम का श्रवण करने से कलि का यह अभिनय—

कलि:—(सवक्षस्ताडनम्) हा हतोऽस्मि, हतोऽस्मि, हतोऽस्मि रे एतद् भगवन्नामकीर्तनेन। (इतस्ततः पलायमानः क्रन्दमानो निष्क्रामति)[1]
उसके भय को अभिव्यक्त करता हुआ भयानक-रस को निष्पन्न करता है। राजा द्वारा दम्पतिरूप धारण करने के लिये आदेश दिये जाने पर मुनिपुत्रों का यह कथन—

उभौ—(सभयम्) महाराज !

पितरौ तु परित्यज्य कुत्र यातु स्तनन्धयः।
प्रजायाः राजभीतायाः को वा स्याच्छरणं परः ॥[2]

भय का अभिव्यंजक होने से भयानक-रस को निष्पन्न करता है।

वीभत्स-रस की अभिव्यक्ति स्वतन्त्र पद्यों में न होकर अन्य रसों के अभिव्यंजक पद्यों के साथ मिलती है। यथा सारस्वत की रौद्रता को प्रकट करते हुये—

भूताः प्रेताः पिशाचाः नवरुधिरतृषा डाकिनीपूतनाद्याः।
आयातायात शीघ्रं चपलितरसनाः स्वस्वपात्रं गृहीत्वा।[3]

रुधिर का पान करने वाले भूत-प्रेत आदि द्वारा अपने अपने पात्रों में रुधिर के एकत्रित करने का वर्णन करने से वीभत्स-रस की भी निष्पत्ति की गई है। अथवा—

घातं घातं कुरंगान् जलचरखचरांस्ताम्रचूडांश्च गाश्च
भोजं भोजं तदीयं बहुविधपललं म्लैच्छभोज्यावशिष्टम्।
पायं पायं च माध्वीः कुयुवतीकरगाहृच्छयेच्छाविमूर्छाः
स्वापं स्वापं च बालाः गमयत दिवसान् नो भयं पापराज्ये ॥[4]

अधर्म के इस उद्धत कथन में जुगुप्सा को व्यक्त करने वाले बहुविध मांसों के भक्षण और दुराचारिणी स्त्रियों के हाथ से मद्यपान आदि का वर्णन करने के कारण बीभत्स-रस की अभिव्यक्ति होती है।

(४) भाव, रसाभास, भावाभास आदि

भाव आदि के भी उदाहरण इन रूपकों में यत्र-तत्र प्राप्त होते हैं। विभिन्न प्रकार के भावों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. 'सामवतम्' पृ० ३४।
२. 'सामवतम्' ३.३८।
३. " ५.१२।
४. 'धर्माधर्मकलकलम्—१४।

(क) भाव—

(१) देवविषयक रतिभाव—

या तु यातुदलनाशकारिका कालिकालिकचभासिता सिता ।
तारितारिनिवहा सुखावहा पातु पातु जगदम्बिकाविका ॥[1]

यहां राजा का देवी अम्बिका विषयक रतिभाव अभिव्यक्त होता है । शिव[2], गणेश[3], सूर्य[4], आदि देवता-विषयक रतिभावों की व्यंजना भी विभिन्न प्रकरणों में हुई है ।

(२) मुनिविषयक रतिभाव—

तौ सामवत्सुमेधसौ प्रबलप्रतापयोः प्रसिद्धयोः सारस्वतवेदमित्रयोर्मुनिवरयोः पुत्रौ । न तौ कथमपि भवादृशानामवहेलनापात्रे ।[5]

यहां अमात्य का मुनियों और मुनिपुत्रों विषयक रतिभाव अभिव्यक्त होता है ।

(३) नृपविषयक रतिभाव—

विबुधैः सेव्यमानस्य सर्वविद्याभिदां निधेः ।
श्रीमहेश्वरसिंहस्य सम आसीत् महेश्वरः ॥[6]

यहां कवि का मिथिलानरेश लक्ष्मीश्वरसिंह विषयक रतिभाव व्यक्त हुआ है ।

(४) अंजित व्यभिचारी भाव—

बालान्हन्मि निपातयामि तरुणान् वृद्धान् परं खेदये
पातिव्रत्यपरायणाश्च युवतीर्जारैर्विटैर्योजये ।
लज्जानीतिदयादिकाश्च रमणीः केशग्रहैस्ताडये
त्वादृक्षांश्च चपेटपादहननैः सम्पात्य संचूर्णये ॥[7]

यहां अधर्म के गर्वरूप स्थायी भाव के प्रधानतया अभिव्यक्त होने से भाव की स्थिति है ।

(५) उद्बुद्धमात्र स्थायी भाव—

लुलद्रोलम्बालीकलितकमलस्पर्द्धिरुचयः
कटाक्षाः बालानां प्रकृतिचपलाः घ्नन्ति हृदयम् ।
स्मरः किं च स्मित्वा रतिहृतमतिः पुष्परचितान्
स्वबाणानाधत्ते निजधनुषि टंकाररुचिरे ॥[8]

---

१. 'सामवतम्' ५.२१ । २. 'सामवतम्' १.१ ।
३. ,, १.३४ । ४. ,, ३.८ ।
५. ,, पृ० ५३ । ६. ,, १.२७ ।
७. 'धर्माधर्मकलकलम्'—२ । ८. ,, १.३८ ।

यहां सामवान् का बालाओं विषयक रतिभाव उद्बुद्ध तो होता है, परन्तु पुष्ट न होने से उसकी अभिव्यंजना भाव की स्थिति तक ही रह जाती है, रसदशा को प्राप्त नहीं होती ।

(ख) **रसाभास—**

अप्सराओं के गीत सुनने में दत्तचित्त होने के कारण सामवान् दुर्वासा ऋषि के निमन्त्रण की अवहेलना करने का अपराधी नहीं है, इसलिये दुर्वासा ऋषि का—

(ततः प्रविशति रंगभूमिकोणैकदेशे कोपकषायितलोचनो दुर्वासाः)

(तेषु स्वकार्यासक्तेषु एनमपश्यत्सु)

दुर्वासाः—अरे ! त्वं मन्मित्रस्य सारस्वतस्य पुत्र इति त्वां सच्चिकीर्षुरासम् — परं त्वं तु शापसत्कारायैव तृषितोऽसि । अस्तु रे !

स्त्रियं विलोकयन् यस्त्वं मामवज्ञातवानसि ।
स्त्रीरूपमचिरादेव तस्मात् त्वं कलयिष्यसि ॥[1]

इस प्रकार से क्रोध करना अनुचित है । अनुचित रौद्ररस की अभिव्यक्ति होने से यहां रसाभास है । अथवा वसन्तक के इस कथन में—

सैवाकृतिस्तच्च मनोहरत्वं तदेव माधुर्यमथेंगितानाम् ।
विभाति भूत्वा वनितास्वरूपं श्रीसामवान् नृत्यति मंजुमूर्तिः ॥[2]

सामवान् को आलम्बन बना कर हास्य की आयोजना है, किन्तु मुनिपुत्रों का परिहास करना अनुचित होने से यहां रसाभास है ।

(ग) **भावाभास—**

चिट्ठद भो चिट्ठद, जुम्हाणं किदे जेव्व ईदिसी दसा जादा, चिट्ठद चिट्ठद हीणामहे - गदा जेव्व कवड़बम्हणा (विचार्य) होदु अहं लड्डुएण सवामि जा जुम्हाणं विप्पकामदुद्दसं करिस्संति । (परिक्रम्यावलोक्य च) कहिं वि मुत्तोम्हि एदस्स राअभड़रिच्छस्स हत्थादो (स्ववस्त्रमवलोक्य) कधं दासीपुत्तेण मम अंगरक्खअपडं भग्गम् । होदु एदाणं राअभड़हदआणं सहस्ससो गाली कहइस्सम् ।[3]

यहां विदूषक का क्रोध तो अभिव्यक्त होता है, किन्तु यह उद्बुद्धमात्र रह जाने से, रसदशा को प्राप्त न होने से भाव की अवस्था तक ही रहता है । इसके अतिरिक्त पूज्य मुनिपुत्रों के प्रति इस क्रोध के अभिव्यक्त होने से यह भावाभास है ।

(घ) **भावशान्ति—**

राजा—अम्ब ! तत् कथमपि तोषणीयोऽत्र भवान् सारस्वतो मुनिवरो यथा न वयमेतस्य कोपज्वालाजालस्य पतंगतां गच्छामः ।

---

१. 'सामवतम्' १.६४ । २. 'सामवतम्' ३.३८ ।
३. ,, पृ० ७० ।

भगवती—तन्मा भैषीः। दत्तं तेऽभयम्।

राजा —जीवितोऽस्मि (इति प्रणमति)[1]

यहां राजा के भयरूप भाव की शान्ति होने से भावशान्ति की अभिव्यंजना है।

(च) भावोदय—

सामवती—(दर्पणे मुखमालोक्य स्वगतम्)

जन्हुभयादिव गंगा कुचगिरिगहने सुदुर्गेऽस्मिन्।
मुक्तामालाव्याजादाच्छन्नास्तीति मन्येऽहम्॥[2]

दर्पण में सौन्दर्य को देखकर सामवती के हृदय में गर्व का भाव उदय होने से यहां भावोदय निष्पन्न होता है।

(छ) भावशबलता—

हा ! किमहमेकाकी अस्मिन् प्रान्तरे वर्त्मनि करोमि ? अहं स्वयमेव अपरिणतवयाः, यश्च मे बाहुरिव सखासीत्, अहह ! सोऽयं दैवात् स्त्रीत्वं गतो यौवनमदमत्तो रमणमाकांक्षमाणो मन्मथामथितो मूर्छितोऽस्ति। मदनेनाहन्यमानं ममापि च हृदयं नास्त्यधुना मद्वशंवदम्, तत्किमिव करोमि ? हा ! हतोऽस्मि (इति अश्रूणि मुंचति) ....केनेव बोधितोऽस्मि (विलोकयन्) नूनं साहाय्यं विदधति तपोवनदेवता एताः। सत्यं किं विघ्नेष्ववर्तमानेष्वपि भवति परीक्षा धैर्यस्य ? न कदापि। तत प्राप्तबुद्धिना मया भाव्यम्।[3]

यहां क्रमशः दैन्य, चिन्ता, स्मृति, विषाद, आवेग, मोह, विषाद, विबोध, तर्क, मति इन व्यभिचारी भावों की अभिव्यक्ति में उत्तर उत्तर भावों के द्वारा पूर्व पूर्व भावों का उपमर्दन होने से भावशबलता की उद्भावना है।

व्यास जी के रूपकों की आलोचना करने के पश्चात् आगामी अध्याय में उनकी अन्य संस्कृत रचनाओं पर विचार प्रस्तुत किया जा रहा है।

———

१. 'सामवतम्' पृ० १९३। २. 'सामवतम्' ६.१२।
३. ,, पृ० १५४।

व्यास जी की अन्य संस्कृत रचनायें

गद्यकाव्य और रूपकों के अतिरिक्त व्यास जी ने संस्कृत में अन्य अनेकविध रचनाओं का लेखन किया था। 'विहारी-बिहार' में निज-वृत्तान्त का कथन करने के बाद उन्होंने इन रचनाओं की सूची प्रकाशित की है। इसका विवरण प्रथम अध्याय में दिया जा चुका है। साहित्यिक अध्ययन की दृष्टि से व्यास जी के गद्य-काव्य और रूपकों का अधिक महत्व है, जिनकी विस्तृत समालोचना पिछले अध्यायों में की जा चुकी है। उनकी अन्य संस्कृत रचनाओं का साहित्यिकता, मौलिकता और समालोचना की दृष्टि से उतना अधिक महत्व न होने से अध्ययन के विस्तार में न जाते हुये उनका केवल परिचय दिया जा रहा है। कुछ रचनायें प्राप्त नहीं हैं, शेष का वर्गीकरण इस प्रकार है—

(क) भक्ति-काव्य—(१) सहस्रनामरामायणम्।

(ख) दार्शनिक तथा धार्मिक ग्रन्थ—(२) सांख्य-सागर-सुधा, (३) पातंजल-प्रतिविम्ब, (४) दुःखद्रुमकुठार, (५) अवतारकारिका।

(ग) कोष—(६) प्राकृत-विचित्र-शब्दार्थ-कोष।

(घ) शिक्षा संबन्धी पुस्तकें—(७) गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, (८) बाल-व्याकरण, (९) संस्कृताभ्यासपुस्तकम् (दो भागों में), (१०) कथाकुसुमम्।

१. सहस्रनामरामायणम्

संस्कृत में भक्ति-काव्यों की परम्परा बहुत प्राचीन है। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में इस प्रकार की काव्यरूपता प्राप्त होती है, जहां विभिन्न देवों की स्तुति के लिये मन्त्रों की रचना की गई है। 'रामायण' और 'महाभारत' भक्तिकाव्यों की महती परम्परा को अभिव्यक्त करते हैं। पौराणिक परम्परा के अनुसार निराकार भगवान् के साकार रूप धारण करके अवतार लेने के विश्वास ने इन भक्ति-काव्यों को और भी अधिक प्रोत्साहित किया और इस प्रकार 'रामायण', 'महाभारत' और 'पुराण' भक्ति-काव्यों के कोषरूप हो गये। 'विष्णु-पुराण,' 'ब्रह्माण्ड-पुराण', 'मार्कण्डेय-पुराण,' 'पद्म-पुराण,' 'स्कन्द-पुराण,' 'भागवत-पुराण', 'देवी-भागवत-पुराण' आदि पुराणों में असंख्य भक्ति-स्तोत्र संकलित हैं। इन बृहत्काय ग्रन्थों के अतिरिक्त विभिन्न देवताओं की स्तुति करने के लिये फुटकर रूप में भी स्तोत्रों (भक्ति-गीतों) की रचना की गई। शंकराचार्य, जयदेव आदि विद्वानों और कवियों ने संस्कृत में अनेकों स्तोत्रों की रचना की, जिनके अनेक संग्रह वर्तमान समय में उपलब्ध हैं। हिन्दी

भाषा में भी भक्तिवादी परम्परा ने स्तोत्रों की रचना को प्रोत्साहन दिया। तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' और सूरदास का 'सूरसागर' स्तोत्रों का संग्रह ही कहा जाना चाहिये।

स्तोत्रों की इन रचनाओं में एक अन्य प्रवृत्ति भी है कि देवता की स्तुति करने के लिये उसके गुणों का वर्णन सहस्रनामों द्वारा किया जाता था। 'महाभारत' के शान्ति-पर्व में विष्णु की स्तुति के लिये 'विष्णु-सहस्रनाम' है। इसके अतिरिक्त 'देवी-सहस्रनाम', 'हनुमत्सहस्रनाम' आदि अनेक स्तोत्र वर्तमान समय में उपलब्ध हैं।

भक्ति की इस स्तोत्र परम्परा का अनुकरण करते हुये व्यास जी ने 'सहस्रनाम-रामायण' की रचना की। इसमें आपने रामचन्द्र जी के गुणों को प्रदर्शित करने वाले १००० नामों को १९५ पद्यों में निबद्ध किया और तदनन्तर गणेश, कमला, शारदा, विष्णु आदि अनेक देवों और देवियों की स्तुति में स्तोत्रों की रचना की।

'सहस्रनामरामायण' में दशरथ-पुत्र राम को साक्षात् परब्रह्म का अवतार प्रतिपादित करते हुये व्यास जी ने १००० नामों के द्वारा सम्पूर्ण 'रामायण' की कथा का संक्षेप से वर्णन किया है और 'रामायण' के सदृश ही इसे काण्डों में विभक्त किया। व्यास जी की इस रचना में गोस्वामी तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' की राम-स्तुति[1] का अनुसरण परिलक्षित होता है। तुलसी दास जी की इस राम-स्तुति में भी श्रीराम के विशेषणों द्वारा सम्पूर्ण 'रामायण' की गाथा संक्षेप से कह दी गई है। दोनों रचनाओं में भेद यह है कि—

१. तुलसीदास जी ने प्रत्येक पद्य में जयति इस क्रिया का प्रयोग किया है। 'सहस्रनामरामायणम्' में आदि से अन्त तक कोई क्रिया नहीं है।

२. तुलसीदास का यह स्तोत्र केवल नौ पद्यों में समाप्त हो गया है और उसमें काण्ड आदि का कोई विभाजन नहीं है। 'सहस्रनामरामायणम्' में भगवान् राम के सहस्र नामों का परिगणन १९५ पद्यों में हुआ है और इसे सात काण्डों में विभक्त किया गया है। 'सहस्रनामरामायणम्' के प्रारम्भ में मंगलाचरण के रूप में श्री राम और रामकथा की पावनता का स्मरण उपजाति छंद के चार पद्यों में है। तदनन्तर रामचन्द्र जी के विशेषणों के रूप में नामों का कथन करते हुये बालकाण्ड में उनके जन्म से लेकर विवाह पर्यन्त, अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट में राम द्वारा भरत को पादुका देने पर्यन्त, किष्किन्धाकाण्ड में वानरों द्वारा सीता के अन्वेषण के लिये जाने और सम्पाति के गति प्राप्त करने पर्यन्त, सुन्दर-काण्ड में हनुमान् द्वारा सीता का समाचार लाने और उसे रामचन्द्रजी को सुनाने पर्यन्त, लंकाकाण्ड में रामचन्द्रजी

---

१. 'विनयपत्रिका' स्तोत्र संख्या ४३।

द्वारा लंकेश को मारकर अयोध्या की ओर प्रस्थान करने पर्यन्त तथा उत्तरकाण्ड में रामचन्द्रजी के सिंहासन पर आरोहण करके सबको प्रसन्न करने पर्यन्त तक की कथा का वर्णन है ।

इस भक्ति-काव्य में लिखे गये श्री राम के विशेषणों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. अलौकिकगुण-वाचक ।
२. लौकिकगुण-वाचक ।
३. क्रियाकलापों का संकेत करके कथा को गति देने वाले ।

श्रीराम को साक्षात् परब्रह्म का अवतार मानते हुये व्यास जी ने उनमें उसी प्रकार की लोकोत्तर विशेषताओं के दर्शन किये । भगवान् राम चिदानन्द, चिदाभास, चिन्मूर्ति, चेतनस्थिति और आनन्दरूप हैं । वे सब को प्रसन्न करने वाले हैं और देवगणों द्वारा वन्दित होते है ।[1] वे हिंसा को दूर करने वाले, सम्पूर्ण पापों के विनाशक और अपने नाम के अमृत से महादेव को प्रसन्न करने वाले हैं ।[2] वे परमात्मा, परब्रह्म, अविज्ञेय और पुरुषोत्तम हैं ।[3]

नर-रूप में अवतीर्ण हुये श्रीराम अनेक लौकिक गुणों से विभूषित हैं। वे यशस्वी, तपस्वी, तेजस्वी और मुनियों द्वारा समादृत हैं । प्रजा की पीड़ा को दूर करने वाले और उनके नेत्रों को आनन्दित करने वाले हैं ।[4] वे व्रती, विद्वान्, सबके प्रिय, गुणिगण्य, गुणप्रिय, कृतज्ञ, यज्ञ करने वाले, काम्य, कृती और कार्य को पूरा करने वाले हैं ।[5] वे मर्म को जानने वाले, मनुष्य के बल को समझने वाले, बलवान्, देशकाल को जानने वाले, स्वच्छ, स्वच्छ प्रेम करने वाले, शास्त्रों के ज्ञाता और निन्द्य कर्मों से परान्मुख रहनेवाले हैं ।[6] इस प्रकार के अन्य अनेक लौकिक गुणों की स्थिति कवि ने श्रीराम में प्रदर्शित की है ।

---

१. चिदानन्दश्चिदाभासश्चिन्मूर्तिश्चेतनस्थितिः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दो देवतावृन्दवन्दितः ॥ 'सहस्रनामरामायणम्'-बालकाण्ड—१ ।

२. संतोषितहिंसार्थः सर्वाघौघविघट्टनः ।
नामामृतमहोन्मत्तमहादेवातिमोदकृत् । 'सहस्रनामरामायणम्'-उत्तरकाण्ड—१९४ ।

३. परमात्मा परब्रह्माविज्ञेयः पुरुषोत्तमः । 'सहस्रनामरामायणम्'—उत्तरकाण्ड—१९५ ।

४. यशस्वी च तपस्वी च तेजस्वी मुनिमानितः ।
प्रजापीडामोचकश्च प्रजालोचनरोचनः । 'सहस्रनामरामायणम्'-बालकाण्ड—७२ ।

५. व्रती विद्वान् प्रियः प्रेमी गुणिगण्यो गुणप्रियः ।
कृतज्ञः क्रतुकृत् काम्यः कृती कृत्यसमापनः । 'सहस्रनामरामायणम्'-बालकाण्ड —७२ ।

६. मर्मज्ञो जनसारज्ञो बलवान् देशकालवित्
स्वच्छः स्वच्छरतिः शास्त्री निन्द्यकार्यपराङ्मुखः । 'सहस्रनामरामायणम्'-बालकाण्ड-७३ ।

श्रीराम के विशेषणों द्वारा ही कवि ने उनके कार्यों का वर्णन करके कथा को प्रगति दी है। यथा—

हनूमद्विहितालापो हनूमदनुगोपमः ।
सुग्रीवालोकप्रीतः श्रुतसुग्रीवदुर्दशः ।।
बालिनाशप्रतिज्ञाता सुग्रीवाश्चर्यकारणम् ।
दुन्दुभ्यस्थिसमुत्क्षेपी तालच्छेदनकौतुकी ।।
सुग्रीवभयविच्छेत्ता सुग्रीवप्रत्ययप्रदः ।
सुग्रीवविहितस्नेहो मित्रं मित्रसुखास्पदम् ।।[1]

रामचन्द्र जी के इन नामों से विदित होता है कि वे हनूमान से वार्तालाप करके उसके पीछे सुग्रीव के पास गये और उसे देखकर प्रसन्न हुये। सुग्रीव की दुर्दशा के वृत्तान्त को सुनकर उन्होंने बालि के वध की प्रतिज्ञा की। इससे सुग्रीव को बहुत आश्चर्य हुआ। सुग्रीव को विश्वास दिलाने के लिये उन्होंने दुन्दुभि की अस्थियों को दूर फेंक दिया और ताल के वृक्षों को छेद दिया। राम के इन कार्यों से सुग्रीव का भय दूर हो गया और उसे राम की सामर्थ्य में विश्वास हुआ। श्रीराम ने सुग्रीव से स्नेह करके उसे अपना मित्र बना लिया और उसके लिये सुख की प्रतिष्ठा की। इसी प्रकार से—

सीताद्दङ्.नलिनीवृष्टिपूजितः सर्वसंस्तुतः ।
जानकीशोभिवामांगो वह्निशोधितजानकिः ।।
वानरर्क्षसमादर्ता प्रशंसितकपीश्वरः ।
ब्रह्मादिविहितस्तोत्रः समालिंगितवानरः ।।
पुष्पकस्थः पुष्पमाली पुष्पवृष्टिप्रपूजितः ।
सीतोल्लसद्वामभागो दक्षिणस्थितलक्ष्मणः ।।
सम्मुखस्थांजनीसूनुः सुग्रीवादिसमावृतः ।
अयोध्यागमनोत्साही भरतस्मृतिविह्वलः ।।[2]

इन विशेषणों से कथा को गति मिलती है कि रावण-वध के बाद राम के समीप आई सीता ने उन्हें आदर के भाव से देखा। राम ने सीता की अग्नि-परीक्षा ली। सभी ने राम की स्तुति की और सीता उनके वामांग में शोभित हुईं। राम ने सभी वानरों और ऋक्षों का आदर किया और वानरराज सुग्रीव की प्रशंसा करके उनका आलिंगन किया। इस अवसर पर ब्रह्मा आदि देवों ने उनकी स्तुति की।

---

१. 'सहस्रनामरामायणम्' किष्किन्धाकाण्ड—१३७-१३९ ।

२. 'सहस्रनामरामायणम्'—लंकाकाण्ड—१८२-१८५ ।

अब वे पुष्प मालायें पहने, पुष्पक-विमान पर बैठकर पुष्पों की वृष्टि से पूजित होते हुये वाम भाग में सीता, दक्षिण भाग में लक्ष्मण और सम्मुख हनूमान् को करके सुग्रीव आदि वानरों से घिरे हुये भरत की स्मृति से विह्वल होकर अयोध्या जाने के लिये उत्साहवान् हुये । इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी इस भक्ति काव्य में विशेषणों द्वारा भगवान की कथा को कहा गया है ।

श्रीराम के सहस्रनामों के संकीर्तन द्वारा कवि ने हरि-नाम-कीर्तन का महत्त्व बतलाया । मृत्यु-काल के उपस्थित होने पर राम नाम ही शरण है । कृष्ण विष्णो हरे राम इस प्रकार कहने वालों को कभी भी कलि-काल-कृत भीति नहीं होती । तदनन्तर कवि ने कुछ अन्य देवताओं की स्तुति करने के लिये गणेशाष्टक, शारदाष्टक, विष्णुपदाष्टक, कमलाष्टक, हरिहरस्तोत्र और शरणागतिस्तोत्र की रचना की । इन स्तोत्रों की रचना के पश्चात् भगवद्भजनविषयक चार गीतियां लिखकर २३ पद्यों द्वारा अपने वंश के परिचय का और काव्य-रचना के प्रयोजनों का कथन किया है ।

भक्ति-भाव से युक्त इस रचना में कवि की तत्तत् देवताविषयक रतिभाव की अभिव्यंजना होती है । यद्यपि इस काव्य में देवविषयक रतिभाव की प्रधानता है, तथापि अन्य रस भी अंग-रूप से अभिव्यक्त होते हैं । बालक राम का कौशल्या आदि माताओं और पिता द्वारा लाड़-प्यार करने द्वारा[1] पुत्रविषयकरति (वात्सल्यभाव) की, राम द्वारा यज्ञों में विघ्न उपस्थित करने वाले सुबाहु का विनाश और मारीच का उत्क्षेपण करके यज्ञ की रक्षा करने[2] से वीर रस की, गिरिजा के उद्यान में जानकी के हृदय का दर्शनमात्र से हरण करने से[3] संयोग-शृंगार की और सीता के अपहरण के पश्चात् क्रन्दन से[4] विप्रलम्भ-शृंगार की अभिव्यक्ति हुई है।

इस काव्य में भाषा का सौन्दर्य भी है । शब्दालंकारों और अर्थालंकारों के प्रयोग द्वारा इसे अलंकृत किया गया है । यथा—

पयोजपत्रपुटगपम्पापानीयपूजितः ।
पम्पापरिसरस्थायी पम्पापवनपावनः ।।[5]

इस श्लोक में प वर्ण की पुनः पुनः आवृत्ति द्वारा अनुप्रास अलंकार का सौन्दर्य है ।

शारदेन्दुविशदप्रभावती पातु मां भगवती सरस्वती ।[6]

इसमें उपमा अलङ्कार और—

१. 'सहस्रनामरामायणम्'—बालकाण्ड—१५—१६ ।
२. ,, — ,, —३३—३४ ।
३. ,, — ,, —३६—४२ ।
४. ,, —अरण्यकाण्ड—१२३ ।
५. ,, — ,, १३० ।
६. 'शारदाष्टक'—पद्य सं० ७ ।

दुःखद्रुमभुजंगीभिर्दश्यमानस्य मूर्छतः ।[1]

इस पद्य में रूपक अलंकार और—

बालरविच्छविजित्वरकान्ते सदयहृदयहतनिजजनभ्रान्ते ।[2]

इस पद्य में व्यतिरेक अलंकार है। भगवान् राम के साभिप्राय विशेषणों के द्वारा परिकरांकुर अलंकार का प्रयोग इस काव्य में बाहुल्य से है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि व्यास जी का यह भक्ति-काव्य उनकी प्रतिभा, काव्यनिर्माणशक्ति, सच्चिदानन्द प्रभु और विभिन्न देवी-देवताओं के प्रति भक्ति को अभिव्यक्त करता है। यद्यपि इस काव्य में कुछ दोष भी हैं, यथा—बालकाण्ड में सुबाहु और मारीच के पराभव के बाद ताडका का वध कराया गया है, जबकि 'रामायण' की कथा के अनुसार पहिले ताडका का वध हुआ, तथापि यह काव्य अपने सौन्दर्य से सहृदयों को आह्लादित करता हुआ भक्ति-काव्यों की उत्कृष्ट परम्परा में स्थान प्राप्त करने योग्य है।

२—सांख्य-सागर-सुधा

सांख्य दर्शन का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये व्यास जी ने इस लघु पुस्तिका की रचना की। आपका विचार था कि जिस प्रकार न्याय आदि दर्शनों में प्रवेश करने की अभिलाषा रखने वाले प्रथम तर्कसंग्रह आदि सरल ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं और उनको सरलता से समझ लेते हैं, इसी प्रकार सांख्य दर्शन के सामान्य रूप का ज्ञान कराने के लिये किसी ग्रन्थ की रचना होनी चाहिये। इस उद्देश्य को दृष्टि में रख कर आपने इस लघीयसी 'सांख्यसागरसुधा' नामक पुस्तिका की रचना की।[3] इसकी रचना आपने सम्वत् १९३४ में की थी।[4]

इस पुस्तिका प्रतिपाद्य विषय इस प्रकार है— जड और चेतन दो प्रकार के पदार्थों में प्रकृति जड और पुरुष चेतन है। प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से एकादश इन्द्रियां और पंचतन्मात्रायें तथा पंचतन्मात्राओं से पंचमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। इन चौबीस तत्वों और पुरुष को मिला कर पच्चीस तत्व होते हैं। शरीर तीन प्रकार के होते हैं— लिंग-शरीर, मातापितृज-शरीर और पांचभौतिक-शरीर। जीव जब प्रकृति और पुरुष के अन्तर को समझ लेता है और प्रकृति का दर्शन कर लेता है तो क्लेशों के हट जाने तथा धर्म, अधर्म आदि के सम्बन्ध न होने पर भी वह पूर्व संस्कारों के कारण कुछ समय तक शरीर में रहता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर वह शाश्वत कैवल्य को प्राप्त होता है।

---

१. 'शरणागति स्तोत्र' पद्य सं० १।

२. 'गणेशाष्टक'—सं० ४।

३. 'सांख्यसागरसुधा' उपोद्घात से।

४. 'बिहारी-विहार' में निज-ग्रन्थों के परिचय से।

सांख्यसागरसुधा की रचना में मुख्य रूप से 'सांख्यकारिका' और 'सांख्य-कारिका' की 'सांख्यतत्वकौमुदी' टीका को आधार बनाया गया है। कहीं-कहीं 'तत्वसमाससूत्रवृत्ति', 'तत्वमीमांसा' और 'सांख्यतत्वप्रदीप' से सहायता ली गई है। 'सांख्यसागरसुधा' और इन ग्रन्थों की समानताओं का कुछ विवरण नीचे है।

'सांख्यकारिका' के अनुसार प्रकृति को अव्यक्त तथा प्रधान कहा गया है।[1] सृष्टि-उत्पादन का वर्णन इसी के अनुरूप है। प्रकृति से महान्, महान् से अहंकार, अहं-कार से षोडश गण (पांच कर्मेन्द्रियां, पंच ज्ञानेन्द्रियां, पंचतन्मात्रायें और मन) और पंचतन्मात्राओं से पंच महाभूतों की उत्पत्ति कही गई है।[2] महत्तत्व के वर्णन में भी 'सांख्यकारिका' का उपयोग किया गया है और उसी के अनुसार प्रत्यय सर्ग के पचास भेदों का निरूपण किया गया है।[3] प्रकृति के दर्शन के बाद भी शरीर के रहने और शरीर के नष्ट हो जाने पर कैवल्य की प्राप्ति का वर्णन भी 'सांख्यकारिका' के ही अनुसार है।[4]

---

१. (क) प्रधानं प्रकृतिरिति चोच्यते। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १।
प्रकृतिस्त्वव्यक्तम्। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० २।

(ख) सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्। 'सांख्यकारिका'—कारिका सं० १०।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद् विपरीतस्तथा च पुमान्। 'सांख्यकारिका'—कारिका सं० ११।

२. (क) तस्माच्च महत्तत्वमाविर्भवति। महत्तत्वाच्चाहंकारः। तस्माच्च श्रोत्रघ्राणरसनात्वगा-ख्यानि ज्ञानेन्द्रियाणि, वाक्पाणिपादपायूपस्थाभिधानि कर्मेन्द्रियाणि शब्दस्पर्शरूपरस-गन्धाख्यानि तन्मात्राणि मनश्चेति षोडशको गण उत्पद्यते। एतस्मादपि पंचभ्यस्तन्मात्रेभ्यः पंचभूतानि जायन्ते। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १-२।

(ख) प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंचभूतानि। 'सांख्यकारिका'—कारिका सं० २२।

३. (क) महत्तत्व एव च विपर्यया अशक्तयस्तुष्टयः सिद्धयश्च सम्भवन्ति। 'सांख्य-सागर-सुधा' पृ० ६।
एवं प्रत्ययसर्गस्य पंचाशत्प्रकाराः समाख्याताः। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ११।

(ख) एष प्रत्ययसर्गो विपर्ययाशक्तितुष्टिसिद्ध्याख्यः।
गुणवैषम्यविमर्दात् तस्य च भेदास्तु पंचाशत्। 'सांख्यकारिका'—कारिका सं० ४६।

४. (क) ततश्च क्लेशानां दग्धबीजभावतयाऽग्रे धर्माधर्माद्यसम्बन्धात्पूर्वसंस्कारवशादेव कियत्कालं व्यापृतशरीरस्तिष्ठति। कुलालव्यापारोपरमेऽपि पूर्वसंस्कारवशात्कियत्कालमंगीकृत-भ्रमिचक्रमिव। ततः क्रमेण संस्कारपरिसमाप्तौ च त्यक्तशरीरो यावद् खाभाववान् सामग्रीविरहेण पुनर्दुःखोत्पादस्य कथमपि शून्यः सच्चिदानन्दरूपं स्वात्मपर्यवसायि परम-पुरुषार्थरूपं कैवल्यमाप्नोति। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १८-१९।

'सांख्यतत्वकौमुदी' का प्रभाव भी इस पुस्तिका में अनेक स्थानों पर है। बुद्धि के धर्म वैराग्य के चार भेद इसके अनुकरण पर किये गये हैं।[1] विपर्यय के तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र इन पांच भेदों के प्रदर्शन,[2] तमस् और मोह आदि के लक्षण[3] शब्द आदि के दिव्य-अदिव्य भेद[4], प्रकृति–उपादान–काल और भाग्य की व्याख्या तथा इनके अम्भस्—सलिल—ओघ और वृष्टि नामकरण,[5]

(ख) सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः॥
प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति॥'सांख्यकारिका' कारिका सं० ६७-६८।

१. (क) एष च वैराग्यस्य यतमानसंज्ञा, व्यतिरेकसंज्ञा, एकेन्द्रियसंज्ञा, वशीकारसंज्ञा चेति चतस्रो विधाः। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ५।

(ख) तस्य यतमानसंज्ञा, व्यतिरेकसंज्ञा, एकेन्द्रियसंज्ञा, वशीकारसंज्ञा इति चतस्रः संज्ञाः। 'साख्यतत्वकौमुदी' पृ० २४८।

२,३ (क) तत्र विपर्ययास्तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्राख्याः अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशापरनामधेयाः पंचैव। एषु च अव्यक्तमहदहंकारतन्मात्रेषु आत्मधीरविद्यातमः अस्य चाष्टविधविषयत्वादष्टौ भेदाः। अणिमाद्याष्टके आत्मीयत्वशाश्वतिकत्वव्यवहारो मोहोऽस्मिता। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ६-७।

(ख) अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा यथासंख्यं तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्रसंज्ञकाः पंचविपर्ययविशेषाः। 'सांख्यतत्वकौमुदी' पृ० २९१।
अष्टस्वव्यक्तमहदहंकारपंचतन्मात्रेष्वनात्मबुद्धिः अविद्या तमः, अष्टविधविषयत्वात्तस्याष्टविधत्वम्। ... .अणिमादिकमात्मीयं शाश्वतिकमभिमन्यन्त इति सोऽयमस्मिता मोहः। 'सांख्यतत्वकौमुदा' पृ० २९२।

४. (क) दिव्यादिव्यतया दशविधे शब्दादिपंचके। 'सांख्यसागरसुधा' पृ०७।

(ख) शब्दादिषु पंचसु दिव्यादिव्यतया दशविधेषु.......। 'सांख्यतत्वकौमुदी' पृ० २९२।

५. (क) प्रकृतिरेव सर्वंसाधयति प्रव्रज्योपादानेनैव सिषाधयिषितं सेत्स्यति काल एव निखिल–प्रयोजको भाग्यमेव स्वातन्त्र्येण सर्वकारणम् इति दुरुपदेशदुर्बोधनिबन्धनेन दुःसंस्कारेण ध्यानाभ्यासविघट्टिकाः अम्भस्सलिलौघवृष्ट्यपरनामधेयाः प्रकृत्युपादानकालभाग्याख्याश्चतस्र आध्यात्मिकतुष्टयः। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ६।

(ख) तं च प्रकृतिरेव करोतीति......सा तुष्टिः प्रकृत्याख्या अम्भ इत्युच्यते......प्रव्रज्यायास्तु सा भवति......यातुष्टिः सोपादानास्या सलिलमित्युच्यते।... .कालपरिपाकमपेक्ष्य सिद्धि ते विधास्यति......या तुष्टिः सा कालाख्या ओघ इत्युच्यते। ......तस्माद् भाग्यमेव हेतुर्नान्यत् इत्युपदेशे या तुष्टिः सा भागाख्या वृष्टिः इत्युच्यते। 'सांख्यतत्व-कौमुदी' पृ० २९५।

२८ प्रकार की अशक्तियों में ११ प्रकार के इन्द्रियवध,[1] अर्जन–रक्षण–क्षय और तृष्णा आदि की पार–सुपार–पारापार—अनुत्तमाम्भ आदि नामकरण [2], अध्ययन, शब्द आदि सिद्धियों की व्याख्या तथा इनके तार, सुतार आदि नामकरण पर [3] 'सांख्यतत्वकौमुदी' की स्पष्ट छाया दृष्टिगोचर होती है। इसी प्रकार से अन्य स्थलों पर भी इस ग्रन्थ का प्रभाव है।

'तत्वसमाससूत्रवृत्ति' आदि ग्रन्थों का प्रभाव भी कहीं कहीं है। 'तत्वसमाससूत्रवृत्ति' के अनुसार अव्यक्त प्रकृति के साथ ही महद् आदि को प्रकृतिमात्र भी कहा गया है।[4] पंचमहाभूतों की उत्पत्ति में आकाश महाभूत के शब्दगुणत्व, वायु के शब्दस्पर्शगुणत्व, अग्नि के शब्दस्पर्शरूपगुणत्व, जल के शब्दस्पर्शरूपरसगुणत्व, तथा

---

१. बाधिर्यंकुष्ठतान्धत्वं जडता जिघ्रता तथा।
मूकताकौण्यपंगुत्वे क्लैव्योदावर्तमन्दताः। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ८ तथा 'सांख्यतत्वकौमुदी' पृ० २९३।

२. (क) एवं बाह्यविषयेषु अर्जनरक्षणक्षयतृष्णाहिंसादोषदर्शनजन्मनः पंच उपरमा एव पंच बाह्यास्तुष्टयो भवन्ति आसां च उपरमहेतूनां पंचत्वात् पंच च विधाः क्रमेण पारं सुपारं पारापारम् अनुत्तमाम्भः उत्तमाम्भ इत्युच्यते। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ९।।

(ख) तथा हि अर्जनरक्षणक्षयतृष्णाहिंसादोषदर्शनहेतुजन्मानः पंचोपरमा भवन्ति......या तुष्टिः सैषा पारमित्युच्यते। ...... या तुष्टिः सा द्वितीया सुपारम् उच्यते! ......या तुष्टिः सा तृतीया पारापारम् उच्यते। ......या तुष्टिः सा चतुर्थी अनुत्तमाम्भ उच्यते।...... या तुष्टिः सा पंचमी उत्तमाम्भ उच्यते। 'सांख्यतत्वकौमुदी' पृ० २९६-२९७।

३. (क) सिद्धयश्च ऊहः शब्दोऽध्ययनं सुहृत्प्राप्तिर्दानं त्रयो दुःखविधाताश्चेति अष्टौ भवन्ति। एता एव च क्रमशः तारसुतारतारतारम्यकसदामुदितप्रमोदमुदितमोदमानसंज्ञाभिरपिव्यवह्रिन्ते। आसु च अध्ययनं गुरुमुखात् पाठश्रवणम्। शब्दशब्दव्युत्पत्यवधारणम्। ऊह आगमार्थपरीक्षणम्। सुहृत्प्राप्तिः सदुपदेशकसाहचर्यम्! दानश्च ज्ञानशुद्धिः शेषं स्पष्टम्। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १०।

(ख) विधिवद् गुरुमुखादध्यात्मविद्यानामक्षरस्वरूपग्रहणमध्ययनं, प्रथमा सिद्धिः तारमुच्यत ...शब्दजनितमर्थज्ञानमुपलक्षयति......सा द्वितीया सिद्धिः सुतारम् उच्यते। ......ऊहः तर्कः आगमाविरोधिन्यायेनागमार्थपरीक्षणम्......सा तृतीया सिद्धिः तारतारमुच्यते। सुहृदां गुरुशिष्यसब्रह्मचारिणां संवादकानां प्राप्तिः सुहृत्प्राप्तिः सा सिद्धिश्चतुर्थी रम्यक उच्यते। ......दानं च शुद्धिर्विवेकज्ञानस्य......सेयं पंचमी सिद्धिः सदामुदितम् उच्यते। तिस्रः मुख्याः सिद्धयः प्रमोदमुदितमोदमानाः॥ इति अष्टौ सिद्धयः। 'सांख्यतत्वकौमुदी' पृ० २९८।

४. (क) क्वचित्तु प्रकृतिमहदहंकारतन्मात्राणामष्टानामपि प्रकृतिपदव्यपदेशः। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ५।

(ख) एवमेता अव्यक्तबुद्ध्यहंकारतन्मात्रसंज्ञिता अष्टौ प्रकृतयो व्याख्याताः। 'सांख्यसंग्रहे' तत्वसमाससूत्रवृत्तिः पृ० १२१।

पृथिवी के शब्दस्पर्शरूपरसगन्धगुणत्व के प्रतिपादन में[1] और मातापितृज शरीर में षाट्कौशिकत्व के प्रतिपादन में[2] भी 'तत्वसमाससूत्रवृत्ति' का प्रभाव है। 'तत्वमीमांसा' के अनुसार पंचविध विपर्यय भेदों के तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र नामों के अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पर्यायवाची दिये[3] हैं, जबकि 'तत्वसमाससूत्रवृत्ति' में सबको अविद्या नाम दिया गया है।[4] विषयों के ग्रहण का विवेचन भी 'तत्वमीमांसा' से ही गृहीत प्रतीत होता है।[5] पुरुष द्वारा प्रकृति के दर्शन और तदनन्तर प्रकृति के उपरम होने के वर्णन में 'सांख्यतत्वप्रदीप' का बहुत अधिक साम्य है।[6]

---

१. (क) एभ्यश्च शब्दादाकाशो जायते। शब्दस्पर्शाभ्यां वायुः। शब्दस्पर्शरूपेभ्यस्तेजः। शब्दस्पर्शरूपरसेभ्य आपः। शब्दस्पर्शरूपरसगन्धेभ्यः पंचभ्योऽपि पृथिवी। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १४।

(ख) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धवती पंचगुणा पृथिवी। शब्दस्पर्शरूपरसवत्यश्चतुर्गुणा आपः। शब्दस्पर्शरूपवत् त्रिगुणं तेजः। शब्दस्पर्शवान् द्विगुणो वायुः। शब्दवदेकगुणम् आकाशम्। 'सांख्यसंग्रहे' 'तत्वसमाससूत्रवृत्तिः' पृ० १२२।

२. (क) मातृतो लोमलोहितमांसानि पितृतः स्नाय्वस्थिमज्जान इत्येषां समुदायरूपः षाट्कौशिको मातापितृजो विशेष इत्युच्यते। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १६।

(ख) मातापितृजाः षाट्कौशिकाः तत्र मातृतो लोमलोहितमांसानि पितृतः स्नाय्वस्थिमज्जान इति षट्को गणः। 'सांख्यसंग्रहे' 'तत्वसमाससूत्रवृत्तिः' पृ० १३७।

३. (क) तत्र विपर्ययास्तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्राख्याः अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशापरनामधेयाः पंचैव। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० ६।

(ख) विपर्ययः पंचधा अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशा यथासंख्यं तमोमोहमहामोहतामिस्रान्धतामिस्रसंज्ञाभेदात्। 'सांख्यसंग्रहे' 'तत्वमीमांसा' पृ० १६२।

४. का सा पंचपर्वाऽविद्येत्युच्यते। तत्र मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्रश्चेति। 'सांख्यसंग्रहे' 'तत्वसमाससूत्रवृत्तिः' पृ० १३१।

५. (क) तथा हि ज्ञानेन्द्रियाणि सम्मुग्धमेव विषयानालोच्य मनसे समर्पयन्ति। मनश्च धर्मादिभिर्विकल्प्य अहंकाराय समर्पयति। स चाभिमत्य बुद्धये समर्पयति। सा च...... .. प्रमाणैर्बुद्धिर्निखिलं प्रमिणोति। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १३।

(ख) एवं बाह्येन्द्रियाण्यालोच्य मनसे समर्पयन्ति मनश्च संकल्प्याहंकाराय अहंकारश्चाभिमत्य बुद्धौ सर्वाध्यक्षायामिति। 'सांख्यसंग्रहे' 'तत्वमीमांसा' पृ० १६०।

६. (क) ततश्च बाल्यात्परं वयो जुषाणा लज्जाभरमन्थरा राजरमणीव परपुरुषालोकिता प्रकृतिरपि परपुरुषदृष्टा अदर्शनमेव याति। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १८।

(ख) यथा परपुरुषदर्शनासहा सूर्यदर्शनवर्जितापि कुलवधू प्रमादाद् विगलितांगपटा चेदवलोक्यते परपुरुषेण तदासौ तथा प्रवर्ततेऽप्रमत्तातां यथैनां पुनः पुरुषान्तराणि न पश्यन्ति। 'सांख्यसंग्रहे' 'सांख्यतत्वप्रदीप' पृ० ७७।

सांख्य दर्शन का सामान्य परिचय देते हुये व्यास जी ने कुछ तत्वों की व्याख्या तो विस्तार से दी है, परन्तु अन्य तत्वों का वर्णन संक्षेप से किया है। महत् तत्व का वर्णन विस्तृत है, किन्तु प्रकृति और पुरुष की मूल विशेषताओं, साम्य और भेदों का निरूपण स्पष्ट नहीं है। आपने प्रकृति के साथ ही पुरुष के भी विभुत्व का प्रतिपादन किया।[1] प्रकृति का विभुत्व सांख्यदर्शन के सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है, किन्तु पुरुष के विभु होने के विषय में सब एकमत नहीं हैं। सांख्यसूत्रों में पुरुष के आकाशवत् कथन से[2] विभुत्व के प्रतिपादित होने पर भी अनेकत्व के कारण सांख्यकारिका आदि ग्रन्थों में उसे विभु नहीं कहा गया। पुरुष के विभुत्व के विवादास्पद होने पर भी व्यास जी ने पुरुष के विभुत्व का कोई प्रमाण नहीं दिया। प्रमाणों का भी आपने सम्यक् निरूपण नहीं किया, केवल एक स्थान पर नाम-निर्देश है।[3]

'सांख्यसागरसुधा' सांख्य में प्रवेश करने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों के लिये एक उपयोगी प्रयास है। व्यास जी ने सरल संस्कृत में सांख्यदर्शन का परिचय देकर विद्यार्थियों के लिये एक सुगम पद्धति की रचना की।

३. पातंजल-प्रतिबिम्ब (योगतत्वकौमुदी)

"पातंजल योगदर्शन' के सूत्रों की परिभाषाओं और सिद्धान्तों को व्यास जी ने कारिका के रूप में निबद्ध करके 'पातंजल-प्रतिबिम्ब' अथवा 'योगतत्वकौमुदी' के नाम से प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ की पूर्ति आपने सम्वत् १९३७ के आरम्भ में की थी।[4] यह ग्रन्थ चार पादों में विभक्त है। ग्रन्थ के आरम्भ में योगदर्शन के आचार्यों को नमस्कार करके व्यास जी कहते हैं कि वे पातंजल सूत्रों को कारिकारूप में परिणत कर रहे हैं।[5] तदनन्तर आपने समाधि-पाद, साधन-पाद, विभूति-पाद और कैवल्य-पाद इन चार पादों में क्रमशः ३३,३२,३९ और २० कारिकाओं में पातंजल सूत्रों का निबन्धन करके ग्रन्थ के अन्त में २६ कारिकाओं में अपने वंश का संक्षिप्त परिचय दिया है।

---

१. एतेषु च प्रकृतिपुरुषावेव विभू। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० २।
२. गतिश्रुतिरप्युपाधियोगात्, आकाशवत्। 'सांख्यसूत्र' १.५१।
३. प्रत्यक्षानुमानशब्दाख्यैस्त्रिभिरेव प्रमाणैर्बुद्धिर्निखिलं प्रमिणोति। 'सांख्यसागरसुधा' पृ० १३।
४. मुनिनन्दाङ्कसुधाकरसम्मितवत्सरारम्भे।
सुखमयमूर्तिः पूर्तिर्ग्रन्थस्यैतस्य संजाता ॥ 'पातंजल-प्रतिबिम्ब' वंशपरिचय-२३ ॥
५. पातंजलसूत्राणां परिणामं कारिकारूपम्।
रचयामि यथा सुकरः स्यादभ्यासः पिपठिषूणाम् ॥ 'पातंजलप्रतिबिम्ब' प्रारम्भ–२ ॥

इस ग्रन्थ के पातंजल सूत्रों के अनुसार होने के कारण सम्पूर्ण विषय-वस्तु उसी प्रकार से निबद्ध है। पातंजल सूत्रों के अनुसार ही प्रथम समाधि पाद में योग का आख्यान करते हुये योग का लक्षण, पंचविध क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियां, वृत्तिनिरोध के उपाय, अभ्यास और वैराग्य के लक्षण, सम्प्रज्ञात-असम्प्रज्ञात योग, योग की सिद्धि, ईश्वर का लक्षण, चित्त के विक्षेप और विघ्न तथा उनके दूर करने का अभ्यास, चित्त की स्थिरता, समापत्ति, सबीज और निर्बीज समाधि का वर्णन किया गया है। निर्बीज समाधि प्राप्त करने के उपाय द्वितीय साधन पाद में कहे गये हैं। इसमें क्रियायोग, क्रियायोग का प्रयोजन, क्लेश, क्लेश का विनाश, कर्मविपाकों की दुःखरूपता और उनका उच्छेद, द्रष्टा, दृश्य और उनका संयोग, संयोग का कारण अविद्या, योगांगों के अनुष्ठान का फल, यम-नियम आदि आठ योग के अंग, यमों और नियमों के लाभ, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार के स्वरूपों का वर्णन है। तृतीय विभूति-पाद में प्रथम पांच योगांगों के बहिरंगत्व और अन्य तीन योगांगों की अन्तरंगता स्वीकार करके[1] अन्तरंग अंगों की व्याख्या की गई है। धारणा, ध्यान और समाधि को संयम नाम देकर इस पाद में यह बताया गया है कि अनेकविध संयमों में किस प्रकार के संयम से किस सिद्धि की प्राप्ति होती है। अन्त में बताया गया है कि विवेक ज्ञान होने के वाद सत्व और पुरुष की शुद्धि होने पर कैवल्य की प्राप्ति होती है। चतुर्थ कैवल्य पाद में कहा गया है कि जन्म, औषधि, मन्त्र, जप और समाधि आवरण भेद करके सिद्धियों का साधन करते हैं। चित्त, चित्त की वृत्तियों के स्वरूप, सम्बन्ध और अवस्थायें क्या हैं, विवेकख्याति से धर्ममेघ समाधि होती है, जिससे क्लेश, कर्म, आवरण और मल का विनाश होता है, अनन्त ज्ञान प्राप्त होता है और पुरुष के लिये कोई कर्त्तव्य शेष न रह जाने के कारण द्रष्टा का अपने स्वरूप में प्राप्त हो जाना रूप कैवल्य सिद्ध होता है।

'पातंजलप्रतिबिम्ब' की विषय-वस्तु के निबन्धन में प्रायः अक्षरशः पातंजल सूत्रों का अनुकरण है। कुछ स्थानों पर इन सूत्रों के व्यास भाष्य का भी प्रभाव है। सूत्रों की व्याख्या में व्यास जी का स्वयं का योग नहीं है। एक ओर योगसूत्रों और दूसरी ओर कारिकाओं को रखने से इस कथन की पुष्टि होती है तथा दोनों में सूत्र-रूपता और कारिकारूपता के अतिरिक्त अन्य अन्तर लक्षित नहीं होता। कुछ उदाहरण देकर इस तत्व को स्पष्ट किया जा रहा है।

अथ योगानुशानम्, योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः, तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्[2]—इन पातंजल सूत्रों को निम्न कारिका में निबद्ध किया गया है—

---

१. पंचकमिह बहिरंगत्रिकमेतच्चान्तरंगतां प्राप्तम्॥ विभूतिपाद—४॥

२. 'पातंजलयोगसूत्र' समाधिपाद सूत्र १-३।

आख्यायतेऽथ योगः स च रोधश्चित्तवृत्तीनाम् ।
संरुद्धचित्तवृत्तेः स्थितिः स्वरूपे तदा द्रष्टुः ।।[1]

पंचविध वृत्तियों के स्वरूप और निरोध को स्पष्ट करने वाले प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि, विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्, शब्दज्ञानानुपातिवस्तुशून्यो विकल्पः, अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा, अनुभूतविषया सम्प्रमोषः स्मृतिः, अभ्यासवैराग्याभ्यां सन्निरोधः[2] ये ६ सूत्र निम्न कारिकाओं में निबद्ध है—

दृष्टं तथानुमानं शब्दश्चेति प्रमाणमाख्यातम् ।
अतथाविधप्रतिष्ठं मिथ्याज्ञानं विपर्ययो ज्ञेयः ।।
शब्दज्ञानानुसरस्तथा विकल्पोऽपि वस्तुशून्योऽस्ति ।।
निद्रावृत्तिर्ज्ञेया भावप्रत्ययसमालम्बा ।।
पूर्वानुभूतविषया सम्मोषः स्मृतिरभाषि विद्वद्भिः ।
अभ्यासेनैतासां वैराग्येण च भवेद् रोधः ।।[3]

पांच यमों द्वारा प्राप्त होने वाले फलों को व्यक्त करने वाले अहिंसाप्रष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः, सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्, अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्, ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः, अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः[4] इन योग सूत्रों को निम्न कारिकाओं में निबद्ध किया गया है—

स्वनिकटवैरत्यागो हिंसाभावप्रतिष्ठायाम् ।
कर्मफलाश्रयता च प्रभवति सत्यप्रतिष्ठायाम् ।।
अस्तेये संसिद्धे ह्युपतिष्ठन्ते महार्धरत्नानि ।
प्राचुर्यवीर्यलाभो भवति तथा ब्रह्मचर्यसंस्थाने ।।
अपरिग्रहकलनेऽपि च जन्मकथंताविबोधोऽपि ।[5]

ग्रहणादिक में संयम करने वाले, इन्द्रिजय और उससे प्राप्त होने वाले फलों का कथन करने वाले ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्वसंयमादिन्द्रियजयः, ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च, सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च, तद् वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्[6] ये सूत्र निम्न कारिकाओं में निबद्ध हैं—

---

१. 'पातंजलप्रतिबिम्ब' समाधिपाद कारिका—१ ।
२. 'पातंजल योगसूत्र' समाधिपाद सूत्र ७-१२ ।
३. 'पातंजलप्रतिबिम्ब' समाधिपाद कारिका ४-६ ।
४. 'पातंजल योगसूत्र' साधनपाद सूत्र ३५-३९ ।
५. 'पातंजलप्रतिबिम्ब' साधनपाद कारिका २२-२४ ।
६. 'पातंजल योगसूत्र' विभूतिपाद सूत्र ४७-५० ।

इन्द्रियविजयः प्रभवति ग्रहणादिकसंयमात् सुतराम् ।
विकरणभावश्च ततो मनोजवित्वं प्रधानविजयस्स्यात् ।।
सत्वपुरुषान्यतायाः ख्यातौ सुतरां स्थितस्य योगविदः ।
सर्वाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वमपि भवति ।।
कैवल्यं वैराग्यात्तस्मिन्नपि दोषबीजनाशे स्यात् ।[1]

योगियों के कर्मों की विलक्षणता, साधारण मनुष्यों के कर्मों से वासनाओं की उत्पत्ति तथा वासनाओं के अनादित्य का द्योतन करने वाले "कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्, ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्, जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यंस्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्, तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्[2]" इन योगसूत्रों को निम्न कारिकाओं में निबद्ध किया गया है—

कर्माशुक्लाकृष्णं योगज्ञस्य त्रिरूपमितरेषाम् ।
तत्तद् विपाकसदृशा व्यज्यन्ते वासनाः पुनश्चापि ।।
अपि जातिदेशकालैर्व्यवधानजुषामन्तरत्वं स्यात् ।
तासां तु वासनानां स्मृतिसंस्कारैरेकतो परोपकारात् ।।
एवं चानादित्वं प्रभवति सर्वाशिषामनादित्वात् ।।[3]

कारिकाओं की रचनाओं में कुछ स्थलों पर योगसूत्रों पर व्यास भाष्य का आश्रय है । भाष्य और कारिकाओं की तुलना करने से इस कथन की पुष्टि होती है । योगदर्शन के "ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च"[4] सूत्र के 'प्रत्यक् चेतनाधिगमः' शब्द का अर्थ व्यास भाष्य के अनुसार 'स्वरूपदर्शनमप्यस्य' भवति है । इस अर्थ का अनुकरण करते हुये व्यास जी ने :—

भवति स्वरूपदर्शनमथ विरहोऽप्यन्तरायाणाम् ।[5]

कारिका की रचना की है । "स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात्[6]" सूत्र का व्यास भाष्य इस प्रकार है—

स्थानिनो देवाः......स्थानैरुपनिमन्त्र्यन्ते भो आस्यतामिह रम्यताम् । कमनीयोऽयं भोगः कमनीयेयं कन्या रसायनमिदं जरामृत्युं बाधते वैहायसमिदं यानममी कल्पद्रुमाः पुण्या मन्दाकिनी सिद्धा महर्षय उत्तमा अनुकूला अप्सरसो दिव्ये

१. 'पातंजलप्रतिबम्बि' विभूतिपाद कारिका ३२-३४ ।
२. 'पातंजलयोगसूत्र' कैवल्यपाद सूत्र ७-१० ।
३. 'पातंजलप्रतिबिम्ब' कैवल्यपाद कारिका ४-६ ।
४. 'पातंजलयोगसूत्र' समाधिपाद सूत्र २६ ।
५. 'पातंजलप्रतिबिम्ब' समाधिपाद कारिका १८ ।
६. 'पातंजलयोगसूत्र' विभूतिपाद सूत्र ५१ ।

श्रोत्रचक्षुषी...एवमभिधीयमानः संगदोषान् भावयेद् घोरेषु संसारांगेषु......संगमकृत्वा स्मयमपि न कुर्याद्......एवमस्य संगस्मयावकुर्वतोऽभावितोऽर्थो दृढीभविष्यति । भावनीयश्चार्थोऽभिमुखीभविष्यतीति ।

इन भावों को व्यास जी ने निम्नलिखित करिकाओं में निबद्ध किया :—

विहर स्वाहाररम्ये कामं कमनीयकामिनी रमय ।
यानं सानन्दमहो उपविष्टो याहि नन्दनोद्यानम् ।।
मधुरमभिहन्यमानैरंगीकृतसंगमुत मृदंगैश्च ।
बहुविधमूर्छनभंगीसहितं संगीतमाकलय ।।
आमन्त्रितो देवैरेवं तस्मिन्नकृतसंगः ।
खर्वमपि पुनर्गर्वं न वहेच्चेत् सर्वविद् योगी ।
भावितमर्थं द्रढयति करोत्यभिमुखं च भावनीयार्थम् ।।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ की रचना में व्यास जी की कोई नवीन देन नहीं है । ग्रन्थ के आरम्भ करने से पूर्व वे लिखते हैं कि उनका यह प्रबन्ध योग-दर्शन पढ़ने की इच्छा करने वालों के अभ्यास की सरलता के लिये है[2]। किन्तु इन कारिकाओं द्वारा योगदर्शन का भाव सरल नहीं होता । इन कारिकाओं में कुछ स्थानों पर क्रियाओं का प्रयोग करने और कुछ स्थानों पर व्यास-भाष्य की व्याख्याओं को समाविष्ट करने के अतिरिक्त अन्य कोई सरलता लक्षित नहीं होती । अनेक स्थलों पर तो संज्ञाओं को उद्धृत करते हुये आदि का प्रयोग होने तथा अन्य स्थलों पर कुछ सूत्रों के भावों का सर्वथा समावेश न होने से काठिन्य भी उत्पन्न हो गया है ।[3]

---

१. 'पातंजलप्रतिबिम्ब' विभूतिपाद कारिका ३४-३७ ।

२. रचयामि यथा सुकरः स्यादभ्यासः पिपठिषूणाम् । पातंजलप्रतिबिम्ब प्रारम्भ में-२ ।

३. श्रद्धावीर्यसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् (पातंजलयोगसूत्र समाधिपाद सूत्र—२०) सूत्र की पांचों संज्ञाओं का कथन न करके कारिका में श्रद्धावीर्यस्मृत्यादिपूर्वको भवति (पा० प्र०स० पाद कारिका १२), शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी (पा०यो०वि०पाद सूत्र १४) सूत्र की तीनों संज्ञाओं को न कह कर कारिका में शान्तादित्रिकमन्वितः (पा०प्र०वि०पाद का० ९), स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद् भूतजयः (पा०यो० वि० पाद सूत्र ४४) सूत्र की पांचों संज्ञाओं का परिगणन न करके कारिका में स्थूलादिपंचरूपेषु (पा०प्र०वि०पाद कारिका २९), ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्वसंयमादिन्द्रियजयः (पा०योग० वि०पाद सूत्र ४७)सूत्र की भी पांचों संज्ञाओं का कथन न करके ग्रहणादिकसंयमात् (पा०प्र०वि०पाद कारिका ३२) पाठ करते हुये आदि शब्दों का प्रयोग कर दिया गया है । इसी प्रकार से प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्, ततो द्वन्द्वानभिघातः, ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम् (पा०यो०सा०पाद सूत्र ४७,४८ और ५५) तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात्, न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् (पा०यो०वि०

यह स्पष्ट है कि विषय-वस्तु की दृष्टि से अथवा व्याख्या द्वारा सुगमबोधत्व की दृष्टि से 'पातंजलप्रतिबिम्ब' में किसी प्रकार की नवीनता अथवा मौलिकता नहीं है। इन कारिकाओं को पातंजलयोगसूत्रों की टीकाओं के बिना समझना, मूल के समझने के सदृश ही है। इतना अवश्य है कि छन्दोबद्ध होने के कारण सूत्रों की अपेक्षा कारिकाओं को कण्ठस्थ करना सरल हो सकता है।

४. दुःखद्रुमकुठार

व्यास जी के अनुज गोविन्दराम का १८ वर्ष की अल्पायु में ही सम्वत् १९४० में स्वर्गवास हो गया था। अनुज की मृत्यु से विह्वल होकर वे बहुत समय तक अकेले ही बैठे रहते थे। इस दुःखावस्था में आपने सम्वत् १९४२ में 'दुःखद्रुमकुठार' नामक पुस्तक की रचना की। सम्वत् १९४२ में ही श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र भी दिवंगत हुये थे। अतः इस पुस्तक में निबद्ध भावनाओं में उनके दिवंगत होने की वेदना का प्रतिबिम्ब भी संभावित है।

'दुःखद्रुमकुठार' को एक दार्शनिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लिखे गये विचारात्मक निबन्ध की संज्ञा दी जा सकती है, जो कवि के गहन-दुःख-अनुभूति-जन्य भावों से अनुप्राणित हुआ है। प्रिय अनुज के देहावसान से व्यथित व्यास जी ने मनुष्य-जीवन के सम्पूर्ण अंगों में दुःख की छाया का अनुभव करते हुये उस दुःख को दूर करने के उपाय का उन्मीलन किया। गम्भीर अध्ययन और मनन से लिखा गया यह निबन्ध उनकी वैयक्तिक अनुभूति का परिणाम है। यद्यपि इस निबन्ध के भाव और विषय संस्कृत साहित्य में अन्यत्र भी उपलब्ध होते हैं, तथापि इस प्रकार से भावात्मक रूप से इनको एक विशिष्ट पद्धति में संयोजित करके कवि ने अपने कवि-कौशल का भी परिचय दिया। भारतीय दर्शन स्वाभाविक रूप से इस तत्व की व्याख्या करते हैं कि यह जीवन कष्टों से भरा हुआ है और किस प्रकार से इन कष्टों से मुक्ति प्राप्त की जा सकती है।[1] व्यास जी ने भी इस पुस्तक में यही भाव व्यक्त किया है

पाद सूत्र १०, २०), और न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् (पा०यो०वि० कै०पाद सूत्र १६) की भाव-व्यंजिका कारिकायें इस पातंजलप्रतिबिम्ब में उपलब्ध नहीं होतीं।

१. (क) दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दुःखे सा पार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्॥ सांख्यकारिका'—१।

(ख) Indian philosophy is branded as pessimistic. Life abounds in suffering. Pain is the invariable accompaniment embodied life. Sansar is a beginningless series of births and deaths which are painful......So Indian philosophy is characterized by initial pessimism and ultimate optimism.

जे एन० सिन्हा, एम० ए०, पी० एच० डी० कृत 'ए हिस्ट्री आफ इन्डियन फिलॉसाफी' वाल्यूम १ (१९५६) पृ० २२३-२२४।

कि जीव माता के गर्भ में आने से लेकर मृत्यु पर्यन्त दुःखों को ही भोगता है और मृत्यु के उपरान्त भी उसे कष्ट ही सहने पड़ते हैं। इसका एकमात्र उपाय भगवान् का भजन करना है।

भारतीय दार्शनिक परम्परा के अनुसार जीवन की दुःखपूर्ण, निराशाजनक और करुणापूर्ण दशा को अभिव्यक्त करने वाले इस निबन्ध के भावों का यत् किंचित् सादृश्य अंग्रेजी साहित्य की (elegy) नामक विधा में प्राप्त होता है। ग्रीक साहित्य के प्रभाव से अंग्रेजी में शोकगीत लिखने की परम्परा सोलहवीं शताब्दी में प्रचलित हो चुकी थी। ये शोकगीत किसी आत्मीय या प्रियजन की मृत्यु की दुःखानुभूतियों अथवा सामान्यतया नश्वरता की करुण भावना की अभिव्यक्ति के रूप में स्फुटित होते हैं।[1] व्यास जी के समय में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति स्थापित हो जाने से इस प्रकार की कुछ रचनायें पाठ्यक्रमों में निर्धारित की जा चुकीं थीं। इनमें टामस ग्रे का 'एलिजी रिटन इन ए कन्ट्री चर्च यार्ड' बहुत प्रसिद्ध था। किन्तु इन पद्यात्मक शोकगीतों में जीवन की तरुण भावनाओं की ही अभिव्यक्ति है, जब कि व्यास जी ने 'दुःखद्रुम-कुठार' में तरुण भावनाओं के प्रदर्शन के साथ ही भारतीय दार्शनिक परम्परा के अनुसार दुःखों से निवृत्ति के उपायों का भी कथन किया है।

इस निबन्ध की विषय-वस्तु दो भागों में विभाजित है। प्रथम भाग में जीव की लौकिक दुःखानुभूतियों का वर्णन और दूसरे भाग में इनको दूर करने का उपाय है। विष्णु की भक्ति से ही इन दुःखों की निवृत्ति हो सकती है। निबन्ध के अन्त में "श्रीकृष्णः शरणं मम" यह शरणागति स्तोत्र है। निबन्ध की विषय-वस्तु संक्षेप से इस प्रकार है—

माता के गर्भ में आकर जीव नाना प्रकार की पीड़ाओं का अनुभव करता हुआ व्यतीत हुये सहस्रों जन्मों में किये गये कर्मों का स्मरण करके विकल होता है। तीव्र कष्टों से मानों अचेतन सा हुआ वह नियत समय पर गर्भ से बाहर आकर भी कष्ट को ही भोगता है। बाल्यावस्था में अन्नप्राशन, कर्णच्छेद, चूड़ाकर्म आदि की

(ग) That every system, pro-vedic or anti-vedic, is moved to speculation by a spiritual disquiet at the sight of the evils that cast a gloom over life in this world.

सतीशचन्द्र चटर्जी और धीरेन्द्रनाथ दत्त कृत 'एन इन्ट्राडक्शन टु इन्डियन फिलॉसाफी' (पंचम संस्करण) पृ० १३।

१. Elegy—a short poem of lamentation or regret, called forth by the death of a beloved or revered person or by a general sense of pathos or mortality.

'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' वाल्यूम ८ (१९५७) पृ० ३४३।

बिडम्बनाओं से उसे अनेक कष्ट प्राप्त होते हैं। किसी प्रकार घिसटते हुये कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् खिलौनों को ही अपना सर्वस्व समझते हुए उनका विद्याध्ययन का समय आता है और क्रीडासक्त होता हुआ वह माता और पिता से भर्त्सित और दण्डित होता है। अनेक कष्टों का अनुभव करते हुये उसका यौवन से प्रथम सम्पर्क होता है, उसके हृदय में काम का विकार उत्पन्न होता है और स्त्री-सौन्दर्य से आकर्षित होते हुये उसे किसी भी प्रकार की शान्ति प्राप्त नहीं होती। यौवन-जनित अभिलाषाओं से आक्रान्त होकर वह सैकड़ों संकल्पों और काम आदि षड्रिपुओं से पीडित किया जाता हुआ किसी विलक्षण कामज्वर से दग्ध होकर दिनों को व्यतीत करता है।

अब किसी प्रकार उसे नवोढा पत्नी प्राप्त होती है। उसके प्रणय- प्रसंग में वह अन्य सभी की अवहेलना करता हुआ और मांस आदि के विकार से युक्त शरीर में विलक्षण सौन्दर्य का दर्शन करता हुआ चिरकाल तक विषयों के मोह में फँसा रहता है। इतना ही नहीं, वह काम के वश होकर परकीया बालाओं के साथ विहार करके अपनी परिणीता पत्नी के प्रति अपराध करता है और उसके द्वारा तिरस्कृत होकर किसी विलक्षण देहदाह का अनुभव करता है। यदि कभी किसी कारण वह अपनी प्रेयसी से वियुक्त होता है, तो अचिकित्स्य विरहरूप महाज्वर से ग्रस्त होकर संतप्त होता हुआ स्त्री के ध्यान में ही समय बिताता है। चिरकाल तक क्लेश सहन करने के पश्चात् सुन्दरी से संगत होकर भी पुनः सन्तान प्राप्ति के लिये विषाद का अनुभव करता है और सन्तान को प्राप्त करके भी उसके दुःखों से दुःखी होता रहता है।

यह जीव अपने जीवन-काल में रोग आदि दुःखों से दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत करता हुआ वृद्ध होकर इन्द्रियों से अशक्त होने लगता है, किन्तु उसकी विषय-तृष्णा और अधिक बढ़ जाती है। धीरे धीरे उसकी शक्तियां क्षीण हो जाती हैं और मरण समय उपस्थित होने पर अपने स्त्री पुत्र आदि की चिन्ता से शोकग्रस्त होता हुआ वह मूर्च्छित होता है। संज्ञा को प्राप्त करके भी इनकी शोकभावनाओं में फँसा स्पन्दन-शून्य होकर 'शव' इस भयंकर नाम को धारण करता है और लिंग-शरीर-मात्र के साथ कर्म को भोगने के लिए स्थूल शरीर का परित्याग कर देता है। अपने कर्मों के अनुसार वह पुनः जन्म को ग्रहण करता है, नरक अथवा स्वर्ग में जाता है। स्वर्ग जाने पर भी उसे सुख-शान्ति प्राप्त नहीं होती। यह दुःखद्रुम अपनी शाखाओं में उसे सर्वदा उलझाये रहता है।

इन कारणों से यदि जीव अपने नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव को और सांसारिक पदार्थों, दुर्वासनाओं तथा ऐश्वर्य आदि की निस्सारता को समझ कर संसार से विरक्त होकर निर्विकल्प ब्रह्म का ध्यान करता है, तो वह जीवित अवस्था में ही

इन दुःखों से मुक्त हो जाता है। यह मार्ग यद्यपि असम्भव नहीं, तथापि कठिन अवश्य है। निराकार परम पुरुष का ध्यान सरल नहीं है। बहुत से दण्डी, मुण्डी, जटी और कूर्चा विभिन्न चिह्नों को धारण किये, विभिन्न साधनों का अभ्यास करते हुये 'मैंने ब्रह्म को प्राप्त कर लिया है, मैं मुक्त हो गया हूँ', इस प्रकार मिथ्यारोप द्वारा सन्यास के भार को धारण करते हुये इस दुःखद्रुम पर गिर कर नई नई यन्त्रणाओं को भोगते हैं। इसी प्रकार से अपने को वेदान्ती और नैयायिक कहने वाले व्यक्ति भी इस दुःखद्रुम के मोह की विषाक्त गन्ध को प्राप्त करते हैं। अतः जो व्यक्ति अपनी अकिंचित्करता और इस दुःखद्रुम की दुश्छेद्यता को जान कर नारायण, केशव, परमेश्वर, विष्णु आदि नामों से कहे जाने वाले परमेश्वर की पूर्णतया शरण में जाता है, भगवान् के प्रसन्न होने पर उसे क्या नहीं प्राप्त होता?

भक्ति का यह विलक्षण मार्ग योगियों का परम-सम्मत है। कृष्ण ने अर्जुन को यही उपदेश दिया था। शंकराचार्य ने जगन्मिथ्या स्वसाधनरूप मुद्रा से नास्तिकों के मत का खण्डन करके "सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम्। समुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तरंगः"[1] इस स्वकोय व्यवहार द्वारा इसका ही प्रतिपादन किया था। वज्र नास्तिक भी आपत्ति में पड़ा हुआ भगवान की ही शरण लेता है। अतः यह भक्ति-मार्ग ही सर्वथा आदरणीय और आचरणीय है। इस रसना से दामोदर का ही कीर्तन करना चाहिये। मैं कौन हूं? क्या हूं? मेरा क्या है? इस प्रकार का भाव उत्पन्न होने पर साक्षात् ब्रह्मज्ञान सम्पादित करने वाली परमानुराग रूप भक्ति से जीव जीवित रहते हुये भी सब दुःखों से मुक्त हो जाता है। अतः भगवान् का भजन ही जीवन को सफल करने वाला और इस दुःखद्रुम का कुठार है।

इस पुस्तक में व्यास जी की जीवन के प्रति गहरी निराशा और निरासक्ति अभिव्यक्त होती है। जीवन के आनन्द के क्षणों में भी उनको वेदना का अनुभव होता है और प्रेयसी के सौन्दर्य में भी बीभत्सता के दर्शन होते हैं। निम्न पंक्तियां उनकी इस भावना को व्यक्त करती हैं—

वनितायाः निष्ठ्यूतनिधानमप्यधरं सुखाधारत्वेन, मांसग्रथनकठिनावपि कुचौ पीयूषकुम्भत्वेन, ताम्बूलचर्वितचर्चितास्थिखण्डानपि दन्तान् दाडिमीबीजत्वेन, निगारोद्गारनलिकायमानमपि कण्ठं दिव्यशंखत्वेन, दूषिकादूषिते अपि नेत्रे कमलकोरकत्वेन, सप्तच्छिद्रीच्छिद्रीकृतमपि वदनमिन्दुमण्डलत्वेन, सकलमलपिटकमप्युदरं सुन्दरतामन्दिरत्वेन, अस्थिपटलमपि पृष्ठं सुवर्णकदलीदलत्वेन, मांसावटमपि नाभिममृतवापीत्वेन, धमनीनद्धास्थिदण्डावपि च पादौ कल्पपादपशाखात्वेनाधिकं वर्णयन्।[2]

१: 'दुःखद्रुमकुठार' पृ० १६।

२. 'दुःखद्रुमकुठार' पृ० ६।

मरण का समय उपस्थित होने पर जीव जिन मानसिक भावनाओं से अभिभूत होता है, उनका करुण चित्रण उपस्थित करते हुये व्यास जी ने मृत्यु की भयंकरता का चित्रण इस प्रकार किया है—

तावदेव च रिंगदनेकतरंगभंगी विकटैः प्राणादिवायुभिः कण्ठनालिकां कर्तयद्भिरिवोर्द्धैः श्वासप्रश्वासैः खण्डप्रलयताण्डवमिव नटन्तीभिर्धमनीभिर्घुर्घुरायितैः कफैः जलीभवद्भी रुधिरैः शिथिलीभवद्भिर्मांसपटलैः च्योतन्तीभिस्त्वग्भिश्च युगपदेव वृश्चिककोटिभिरिव दष्टो महनिद्रासंज्ञां परां मूर्छामुपयाति, कियत्समयानन्तरमेव च शरीरं सकलस्पन्दनशून्यं भवति यद् भयंकरं शवपदेनाभिधीयते ।[1]

जीवन की इस निराशा में कवि ने ईश्वर के भजन को ही परम आधार स्वीकार किया है। मनुष्य के जीवन में परमेश्वर के अतिरिक्त कोई शरण नहीं है—

यस्तु पौर्वापर्येण सर्वमेतद् विचिन्त्य ऊरीकृत्य च स्वकीयामकिंचित्करतां दुःखद्रुमस्य दुश्छेद्यतां च अतितमां व्याकुलहृदयः शरणान्तरमलभमानः स तु परमेश्वरः करुणावरुणालयः सर्वास्त्येव सर्वं शृणोत्येवेति किं न चक्रवर्त्तिचक्रवर्तिनं पितॄणामपि पितामहं जगत्कर्तारं शरणं व्रजामि तस्मिंश्च श्रीकेतने भगवति प्रसन्ने कि नाम अलभ्यं स्याद्, इति निश्चित्य अश्रुकलाकुलितलोचनः कण्टकितांगो द्रवितचित्तो नारायण परमेश्वर जगदीश्वर परमात्मन् विष्णो वैकुण्ठ केशव माधव गोविन्द मुकुन्द पुण्डरीकाक्ष मधुसूदन गरुडध्वज पीताम्बर अच्युत जनार्दन सुरमर्दन पाहि पाहि शरणगतोऽहं छिन्दि च्छिन्दि दुःखद्रुममेतम् इत्यार्त्तस्वरेण क्रन्दन्निवोच्चैः परमपुरुषमेवोपतिष्ठते तस्य तु तस्मिन् जगन्नियन्तरि प्रसन्ने किं नाम स्यादलभनीयमजरणीयमपरिहरणीयमननुभवनीयं च ।[2]

भक्ति के इस विलक्षण मार्ग की प्राचीन शास्त्रों के प्रमाणों से पुष्टि की गई है और भगवद्गीता में भगवान कृष्ण का अर्जुन के प्रति उपदेश मुख्य प्रमाण के रूप में उपस्थित किया गया है।[3]

---

१. 'दुःखद्रुमकुठार' पृ० ११।

२. 'दुःखद्रुमकुठार' पृ० १५-१६।

३. (क) 'दुःखद्रुमकुठार' पृ० १६।

(ख) व्यास जी का यह कथन 'भगवद्गीता' के निम्न श्लोकों के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है—

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ।
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि भारत ॥'भगवद्गीता' अ० १८,६४-६६ ।

दुःखद्रुमकुठार की भाषा प्रवाहपूर्ण और अलंकृत है। स्थान स्थान पर व्यास जी ने इसमें अनुप्रास आदि शब्दालंकारों और उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अर्थालंकारों का सन्निवेश किया है। निम्नलिखित पदों से भाषा की यह अलंकृतता प्रकट होती है—

तदास्यचन्द्रोऽप्यग्निकुण्डीयति, चन्द्रिकापि विषवर्षीयति, चन्दनचर्चनमपि भ्राष्ट्रलेपीयति, आवासोऽपि काननीयति, हारोऽपि लेलिहानीयति, संगीतमपि कर्णशूलीयति किमतः परं यज्जीवनमपि मरणीयति।[1]

इस ग्रन्थ की भाषा साधारणतः सरल और सुबोध है, किन्तु अनेकों स्थलों पर दीर्घ वाक्य-रचना के कारण अन्वय लगाने में कठिनाई होती है। समष्टि रूप से इस प्रयोग के द्वारा व्यास जी ने संस्कृत साहित्य में विचारात्मक निबन्धों की एक नवीन साहित्यिक विधा का सूत्रपात किया। मानव जीवन में व्याप्त दुःखों की भावनाओं के द्वारा उन्होंने अपने सहृदय व्यक्तित्व को लेकर मार्मिक भावव्यंजना उपस्थित की। इसकी अभिव्यंजना प्रणाली भी अपनी नवीन साहित्यिक विधा के अनुरूप उनकी अन्य काव्यकृतियों से सर्वथा भिन्न सहजबोधगम्य और व्यावहारिक है।

५. अवतारमीमांसा-कारिका

व्यास जी की यह रचना स्वतन्त्र पुस्तक के रूप में न होकर 'अवतारमीमांसा' नामक हिन्दी पुस्तक का एक भाग है। अव्यक्त और अनादि परब्रह्म विशेष अवसरों पर पांचभौतिक शरीर धारण करके पृथिवीतल पर अवतीर्ण होते हैं, इस तथ्य की सिद्धि के लिये व्यास जी ने इस ग्रन्थ की रचना की। 'अवतारमीमांसा' पुस्तक की रचना की प्रेरणा आपको बल्लभ सम्प्रदाय के आचार्य जीवनलाल के साथ पंजाब तथा सिन्ध में धर्म प्रचार करते हुये मिली थी।[2] इस ग्रन्थ को भी आपने जीवनलाल जी को भेंट किया था। 'अवतारमीमांसा' की विषय-वस्तु को आपने छात्रों के उपयोग के लिए संस्कृत कारिकाओं के रूप में निबद्ध किया। जिन तत्वों का प्रकाशन 'अवतारमीमाँसा' में है, उन्हीं तत्वों को संक्षेप से 'अवतारमीमांसा कारिका' में श्लोकरूप में लिखा गया है।

'अवतारमीमांसाकारिका' अनुष्टुप् छन्द में लिखे गये २६१ श्लोकों में है। इसके दो भाग हैं— पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में १-११३ पद्य और उत्तरार्द्ध में ११४-२६१ पद्य हैं। भगवान् के अवतरण के सम्बन्ध में व्यास जी से जो शंकायें की जाती होंगी, उन शंकाओं को व्यास जी ने ८ प्रश्नों के रूप में विभक्त करके पूर्वार्द्ध में उनका उत्तर दिया है और उत्तरार्द्ध में अवतार के विषय में अन्य शंकाओं को सुलझाने का प्रयत्न किया है। पूर्वार्द्ध में प्रथम पाँच प्रश्नों और उनके उत्तरों तक के भाग को प्रथमो विचारः, द्वितीयो विचारः, तृतीयो विचारः, चतुर्थो विचारः और पंचमो विचारः, इस प्रकार विचारों में विभक्त किया है। तदनन्तर कोई विचार-विभाग नहीं है।

---

१. 'दुःखद्रुमकुठार' पृ० १७।

२. 'अवतारमीमांसा' पृ० ६६।

पूर्वार्द्ध में सर्वशक्तिमान् परमात्मा के अवतारधारण की आवश्यकता और प्रमाण आदि पर निम्न प्रकार से आठ प्रश्न हैं—

(१) सर्वशक्तिमान् परमात्मा को अवतार धारण करने की आवश्यकता क्या है ?[1]

(२) परमात्मा अल्प परिमाण में कैसे हो सकता है ?[2]

(३) अलौकिक लीला विशिष्ट परमात्मा की मानव-लीला शोभित नहीं ।[3]

(४) भगवान् को तिर्यक् योनियों में अवतार लेना शोभा नहीं देता ।[4]

(५) रामादि अवतारों में जीव से अधिक प्रताप क्या है ?[5]

(६) पूर्णावतार और अंशावतार में क्या भेद है ?[6]

(७) अवतारों के शरीर दिव्य हैं या पांचभौतिक ?[7]

(८) अवतार ग्रहण करने में प्रमाण क्या है ?[8]

इन प्रश्नों के उचित उत्तर व्यास जी ने दिये हैं। यहां विस्तार में न जाते हुये प्रथम प्रश्न का उत्तर उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

भगवान् मुख्य रूप से अपनी लीला प्रकट करने के लिये अवतार लेते हैं। इस प्रयोजन के प्रधान होने पर भी अवतार-धारण के तीन प्रयोजन हैं—दुष्टों का दमन करके सज्जनों की रक्षा करना, धर्म की रक्षा करके जगत् का मंगल करना और लीलाओं का माधुर्य प्रसारित करना।[9] वे सगुण लीलाओं द्वारा उस युग के सज्जनों को प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं और भविष्यत् काल में होने वाले सज्जनों का सौकर्य-साधन करते हैं।

उत्तरार्द्ध में अवतारों के चरित्रों के विषय में होने वाली शंकाओं (यथा-सीता के वियोग से रामचन्द्र जी का विकल होना, कृष्ण का बन्धन होना[10], भगवान् के ही अवतारभूत राम और परशुराम में विवाद होना,[11] राम द्वारा सीता का निर्वासन आदि अनुचित कार्य[12] और कृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र हरण करना[13] इत्यादि) का समाधान है।

१.	'अवतारकारिका'	का०स० ६।	२.	'अवतारकारिका'	का० स० २६।
३.	,,	का० स० ३६।	४.	,,	का० स० ५८।
५.	,,	का० स० ५६।	६.	,,	का० स० ७१-७२।
७.	,,	का० स० ८३।	८.	,,	का० स० ६४।
६.	,,	का० स० १६-१७।	१०.	,,	का० स० ११६।
११.	,,	का० स० १३२।	१२.	,,	का० स० १४२।
१३.	,,	का० स० १६०।			

इस प्रकार पुस्तक से व्यास जी के पुराण-प्रतिपादित अवतारवाद के प्रति गहन निष्ठा और दृढ़ विश्वास अभिव्यक्त होते हैं। आपने वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों और पुराणों के प्रमाणों द्वारा अपने मन्तव्य का दृढता के साथ समर्थन किया है। अनुष्टुप् श्लोकों में निबद्ध इस कारिका की भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। साधारणतः इसमें अलंकार आदि की विशेष योजना न होने पर भी कहीं-कहीं शब्दालंकार और अर्थालंकार का चमत्कार है। निम्न पद्य में लीला पद के पुनः पुनः प्रयोग का सुन्दर चमत्कार है—

लीलाप्रियोऽयं भगवान् लीलार्थं कुरुतेऽखिलम्।
लीलारंगालये लीलाः पात्रत्वेनावलम्बते ॥[1]

इसी प्रकार से निम्न पद्य में रूपक अलंकार का ललित प्रयोग है—

एषावतारमीमांसा श्रद्धाविश्वासदायिनी।
कुतर्ककर्तनी शंकापंकसंकष्टशोषिणी ॥[2]

६. प्राकृत विचित्रशब्दार्थकोष

'सामवतम्' नाटक के प्रथम संस्करण के अन्त में व्यास जी ने कुछ प्राकृत-शब्दों के संस्कृत रूपान्तर दिये हैं तथा इस संग्रह को 'प्राकृतविचित्र-शब्दार्थकोष' नाम दिया है। इसका उल्लेख 'सामवतम्' नाटक की प्राकृत की विवेचना में किया जा चुका है।

७. गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

संस्कृत वाक्यों की रचना के व्याकरण के अनेक नियमों से बंधे होने और दुरूह होने से अधिकारी विद्वान् भी अनेक अशुद्धियाँ कर जाते है। वाक्य रचना में व्याकरण की अशुद्धियों को काव्यशास्त्रियों ने च्युतसंस्कृति नामक दोष कहा है। धातुओं में परस्मैपदत्व और आत्मनेपदत्व का होना, शब्दों का लिंगत्व, कारक और विभक्तियों का प्रयोग, वचनों के नियम, सन्धि और समास का उपयोग और प्रत्ययों का लगाना आदि व्याकरण के अनेक इस प्रकार के नियम हैं जिनके प्रयोग में बहुत सावधानी रखने पर भी अशुद्धि हो जानी संभावित है। भाषा की रचना में शुद्धता के महत्व को स्वीकार करते हुये व्यास जी ने इस प्रकार की अशुद्धियों को, जो साधारणः प्रतीत नहीं होती, किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से ही देखने पर प्रतीत होती हैं, इस पुस्तक द्वारा प्रदर्शित करने का उद्योग किया है।

इस पुस्तक के दो भाग हैं— 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' और 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्'। प्रथम भाग में विभिन्न प्रकार की अशुद्धियों से युक्त अनुष्टुप् छन्द के १० श्लोक और

---

१. अवतारिका का० सा० १२।   २. अवतारिका का० स० २५७।

१११ साधारण वाक्य हैं। इन वाक्यों में सन्निहित अशुद्धियां विद्यार्थियों को ढूंढ कर शुद्ध करनी चाहियें। इनका बोध व्याकरण, कोष आदि के परिज्ञान से ही हो सकता है। यथा—

न कोऽपि मित्रस्त्वद् ऋते यो गापयति नारदम्।
त्वमेव प्रीतिपात्रोऽसि मा भैः कस्ते विना वदेत्॥[1]

इस श्लोक में "मित्रः" और "प्रीतिपात्र" में "मित्रं सखा सुहृत्"[2] और "योग्यभाजनयोः पात्रम्"[3] इस अमरकोष के अनुशासन से नपुंसकलिंग आवश्यक होने के कारण "मित्रम्" और "प्रीतिपात्रम्" का प्रयोग होना चाहिये। "भैः" के स्थान पर "भैषीः" का प्रयोग होना चाहिये और विना के योग में "पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्याम्" इस नियम से द्वितीया अथवा तृतीया होकर "ते" के स्थान पर "त्वाम्" अथवा "त्वया" होना चाहिये।

हरिभक्तो भूमिस्थोऽपि वासवं हसति।[4]

इस वाक्य में भूमिस्थ पद में "अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशंक्वंगुमंजिपुंजिपरमेबर्हिर्दिव्यग्निभ्यस्थः"[5] इस नियम से "स्थ" के "स" को "ष" होकर "ष्टुनाष्टुः" से "थ" को "ठ" होकर "भूमिष्ठः" पाठ होना चाहिये।

द्वितीय भाग में व्यास जी ने कुछ कूट श्लोकों को उद्धृत कर संस्कृत भाषा की व्युत्पत्ति का प्रदर्शन किया है। इस प्रकरण में ८० पद्य हैं, जिनके १४ विभाग किये हैं। कर्तृगुप्त, कर्मगुप्त, करणगुप्त, सम्प्रदानगुप्त, अपादानगुप्त, सम्बन्धगुप्त, अधिकरणगुप्त और सम्बोधनगुप्त के उदाहरणभूत पद्यों में तत्तत् विभक्तियां शब्द-जाल में इस प्रकार से छिपी हैं कि उनको खोज निकालना बुद्धि का पूरा व्यायाम है। सन्धिगुप्त, समासगुप्त, लिंगगुप्त, गुप्ताशुद्ध, क्रियागुप्त पद्यों के उदाहरणों में गुप्त रूप से निहित सन्धि आदि को ढूंढने पर ही अन्वित अर्थ का बोध हो सकता है। अन्त में कुछ कूट पद्य हैं जिनकी रचना कवियों ने विशेष प्रकार की ग्रन्थियों को निहित करने के लिये की। इनका बुद्धि से उन्मीलन किये बिना अर्थ की संगति नहीं हो सकती। 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

गौरीनखरसादृश्यश्रद्धया शशिनं दधौ।
इहैव गोप्यते कर्ता वर्षेणापि न लभ्यते॥[6]

---

१. 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' श्लोक ८।
२. 'नामलिंगानुशासनम्' अमरसिंह—द्वितीय-भूम्यादिकाण्ड-क्षत्रियवर्ग-श्लोक सं० १२।
३. 'नामलिंगानुशासनम्'—तृतीय—सामान्यकाण्ड—नानार्थवर्ग—श्लोक सं० १७९।
४. 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' वाक्य संख्या ७०।
५. 'अष्टाध्यायी' ८.३.९७।
६. 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' श्लोक सं० २।

इस पद में कर्ता गुप्त रूप से निहित है, जो इस प्रकार प्रकट होता है— इः कामः तं हन्ति इति इहा शिवः । शिव ने पार्वती के नाखूनों के सादृश्य की श्रद्धा से चन्द्रमा को धारण किया ।

राघवस्य शरैर्घोरैर्घोररावणमाहवे ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं मर्यादा दशवार्षिकी ।।[1]

इस पद में क्रिया गुप्त रूप से निहित है, जो इस प्रकार लक्षित की जा सकती है—राघव हे राम आहवे युद्ध में घोरैः शरैः भयंकर बाणों से घोररावणं भयंकर रावण को स्य मार दो । "राघवस्य" को "राघव" और "स्य" इन पृथक् पृथक् दो पदों में देखने पर "स्य" यह क्रिया स्पष्ट होती है ।

भवित्री रम्भोरु त्रिदशवदनग्लानिरधुना
न रामो मे स्थाता न युधि पुरतो लक्ष्मणसखः ।
इयं यास्यत्युच्चैर्विपदमधुना वानरचमूः
लघिष्ठेदं षष्ठाक्षरपरविलोपात्पठ पुनः ।।[2]

इस पद के प्रथम तीन पादों में रावण द्वारा सीता को धमकी दी गई है है, और इन्हीं तीन पादों के छठे से अगले सप्तम अक्षर के लोप कर देने पर उनके द्वारा सीता का उत्तर भी बन जाता है ।

इस पुस्तक के प्रथम भाग की रचना में व्यास जी का उद्देश्य व्याकरण की दृष्टि से पदों और वाक्यों में अशुद्धि का परिमार्जन करना है । अशुद्ध वाक्यों को शुद्ध करने के अभ्यास द्वारा विद्यार्थियों की प्रवृत्ति शुद्ध भाषा लिखने की ओर हो जाती है । दूसरे भाग में अनेक प्राचीन श्लोक उदाहरण के रूप में देकर संस्कृत शब्दों की क्रीड़ा का प्रदर्शन करते हुये चित्रकाव्य के चमत्कार उपस्थित किये गये हैं ।

८. बाल व्याकरण (Childern's Sanskrit Grammer)

यह पुस्तक विद्यार्थियों को अँग्रेजी माध्यम से संस्कृत-व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान देने का प्रयत्न है । संस्कृत-व्याकरण के नियमों को संक्षेप से समझाने का यह एक प्रयास है । लेखक के समय में यह पुस्तक बिहार सर्किल के जिला स्कूलों की पाठविधि में समाविष्ट की गई थी ।[3]

इस पुस्तक में वर्णमाला का परिचय, सन्धियों के नियम, अनेक शब्दों और धातुओं के रूप, अव्ययों और कृदन्तों के नियम, उपसर्ग आदि व्याकरण के नियमों का सरल और प्रारम्भिक रूप दिया गया है ।

---

१. 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' श्लोक सं० ३९ । २. 'व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्' श्लोक सं० ६२ ।
३. 'बालव्याकरण' की भूमिका से ।

व्यास जी ने इस पुस्तक की रचना द्वारा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से संस्कृत-व्याकरण सीखने की इच्छा करने वालों का वस्तुतः महान् उपकार किया और संस्कृत की महती सेवा की । उनकी इस पुस्तक की सराहना उस युग के अनेक विद्वानों ने की जिनकी सम्मतियाँ पुस्तक के प्रारम्भ में दी गई हैं ।

६. संस्कृत-अभ्यासपुस्तकम् (Practical Sanskrit)

इस पुस्तक द्वारा भी व्यास जी ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम से संस्कृत का अभ्यास कराने का प्रयत्न किया । यह पुस्तक अंग्रेजी की कम्पोजीशन की पुस्तकों के तरीके पर लिखी गई है । इस पुस्तक के दो भाग हैं जिनमें संस्कृत व्याकरण, शब्दों और धातुओं के रूप, वाक्य रचना आदि के नियम बतला कर उनके क्रियात्मक उपयोग का अभ्यास कराया गया है । यह पुस्तक भी बिहार सर्किल के स्कूलों की पाठ-विधि में समाविष्ट की गई थी ।[1]

पुस्तक के प्रथम भाग में ११ पाठ हैं, जिनमें शब्दों और धातुओं के रूप और वाक्य रचना, कारकों के नियम, विशेषण और विशेष्य, उपसर्ग, एवं दैनिक प्रयोग में आने वाले कुछ वाक्य हैं और उनका क्रियात्मक अभ्यास कराया गया है । तदनन्तर आवेदन-पत्रों और दैनिक व्यवहार के पत्रों के कुछ नमूने देकर उनके लिखने का अभ्यास कराया गया है । पुस्तक के अन्त में दो शब्द-तालिकायें हैं, जिनमें संस्कृत शब्दों के अंग्रेजी अर्थ और अंग्रेजी शब्दों के संस्कृत अर्थ दिये गये हैं ।

द्वितीय भाग का स्तर प्रथम भाग की अपेक्षा अधिक उच्च है । इसमें भी शब्दों और धातुओं के रूप, कुछ प्रत्ययों के प्रयोग, वाक्य-रचना, समास आदि का कथन किया गया है । इसके अनन्तर चार अनुक्रमणिकायें हैं, जिनमें धातुओं में उपसर्ग लगाने से होने वाले अर्थ परिवर्तन, ११७ धातुओं के गणों, पदों और लट्, लङ्, लृङ्, लोट् लकार, शतृ, शानच् और क्त प्रत्ययों से बनने वाले रूपों के संकेत और कुछ अनुवाद दिये गये है । इस भाग के अन्त में भी दो शब्द तालिकायें हैं, जिनमें अंग्रेजी शब्दों के संस्कृत अर्थ और संस्कृत शब्दों के अंग्रेजी अर्थ हैं ।

यह पुस्तक अंग्रेजी के माध्यम से संस्कृत का अभ्यास करने वाले विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है । व्यास जी ने इसके द्वारा विद्यार्थियों को संस्कृत का अभ्यास कराने का प्रयत्न किया है और वे इसके द्वारा संस्कृत के प्रयोगों को सरलता से सीख सकते हैं ।

---

१. 'संस्कृत-अभ्यासपुस्तकम्' की भूमिका से ।

१०. कथाकुसुमम्

एन्ट्रेन्स परीक्षा के स्तर पर विद्यार्थियों को संस्कृत की शिक्षा देने के लिये व्यास जी ने प्रथम, द्वितीय और तृतीय इस प्रकार तीन पुस्तकें लिखने की योजना बनाई थी। इनमें प्रथम पुस्तक वाक्य-विचार प्रकाशित नहीं हो सकी थी, तृतीय पुस्तक रत्नाष्टक इस समय प्राप्त नहीं है तथा द्वितीय पुस्तक 'कथाकुसुमम्' विचार के लिये प्रस्तुत है।

'कथाकुसुमम्' में २५ छोटी छोटी शिक्षाप्रद कथायें हैं, जिनकी भाषा सरल और प्रवाहयुक्त है। संस्कृत की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की सुविधा के लिये पहिले चार-पांच पंक्तियों की कथाओं से आरम्भ करके अन्त में चार-पांच पृष्ठ तक की कथायें हैं। अधिकांश कथायें 'ईसप की कहानियों,' 'पंचतन्त्र' और 'हितोपदेश' की कहानियों के आधार पर लिखी गई हैं। प्रत्येक कथा के अन्त में कथा के निष्कर्ष के रूप में प्राप्त होने वाली शिक्षा एक श्लोक में लिख दी गई है।

पुस्तक में शिक्षकों और विद्यार्थियों की सुविधा के लिये पद-टिप्पणी के रूप में कठिन शब्दों के हिन्दी अर्थ दिये गये हैं और पुस्तक के अन्त में एक लम्बी शब्द-तालिका है, जिसमें अकारादि क्रम से शब्दों के अंग्रेजी अर्थ लिखे गये हैं, जिससे इन कथाओं के अंग्रेजी अनुवाद सरलता से किये जा सकें। इसके साथ ही उन शब्दों की व्याख्या और व्युत्पत्ति भी बताई गई है। तदनन्तर व्यास जी के सहयोगी प० महेशदत्त शर्मा द्वारा रचित स्रग्धरा छन्द के २५ श्लोक हैं, और प्रत्येक श्लोक में एक-एक कथा का भाव निवेशित है।

इस पुस्तक की भाषा सरल और ललित है और विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है। निम्नलिखित पदों से इसकी विशेषतायें परिलक्षित होती हैं—

तत्र अतिस्पष्टं सुस्वरं सुमधुरं च भाषणमाकर्ण्य ते सर्वे अतिप्रसन्नाः जाताः। धनिकोऽपि च विश्वासमापन्नः पुनरपृच्छत् तत् किमहं लक्षमेव मुद्रा दद्याम् ? ततः स पुनरुवाच अत्र कः सन्देहः इति। ततस्तु एकेनैव वचनेन प्रश्नद्वयमुत्तीर्णम्, इति चकितः प्रसन्नश्च धनिकः अपरीक्ष्यैव तस्मै लक्षं मुद्रा दत्वा शुकं क्रीतवान्।[1]

———

१. 'कथाकुसुमम्' पृ० ३५-३६।

उपसंहार

व्यास जी की संस्कृत रचनाओं के अध्ययन से उनकी बहुमुखी प्रतिभा और काव्य-निर्माण-शक्ति के गौरव की स्पष्ट झांकी प्राप्त होती है और संस्कृत साहित्य में उनके महत्वपूर्ण स्थान का निर्धारण होता है। उपसंहार के रूप में इस स्थल पर इस तथ्य का पुनः निदर्शन करने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सहृदय के हृदय में जीवन और जगत् की प्रतिक्रिया के रूप में उद्भूत होने वाले भावों और विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति काव्य के रूप में प्रकट होती है। कवि की प्रतिभा के गौरव से यह काव्यरूप अभिव्यक्ति अनेक विधाओं का रूप ग्रहण करती है। कवि की प्रतिभा अपने अन्तर्जगत् की अनुभूतियों और बाह्य जगत् के निरीक्षणों को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली इन विधाओं द्वारा शत शत प्रकार से सुन्दर रूप देने का प्रयास करती है। कवि के ये प्रयास ही साहित्यशास्त्र में साहित्य रूप या काव्यरूप में सहृदय पाठकों के सम्मुख उपस्थित होते हैं। जो कवि जितना प्रतिभाशाली होता है उतने ही अधिक काव्यरूपों के सृजन और निर्वाह में सफलता प्राप्त करता है। इस दृष्टि से व्यास जी का स्थान संस्कृत-साहित्य में बहुत अधिक महत्वपूर्ण है।

व्यास जी ने गद्य और पद्य दोनों में बहुत अधिक लिखा तथा अनेक प्रकार की विधाओं में काव्यों की रचना की। उनके स्वरूप विधान में उन्होंने पर्याप्त सफलता प्राप्त की। यही नहीं प्राचीनकाल से प्रचलित काव्यविधाओं के अतिरिक्त उन्होंने नवीन काव्यरूपों की सर्जना करके उनका सफलता के साथ निर्वाह किया। प्राचीनकाल से संस्कृत के गद्यकाव्यों की परम्परा में कथा और आख्यायिका नामक दो विधाओं का प्रचलन रहा। इन दोनों काव्यविधाओं के भेदक लक्षण भी कुछ स्पष्ट नहीं थे। व्यास जी के युग तक उपन्यास नामक विधा का प्रयोग संस्कृत कवियों के लिये अज्ञात ही रहा। भारतीय साहित्य में इसका प्रयोग प्रथम बंगला भाषा में होकर पुनः प्रायः सभी भारतीय भाषाओं द्वारा ग्रहण कर लिये जाने पर भी संस्कृत कवियों ने इसे अपनाने का प्रयास नहीं किया था। 'शिवराजविजय' की रचना करके व्यास जी ने इस आधुनिक विधा को संस्कृत में बांधने का सफल प्रयास किया। संस्कृत भाषा में इस मनोरम और हृदयाल्हादकरी विधा की आवश्यकता का अनुभव करके इन्होंने संस्कृत कवियों के लिये एक नवीन मार्ग का निदर्शन किया। इस उपन्यास नामक काव्य विधा में से भी आपने ऐतिहासिक उपन्यास नामक विधा को

ग्रहण किया। इसकी रचना के लिये अधिक प्रतिभा और कवि-कौशल की आवश्यकता है।

व्यास जी ने न केवल उपन्यास नामक काव्यविधा को ग्रहण करके एक सफल ऐतिहासिक उपन्यास की रचना की, अपितु इस बात की भी आवश्यकता अनुभव की कि काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से गद्य पर पुनः विचार किया जावे। इस हेतु आपने 'गद्यकाव्य-मीमांसा' की रचना की। इसमें आपने गद्य की विवेचना और भेदों की परिगणना करके गद्यकाव्य के प्राचीन कथा और आख्यायिका भेदों की उपेक्षा करते हुये इसे उपन्यास नाम दिया और इसके असंख्य भेदों को परिगणित किया।

'दुःखद्रुमकुठार' व्यास जी का संस्कृत-साहित्य को एक नूतन विधा प्रदान करने का श्लाघनीय प्रयत्न है। यह काव्य के चमत्कारों से युक्त एक दार्शनिक रचना है। यद्यपि प्राचीन काल के दार्शनिक साहित्य में उच्च कोटि का गद्य उपलब्ध होता है, तथापि दार्शनिक भावों और काव्य के चमत्कारों से पूर्ण विचारात्मक निबन्धों का प्रायः अभाव ही है। इस विचारात्मक निबन्ध से व्यास जी ने संस्कृत के गद्य-साहित्य को समृद्ध किया है।

व्यास जी का स्तोत्र-साहित्य एक अनुपम रचना है। यद्यपि संस्कृत-भाषा में स्तोत्र-साहित्य की रचना प्रचुर परिणाम में हुई, तथापि सम्पूर्ण रामायण की कथा को श्रीराम के विशेषणों द्वारा स्तुति रूप में कहना अद्भुत ही है। इस प्रकार का एक लघु प्रयत्न यद्यपि तुलसीदास की 'विनयपत्रिका' के एक स्तोत्र में उपलब्ध होता है, तथापि संस्कृत में इतना विशद और सुन्दर रूप व्यास जी की ही देन है।

संस्कृत के नाट्य-साहित्य को व्यास जी ने नवीन रूपों से सम्पन्न किया है। आपने 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' के रूप में संवादात्मक रूपक प्रस्तुत किये। यद्यपि संस्कृत नाट्य-साहित्य में अनेकों रूपकों और उपरूपकों के भेदों की परिगणना की गई है, तथापि इन दोनों रूपकों को किसी प्राचीन विधा में नहीं रखा जा सकता। ये रचनायें कवि की केवल मन की उमंगें ही हैं, जिनको अभिनेय रूप दिया गया है। इनमें न तो कथानक ही है और नाहीं अन्य नाटकीय तत्व हैं, तथापि अभिनेय होने से इनको रूपक कहा गया है। 'सामवतम्' के रूप में आपने प्राचीन नाट्यशास्त्र के नियमों के अनुसार नाटक की रचना की है। इस रचना में अधिकांश में नाट्यशास्त्र के नियमों का पालन करते हुये भी कुछ अंशों में आपके द्वारा स्वतन्त्र वृत्ति का आश्रय लिया गया है। इस नाटक द्वारा आपने संगीत की शास्त्रीय पद्धतियों का प्रयोग संस्कृत नाटकों में करके गीतों और नृत्यों द्वारा अभिनय के सौन्दर्य में वृद्धि की है। नाटकीय रचना संविधान में भी आपके द्वारा नवीनताओं का प्रतिपादन किया गया है। इनका संकेत आगे किया जायगा।

काव्य के इन रूपों के अतिरिक्त व्यास जी ने संस्कृत भाषा के अन्य प्रकार के साहित्य को भी समृद्ध किया। 'सांख्यसागरसुधा' और 'पातञ्जलप्रतिबिम्ब' द्वारा आपने सांख्य और योग दर्शन को सरलता से समझाने का प्रयास किया तथा 'अवतारकारिका' के द्वारा ईश्वर के पांचभौतिक अवतारों की सिद्धि की। यद्यपि 'सांख्यसागरसुधा' और 'पातंजलप्रतिबिम्ब' में व्यास जी ने किन्हीं मौलिक विचारों को नहीं रखा तथापि दर्शनशास्त्र में प्रवेश करने के अभिलाषियों की सहायता अवश्य की। साहित्यिक दृष्टि से बालशिक्षा सम्बन्धी रचनायें यद्यपि उच्च कोटि के साहित्य में परिगणित नहीं की जा सकतीं, तथापि उनके द्वारा व्यास जी के कवि रूप के अतिरिक्त अध्यापक रूप के भी दर्शन हो जाते हैं। इन पुस्तकों द्वारा उन्होंने संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के अभिलाषियों की अमूल्य सहायता की है।

साहित्य की विभिन्न विधाओं की रचना की दृष्टि से व्यास जी का स्थान उच्च कोटि का है। संभवतः क्षेमेन्द्र के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा कवि नहीं है जिसने इतनी विभिन्न विधाओं का प्रयोग इतने मौलिक ढंग से अपनी रचनाओं के लिये किया हो। भास, शूद्रक, भवभूति, श्रीहर्ष आदि ने अपने को नाटकों की रचना तक ही सीमित रखा, कालिदास और अश्वघोष ने पद्यकाव्य और रूपकों की ही रचना की, दण्डी ने गद्यकाव्य और काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे, सुबन्धु का केवल एक गद्यकाव्य है तथा बाण की गद्यकाव्य, स्तोत्र और रूपक सम्बन्धी रचनायें प्रसिद्ध हैं। यद्यपि कवि-प्रतिभा की दृष्टि से इन कवियों का स्थान व्यास जी की अपेक्षा उच्च हो सकता है, तथापि काव्यरूपों की विभिन्नताओं की दृष्टि से व्यास जी उनको अतिशयित करते ही हैं।

अनेकविध काव्यविधाओं का प्रयोग करने के अतिरिक्त रचना के संविधान में भी व्यास जी का वैशिष्ट्य प्रकट होता है। प्रत्येक काव्यविधा का एक अपना रचना-संविधान और कला-विधि होती है। महाकवि इस संविधान और कलाविधि के प्रवर्तक होते हैं, जिनको दृष्टि में रख कर काव्यशास्त्री अपने शास्त्र की रचना करते हैं। साधारण कवि इन ही काव्यशास्त्रोक्त नियमों की छाया में अपनी कृतियों का सृजन करते हैं। महाकवि और साधारण कवि में यह भी एक मौलिक अन्तर है। बाल्मीकि, भास, कालिदास आदि कवि इस दृष्टि से महाकवि की कोटि के हैं। उन्होंने किसी काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ का अनुकरण नहीं किया, अपितु काव्यशास्त्र-प्रणेताओं ने उनकी रचनाओं के आधार पर अपने ग्रन्थों का निर्माण किया। इस दृष्टि से व्यास जी को महाकवि कहा जा सकता है। वे प्राचीन शास्त्रों का अन्धानुकरण करने वाले नहीं हैं। जिन मौलिक काव्यविधाओं को आपने ग्रहण किया उनकी रचनाविधि और कला में स्वतन्त्र और मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया।

इस तथ्य को उनकी रचनाओं की विवेचना के प्रसंग में यद्यपि विस्तार से दिखलाया जा चुका है, तथापि यहां भी कुछ संकेत कर देना उपयुक्त है।

'शिवराजविजय' में कथावस्तु के संगठन की प्रक्रिया नितान्त मौलिक ढंग की है। इस उपन्यास का कथानक न तो सर्वथा काल्पनिक भित्ति का आश्रय लिये हुये है और नाहीं इसकी सम्पूर्ण कथा ऐतिहासिक ही है। कवि ने ऐतिहासिक आधार पर कथा का ढांचा खड़ा करके शिवा जी से सम्बन्धित कुछ प्राचीन उपन्यासों में निहित कल्पनाओं को ग्रहण करते हुये अपनी कल्पनाओं को संयोजित किया है। इस कथानक की घटनायें सर्वथा सुसंगठित हैं। प्रत्येक घटना इस प्रकार घटित होती जाती है कि पहिली का प्रभाव दूसरी घटना पर अवश्यंभावी रूप से पड़ता है। प्रथम निश्वास की घटनायें— सौवर्णी का ब्रह्मचारिगुरु के आश्रम में आना, योगी का वृत्तान्त, यवन युवक का वध आदि घटनायें आगे आने वाली घटनाओं के कारण अथवा उद्घाटन के रूप में हैं। काव्य के कथानक से कुछ असम्बद्ध प्रतीत होते हुये भी गौरसिंह और वीरेन्द्रसिंह के वृत्तान्त नायक की फल प्राप्ति में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक सिद्ध होते हैं। वस्तुतः कथानक का सम्पूर्ण घटनाचक्र इस प्रकार से सुसंगठित हैं कि प्रत्येक घटना किसी न किसी रूप में फलप्राप्ति में सहायता करती है। संगठन की दृष्टि से यदि प्राचीन गद्यकाव्यों के साथ इसकी तुलना की जावे तो दण्डी का 'दशकुमारचरित' एक सर्वथा शिथिल संगठनात्मक काव्य है, जिनमें दसों कुमारों के चरित्र-वर्णन एक दूसरे से स्वतन्त्र रहते हुये परस्पर प्रभाव की अपेक्षा नहीं करते। ये घटनायें फल की प्राप्ति में भी विशेष सहायक नहीं हैं। 'वासवदत्ता' की घटनायें यद्यपि अपेक्षाकृत अधिक सुसंगठित हैं, तथापि वासवदत्ता का शिलारूप हो जाना आदि घटनायें केवल कुतूहल-वर्धन के लिये ही हैं। 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' की घटनायें इस दृष्टि से अधिक सुसंगठित हैं।

उपन्यासों की अपेक्षा नाटकों में घटनाओं का संगठन अधिक सुदृढ़ होना चाहिये। इस के निर्वाह का प्रयत्न 'सामवतम्' नाटक में है। एक पुराण-प्रसिद्ध कथा को कल्पनाओं द्वारा नाटकीय रूप देकर व्यास जी ने इस नाटक की रचना की। इसकी सम्पूर्ण घटनायें सामवान् के सामवती रूप में परिवर्तित होकर सुमेधा के साथ विवाह करने रूप फलप्राप्ति में कारण और सहायक हैं। घटना-संगठन की दृष्टि से इस नाटक में कुछ दोष भी हैं। अर्थोपक्षेपकों में प्रयोजित कुछ घटनायें ऐसी हैं जिनके बिना भी नाटकीय कथासूत्र का निर्वाह हो सकता था। यद्यपि कवि ने उनको फल-प्राप्ति के कारणों को उत्पन्न करने वाली घटनाओं के साथ सम्बद्ध करने का प्रयत्न किया है, तथापि वे उसमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं कर सके। नाटक रचना में संगठन प्रक्रिया की दृष्टि से व्यास जी भास, कालिदास, विशाखदत्त और श्रीहर्ष की कला

तक नहीं पहुँच सके जिन्होंने अपने रूपकों में कथावस्तु के संगठन की प्रक्रिया को कहीं भी क्षीण नहीं होने दिया।

काव्य की बाह्य रूपरेखा उसके बाह्य संविधान की रचना करती हैं। प्राचीन संस्कृत काव्यशास्त्र की दृष्टि से गद्यकाव्य के कथा और आख्यायिका दो भेद हैं। इनमें विशेष भेद को स्वीकार न करते हुये भी आचार्यों ने इनके भेदक लक्षण स्पष्ट किये हैं। व्यास जी ने बाह्य-विधान की दृष्टि से अपने उपन्यास की रचना में आख्यायिका के कुछ लक्षणों को ग्रहण करते हुये 'हर्षचरित' की प्रणाली का अनुसरण किया। 'हर्षचरित' के उच्छ्वास रूप विभागों के सदृश इसको निश्वासों में विभक्त किया और उसी के सदृश निश्वास से पूर्व निश्वास के भाव को अभिव्यंजित करने वाले पद्य दिये। रचना विधान में कुछ अन्तर होते हुये भी इस प्रकार का बाह्य संविधान दोनों काव्यों में समान है।

नाटक के बाह्य संविधान में व्यास जी ने प्राचीन नाट्यशास्त्रीय नियमों की परम्परा का निर्वाह करने का यत्न किया है। नान्दी पाठ से प्रारम्भ करके प्रस्तावना, अंकों, दृश्यों, अर्थोपक्षेपकों और भरत वाक्य के द्वारा नाटक के बाह्य रूप की प्रतिष्ठा की गई है। रूपकों का यह बाह्य विधान प्रायः सभी संस्कृत रूपकों में प्राप्त होता है। भास, कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त, हर्ष आदि संस्कृत के सभी प्रसिद्ध नाटककारों की कृतियों में यह परम्परा विद्यमान है। इस दृष्टि से प्राचीन नाटकों के साथ 'सामवतम्' का सादृश्य होने पर भी कुछ स्थलों पर मौलिकता भी है। यह मौलिकता नान्दी, प्रस्तावना, दृश्यविभाजन, अर्थोपक्षेपक और भरतवाक्य सभी के प्रयोगों में कुछ कुछ अंशों में है। इनका निर्देश तत्तत् प्रकरणों में विस्तार के साथ किया जा चुका है।

यदि अभिव्यक्ति के उपादानों की दृष्टि से देखा जावे तो व्यास जी ने एक ऐतिहासिक घटना का आश्रय लेकर और उसमें अपनी कल्पनाओं को संजो कर अपने उपन्यास की कथा को अभिव्यक्त किया। आपने महाकाव्यों की परम्परा से अपने आप को बिलकुल पृथक् नहीं किया। उन परम्पराओं का निर्वाह करते हुये आपने मुख्य कथा के साथ उसको पुष्ट करने वाली अनेक अवान्तर कथाओं का सन्निवेश किया। उन्होंने एक रस को अंगी बना कर अन्य अनेक रसों को अंग रूप में प्रतिष्ठित किया; अलंकार आदि की सम्यक् योजना की; मन्त्रणा, दूतप्रेषण, युद्धगमन, विजय, विप्रलम्भ, शृंगार, विवाह आदि का नियोजन किया; सन्धियों आदि की यथास्थान आयोजना की और नगर, समुद्र, ऋतु, शैल, सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, रात्रि, उद्यान आदि प्रकृति-चित्रणों की विविधता से इसे समृद्ध किया। यद्यपि इन दृष्टियों से व्यास जी का यह उपन्यास प्राचीन गद्य-काव्यों की परम्परा का निर्वाह किये हुये है, तथापि इसकी मूल

प्रकृति अनेक अंशों में उनसे भिन्न भी है। प्राचीन कथाओं की कल्पनाओं में लोकोत्तर तत्वों का आश्रय प्रचुर मात्रा में लिया गया है जिसका 'शिवराजविजय' में प्रायः अभाव है। 'दशकुमारचरित', 'वासवदत्ता' और 'कादम्बरी' की पूर्णतः कल्पित तथा 'हर्षचरित' की अंशतः सत्य और अंशतः कल्पित कथाओं के सदृश 'शिवराजविजय' में भी कल्पनाओं का समावेश पर्याप्त मात्रा में है। किन्तु प्राचीन कल्पनाओं और 'शिवराजविजय' की कल्पनाओं में भेद यह है कि प्राचीन कल्पनायें लोकोत्तर तथा अवास्तविक तत्वों का सहारा लेकर गतिशील होती हैं जब कि 'शिवराजविजय' की कल्पनायें इस लोक में सम्भव हैं।

कथावस्तु के कथन में भी व्यास जी ने प्राचीन परम्परा की अपेक्षा कुछ स्वतन्त्र प्रवृत्ति ग्रहण की। 'दशकुमारचरित' के कुछ प्रारम्भिक तथा अन्तिम भाग को छोड़ कर सम्पूर्ण कथानक पात्रों द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही स्थिति बहुत कुछ 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' की है। 'वासवदत्ता' की कथा अवश्य ही कवि के कथन के रूप में है। 'शिवराजविजय' की अधिकांश कथा कवि के कथन के रूप में है, केवल कुछ अंश पात्रों द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्त के रूप में में कहे गये हैं। कथा को गति देने के लिये व्यास जी ने अनेक अंशों में संवादों का आश्रय लिया। इन संवादों द्वारा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं की अभिव्यक्ति के साथ ही कथा के प्रवाह को भी गति मिलती है।

व्यास जी का 'सामवतम्' नाटक एक लोकोत्तर घटना का आश्रय लेकर निर्मित हुआ है। अभिव्यक्ति के उपादानों की दृष्टि से व्यास जी ने इसमें भी एक मौलिक दिशा का निर्देश किया। इसमें इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य उपादानों का समन्वय करके सुन्दर समन्वयात्मक शैली उपस्थित की। उन्होंने एक ओर जहां प्राचीन रस-पद्धति को महत्व दिया वहां दूसरी ओर आधुनिक संवाद नामक उपादान को प्रमुख तत्व के रूप में प्रतिष्ठित करके कथा-विन्यास की एक मौलिक पद्धति प्रस्तुत की। आधुनिक संवाद-कला के सभी गुणों को रखते हुये भी ये संवाद रसनिष्पत्ति के प्रमुख पोषक तत्व बन गये। इस दृष्टि से उनका यह कवि कर्म अपने पूर्ववर्ती समकक्ष कवियों से अधिक श्लाघनीय है।

व्यास जी के रूपकों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि वे उत्तर-मध्यकालवर्ती नाटकों की भांति पाठोन्मुख होने से बच गये है। उन्होंने मुरारि और राजशेखर के इस दोष से बच कर अपने नाटक को सफल अभिनयात्मक बनाने की चेष्टा की और इस दिशा में उन्हें सफलता भी मिली है। उनके रूपक भास और कालिदास आदि के सदृश अभिनेय हैं।

चरित्र-चित्रण की कला की दृष्टि से व्यास जी अनेक संस्कृत कवियों की अपेक्षा अधिक सफल हैं। आपने दण्डी की अप्रत्यक्ष विधि और बाण की प्रत्यक्ष विधि

का समन्वयात्मक रूप अपने काव्यों में उपस्थित किया। आपके पात्रों में दण्डी के पात्रों की क्रियाशीलता तथा यथार्थवादिता और बाण के पात्रों की आदर्शोन्मुखता है। विविध उपायों से सफलता प्राप्त करने का उद्योग करते हुये भी आपके पात्र स्थापित सामाजिक और नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन करने की चेष्टा नहीं करते। व्यास जी ने 'शिवराजविजय' के पात्रों में जिस चारित्रिक दृढ़ता को अभिव्यंजित किया है वह 'सामवतम्' के पात्रों में व्यक्त नहीं होती। चारित्रिक दृष्टि से अत्यन्त धीर होता हुआ भी नायक सुमेधा राजा के सम्मुख किंकर्तव्यविमूढ और भीरु प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार राजा, अमात्य, पुरोहित और मुनि सभी की चरित्रगत निर्बलता नाटक में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है। इतना होते हुये भी पात्रों द्वारा जिन सामाजिक आदर्शों की उद्भावना करने का उद्योग व्यास जी ने किया है उसमें वे पर्याप्त सफल हैं।

देशकाल की दृष्टि से व्यास जी के उपन्यास और रूपक पर्याप्त सफल हैं। 'शिवराजविजय' में देशकाल की किसी प्रकार की असंगति दृष्टिगोचर नहीं होती और 'सामवतम्' में भी संस्कृत के नाट्य-नियमों के अनुसार स्थान और समय की अन्विति स्थापित करने का उद्योग किया गया है। इन काव्यों में प्रकरण के अनुरूप ग्राम, नगर, राज्य, आदि के वर्णन, प्रकृति-चित्रण और सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, एवं नैतिक मान्यतायें समाविष्ट की गई हैं। व्यास जी का प्रकृति-चित्रण सरस स्वाभाविक और चित्ताकर्षक है। विविध रूपों में वर्णित यह प्रकृति कहीं तो आलम्बन रूप है और कहीं उद्दीपन रूप। नाटक की अपेक्षा उपन्यास में यह प्रकृति-चित्रण अधिक सरस और चमत्कारपूर्ण है। यद्यपि व्यास जी के प्रकृति-चित्रण अपनी निजी विशेषताओं से पूर्ण एवं मौलिक हैं, तथापि अनेक स्थलों पर प्राचीन कवियों के वर्णनों के सादृश्य उपलब्ध हो जाते हैं। इसका कुछ निदर्शन मात्र यहां किया जा रहा है—

व्यास जी ने वसन्त ऋतु के वर्णन में काकली-कलकलों से दिशाओं को व्याप्त किया है, दक्षिण पवन प्रवाहित किया है, आमों में मंजरियाँ विकसित की हैं और विरहियों को जलाया है।[1] इन ही दशाओं का वर्णन दण्डी ने भी वसन्त ऋतु के वर्णन में किया है।[2] 'शिवराजविजय' का सरोवर यदि राजहंस, मल्लिकाक्ष और सारसों से

---

१. काकलीकलकलैर्दिगन्तं बधिरयन्ति। मिलितमलयानिललोला लवंगलता दोलन्ति, माकन्दमंजर्यो मांजुल्यं वमन्ति। ..नितान्तबिरहक्लान्तपरमश्रान्तशून्यस्वान्तकान्तजनज्वालाजटालदावज्वलन-जाज्वल्यमानांगारककदम्बमिव......। 'शिवराजविजय' पृ० ३१८।

२. दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थमन्मथानलमुज्ज्वलयन् काकलीकलकलेन दिक्चक्रवालं वाचालयन् माकन्द .....तिलकेषु कलिकामुपपादयन्...'दशकुमारचरितम्' पृ० ९८-९९।

प्रकृति अनेक अंशों में उनसे भिन्न भी है। प्राचीन कथाओं की कल्पनाओं में लोकोत्तर तत्वों का आश्रय प्रचुर मात्रा में लिया गया है जिसका 'शिवराजविजय' में प्रायः अभाव है। 'दशकुमारचरित', 'वासवदत्ता' और 'कादम्बरी' की पूर्णतः कल्पित तथा 'हर्षचरित' की अंशतः सत्य और अंशतः कल्पित कथाओं के सदृश 'शिवराजविजय' में भी कल्पनाओं का समावेश पर्याप्त मात्रा में है। किन्तु प्राचीन कल्पनाओं और 'शिवराजविजय' की कल्पनाओं में भेद यह है कि प्राचीन कल्पनायें लोकोत्तर तथा अवास्तविक तत्वों का सहारा लेकर गतिशील होती हैं जब कि 'शिवराजविजय' की कल्पनायें इस लोक में सम्भव हैं।

कथावस्तु के कथन में भी व्यास जी ने प्राचीन परम्परा की अपेक्षा कुछ स्वतन्त्र प्रवृत्ति ग्रहण की। 'दशकुमारचरित' के कुछ प्रारम्भिक तथा अन्तिम भाग को छोड़ कर सम्पूर्ण कथानक पात्रों द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्त के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यही स्थिति बहुत कुछ 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' की है। 'वासवदत्ता' की कथा अवश्य ही कवि के कथन के रूप में है। 'शिवराजविजय' की अधिकांश कथा कवि के कथन के रूप में है, केवल कुछ अंश पात्रों द्वारा अपने जीवन-वृत्तान्त के रूप में में कहे गये हैं। कथा को गति देने के लिये व्यास जी ने अनेक अंशों में संवादों का आश्रय लिया। इन संवादों द्वारा पात्रों की चरित्रगत विशेषताओं की अभिव्यक्ति के साथ ही कथा के प्रवाह को भी गति मिलती है।

व्यास जी का 'सामवतम्' नाटक एक लोकोत्तर घटना का आश्रय लेकर निर्मित हुआ है। अभिव्यक्ति के उपादानों की दृष्टि से व्यास जी ने इसमें भी एक मौलिक दिशा का निर्देश किया। इसमें इन्होंने भारतीय और पाश्चात्य उपादानों का समन्वय करके सुन्दर समन्वयात्मक शैली उपस्थित की। उन्होंने एक ओर जहां प्राचीन रस-पद्धति को महत्व दिया वहां दूसरी ओर आधुनिक संवाद नामक उपादान को प्रमुख तत्व के रूप में प्रतिष्ठित करके कथा-विन्यास की एक मौलिक पद्धति प्रस्तुत की। आधुनिक संवाद-कला के सभी गुणों को रखते हुये भी ये संवाद रसनिष्पत्ति के प्रमुख पोषक तत्व बन गये। इस दृष्टि से उनका यह कवि कर्म अपने पूर्ववर्ती समकक्ष कवियों से अधिक श्लाघनीय है।

व्यास जी के रूपकों की एक उल्लेखनीय विशेषता यह भी है कि वे उत्तर-मध्यकालवर्ती नाटकों की भांति पाठोन्मुख होने से बच गये है। उन्होंने मुरारि और राजशेखर के इस दोष से बच कर अपने नाटक को सफल अभिनयात्मक बनाने की चेष्टा की और इस दिशा में उन्हें सफलता भी मिली है। उनके रूपक भास और कालिदास आदि के सदृश अभिनेय हैं।

चरित्र-चित्रण की कला की दृष्टि से व्यास जी अनेक संस्कृत कवियों की अपेक्षा अधिक सफल हैं। आपने दण्डी की अप्रत्यक्ष विधि और बाण की प्रत्यक्ष विधि

का समन्वयात्मक रूप अपने काव्यों में उपस्थित किया। आपके पात्रों में दण्डी के पात्रों की क्रियाशीलता तथा यथार्थवादिता और बाण के पात्रों की आदर्शोन्मुखता है। विविध उपायों से सफलता प्राप्त करने का उद्योग करते हुये भी आपके पात्र स्थापित सामाजिक और नैतिक मर्यादाओं का उल्लंघन करने की चेष्टा नहीं करते। व्यास जी ने 'शिवराजविजय' के पात्रों में जिस चारित्रिक दृढ़ता को अभिव्यंजित किया है वह 'सामवतम्' के पात्रों में व्यक्त नहीं होती। चारित्रिक दृष्टि से अत्यन्त धीर होता हुआ भी नायक सुमेधा राजा के सम्मुख किंकर्तव्यविमूढ और भीरु प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार राजा, अमात्य, पुरोहित और मुनि सभी की चरित्रगत निर्बलता नाटक में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है। इतना होते हुये भी पात्रों द्वारा जिन सामाजिक आदर्शों की उद्भावना करने का उद्योग व्यास जी ने किया है उसमें वे पर्याप्त सफल हैं।

देशकाल की दृष्टि से व्यास जी के उपन्यास और रूपक पर्याप्त सफल हैं। 'शिवराजविजय' में देशकाल की किसी प्रकार की असंगति दृष्टिगोचर नहीं होती और 'सामवतम्' में भी संस्कृत के नाट्य-नियमों के अनुसार स्थान और समय की अन्विति स्थापित करने का उद्योग किया गया है। इन काव्यों में प्रकरण के अनुरूप ग्राम, नगर, राज्य, आदि के वर्णन, प्रकृति-चित्रण और सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, एवं नैतिक मान्यतायें समाविष्ट की गई हैं। व्यास जी का प्रकृति-चित्रण सरस स्वाभाविक और चित्ताकर्षक है। विविध रूपों में वर्णित यह प्रकृति कहीं तो आलम्बन रूप है और कहीं उद्दीपन रूप। नाटक की अपेक्षा उपन्यास में यह प्रकृति-चित्रण अधिक सरस और चमत्कारपूर्ण है। यद्यपि व्यास जी के प्रकृति-चित्रण अपनी निजी विशेषताओं से पूर्ण एवं मौलिक हैं, तथापि अनेक स्थलों पर प्राचीन कवियों के वर्णनों के सादृश्य उपलब्ध हो जाते हैं। इसका कुछ निदर्शन मात्र यहां किया जा रहा है—

व्यास जी ने वसन्त ऋतु के वर्णन में काकली-कलकलों से दिशाओं को व्याप्त किया है, दक्षिण पवन प्रवाहित किया है, आमों में मंजरियाँ विकसित की हैं और विरहियों को जलाया है।[1] इन ही दशाओं का वर्णन दण्डी ने भी वसन्त ऋतु के वर्णन में किया है।[2] 'शिवराजविजय' का सरोवर यदि राजहंस, मल्लिकाक्ष और सारसों से

---

१. काकलीकलकलैर्दिगन्तं बधिरयन्ति। मिलितमलयानिललोला लवंगलता दोलन्ति, माकन्दमंजर्यो मांजुल्यं वमन्ति। ..नितान्तविरहक्लान्तपरमश्रान्तशून्यस्वान्तकान्तजनज्वालाजटालदावज्वलन-जाज्वल्यमानांगारककदम्बमिव......। 'शिवराजविजय' पृ० ३१८।

२. दक्षिणानिलेन वियोगिहृदयस्थमन्मथानलमुज्ज्वलयन् काकलीकलकलेन दिक्चक्रवालं वाचालयन् माकन्द .....तिलकेषु कलिकामुपपादयन्...'दशकुमारचरितम्' पृ० ९८-९९।

अलंकृत है[1] तो इसी प्रकार से 'दशकुमारचरित' का सरोवर भी अलंकृत है।[2] 'वासवदत्ता' का मरीचिमाली[3] और 'हर्षचरित' का अंशुमाली[4] यदि किसी वृत्तान्त का कथन करने की इच्छा से मध्यमलोक में अवतरण करता है तो 'शिवराजविजय' का भास्वान् भी वृत्तान्त को निवेदन करने की इच्छा से समुद्र में प्रवेश करता है।[5] 'वासवदत्ता' की विन्ध्याटवी यदि सिंहों द्वारा विदारित हाथियों के कटों से बिखरे मुक्ताफलों से पूर्ण है[6] तो 'शिवराजविजय' में वर्णित कोंकण प्रदेश की मार्ग की वनभूमि हाथियों के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने वाले सिंहों से भरी हुई है।[7] बाण द्वारा वर्णित विन्ध्याटवी यदि हाथियों, वराहों, महिषों, गैंडों, भालुओं और सिंहों से भरी हुई है[8] तो व्यास जी ने भी वनभूमि को इन पशुओं से भयंकर बनाया है।[9] नैषधीयचरितम्' की कल्पना के आधार[10] पर व्यास जी ने चन्द्रमा की किरणों के स्पर्श से जल को प्रभावित किया है[11] और 'विक्रमांकदेवचरित' के सादृश्य में[12] प्रातःकाल वर्णन में कमलों द्वारा चन्द्रमा का उपहास कराया गया है।[13] व्यास जी ने प्रकृति-चित्रणों में अनेक कवि-प्रसिद्धियों का भी निर्वाह किया।[14]

काव्यों की रचनाविधि की कला में भी व्यास जी ने निपुणता प्रदर्शित की। उपन्यास को प्रारम्भ करने का आपका तरीका प्रभावोत्पादक है। प्राचीन पद्धति से भिन्न होकर आपने सूर्योदय वर्णन के बाद कथावस्तु को इस प्रकार प्रारम्भ किया कि

---

१. 'शिवराजविजय' पृ० १०२।

२. 'दशकुमारचरित' पृ० ४७४।

३. मरीचिमाली वृत्तान्तमिमं कथयितुमिव मध्यमं लोकमवततार। 'वासवदत्ता' पृ० १५०।

४. अत्रान्तरे सरस्वतीवार्तामिव कथयितुं मध्यमलोकमवततार अंशुमाली। 'हर्षचरित' पृ० ३०।

५. समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः भास्वान् चक्षुषामगोचरः संजातः। शिवराजविजय' पृ० ३५-३६।

६. सरभसकेसरिसहस्रखरनखरधाराविदारितमत्तमातंगकुम्भस्थलविगलितस्थूलमुक्ताफलशबलशिखरतया ..। 'वासवदत्ता' पृ० ६५।

७. विकटकरटिकटविपाटनपाटवपूरितसंहननानाम् सिंहानाम्...'शिवराजविजय' पृ० ९५।

८. 'कादम्बरी' पृ० ८१-८३।

९. 'शिवराजविजय' पृ० ९५-९६।

१०. विधुकरपरिरम्भादात्तनिष्यन्दपूर्णैः
शशिदृषदुपक्लृप्तैरालवालैस्तरूणाम्।
'नैषधीयचरितम्' २.६॥

११. उद्यच्चन्द्रकरप्रभावविगलत्सच्चान्द्रकान्तैर्जलैः। 'सामवतम्' ३.१७।

१२. सुधाकरं वार्धकतः क्षपायाः संप्रेक्ष्य मूर्धानमिवानमन्तम्।
तद्विप्लवायैव सरोजिनीनां स्मितोन्मितं पंकजवक्त्रमासीत्। 'विक्रमांकदेवचरितम्' १.३६।

१३. दृष्ट्वा तं चव चन्द्रः कमलविहसितः खेदपाण्डूकृतांगः। 'सामवतम्' ३.७।

१४. प्रेयान् पुण्डरीकलोकस्य, शोकविमोकः कोकलोकस्य। 'शिवराजविजय' पृ० ९५।

सम्पूर्ण रहस्य का भेद उपन्यास के मध्यभाग में खुलता है। कथानक की गति प्राचीन काव्यों के सदृश ही कभी आशा और कभी निराशा के पगों पर पात्रों को चलाती हुई सुखान्त होकर स्थिर अन्त के रूप में समाप्त होती है। इस सम्बन्ध में आपने किसी प्रकार की नाटकीयता निहित नहीं की। यह निष्कर्षभूत उपादान के रूप में स्थिर और सुखद अन्त है। इस उपन्यास में कवि ने कुछ विशिष्ट कलाओं का भी सन्निधान किया। आपने शास्त्रीय संगीत की पद्धति के दो गीत इसमें सन्निविष्ट किये जिनकी परम्परा प्राचीन गद्यकाव्यों में प्रायः उपलब्ध नहीं है। इस प्रकार के गीतों के निवेश में तत्कालीन बंगला उपन्यासों का प्रभाव आप पर पड़ा है। कथा के प्रवाह की दृष्टि से व्यास जी ने अधिकांश में दण्डी का अनुसरण करते हुये वर्णनों की अपेक्षा कथा की गति की ओर अधिक ध्यान दिया। इस दृष्टि से बाण और सुबन्धु जिनका उद्देश्य कथा की गति की अपेक्षा वर्णन करना अधिक रहा, व्यास जी के आदर्श नहीं रहे। यद्यपि आपने वर्णनों की सर्वथा उपेक्षा नहीं की तथापि वे इतने विस्तृत नहीं हैं कि कथा की गति का अवरोध करें। वर्णनात्मक प्रसंग उपस्थित होने पर वे थोड़े से शब्दों में वस्तु का चित्र उपस्थित करके कथा को गति प्रदान कर देते हैं।

नाटकीय रचनाविधि की दृष्टि से 'धर्माधर्मकलकलम्' और 'मित्रालापः' दोनों ही सर्वथा नवीन रूप लिये हुये हैं। इन रूपकों के स्वरूप में संवाद की ही विशेषता है जो गद्यपद्यमय रूप में है। 'सामवतम्' की रचना में व्यास जी ने नाट्यशास्त्रोक्त नियमों का साधारणतः पालन किया है। इस सुखान्त रचना में आधिकारिक कथा के साथ साथ पताका तथा प्रकरी नामक प्रासंगिक कथायें नियोजित हैं। अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और सन्धियों द्वारा इस संयोजन को सुदृढ़ किया गया है। व्यास जी की नाट्य रचनाविधि में शास्त्रीय पद्धति के गीतों और नृत्यों का प्रचुर प्रयोग है। आश्चर्य का विषय है कि प्राचीन काल से ही संगीत की शास्त्रीय पद्धतियों का विकास होने और 'भरतनाट्यशास्त्र' में नृत्यमुद्राओं का विस्तार से उल्लेख किये जाने पर भी प्राचीन संस्कृत रूपकों में इन तत्वों को निवेशित करने की अधिक प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती। व्यास जी ने इनके प्रयोग द्वारा नाटकीय अभिनय के सौन्दर्य में वृद्धि की है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यास जी ने केवल काव्यरूपों का ही विकास नहीं किया, अपितु उनकी कलाविधियों में प्राचीन परम्परा का निर्वाह करने के साथ साथ मौलिक पथ का प्रवर्तन भी किया। इस दृष्टि से संस्कृतसाहित्य के निर्माताओं में, विशेष कर आधुनिक निर्माताओं में उनका विशिष्ट स्थान है।

पहिले कहा जा चुका है कि काव्य सहृदय के हृद्गत भावों और विचारों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। काव्यरूप और उसकी रचनाविधि चाहे कितनी भी

मौलिक एवं कलात्मक क्यों न हो, वह रचना तब तक उत्तम काव्यपद की अधिकारिणी नहीं होती, जब तक उसमें भावों की गरिमा और विचारों की उदात्तता नहीं है। व्यास जी के कवित्व का मूल्यांकन करने के लिये उनकी भावुकता पर भी विचार करना उपयुक्त है। काव्य वास्तव में कवि के भावों और मनोविकारों का सुन्दर दर्पण है। यह जितना निर्मल होता है उतना ही लोकप्रिय होता है। इसकी निर्मलता भावों की निर्मलता और उदात्तता पर आश्रित होती है। जीवन और जगत् की प्रतिक्रिया के रूप में सहृदय कवि के हृदय में उत्पन्न होने वाले मनोविकारों को स्थूल रूप में भाव संज्ञा दी जाती है। साहित्य-शास्त्रियों ने पारिभाषिक रूप से भाव शब्द का जो अर्थ किया है, यहाँ इसे इस रूप में नहीं लिया जा रहा है। ये भाव या मनोविकार दो प्रकार के होते हैं। कुछ शाश्वत और सहृदयसंवादी होते हैं और कुछ क्षणिक तथा उत्तेजकमात्र होते हैं। साहित्यशास्त्र में इन ही को क्रमशः स्थायी भाव तथा संचारी भाव कहा जाता है। स्थायी भाव ही उद्दीप्त होकर विशेष परिस्थितियों में रसदशा को प्राप्त हो जाते हैं। इसीलिये भरत मुनि ने लिखा है "न भावहीनोऽस्ति रसः न रसहीनोऽस्ति भावः"। जो काव्य जितना भावप्रधान होता है उतना ही सरस भी होता है और कवि जितना अधिक भावुक होता है, काव्य उतना ही अधिक भावमय होता है। भावुकता और भावव्यंजना की दृष्टि से व्यास जी का मूल्यांकन उनकी रचनाओं के माध्यम से करना अपेक्षित है।

भावव्यंजना की दृष्टि से व्यास जी ने अपने काव्यों में सफलता प्राप्त की है। आपकी रचनाओं में साधारणीकरण की प्रक्रिया उस सीमा तक होती है कि पाठक और सामाजिक रसनिष्पत्ति की सीमा तक पहुँच कर रस का आस्वादन करने में समर्थ होते हैं। मार्मिक प्रसंगों, रमणीय चित्रों और सरस भावों के द्वारा व्यास जी की भावुकता स्थान स्थान पर अभिव्यक्त हुई है।

व्यास जी का हृदय अत्यन्त संवेदनशील है। सहानुभूति, उदारता, दया, क्षमा आदि वृत्तियों से; हृदय की निर्मलता और पवित्रता से एवं अनुभूति की कोमलता और तीव्रता से उनके काव्य सर्वथा सम्पन्न हैं। भारतदेश, हिन्दूधर्म और हिन्दूजाति की हीनावस्था ने उनके हृदय को पवित्र तथा तीव्र अनुभूति की भावना से भर दिया। इनके उत्थान के लिये उनके हृदय की भावनायें तीव्रता से उद्रिक्त हुई हैं। इस सम्बन्ध में वे किसी सीमा में नहीं बंधते। जन जन के मानस के उद्बोधन के लिये कहीं तो वे उनकी दुर्दशा का करुण वर्णन करते हैं, कहीं शत्रुओं के अत्याचारों का वर्णन करते हैं और कहीं वीर-भावनाओं को उत्तेजित करते हैं। इन अभिव्यक्तियों में वे किसी सीमा को स्वीकार न करते हुये वर्ण्य-विषय में इतने तन्मय हो जाते हैं कि साधारणीकरण की अवस्था प्राप्त हो जाती है। वीरत्व की यह चरमावस्था उनके हृदय में क्षमा और दया का भाव उत्पन्न करती है, जिनका परिचय शिवाजी

द्वारा रहमतखाँ को क्षमा प्रदान करने में मिलता है ।

शृंगार-रस की उद्भावनाओं में भी व्यास जी की भावुकता कम नहीं है । यह संयोग और विप्रलम्भ दोनों में है । 'शिवराजविजय' में सौवर्णी और रसनारी के प्रणय-प्रसंगों में यह भावुकता अभिव्यक्त हुई है । रघुवीरसिंह को देख कर सौवर्णी तथा शिवाजी को देख कर रसनारी की जिन मानसिक भावनाओं का व्यास जी ने वर्णन किया है, वह एक सच्चा भावुक कवि ही कर सकता है । प्रिय के विरह में तड़पती हुई सौवर्णी और रसनारी के प्रति व्यास जी ने जिस सहानुभूति, दया और उदारता का भाव प्रदर्शित किया है वह अनुपम है । सखियों के हास-परिहास में प्रणय-प्रसंग मात्र से सौवर्णी की विह्वल अवस्था के और एक-दूसरे के लिये तड़पते हुये रघुवीर-सौवर्णी के परस्पर दर्शन के और रसनारी की विरहदशा के वर्णनों में व्यास जी अत्यन्त भावप्रवण हो गये हैं । इस भावप्रवणता की चरम अवस्था देहली से लौटने के बाद रघुवीर-सौवर्णी के मिलन और रसनारी द्वारा प्रेम की वेदी पर आत्म बलिदान करने में अभिव्यक्त हुई है । इन अवसरों पर उन्होंने मन में उत्पन्न होने वाली भावनाओं का अत्यन्त सुन्दर चित्रण उपस्थित किया है ।

व्यास जी मार्मिक स्थलों और चित्रों के परिज्ञाता हैं । वे जानते हैं कि किन स्थलों पर कवि को भावनाओं में निमग्न होना चाहिये । यशवन्तसिंह-शिवाजी और जयसिंह-शिवाजी के साक्षात्कार तथा संवादों में उनकी भावप्रवणता सहज और अयत्नज है । इन में तन्मय होकर वे उस वीरभाव की सृष्टि करने में समर्थ होते हैं, जिससे जाति और देश के उत्थान को बल प्राप्त हो सकता है । 'दुःखद्रुमकुठार' के वर्णनों में सहज रूप से शान्त-रस की सृष्टि हुई है । 'शिवराजविजय' और 'सामवतम्' के प्रणय-प्रसंग शृंगार-रस की उद्भावना करते हैं । शृंगार और वात्सल्य के मार्मिक चित्रणों की परिस्थितियों को व्यास जी ने अत्यन्त कुशलता के साथ प्रस्तुत किया है । इन स्थलों पर रसनिष्पत्ति अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है । रघुवीर-सौवर्णी के प्रथम साक्षात्कार, रसनारी का शिवाजी को प्रथम बार देखना, सामवती और सुमेधा का एक दूसरे के विरह में व्यथित होना, सौवर्णी का पुरोहित और भाइयों से मिलन, रघुवीर और वीरेन्द्रसिंह की भेंट इन प्रसंगों पर कवि ने जिन मार्मिक भावों का उद्भावना की है, उनकी तुलना 'स्वप्नवासवदत्तम्' की विरहपीडिता वासवदत्ता की भावनाओं, 'हर्षचरित' में सरस्वती और दधीच के प्रथम साक्षात्कार, कादम्बरी' में पुण्डरीक-महाश्वेता और चन्द्रापीड-कादम्बरी के प्रथम मिलन तथा तारापीड-चन्द्रापीड की भेंट, 'उत्तररामचरितम्' और 'कुन्दमाला' में अदृश्यरूपिणी सीता और राम के मिलन-प्रसंगों के अवसरों पर चित्रित मार्मिक भावों के साथ की जा सकती हैं ।

व्यास जी की भावुकता की यह विशेषता है कि वे भावों में तन्मय होते हुये भी सामाजिक मर्यादाओं के औचित्य को नहीं भूल जाते। कालिदास की शकुन्तला के सदृश न तो उनकी नायिका सौवर्णी अनेक बार एकान्त में अपने प्रियतम से मिलन के अवसरों को प्राप्त करके भी गुरुजनों की अनुमति और विवाहविधि सम्पन्न हुये बिना यौवन के आवेग में आत्मसमर्पण करती है और नाहीं उनके नायक शिवाजी और सुमेधा सुन्दरी कन्याओं द्वारा प्रणय-प्रार्थनाओं के किये जाने पर भी दुष्यन्त के समान उनका उपभोग करने लगते हैं। अत्यन्त भावप्रवण होते हुये भी और शृंगारिक भावनाओं में बहते हुये भी सामाजिक मर्यादाओं का उन्होंने कठोरता से पालन कराया है।

भावुक होने के साथ साथ व्यास जी भावों और रस की निष्पत्ति की योजना करने में भी कुशल हैं। 'सामवतम्' नाटक में शृंगार-रस को अंगीरस बना कर, अद्भुत रस को प्रधान सहकारी तथा अन्य रसों को सहकारी रूप में नियोजित करने में आपकी यह कुशलता प्रकट हुई है। इसके अतिरिक्त 'शिवराज-विजय' में वीर-रस को अंगी रूप से प्रतिष्ठित करके शृंगार-रस को प्रधान सहकारी तथा अन्य रसों को अंगी रूप प्रदान करने की आपकी अभिव्यंजन-कला पूर्ण रूप से सफल है। भावनाओं और रसों की योजनाओं में आप की भाषा भी प्रसंग के सर्वथा अनुरूप है। इन प्रसंगों में आपकी भाषा सरल, स्वाभाविक और प्रसाद-गुण से युक्त रहती है। इससे उनके हृदय की अनुभूतियां बिना किसी कृत्रिमता के निर्बाध और निष्कपट भाव से अभिव्यक्त होती हुई सीधी हृदय को प्रभावित करती हैं। इस विवेचना से यह स्पष्ट रूप से प्रतिपादित होता है कि व्यास जी जहां विविध काव्यविधाओं के स्वरूपों पर काव्यरचना के विधान में कुशल हैं वहां अपनी भावप्रवणता और तन्मयता द्वारा उस रचना को सरस और रोचक बनाने में भी समर्थ हैं।

भावुकता की दृष्टि से व्यास जी की परीक्षा करने के पश्चात् उनकी रचनाओं के आधारभूत विचारों का भी निरीक्षण करना चाहिये। प्रत्येक काव्य की आधारभूमि कुछ विचारों के आश्रय से होती है। इनकी नींव पर कवि अपनी काव्यरचना का प्रासाद खड़ा करते हैं। ये विचार जितने उदात्त, गम्भीर और लोकसंग्रह करने वाले होते हैं, उन विचारों के आधार पर निर्मित काव्य भी उतने ही महान् समझे जाते हैं। आदि कवि बाल्मीकि, महान् नाटककार भास, महाकवि कालिदास और अन्य श्रेष्ठ कवियों की महत्ता का रहस्य उनके विचार हैं। काव्य में निहित रचना-सौष्ठव और भावाभिव्यक्ति भी यद्यपि काव्य की महत्ता के प्रतिपादक हैं तथापि विचार उनके आधार रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। 'रामायण' में प्रतिपादित भारतीय आदर्शों की स्थापना करने वाले विचारों ने बाल्मीकि की महत्ता स्थापित की, 'कुमार-

सम्भव' का महत्व भारतीय नारी और पुरुष के तपोमय सम्बन्ध की स्थापना के कारण है और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की भारतीय नारी की महत्ता, उदारता और आत्मनिर्भरता ने कालिदास को विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवि के पद पर प्रतिष्ठित किया है। पाश्चात्य आचार्यों ने इसीलिये विचारों को काव्य का हिन्टरलैण्ड या पृष्ठभूमि कहा है।

व्यास जी के काव्य स्वस्थ विचारधाराओं पर आश्रित हैं। इनमें प्राचीन सनातनधर्म की विचारधारा, देश, जाति और धर्म के प्रति दृढ विश्वास तथा बलिदान का भाव प्रतिपादित किये गये हैं। कवि ने देश की दार्शनिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विचारधाराओं का उपदेश कान्तासम्मित शैली में दिया। व्यास जी अपने जीवनकाल में केवल साहित्य का ही निर्माण नहीं करते रहे, अपितु धर्म के प्रचारक भी रहे। प्राचीन सनातनधर्म के रूढिगत विश्वासों में आस्था रखते हुये आपने उन पर थोड़ा सा भी आघात करने वाले विचारों का विरोध प्रबलता से किया। यह विरोध न केवल उनके प्रचारात्मक साहित्य में है, अपितु काव्य सम्बन्धी साहित्य में भी झलकता है। प्राचीन विश्वासों की प्रतिपादना करते हुये आपका आक्रोश उन सब के प्रति व्यक्त हुआ जिन्होंने उन मान्यताओं का विरोध करने का प्रयत्न किया। भारतीय हिन्दूधर्म की परम्परा पर आघात करने वाले यवनों के प्रति आपने तीव्र आक्रोश प्रकट किया। प्राचीन रूढिगत मान्यताओं में सुधार का प्रचार करने वाली आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज आदि संस्थाओं के प्रति आपने तीव्र वितृष्णा प्रकट की। व्यास जी की रचनाओं की आलोचना में उनके उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करते हुये इस तथ्य पर विस्तार से विचार किया जा चुका है।

व्यास जी की विचारधारा के विषय में संक्षेप से कहा जा सकता है कि आपकी रचनायें सनातनधर्म-सम्बन्धी विचारधारा की आधारभूमि पर निर्मित हैं। इस विशिष्टता के कारण उनकी रचनायें भारतीय जनता में विशेष जनप्रियता प्राप्त कर सकती हैं। उन्हें यथोचित रूप से प्रकाश में लाने की आवश्यकता है। सत्य तो यह कि उनकी विचारप्रौढता ने उनके काव्यों में एक नई चेतना फूंक दी जिससे उनका महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

विचारधारा की दृष्टि से व्यास जी के महत्व का निरीक्षण करने के उपरान्त उनकी शैली पर भी विचार किया जाना चाहिये। शैली भावों और विचारों का कलात्मक परिधान है। यह परिधान जितना सुन्दर और कलापूर्ण है परिधेय भी उतना ही सुन्दर होता है। यद्यपि व्यास जी की शैली की विस्तृत

आलोचना करते हुये इस विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है, तथापि इस स्थल पर उनकी विशेषताओं का संक्षेप से पुनः निरूपण करना उचित है।

व्यास जी के काव्यों में सौन्दर्य को प्रकाशित करने वाली सभी विशेषतायें हैं। भाषा, गुण, रीति और अलंकारों के प्रयोग द्वारा सरसता, अभिव्यक्ति-सौष्ठव और लोकरंजकता निहित की गई है। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये जहां उन्होंने भारतीय पद्धति के अनुसार गुण, रीति, अलंकार आदि के सफल नियोजन और निर्वाह पर ध्यान दिया है, वहां पाश्चात्य शैली के अनुसार चपलता, क्रियाशीलता, रोचकता आदि तत्वों को भी निवेशित करने की चेष्टा की है। इसके साथ ही आपकी रचनाओं में वक्रोक्ति-वैचित्र्य और औचित्य भी स्वाभाविक रूप से हैं।

व्यास जी की रचनाशैली पर भाषा आदि की दृष्टि से प्राचीन कवियों के प्रभाव का दर्शन करना भी उपयुक्त है। इस दृष्टि से आप पर दण्डी का प्रभाव अधिक है। आपकी रचनाओं में प्रसाद-गुण तथा वैदर्भी-रीति विशेष रूप से अभिव्यक्त होते हैं। यद्यपि अनेक स्थलों पर 'शिवराजविजय' के दीर्घ समासों से युक्त वाक्य बाण की गद्य-शैली का स्मरण दिलाते हैं, तथापि उनका प्रयोग कम ही है। कुछ स्थलों पर वर्णनात्मक प्रसंगों में व्यास जी ने अवश्य ही बाण का अनुसरण किया।

वाक्यों की रचना में अनेक स्थलों पर दण्डी, सुबन्धु और बाण का प्रभाव है। किसी समय विशेष के होने पर प्रकृति-चित्रण करते हुये इन कवियों की रचना का सप्तमी विभक्ति का प्रयोग व्यास जी ने भी किया है।[1] इसी प्रकार दण्डी और

---

१. (क) गलति च कालरात्रिशिखण्डिजालकान्धकारे, चलितरक्षसि, क्षरितनीहारे, निजनिलयनिलीननिःशेषपरिजने, नितान्तशीते निशीथे घनतरसालशाखान्तरालनिह्लादिनि नेत्रत्रंसिनीं निद्रां निगृह्णन्...... । 'दशकुमारचरितम्' पृ० ४५६-४५७।

(ख) चन्द्रमण्डलेन प्लाव्यमाने ज्योत्स्नया भुवनान्तराले......प्रतिकुमुदमाबद्धमधुकरमण्डलासु प्रबुध्यमानासु भवनदीर्घिकाकुमुदिनीषु, स्फुटितकुमुदवनबहलधूलिधवलितोदरे निशानदीपुलिनायमाने अन्तरीक्षे......शशिमणिप्रणालनिर्झरे प्रमोदमुखरमयूररवरम्ये प्रदोषसमये ......तस्मात् प्रासादशिखरादवातरम्। 'कादम्बरी' पृ० ४७६-४७८।

(ग) घनघटमानदलपुटासु पुटकिनीषु, तिमिरप्रतिहतेष्विव ततः इतः परिभ्रमत्सु कमलसरसि मधुकरनिकरेषु, प्रतिफलितसन्ध्यारागरज्यमानसलिलस्थितासु पतिविनाशहृत्पीडया दहनप्रविष्टास्विव कमलिनीषु गणक इव नक्षत्रसूचके प्रदोषे......तिमिरमुदजृम्भत।

'वासवदत्ता' पृ० १६०-१६४।

(घ) धीरसमीरस्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु समुदिते यामिनीकामिनाबिन्दाविवेन्दौ कौमुदीकपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुष्विव मौनमाकलयत्सु पतगकुलेषु, कैरवविकासहर्षप्रकाशमुखरेषु चंचरीकेषु......क्रन्दनमश्रौषम्। 'शिवराजविजय' पृ० १०-११।

बाण के सदृश अपने पात्रों के कार्यों का वर्णन करते हुये आपने 'ल्यप्' का प्रयोग अनेक स्थलों पर किया है।[1] यह ल्यप् का प्रयोग न केवल पात्रों की क्रियाओं को ही प्रकट करने में प्रयुक्त हुआ है, अपितु तीव्र अनुभूति-जन्य मानसिक भावों की अभिव्यक्ति में भी हुआ है।[2] स्थानों के वर्णनों में वाक्य की रचना करते हुये इन प्राचीन कवियों के समान व्यास जी ने भी कुछ स्थलों पर वाक्य को 'अस्ति' इस क्रियापद से प्रारम्भ किया।[3] पात्रों की विशेषताओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रायः दीर्घसमासयुक्त विशेषणों का प्रयोग बाण की विशेषता है, परन्तु अनेक स्थलों पर दीर्घसमासयुक्त रचना को छोड़ कर सरल असमस्त पदों में रूपकों के प्रयोग द्वारा भी उनकी विशेषतायें कही गई हैं। इस प्रकार के प्रयोग व्यास जी ने किये हैं।[4] इसके अतिरिक्त प्राचीन पद्धति का पालन करते हुये व्यास जी बाण के ही सदृश

---

१. (क) द्विजन्मा कृतज्ञो मह्यमक्षरशिक्षां विधाय विविधागमतन्त्रमाख्याय, कल्मषक्षयकारणं सदाचारमुपदिश्य, ज्ञानेक्षणगम्यमानस्य शशिखण्डशेखरस्य पूजाविधानमभिधाय, पूजां मत्कृतामंगीकृत्य निरगात्। 'दशकुमारचरितम्' पृ० ५५।

(ख) बाणस्तु तच्छ्रुत्वा समुत्सृज्य निद्रामुत्थाय प्रक्षाल्य वदनम् उपास्य भगवतीं सन्ध्याम्...... तत्रैव अतिष्ठत्। 'हर्षचरितम्' पृ० २५६।

(ग) कदलीदलमेकमाकुंच्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय पुष्पावचयं कर्तुमारेभे। 'शिवराजविजय' पृ० ५।

२. (क) तावदितरकन्यकेव विहाय लज्जाम्, उत्सृज्य धैर्यम्, उन्मुच्य विनयम्, अचिन्तयित्वा जनापवादम्, अतिक्रम्य सदाचारम्, उल्लंघ्य शीलम्, अवगणय्य कुलम्, अंगीकृत्यायशः स्वयमुपग्राहयामि पाणिम्। 'कादम्बरी' पृ० ४७०।

(ख) तत् किं लज्जया विरज्य, धैर्यमवधीर्य, गुणान् विगणय्य, वाचालतामूरीकृत्य, धृष्टतां शिरसि संस्थाप्य, अभिमानमवमान्य, चापलं चावलम्ब्य, स्वयमेव किमप्यमुष्मिन् विषये प्रकटयामि। 'शिवराजविजय' पृ० ३०८-३०९।

३. (क) अस्ति समस्तनगरीनिकषायमाणा...पुष्पपुरी नाम नगरी। 'दशकुमारचरित' पृ० ४-५।

(ख) अस्ति सकलत्रिभुवनललामभूता......उज्जयिनी नाम नगरी। 'कादम्बरी' पृ० १५१-१६०।

(ग) अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावलग्ना......विन्ध्याटवी नाम। 'कादम्बरी' पृ० ५३-६०।

(घ) अस्ति कश्चन व्याप्तो राजपुत्रदेशः। 'शिवराजविजय' पृ० ८२-८३।

४. (क) कुलगुरुः वीरगोष्ठीनां, तुला सौन्दर्यशालिनां, सीमान्तदृश्वा शस्त्रग्रामस्य, निर्वोढा प्रौढवादानां, संस्तम्भयिता भग्नानां......सिंहनादनामा। 'हर्षचरित' पृ० ६४१-६४२।

(ख) मुकुटमणिः महाराष्ट्राणां, भूषणं भटानां, निधिर्नीतीनां, कुलभवनं कौशलानां, पारावारः परमोत्साहानां कश्चन प्रातःस्मरणीयः......शिववीरः। 'शिवराजविजय' पृ० २३-२४।

पात्रों की क्रियाओं को उनके विशेषण रूप में लिखते हैं ।[१] बाण आदि कवियों ने वर्णनों और प्रकृति-चित्रणों के अवसरों पर दीर्घ समस्त पदावली का प्रयोग करके भी कोमल भावों की अभिव्यंजना में सरल असमस्त पदों का प्रयोग किया था । इस प्रकार के भावुक चित्रणों में उत्प्रेक्षा का आश्रय भी प्रायशः लिया गया है । कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करते हुये इस प्रकार के प्रयोग व्यास जी ने भी बाहुल्य से किये हैं ।[२]

अलंकारों का प्रयोग करने और उनकी कल्पनाओं में यद्यपि अनेक स्थलों पर व्यास जी और प्राचीन कवियों में सादृश्य है,[३] तथापि व्यास जी ने श्लेषमूलक अलंकारों शाब्दी उपमा और विरोधाभास आदि के प्रयोग में अधिक उत्सुकता प्रकट नही की । इनके काव्यों में अनेक अलंकारों के प्रयोग हैं, जिनका विस्तृत विवेचन गद्य-

---

१. (क) उपरचितपशुपतिपूजनश्च निष्क्रम्य देवगृहान्निर्वर्तिताग्निकार्यो......चन्दनेनानुलिप्तसर्वांगो विरचितामोदिमालतीकुसुमशेखरः, कृतवस्त्रपरिवर्तः......अवनिपो निवर्तयामास । 'कादम्बरी' पृ० ४८ ।

(ख) तत्पूजकेन साशीराशिसमाश्लिष्टः प्राप्तप्रसादमालः, सम्पादितसिन्दूरतिलकभालः...... साष्टांगं प्रणनाम । 'शिवराजविजय' पृ० ४६७ ।

२. (क) सा तु सव्रीडेव, सविषादेव, सगौरवेव, चाब्रवीत् । 'दशकुमारचरितम्' पृ० १५७ ।

(ख) इति बहुविधं चिन्तयन्तो विरहमुर्मुरमध्यमधिरूढेव, उन्मत्तेव, अन्धेव, बधिरेव, मूकेव, शून्येव, निरस्तेन्द्रियग्रामेव, मूर्छागृहीतेव, ग्रहग्रस्तेव......भवन्ती । 'वासवदत्ता' पृ० १३६-१४२ ।

(ग) दधीचप्रेम्णा सरस्वत्या लुण्ठितेव मनोरथैः, आकृष्टेव कुतूहलेन, प्रत्युद्गतेवोत्कलिकाभिः आलिंगितेवोत्कण्ठया, अन्तःप्रवेशितेव हृदयेन, स्नपितेव आनन्दाश्रुभिः, विलिप्तेव स्मितेन, वीजितेव उच्छ्वसितैः, आच्छादितेव चक्षुषा......सविधम् उपययौ । 'हर्षचरित' पृ० ८६ ।

(घ) इति वदति महाराष्ट्रराजे सा वेपमानैरंगैरिव निवार्यमाणा, मन्मथोन्मथितेन मनसेव मूकीक्रियमाणा, उद्वेल्लितैर्बाष्पैरिव कण्ठे रुध्यमाना, ह्रियेवावहेल्यमाना, अनासादितवरेण हासेनेव हास्यमाना, मदनमदेनेव च मामथ्यमाना न कांचन वाचां प्रचारमूरीचकार । 'शिवराजविजय' पृ० ३२७-३२८ ।

३. (क-१) अपांगविक्षेपैश्चलितकुवलयमयीमिव क्रियमाणामवनीम्, स्मितप्रभाभिरुत्फुल्लकुसुमधवलानिव वसन्तदिवसान् संचरतः । 'कादम्बरी' पृ० ५२६ ।

(क-२) मन्दस्मितेन मालतीमुकुलानीव वमन्ती अपांगवीक्षणैर्नीलोत्पलैरिव ताडयन्ती । 'शिवराजविजय' पृ० ४५० ।

(ख १) लोचनमयूखलेखासन्तानेन नीलोत्पलदलमय इव दिवसो बभूव । 'कादम्बरी' पृ० २५३ ।

(ख-२) अंजनरंजिताभिः दृग्भिः इन्दीवरमाला इव वर्षन्त्यः । 'शिवराजविजय' पृ० २५३ ।

काव्य और रूपकों की आलोचना करते हुए किया जा चुका है। इनमें अनुप्रास, उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग आपने अधिक किया है।

व्यास जी के रूपकों की शब्दावली और शैली पर कुछ स्थानों पर प्राचीन कवियों का प्रभाव है। 'सामवतम्' की "वेदच्छेदकृतादरैः"[1] पदरचना पर 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' की "मेदच्छेदकृशोदरम्"[2] इस पदरचना का स्पष्ट सादृश्य है। भास के 'अविमारक'[3] और बिल्हण की 'चौरपंचाशिका'[4] के पद्य की रचना की समानता 'सामवतम्' के एक पद्य[5] में है। 'स्वप्नवासवदत्तम्' के एक पद्य[6] का 'सामवतम्' के एक पद्य[7] के साथ साम्य है। इसी प्रकार प्राचीन कवियों द्वारा प्रयुक्त अलंकारों के अनेक प्रयोगों के प्रभाव व्यास जी के रूपकों में प्राप्त होते हैं।[8]

रचनाओं में अनेक सादृश्यों के होने पर भी व्यास जी का महत्व कम नहीं है। कान्ति नामक गुण की व्याख्या में यह कहा गया है कि कवि या तो सर्वथा नवीन कल्पनाओं को उपस्थित करते हैं या प्राचीन कल्पनाओं को नवीन रूप में उपस्थित करते हैं। व्यास जी ने प्रायः नवीन कल्पनाओं को ही उपस्थित किया और यदि कहीं प्राचीन कल्पनाओं का सहारा भी लिया तो उन्हें नये परिवेश में सुसज्जित करके अपने ही शब्दों द्वारा मौलिक रूप प्रदान किया।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि व्यास जी का स्थान संस्कृत-साहित्य में और विशेष कर आधुनिक संस्कृत साहित्य में बहुत अधिक श्लाघनीय और महत्वपूर्ण है। उनका यह महत्व संस्कृत-साहित्य में अभिनव काव्यरूप-विधान, उनकी मौलिक रचना-प्रक्रिया, रचनाविधान के तत्वों का मौलिक एवं सफल नियोजन, प्रभावपूर्ण भावोद्भावना, उदात्त कल्पना, जनसंग्राहक और जनरक्षक विचारों की पृष्ठभूमि और प्रसाद-गुण से युक्त शैली सभी दृष्टियों से है। वे आधुनिक युग के

---

१. 'सामवतम्' ३.३।
२. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' २.५।
३. 'अद्यापि हस्तिकरशीतलशीतलांगीम्...। 'अविमारक' २.१।
४. अद्यापि तां प्रणयिनीं मृगशावकाक्षीम् 'चौरपंचाशिका' २३१।
५. अद्यापि सा मदिरमेदुरमंजुनेत्रा। 'सामवतम्' ६.२।
६. चिरप्रसुप्तः कामो मे वीणया प्रतिबोधितः। 'स्वप्नवासवदत्तम्' ६.३।
७. कथं हन्त चिरात् सुप्तः क्रोधसर्पः प्रबोधितः। 'सामवतम्' ४.५५।
८. (क) यथा वनज्योत्स्ना अनुरूपेण पादपेन संगता तथा अहमपि आत्मनः अनुरूपं वरं लभेय।
'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' अंक १ पृ० ४१।
(ख) रसाल इव सानन्दं ललितां मालतीलताम्।
कदा तां परिरप्स्येऽहं बालां सामवतीं प्रियाम्। 'सामवतम्' ६.५।

संस्कृत-साहित्य के महान् स्रष्टा तो हैं ही भावी साहित्य स्रष्टाओं के लिये पथप्रदर्शक भी हैं। भारतीय पराधीनता के युग में संस्कृत-साहित्य के प्रति अध्ययन और अध्यापन की रुचि का ह्रास होने के कारण तथा कुछ अन्य राजनीतिक अथवा साहित्यिक कारणों से उन्हें उतनी ख्याति और यश प्राप्त नहीं हुआ, जिसके कि वे अधिकारी थे। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् इस देश में भारतीय भाषाओं के अध्ययन की प्रवृत्ति से संस्कृत के पठन-पाठन को भी प्रोत्साहन प्राप्त होना अनिवार्य है जो व्यास जी के सदृश, आलोचकों द्वारा उपेक्षित कवियों के गौरव का उद्घाटन करने में समर्थ होगा। वह समय दूर नहीं है जब कि संस्कृत के अधिकारी विद्वान् व्यास जी जैसे आधुनिक कवियों की रचनाओं के गौरव को अनुभव करके इनके अध्ययन में अधिकाधिक प्रवृत्त होंगे। व्यास जी आज भी संस्कृतज्ञों के लिये वह दीपशिखा हैं जिनसे प्रकाश लेकर वे आज के युग में अपने मार्ग को प्रशस्त कर गीर्वाण-वाणी के गौरव को पुनः प्रतिष्ठित कर सकते हैं।

————

परिशिष्ट-१

व्यास जी की हिन्दी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

प्रथम अध्याय में लिखा जा चुका है कि व्यास जी न केवल संस्कृत के ही अपितु हिन्दी के भी विद्वान और लेखक थे। भारतेन्दु युग के हिन्दी-निर्माता लेखकों में आपका विशिष्ट स्थान हैं तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास में आपका नाम आदर के साथ लिया जाता है। हिन्दी भाषा को आपने साहित्य के विविध अंगों से समृद्ध किया और नाटक, काव्य, उपन्यास, निबन्ध आदि की रचना द्वारा अपनी काव्यप्रतिभा और विद्वत्ता प्रदर्शित की। आपकी कुछ हिन्दी रचनायें असामयिक देहावसान के कारण पूरी नहीं हो सकीं। अनेक रचनाओं का प्रकाशन व्यास जी ने स्वयं ही किया था और इस कार्य के लिये एक प्रेस भी खरीदा था। आपने प्रायः अपनी सभी रचनाओं का विवरण बिहारी-विहार के अन्त में दिया है। उनकी उपलब्ध हिन्दी रचनाओं का विषयानुसार वर्गीकरण इस प्रकार है—

(क) नाटक—(१) ललिता-नाटिका, (२) गोसंकट-नाटक, (३) भारत-सौभाग्य, (४) कलियुग और घी, (५) मन की उमंग।

(ख) काव्य—(६) सुकवि-सतसई, (७) पुष्पवर्षा, (८) ईश्वरेच्छा।

(ग) कविता संग्रह—(९) बिहारी-विहार, (१०) धर्म की धूम, (११) पावस-पचासा, (१२) हो हो होरी, (१३) झूलन-झमंक,।

(घ) उपन्यास—(१४) आश्चर्य-वृत्तान्त, (१५) स्वर्ग-सभा।

(च) धार्मिक तथा दार्शनिक रचनायें—(१६) मूर्तिपूजा, (१७) अवतार-मीमांसा, (१८) साँख्यतरंगिणी, (१९) तर्कसंग्रह-भाषा-टीका।

(छ) क्रीडा सम्बन्धी—(२०) चतुरंग-चातुरी, (२१) तास-कौतुक-पचीसी, (२२) महातास-कौतुक-पचासा।

(ज) काव्यशास्त्र सम्बन्धी—(२३) गद्यकाव्यमीमांसा।

(झ) विविध—(२४) बिभक्ति विलास, (२५) साहित्य-नवनीत, (२६) संस्कृत-संजीवन, (२७) निज-वृत्तान्त, (२८) क्षेत्र-कौशल (२९) कथाकुसुमकलिका, (३०) भाषा ऋजुपाठ, (३१) अबोध निवारण।

प्रबन्ध के संस्कृत रचनाओं से संबद्ध होने के कारण हिन्दी रचनाओं की विस्तृत आलोचना अपेक्षित नहीं है, तथापि हिन्दी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

१. ललिता-नाटिका

यह शृंगार-हास्य-रसमय गीतिप्रधान रचना ब्रजभाषा में है। इसकी समाप्ति शान्तरस में होती है। इसकी रचना व्यास जी ने काशीस्थ ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के कार्यसम्पादक पं० रामिश्र शास्त्री के अनुरोध से रासलीला का सुगमता से अभिनय कराने के लिये की थी। इस नाटिका में बाल गोपाल कृष्ण और ललिता गोपिका का शृंगार वर्णन ललित गीतों और संवादों द्वारा किया गया है। श्रीकृष्ण की बाल-लीला तथा गोपियों के साथ शृंगार का वर्णन संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक काव्यों में हुआ है, जिनमें शृंगार के द्वारा इन लीलाओं का आध्यात्मिक पक्ष प्रस्तुत किया गया है। कृष्ण सनातन ब्रह्म के अवतार हैं और आत्मा गोपियां उनके सखाभाव को प्राप्त करके नैकट्य रूप भक्ति से आनन्द को प्राप्त करती हैं। इसके द्वारा जीव मोक्ष को प्राप्त करता है तथा इस भक्ति का माधुर्य लोक माधुर्य से भिन्न होता है। नाटिका की रचना सम्वत् १९३५ में हुई और इसका प्रकाशन सम्वत् १९४० में हरिप्रकाश यन्त्रालय काशी में हुआ।

ललिता गोपिका कृष्ण के विरह से पीड़ित है। उसकी विशाखा नाम की सखी मनसुखा गोप के साथ मिलकर ललिता के पति गोवर्द्धन को छल से मथुरा भेज देती है और कन्हैया को गोवर्द्धन के वेश में आधी रात के समय ललिता के पास पहुँचा देती है। गोवर्द्धन गोप के आने की आहट पाकर कन्हैया पिछली खिड़की से कूद कर भाग जाते हैं। यह जान कर गोवर्द्धन बहुत क्रुद्ध होता है। उसी समय नारद जी वहां आते हैं और बताते हैं कि कृष्ण भगवान् के और गोपियां देवियों की अवतार हैं जिन्होंने शृंगाररसमूर्ति विष्णु के साथ लीला करने के लिये करोड़ों जन्मों तक तपस्या की थी। यह जान कर गोवर्द्धन प्रसन्न हो जाता है और नारद जी के निम्न वचनों के साथ नाटिका की समाप्ति होती है —

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्मसनातनम्॥
आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्।
याः दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा
भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्॥

नाटिका के गीत ललित, मधुर, गेय और आकर्षक हैं। विदा लेते हुये ललिता कन्हैया से कहती हैं—

सब रोज की वात कहें न कछू कबहूँ तो हमें हरसायो करो।
अति प्यारी तिहारी अनेक अहैं पै लऊ तऊ चित लायो करो।
मनमोहनी मूरति को दरसाइ के नैनन को सरसायो करो।
पिय प्यारे छली हमरी हू गलीन में भूलि कै तो भला आयो करो।।

नाटिका के संवादों में चुटीलापन, व्यंगात्मकता और वक्रोक्ति है। नन्दलाल को ढूंढ़ती हुई ललिता की सखी विशाखा का मनसुखा से इस प्रकार संवाद होता है—

विशाखा— लाला मनसुखा में तौते एक बात पूछिवै को आई हूँ।
मनसुखा – पूछ सखी पूछ।
विशाखा—या समै लाल जी कहां हैं ?
मनसुखा —(झगक कर) भलो पूछयो सखी चली जा कायथटोला में लाला ई लाला भरे हैं।
विशाखा— अरे मैं सांवरे को पूछूं हूँ।
मनसुखा— सांवरे तो तेरे नैनन ही में है अंजन।
विशाखा— वावरे गोपाल कहां हैं ?
मनसुखा— एह का काऊ के माथे गोपाल नाम की छाप लगी है का ? जो गैया चरावै सोई गोपाल।
विशाखा— अरे मैं जसोदा रानी के बेटे श्री कन्हैया जी महाराज से मिल्लो चाहूं हुँ।
मनसुखा —तो सूधी क्यों नांय कहै है ?

इस रूपक की भाषा सरल ब्रज की बोली में लिखी गई है जो हिन्दी भाषियों को सरलता से समझ आ जाती है। व्यास जी संगीत के व्यसनी थे अतः आपने सुन्दर ताल और लयबद्ध छन्दों में नृत्य के योग्य गीतों की रचना की। प्रत्येक पात्र का चित्रण उपयुक्त है तथा वह अपनी स्थिति के अनुकूल भावों को अभिव्यक्त करता है। जिस उद्देश्य से नाटिका की रचना व्यास जी ने की थी, वह इसके द्वारा पूरा होता हैं।

२. गोसंकट-नाटक

सनातन हिन्दू धर्म के प्रति दृढ और गहन आस्था रखने वाले व्यास जी की दृष्टि में गौओं की रक्षा हिन्दुओं का परम धार्मिक कर्तव्य है। मुसलमान सदा से

गोकुशी के लिये आग्रह करते रहे जब कि हिन्दू उनको माता के समान पूजनीय दृष्टि से देखते हैं। भारतेन्दु हरिश्चद्र की सभागोष्ठियों में इस सम्बन्ध में चर्चा हुआ करती थी। एक बार इस प्रकार की गोष्ठी में स्वाभाविक आनन्द आलाप के समय व्यास जी ने इस सम्बन्ध में ग्रन्थ-रचना करने की प्रतिज्ञा की।[1] भारतेन्दु बाबू के प्रोत्साहन से सम्वत् १६३० में धर्म तथा ईश्वर प्रेम के उद्देश्य से एक तदीय समाज की स्थापना की गई थी। इस समाज के उद्योग से गोवध रोकने के लिये ६० सहस्र हस्ताक्षरों से युक्त एक प्रार्थना पत्र दिल्ली भेजा गया।[2] गोवध के विरोध में आवाज उठाने के लिए व्यास जी ने इस नाटक की रचना सम्वत् १६३६ में की। यह प्रथम 'उचित-वक्ता' नामक पत्रिका (सन् १८८२) में छपा तथा बाद में सम्वत् १६४१ में खड्ग-विलास प्रेस से पुस्तक के आकार में प्रकाशित हुआ।

नाटक के कथानक का समय अकबर का है। मुसलमान अपनी मजहबी पुस्तकों में गोकुशी का स्पष्ट रूप से आदेश न होने पर भी हिन्दुओं को चिढ़ाने और कष्ट देने के लिए ही इस का आग्रह करते हैं और उसका बहुत अधिक प्रदर्शन करते हैं। मुसलमानों द्वारा गोकुशी के लिए उद्यत होने पर हिन्दू प्रथम तो मौलवी से गोवध न करने की प्रार्थना करते हैं, किन्तु इससे मुसलमानों के जिद पकड़ने पर गाय को बलपूर्वक बधिक से छुड़ा लेते हैं। झगड़ा अधिक बढ़ जाने पर अकबर के दरबार में निवेदन करने का निश्चय होता है और अकबर गोवध के निषेध की आज्ञा देता है। अन्त में कवि भरतवाक्य के रूप में नागरिकों के लिए गौओं और ब्राह्मणों के प्रति भक्ति की आशंसा करके नाटक को समाप्त करते हैं।

नाटक में कवि ने मुसलमानों का नृशंस और हिन्दू जाति पर अत्याचार करने वाला रूप व्यक्त किया है जो केवल हिन्दुओं को चिढ़ाने मात्र के लिए गौओं का वध करते थे। आपने गौओं की उपयोगिता का विशद वर्णन किया है। खेतों में हल चलाना, ऊख का रस निकालना, तेल पेलना, सामान ढोना, गाड़ी ले चलना, कुयें से पानी निकालना आदि कार्य मुख्य रूप से गो-वंश से ही होते हैं। गौ का दूध, दही, मक्खन, मठ्ठा, खोवा, मलाई, घी, मूत्र, और गोबर सभी उपयोगी होते है। यह मर कर भी चमड़े द्वारा परोपकार करती है। केवल मांस के लिये इसे नष्ट कर देना निरे निर्दय राक्षस का काम है।

गौ का वध करना केवल इसी का प्राण लेना नहीं, किन्तु सब भारतवासियों के प्राण लेने का उपक्रम करना है।

---

१. 'गोसंकट-नाटक' की भूमिका से।

२. व्रजकृष्णदास लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पृ० ११४।

गोसंकट-नाटक की भाषा सशक्त और प्रवाह युक्त है। संवाद ओजस्वी हैं और वस्तुस्थिति का सजीव चित्रण करते हैं। मुसलमानों के अत्याचारों का मर्मस्पर्शी विवरण सूत्रधार के कथन में है—

देखो कन्नौज आदि देश किस दुर्दशा से लूटे गये। देवमन्दिर और मूर्तियां तोड़ी गईं। कुलवती स्त्रियों का सतीत्व बलात्कार से नष्ट किया गया। बिना अपराध एतद्देशवासियों के मस्तक काट काट कर गढों के कंगूरों में लटकाये गये। पिताओं के सामने पुत्र और स्त्रियों के समाने पति के कण्ठ काटे गये। उपानहों से ब्राह्मणों के तिलक मिटाये गये और पावों से आक्रमण करने को वेदादि पुस्तक मार्ग में बिछाये गये। हाय हाय कौन ऐसा पत्थर होगा जिसके नेत्रों से गंगा जमना नहीं बही होगी।

नाटक के गीत अवसर के अनुकूल, हृदय पर प्रभाव डालने वाले और लोक गीतों के रूप में गाये जाने के योग्य हैं। गौ की उपयोगिता को प्रदर्शित करने वाला निम्न गीत प्रभावशाली है—

घनि धनि भारत की निधि गैया।
दूध पिआई सबनि प्रतिपालति ज्यों बालक की मैया॥
दही मलाई माखन खोवा दूध घीव उपजैया।
सब पकवान साज कों सजि सजि आपु घास चरवैया॥ घनि०॥
बहुविध काज सहायक सुत जनि जग को सुख करवैया।
रोग दोष को सहज मिटावति जन मन की हुलसैया॥ घनि०॥
याहीं ते इनको बहु चाहत नन्द नन्दन बल भैया।
सुकवि मुनीस हुँ इनको सुख लहि गावत आनन्द बवैया॥घनि०॥

व्यास जी का यह नाटक उद्देश्य और काव्य दोनों दृष्टियों से वस्तुतः प्रशंसनीय है।

३. भारत-सौभाग्य

सन १८८६ में भारतवर्ष में इंग्लैण्ड की महारानी का जयन्ती महोत्सव तत्कालीन भारत सरकार की ओर से मनाया गया। इस उपलक्ष्य में व्यास जी ने सम्वत् १९४४ में 'भारत-सौभाग्य' नामक नाटक की रचना की तथा इसी वर्ष यह खड्गविलास प्रेस से प्रकाशित हुआ। संस्कृत के 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक के सदृश यह एक प्रकार का भावात्मक रूपक हैं जिसमें भारत-सौभाग्य, विषयभोग, भारत-दौर्भाग्य, प्रताप, उत्साह तथा शिल्प पुरुष पात्र है और मूर्खता, फूट, शिक्षा, एकता, भारतपताका, अंग्रेजीपताका, राजभक्ति, यन्त्रविद्या, उदारता और दया स्त्री पात्र हैं। इस नाटक द्वारा व्यास जी ने व्यक्त किया कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत

में चारों दिशाओं में अव्यवस्था फैली हुई थी। मूर्खता और विषय भोग के कारण भारत के दौर्भाग्य का नक्षत्र देदीप्यमान था। मुसलमानों के अत्याचारों से भारत की जनता अत्यधिक पीड़ित थी। मुसलमान बादशाहों द्वारा हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़ा जाना और ग्रामों का भस्मीभूत किया जाना साधारण बात समझी जाती थी। हिन्दू स्त्रियों को मुसलमान बलपूर्वक छीन लेते थे। इस प्रकार धर्म को धूलिसात् करके, हिन्दुओं को कत्ल करके उनके रुधिर बिन्दुओं से धरती को सिंचित किया गया था। भारतीय शिल्प और यन्त्र विद्या का विध्वंस कर दिया गया था। अंग्रेजों के भारत में आने से शासन व्यवस्थित हो गया। महारानी विक्टोरिया के शासन में भारत से मूर्खता और फूट का बहुत कुछ विनाश हो गया। स्थान स्थान पर नवीन स्कूलों और कालिजों की स्थापना होकर नवीन रीति से शिक्षा का प्रसार हुआ। शिल्प तथा यन्त्र विद्या का पुनरुद्धार हुआ और भारत का दौर्भाग्य अस्त होकर सौभाग्य का सूर्य चमकने लगा। वस्तुतः यह महारानी विक्टोरिया के शासन का प्रभाव था कि इस काल में भारत उत्तरोत्तर समृद्ध होता गया।

नाटक में महारानी विक्टोरिया और अंग्रेजों के शासन के प्रभाव के कारण भारत में विषयभोग, मूर्खता, फूट आदि द्वारा बढ़ते हुये भारत दौर्भाग्य का अस्त तथा शिक्षा, एकता, उदारता, दया, उत्साह, शिल्प आदि की वृद्धि से प्रवृद्ध भारत का उत्कर्ष दिखाया गया है। अनेक भाषाओं में रचित कविताओं द्वारा महारानी विक्टोरिया के स्वास्थ्य, शक्ति, कीर्ति, सुरक्षा, शत्रु विनाश, विजय और आयुवृद्धि की कामना करते हुये कवि ने भरतवाक्य द्वारा प्रजाओं के कल्याण की आशंसा करके नाटक को समाप्त किया है।

नाटक की भाषा प्रौढ और प्रांजल है। संवाद ओज से भरे हुये, सशक्त और अभिनयात्मक हैं। गीत भावपूर्ण हैं। अनेक भाषाओं की कविताओं द्वारा इस नाटक से व्यास जी की बहुभाषाविज्ञता अभिव्यक्त होती है। इसमें उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत प्राकृत, बंगला, तिरहुत, रामगढ चूक और खड़ी बोली की कविताओं द्वारा महारानी के प्रति शुभकामना प्रकट की। इस नाटक से व्यास जी का मुस्लिम शासन के प्रति तीव्र आक्रोश और अंग्रेजी शासन के प्रति दृढ़ आस्था प्रकट होती है। वस्तुतः यह उस काल की विशेष लहर थी कि प्रायः सभी धार्मिक सुधारकों— राममोहनराय, केशवचन्द्रसेन, सर सैयद अहमदखां आदि ने अंग्रेजी व्यवस्था की प्रशंसा की। केवल ऋषि दयानन्द ही ऐसे सुधारक हुये जिन्होंने बुरे से बुरे स्वदेशी शासन को अच्छे से अच्छे विदेशी शासन से अच्छा कहकर विदेशी शासन के प्रति विरोध प्रदर्शित किया। उस काल की परम्परा से प्रभावित होकर व्यास जी ने भी अपने ग्रन्थों में यत्र-तत्र अंग्रेजी शासन के प्रति आस्था प्रकट की है।

४. कलियुग और घी

यह एक छोटा सा रूपक है, जिसमें कवि ने घृत में मिलावट के कारण हृदय की पीड़ा को अभिव्यक्त किया। इस रूपक में व्यास जी ने व्यक्त किया है कि कलियुग के प्रभाव से घृत में वसा आदि अपवित्र द्रव्यों का संयोग हुआ है, इससे भारतदेश अधर्म और पतन के गर्त में गिर रहा है। एकता और उत्साह ही इसकी रक्षा कर सकते हैं। इस रूपक की रचना सम्वत् १९४३ में हुई तथा यह उसी वर्ष नारायण प्रेस मुजफ्फरपुर से प्रकाशित हुआ।

यह रूपक वस्तुतः एक प्रचारात्मक रचना है, जिसमें कवि ने हिन्दुओं की सामाजिक तथा धार्मिक परम्पराओं में सुधारों का विरोध किया। उस काल में आर्यसमाजियों और ब्राह्मसमाजियों द्वारा किये जाने वाले बालविवाह और मूर्तिपूजा के खण्डन आदि का विरोध इस रूपक में है। कथनों पर बल देने के लिये स्थान स्थान पर संस्कृत के वाक्यों और श्लोकों की रचना की गई है।

इस रूपक में व्यास जी कहते हैं कि घृत के कारण धर्म की उन्नति होती है। कलियुग में घृत में अशुद्धि होने के कारण ही पापों की प्रबलता है। भारतवर्ष में धर्म का विनाश करने के लिये घृत में सूअर, बैल आदि की चर्बी मिलाने का कलियुग उद्योग कर रहा है। पहिले तो पंचगव्य के सेवन से सभी प्रकार के पाप नष्ट होते थे, किन्तु अब घृत में अशुद्धियों के कारण जन्मजन्मान्तर के पुण्य नष्ट हो रहे हैं। कलियुग में ब्राह्मण, पण्डित और पुरोहित भी घृत को खराब करने में लगे हैं और मांस के प्रेमी होकर मास (महीना) को भी मांस कहने लगे हैं। कलियुग से त्रस्त घृत अन्त में श्रीकृष्ण की शरण में जाता है और एकता तथा उत्साह इसकी रक्षा करके सनातन धर्म को बचाते हैं।

५. मन की उमंग

व्यास जी का यह ग्रन्थ सात छोटे छोटे एकांकी रूपकों का संग्रह है। इन रूपकों में से पांच रूपक हिन्दी और दो संस्कृत में हैं। इन रूपकों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में कुछ भजन और प्रार्थनायें हैं। ये रूपक परम वैष्णव और धार्मिक प्रवृत्ति वाले व्यास जी के हृदय की धार्मिक उमंगों को प्रतिबिम्बित करते हैं। सभी रूपक धर्मसम्बन्धी हैं। धार्मिक उत्सवों पर अभिनय के लिए इन रूपकों की रचना की गई थी। प्रायः सभी रूपकों का अभिनय मुजफ्फरपुर की धर्मसभा में हुआ।[1] मन की उमंग में निम्न लिखित रूपक हैं—

(क) हिन्दी रूपक— भारत-धर्म, धर्म-पर्व, संस्कृत-संताप, देवपुरुष-दृश्य, जटिल वणिक्।

---

१. मन की उमंग की भूमिका से

(ख) संस्कृत रूपक— धर्माधर्मकलकलम्, मित्रालापः।

संस्कृत रूपकों की समालोचना संस्कृत रूपकों के अध्ययन में की जा चुकी है। हिन्दी रूपकों का संक्षिप्त परिचय निम्न है—

भारत-धर्म

भारतीय भाषा, वेषभूषा, संस्कृत, धर्म, भोजन आदि के परमभक्त व्यास जी जनता में अंग्रेजी सभ्यता के बढ़ते हुये प्रचार से पीड़ा का अनुभव करते थे। इस रूपक में कवि का कथन है कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार और प्राचीन सनातन धर्म की हानि से भारतीय सभ्यता का विनाश होता जाता है। विदेशी वेषभूषा, भाषा, भोजन आदि की प्रधानता बढ़ती जा रही है। अपना वेष, भाषा, भोजन, दूध, मलाई आदि अच्छे नहीं लगते। नई विदेशी भाषा की सर्वत्र मान्यता बढ़ती जा रही है। संस्कृत के मृदु वचन कर्कश प्रतीत होते हैं। सन्ध्योपासन, जप आदि सब भूल गये हैं। भारत की अवनति का यही कारण है। प्राचीन गौरव की गरिमा से ही भारत उन्नति कर सकता है।

धर्म-पर्व

इस रूपक द्वारा भी व्यास जी की भारतीय धर्म, संस्कृति, भाषा आदि के प्रति हार्दिक आस्था और भारतीयता के ह्रास से उत्पन्न मार्मिक पीड़ा अभिव्यंजित होती है। इसके द्वारा वे भारतीय जनमानस को स्वदेशी धर्म, कर्म, विद्या और उन्नति के प्रति तीव्र उत्साह की भावना से परिपूर्ण कर देने का संकल्प करते हैं। यह रूपक दो मित्रों के वार्तालाप के रूप में है, जो भारतीय संस्कृति और धर्म के ह्रास से अत्यन्त दुःखी हैं। दोनों की परम कामना है, कि भारत में जन्म लेकर हमें भारत में ही रहना है, अतः भारतीय धर्म, कर्म और विद्या को ग्रहण करते हुये भारत की उन्नति में ही अपना मन लगाना चाहिये और उच्च स्वर से भारत की ही जय-ध्वनि का गान करना चाहिये।

संस्कृत-संताप

इस रूपक में व्यास जी ने संस्कृत भाषा की अवनति के कारण उत्पन्न हुये अपने हृदय का संताप अभिव्यक्त किया है। इसमें आप कहते हैं कि इस समय शासकों की भाषा अंग्रेजी और उससे पहिले के शासकों की भाषा उर्दू का ही अधिक प्रचार है। इन्हीं को सरकारी मान्यता और संरक्षण प्राप्त हैं। संस्कृत तो क्या हिन्दी भाषा भी राज्य कार्यों में स्थान नहीं पाती। संस्कृत भाषा के संरक्षक ही दुर्व्यसनों फंस कर इस विद्या के प्रति पराङ्मुख हो गये हैं। साधारण जन भी इसके प्रचार के लिये उत्सुक नहीं। इसी कारण संस्कृत विद्या दुर्लभ हो गई है। भारतीय धर्म और संस्कृति का आधार संस्कृत ही है। अतः इनके पुनरुत्थान के लिये संस्कृत की उन्नति करना आवश्यक है।

देवपुरुष-दृश्य

इस रूपक में व्यास जी ने ब्राह्मणों को भारत के प्राचीन गौरव का आधार-स्तम्भ और भारतीय जन का मूर्धन्य कहा। आपका कथन है कि प्राचीन काल के धार्मिक, सदाचारी और विद्वान् ब्राह्मणों के कारण भारत की गरिमा थी। यद्यपि वर्तमान काल में ब्राह्मणों का पतन हो गया है तथापि वे उस गौरव को पुनः प्राप्त कर सकते हैं। हिमालय की अनुपम शोभा को निहारते हुये एक भारतीय ब्राह्मण को इन्द्रलोक वासी गन्धर्व प्रणाम करता है। ब्राह्मण के आश्चर्य प्रकट करने और भारतीय ब्राह्मणों के अधःपतन का वृत्तान्त कहने पर गन्धर्व उसे आश्वासन देता है कि भारत की पुनः अत्यधिक उन्नति हो सकती है और ब्राह्मण पुनः उसी गौरव को प्राप्त कर सकते हैं।

जटिल-वणिक्

इस रूपक में व्यास जी ने मुसलमानी राज्य की अपेक्षा अंग्रेजी राज्य की श्रेष्ठता अभिव्यक्त की। यह एक जटिल तपस्वी और एक वणिक् के वार्तालाप के रूप में है। मुसलमानों ने आक्रमण करके चितौड़ पर अधिकार कर लिया। राजपूतों की सेनायें उसकी रक्षा न कर सकीं। एक जटिल तपस्वी को इस आक्रमण का बोध अपनी समाधि के मध्य में ही हुआ। जब वह समाधि से उठता है तो यह आक्रमण तपस्वी के हृदय को उद्विग्न किये हुये है। चित्तौड़ की रक्षा की प्रबल आकांक्षा उसके मन को उत्तेजित करती है। वह एक वणिक् से खड्ग मांगता है। वणिक् उसे बताता है कि वह आक्रमण ५०० वर्ष पूर्व किया था। चित्तौड़ के वे भयंकर दिवस व्यतीत हो गये। भारत में अब यवनों का अत्याचार नहीं है, अपितु राजराजेश्वरी विक्टोरिया का राज्य है। यह बादशाहियों की अपेक्षा बहुत अच्छा है। प्रजा सुखी और धर्माचरण में स्वतन्त्र है।

६. सुकवि-सतसई

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सम्वत् १९२७ में व्यास जी को सुकवि की उपाधि प्रदान की थी।[1] वे इस उपाधि का प्रयोग अपनी अनेक कविताओं में किया करते थे। ७०० पद्यों में श्रीकृष्ण की बाललीलाओं का वर्णन करके इस काव्य को आपने इस उपाधि के अनुसार "सुकवि सतसई" नाम से प्रसिद्ध किया।[2] सन् १८८७ में यह नारायण यन्त्रालय भागलपुर से प्रकाशित हुआ।

इस काव्य में कृष्ण की बाललीलाओं का पद्यों में गान है। इसके सात विभाग हैं और प्रत्येक विभाग में १००-१०० पद्य हैं। काव्य के प्रारम्भ में उपहार के रूप

१. ब्रजकृष्णदास लिखित 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' पृ० ११२।
२. 'सुकवि-सतसई' उपहार पद्य सं० ६५।

में ७५ पद्य हैं। यह काव्य व्यास जी ने मिथिलानरेश रामेश्वरसिंह को उपहार के रूप में समर्पित किया था। इस उपहार में प्रथम तो उन्होंने मिथिला का वर्णन किया, तदनन्तर सम्वत् १९१४ के सैनिक विद्रोह की आलोचना करते हुए महाराज रामेश्वरसिंह का वंश-परिचय देकर उनके गुणों का गान किया। उपहार के बाद नौ पद्यों में मंगलाचरण है। तदनन्तर काव्य की कथावस्तु है। इसमें कवि ने सात भागों में कृष्ण की जन्म-लीला, नन्द-महोत्सव, पूतनावध, ऊखल-बन्धन लीला, कालिय-लीला, गोवर्धन-लीला और अन्त में उनकी छवि का वर्णन किया है।

दोहा नामक छन्द में लिखे गये "सुकवि-सतसई" में कृष्ण की बाल-लीला के प्रति भक्ति से भरा हुआ कवि का उल्लसित हृदय गोपियों के उल्लास के व्याज से अपना उल्लास व्यक्त कर रहा है —

चन्द्रवंशभूषन लखन कृष्णचन्द्र जनु आज।
ब्रज में आई चांदनी, दूध धार के व्याज॥
मोहित गोपिन को अधिक पुलक पसीज्यौ देह।
मनहुँ इनके चुअत है रोम रोम तें नेह॥[1]

कृष्ण के प्रति यशोदा का मातृस्नेह वात्सल्य भाव से भरे हुये शब्दों में मनोहारी रूप से प्रकट हुआ है—

दूध चुअत कुच पै पर्यौ आंसुन को जल जाय।
जनु उफान को रोकि के नैनन करो उपाय॥[2]

काव्य की भाषा सरल, ललित, मनोहारिणी और स्वाभाविक ह। यथावसर अलंकारों के प्रयोग द्वारा इसे और भी अधिक आकर्षक बना दिया गया है। निम्न पद्य में—

पूतन पूतन पूतनै, पूत न पूत न पूत।
सुन पूत नहि नहि करो, नाथ अजब करतूत॥[3]

यमक अलंकार की अनुपम शोभा है। निम्न पद्य में—

कबहुँक फिर कबहुं चपल जमुना अधिक सुहात।

---

१. 'सुकवि-सतसई' नन्दमहोत्सव पद्य सं० ३४।
२. ,, ,, ऊखलबन्धनलीला पद्य सं० १००।
३. ,, ,, पूतनावध पद्य सं० ६९।

मनहुं वियोगिनि जमुन नहिं अपने में ठहरात ।।[1]

उत्प्रेक्षा अलंकार शोभायमान हो रहा है और निम्न पद्य को—

ब्रज में आई चांदनी दूध धार के व्याज ।[2]

अपन्हुति अलंकार द्वारा सौन्दर्य प्राप्त हुआ है । अन्त में कृष्ण को भगवान् का अवतार स्वीकार करते हुये कवि ने उनसे मिलने की कामना प्रकट करके इस काव्य को समाप्त किया—

मिलन होइ तो राखु मोहि पीर भरे संसार ।
नांहि तो करु बाहर लला क्यों तावत दुःख धार ।।[3]

७. पुष्प-वर्षा

यह ब्रजभाषा में लिखा गया एक लघुकाव्य है जिसमें व्यास जी ने महारानी विक्टोरिया के संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त का और ब्रिटिश राज्य-विस्तार का परिचय दिया । इसकी रचना भी उन्होंने महारानी विक्टोरिया की जयन्ती के उपलक्ष्य में की थी ।

एक कनकाचलवासी गन्धर्व खेचर नाप के गन्धर्व के साथ अपने विमान पर बैठ कर उत्तरी ध्रुव से यात्रा प्रारम्भ करता है और सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य का भ्रमण करता हुआ भारत पहुँच कर मद्रास में अपनी यात्रा समाप्त करता है । उत्तरी ध्रुव से वह अपनी यात्रा आरम्भ करके इंग्लैण्ड, योरोप, भूमध्यसागर, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, उत्तरी अमेरिका, न्यूजीलैण्ड, आस्ट्रेलिया, ईस्टइंडीज, हांगकांग, बर्मा और मलया होकर भारतवर्ष पहुँचता है तथा सम्पूर्ण भारतीय प्रान्तों की यात्रा करके मद्रास पहुंच जाता है । इस काव्य में व्यास जी ने यह भी व्यक्त किया कि अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय जनता मुसलमानों के अत्याचार से अत्यधिक पीड़ित थी । अंग्रेजी शासन में हिन्दुओं को प्रत्यक्ष रूप से धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई । व्यास जी के इन वर्णनों से उनके भौगोलिक और ऐतिहासिक ज्ञान का परिचय भी प्राप्त होता है ।

पुष्प-वर्षा में केवल ब्रिटिश साम्राज्य के गुणों का वर्णन और भ्रमण ही नहीं, अपितु काव्य का सौन्दर्य और आनन्द भी है । भूमण्डल का प्राकृतिक सौन्दर्य सीधे और सरल शब्दों में इस प्रकार कहा गया है—

---

१. 'सुकवि-सतसई' कालियलीला पद्य सं० ६६ ।
२. ,, ,, नन्द महोत्सव पद्य सं० १२ ।
३. ,, ,, छवि वर्णन पद्य सं० ६६ ।

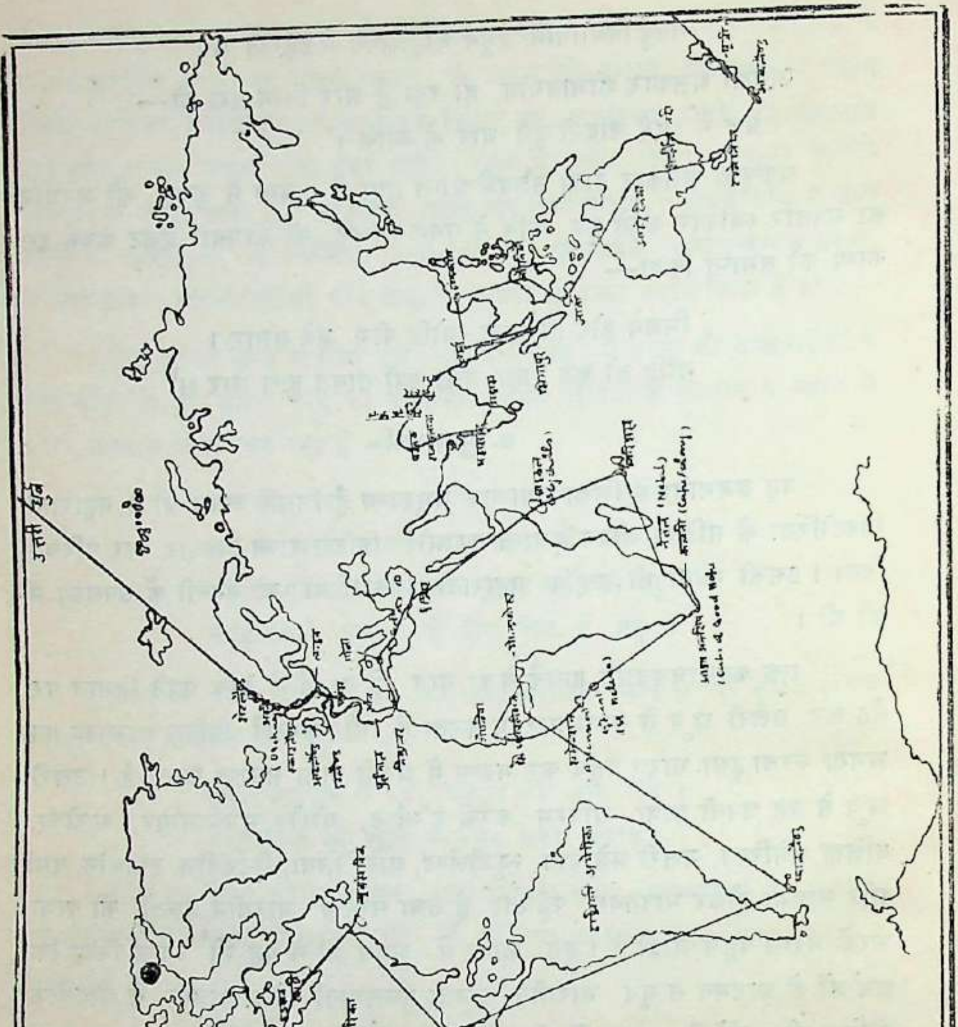

कनकाचलवासी खेचर नामक गन्धर्व की यात्रा का मार्ग

जहाँ सात सुभ दीप सात पुनि उदधि सुहाहीं।
कनक नील मनिहार भूमि के जनु झलकाहीं।।
दीप दीप में ठौर ठौर गिरिरासि सुहावत।
खण्ड खण्ड को मण्डित के नैनन सरसावत ।।
भांति भांति के स्वाद भरे सागर लहराने।
रंग विविध दरसाई तरंगनि सों फहराने ।।[1]

रानी के सिंहासनारोहण उत्सव का वर्णन संक्षिप्त और उत्साह से भरा हुआ है—

बालक ही बैठी सिंहासन। कर लीनो परजा को सासन ।।
ता दिन सब जय ध्वजा उड़ाई। दुन्दुभि भेरी गहकि बजाई।
भिर गई गली गली फूलन सों। उठ्यों उछाह सबन के मन सों।
तोप धमंक गगन में छाई। धूंवा मनहुँ घटा घुमड़ाई ।।[2]

इस काव्य में भुजंगप्रयात, त्रिभंगी, कपाल, चर्चरी, दोहा, चौपाई, तोटक, तोमर और सोरठा छन्दों का प्रयोग है।

८. ईश्वरेच्छा

मिथिलानरेश महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह की मृत्यु के समाचार से विह्वल होकर व्यास जी ने इस काव्य की रचना की। महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह व्यास जी के प्रशंसक और समादर्ता थे। महाराज ने उनको विहारभूषण की पदवी, ताम्रपत्र और स्वर्णपदक द्वारा सम्मानित किया था। उनके देहावसान के समाचार से व्यास जी का शोकाभिभूत हो जाना स्वाभाविक था। इन्हीं शोक और वैराग्य की भावनाओं के वशीभूत होकर लिखा गया यह काव्य व्यास जी के ही शब्दों में करुण और शान्त-रस का अपूर्व काव्य है।[3]

इस काव्य को व्यास जी ने संसार के उत्कर्ष-अपकर्ष की स्वाभाविक स्थिति को अभिव्यक्त करने वाले कालिदास के निम्न श्लोक द्वारा प्रारम्भ किया—

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतारुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवैष दशान्तरेषु ।।[4]

किसी अनिष्ट की आशंका से अभिभूत कवि को काले रंग के छींटों से चन्हित और काली धारी से परिवेष्टित पत्र प्राप्त होता है, किन्तु अशुभ सूचना की

---

१. 'पुष्पवर्षा' पृ० २।
२. 'पुष्पवर्षा' पृ० ७।
३. 'ईश्वरेच्छा' मुखपृष्ठ।
४. 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' २.२।

कल्पना पत्र को पढ़ने से रोकती है। उसी दिन के हिन्दी बंगवासी पत्र से उन्हें मिथिलेश्वर के स्वर्गवास का समाचार ज्ञात होता है, जिसकी पुष्टि पत्र के पढ़ने से हो जाती है। इस शोक-समाचार से कवि की कनीनिकायें आंसुओं से भर जाती हैं और वे सोचते हैं कि होनी को कौन रोक सकता है। वास्तव में ब्रह्म ही सत्य है, सब संसार मिथ्या है —

ब्रह्म सत्य अरु मिथ्या सब संसार बखानत ।
बात बात ही मांहि सत्व रज औ तम ठानत ॥

कवि काव्य के अन्त में शिक्षा देते हैं —

धनि है हरि की सृष्टि कोऊ कछु अन्त न पायो ।
कछू होत है भंग कछू दीखत रंग छायो ॥
चेत चेत रे जीव अजहुँ तो चेत अभागे ।
नारायण के चरनन राखु निज तन मन पागे ।
हानि लाभ सुख दुःख हरष औ सोक एक कै ।
एक घनानन्द परमेश्वर में मन रहियो रे ॥

अन्त में ईश्वर की इच्छा ही बलीयसी है और उसी से सब संसार के कार्य नियन्त्रित होते हैं, इस भाव को अभिव्यक्त करने वाले निम्न पद्य से काव्य समाप्त होता है—

चलत सबै संसार एक ईसुर इच्छा तें ।
ईसुर इच्छा लखी परत वेदन रिच्छा तें ॥

६. बिहारी-विहार

इस ग्रन्थ में कविवर बिहारी के 'बिहारी-सतसई' नामक कविता संग्रह के लगभग ७५० दोहों की पद्यात्मक व्याख्या है। बिहारी के प्रत्येक दोहे पर व्यास जी ने कुण्डलियों की रचना की। बिहारी के दोहों की संस्कृत और हिन्दी कवियों तथा विद्वानों की गद्य और पद्य की अनेक व्याख्याओं को पढ़ कर व्यास जी के हृदय में भी कुण्डलियां लिखने की प्रेरणा उत्पन्न हुई। आपकी कुछ कुण्डलियों की मित्रों ने प्रशंसा की तथा ये 'पीयूषप्रवाह' और 'बंगवासी' पत्रों में प्रकाशित भी हुई।[1] इससे प्रोत्साहन प्राप्त करके आपने सम्पूर्ण दोहों पर कुण्डलियां बना कर सम्वत् १६४८ में इस ग्रन्थ को पूर्ण किया, किन्तु अयोध्या जाते समय दुर्भाग्य से इसकी पाण्डुलिपि खो गई। निरुत्साहित न होकर व्यास जी ने इसे पुनः लिख डाला और सम्वत् १६-५२ में पूरा करके अयोध्यानरेश को भेंट किया और उनसे स्वर्णपदक तथा प्रशंसा-

१. 'बिहारी-विहार' (बिहारी-विहार की रचना) पृ० २।

पत्र प्राप्त किया।[1] महाराज से सहायता और प्रोत्साहन पाकर आपने इसे सम्वत् १९५५ में भारत जीवन यन्त्रालय काशी से प्रकाशित कराया

इस ग्रन्थ के अध्ययन से इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि व्यास जी ने बिहारी कवि के जीवन, कृतियों, उन पर की गई टीकाओं और कुण्डलियों का विशद अध्ययन किया था। ग्रन्थ के आरम्भ में आपने बिहारी कवि के समय, स्थान और जीवन वृत्त का वर्णन करके अनेक भ्रान्तियों को दूर किया। इस सम्बन्ध में आपने श्री जी० ए० ग्रियरसन महोदय द्वारा रचित 'माडर्न वर्नाक्युलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान' और 'बिहारी-सतसई' की भूमिका नामक पुस्तकों से पर्याप्त सहायता ली।[2]

'बिहारी-सतसई' के दोहों की संख्या और क्रम पर विभिन्न मत हैं। व्यास जी ने दस टीकाकारों के अनुसार किये गये विभिन्न क्रमों का उल्लेख किया है।[3] इस सम्बन्ध में आपने अपना कोई मत प्रस्तुत नहीं किया, अपितु औरंगजेब के तृतीय पुत्र आजमशाह द्वारा निर्धारित कराये गए आजमशाही क्रम को अपनी कुण्डलियों की रचना के लिये स्वीकार किया। आपने बिहारी के दोहों की संख्या ७४४ स्वीकार करके उन पर कुण्डलियों की रचना की। ग्रन्थ के अन्त में बिहारी के नाम से प्रसिद्ध १५ दोहे और भी उद्धृत किये, किन्तु उनको बिहारी-कृत न मानकर उन पर कुण्डलियां नहीं लिखीं।

'बिहारी-विहार' की भूमिका के पृष्ठ १९-२५ तक व्यास जी ने 'बिहारी-सतसई' पर अपने से पहिले लिखी गई टीकाओं और कुण्डलियों का उल्लेख किया है। इनमें संस्कृत गद्य की एक, संस्कृत पद्य की दो, हिन्दी गद्य की १५ और हिन्दी पद्य की १८ टीकाओं का उल्लेख है।

इस विस्तृत भूमिका के अनन्तर आजमशाही क्रम के अनुसार लिखी गई 'लालचन्द्रिका' के अनुसार 'बिहारी-सतसई' के दोहों की अनुक्रमणिका है और उसके बाद 'बिहारी-विहार' की रचना का इतिहास है। तदनन्तर बिहारी के दोहों पर कुण्डलियां हैं। इन के पश्चात् दोहों के दस क्रमों का उल्लेख करके संक्षिप्त 'निज-वृत्तान्त' और निज ग्रन्थों की सूची लिख कर प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियां उद्ध की गई हैं।

---

१. 'बिहारी-विहार' (बिहारी-विहार की रचना) पृ० ४।
२. 'बिहारी-विहार' (बिहारी-चरित्र) पृ० ६।
३. 'बिहारी-विहार' (बिहारी जी के दोहों के क्रम की सूची) पृ० १ से ४१ तक।

माधुर्य और प्रसाद गुणों से युक्त बिहारी के ललित और मनोहारी दोहों पर व्यास जी की कुण्डलियों में भी वही माधुर्य और लालित्य अभिव्यंजित होता है। व्यास जी ने इन अनोखे और रसीले दोहों का शृंगार करके इनके रस को कई गुना बढ़ा दिया है। व्यास जी की कुण्डलियां बिहारी के दोहे रूप चन्द्र की चन्द्रिका हैं, पुष्प की सुगन्ध हैं और कामिनी का शृंगार हैं। यह सौन्दर्य निम्न दोहों की कुण्डलियों में स्पष्ट रूप से झलकता है। पति के विरह से पीड़ित नायिका उसकी स्मृति में व्याकुल है, बेसुध है और उसे नींद नहीं आती—

दोहा—(बिहारी)— जब जब वे सुधि कीजिये तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखन आंख लगी रहें आंखें लागति नाहिं ॥[1]

कुण्डली— आंखें लागति नाहि लगी आंखें कुछ ऐसी।
आंखें जानति आंख लगे सुख सीमा जैसी ॥
भई अबै बहु आंख आंख मे धूरि परी तब।
सुकवि आंख नहिं हती आंख आंखनि लागी जब ॥

नायिका प्रियतम के साथ जलकेलि करके सरोवर में नहा कर घर को चली-

दोहा— (बिहारी) बिहंसति सकुचति सी हिये कुच आंचर बिच आंह।
भीजे पट घर कों चली न्हाय सरोवर मांह ॥

कुण्डली (१)— न्हाय सरोवर मांह चली बूंदन टपकावति।
तिरछें लखि लखि स्याम अधिक अंगन पुलकावति।
सारी चिपकनि कछू छुड़ावति रुकि रुकि बिलसति।
सुकवि फुरुहरी लेई फिरति तकि तकि के विहंसति ॥

कुण्डली (२)— न्हाय सरोवर मांह समेटत लट लपटानी।
केसर सेंदुर चुवत चरन रुकि कछु रपटानी ॥
चूचुक सारी परसि रहे तिहिं निहुरि लखति सी।
सुकवि स्याम कों निरखि निरखि विहंसति सकुचति सी॥[2]

१०. धर्म की धूम

व्यास जी को धर्म के प्रचार का बड़ा उत्साह था। जब आप मधुबनी संस्कृत पाठशाला के प्रधान पण्डित थे तो आपने धर्म के प्रचार के लिये इस कविता-संग्रह की रचना की थी। इसमें होली सम्बन्धी गाने योग्य कविताओं का संग्रह है।

होली हिन्दुओं का उमंगभरा त्यौहार है। इस अवसर पर मित्रगण परस्पर मिल कर गाते बजाते और धूम करते हैं, सो व्यास जी ने अपनी उमंग के अनुरूप धर्म की धूम मचाई और भांति भांति के गाने हिन्दू जनता को समर्पित किये।

---

१. 'बिहारी-विहार' पृ० १२१।

२. 'बिहारी-विहार' पृ० १६३।

होली के अवसर पर गाने योग्य ये कवितायें गाने के साथ साथ धर्म का प्रचार भी करती हैं। इस संग्रह में २५ गीत हैं, जिनके अन्त में कवि ने इस प्रकार निवेदन किया है—

रची धर्म की धूम सुकवि अम्बिकादत्त ने।
भांते ह्वै रसभूम याकों सब मिलि गाइयो॥

११. पावस-पचासा

व्यास जी सम्वत् १९४० में रेल द्वारा मझौली जा रहे थे। आषाढ का महीना था। आपने रास्ते में रेल में ही वर्षा ऋतु पर ३५ कवित्त बना डाले। मझौली पहुँच कर १५ कवित्त और लिख कर आपने यह 'पावस पचासा' पुस्तक पूरी कर ली और इसको मझौली के ठाकुर को भेंट कर दिया।

इस पुस्तक में पावस ऋतु विषयक ५० कविताओं का संग्रह है जो ब्रजभाषा में लिखी गई हैं। इन कविताओं की मुख्य विशेषता यह है कि इनमें प्रकृति के एक विशिष्ट तत्व पावस ऋतु को विषयगत आलम्बन बना कर कवित्तों की रचना की गई है। इनके वर्णन स्वाभाविक हैं जिन्हें अपनी कल्पनाओं द्वारा कवि ने और भी अधिक सौन्दर्य से भर दिया है।

१२. हो हो होरी

होली के अवसर पर उमंग से भरे हुये बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री और पुरुष सभी हिन्दुओं के गाने के लिये व्यास जी ने मधुर संगीत के पूर्ण भावनामय, सुरुचि-सम्पन्न गीतों की रचना की। आपने इन को 'हो हो होरी' इस संग्रह के रूप में प्रकाशित किया। आपकी 'धर्म की धूम' में जहाँ होली के लिये धर्म प्रचार सम्बन्धी गीत लिखे गये हैं वहां 'हो हो होरी' में कृष्ण की बाललीलाओं के उपलक्षण से होली के गीतों की रचना की गई है। इन गीतों की मधुर भाव-व्यंजना और गेयता मन को मुग्ध करती है।

इन गीतों के अतिरिक्त व्यास जी ने होली से सम्बन्धित कुछ अन्य गीतों की भी रचना की थी। 'सुन्दरीतिलक' नामक संग्रह में आपके एक से एक सरस आठ सवैये संकलित हैं।[1]

१३. झूलन-झमंक

यह व्यास जी द्वारा लिखे गये झूले के २५ गीतों का संग्रह है। इस संग्रह के सभी गीत काव्य-सौन्दर्य से शोभित हैं और शास्त्रीय संगीत पद्धति से निबद्ध किये गये हैं। इनमें अधिकांश गीतों की रचना राधाकृष्ण और सीताराम के युगल को निमित्त बना कर की गई है।

---

१. 'भारतेन्दु और उनके सहयोगी कवि'—किशोरीदास गुप्त—पृ० ४१०।

१४. आश्चर्य वृत्तान्त

यह अद्भुत घटना से परिपूर्ण रोचक उपन्यास है। इसका कथानक एक स्वप्न के रूप में है जिससे सम्पूर्ण घटनाक्रम वास्तविक जगत् की वस्तु न रह कर स्वप्न जगत् की वस्तु बन गया है।

एक जयपुर निवासी सज्जन एक बंगाली बाबू के साथ गया के समीप गढे में गिर कर विचित्र स्थानों का भ्रमण करते हुये चित्रकूट के समीप विराधकुण्ड से निकलते हैं। गढे में उनको एक भूगर्भवेत्ता अंग्रेज मिल जाता है तथा वे अनेक अद्भुत वस्तुयें देखते हैं। जरासन्ध का बन्दीगृह, चाणक्य का शस्त्रगृह, स्वच्छ जल के झरने, नानाविध फलों के वृक्ष, गंगा का प्रवाह, व्यासाश्रम, विद्याधरियां, नरक, नारायण तथा शिव की मूर्तियां, असि नदी, भर्तृहरि की समाधि, यादवों का कोष, गंगा-यमुना-सरस्वती का संगम प्रयाग, ऋषिमण्डल का निवास-स्थान, देवांगनाओं का संगीत, अत्रि का स्थान, माण्डव्याश्रम मार्ग, कालंजर-गिरि-मार्ग, गुप्त गोदावरी मार्ग, विराध-कुण्ड मार्ग नामक स्थान उस भूगर्भ में मिलते हैं।

व्यास जी ने इन अद्भुत स्थानों के दर्शन कराते हुये प्राचीन आर्य सभ्यता, संस्कृति और धर्म के प्रति गहन आस्था प्रकट की और सनातन धर्म के विरोधी बौद्धों के प्रति विराग दिखलाया। योग की सिद्धियों के चमत्कार दिखाये, स्वर्ग और नरक के दृश्य चित्रित किये नारायण और शिव की मूर्तियों को उपस्थित किया, एक अंग्रेज के हृदय में रामावतार का माहात्म्य भरा, पक्षियों और वृक्षों को रामनाम से से अंकित किया और ब्राह्मसमाजियों पर कटाक्ष करते हुये अंग्रेजी भाषा और रिवाज अपनाने के प्रति हेयत्व की भावना अभिव्यक्त की। आपने शिवाजी और राजपूत वीरों का इस स्थल पर समावेश करके राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना भी प्रदर्शित की।

'आश्चर्य वृत्तान्त' का अंगीरस अद्भुत है जिसमें हास्य, करुण, भयानक आदि रसों और विभिन्न भावों की अभिव्यंजना अंग रूप में हुई है। इसमें कहीं प्रकृति की भयंकरता भय उत्पन्न करती हैं और कहीं पर्वतीय सुषमा एवं चन्द्रोदय मन को मुग्ध करते हैं। कहीं विद्याधरियों का सौन्दर्य श्रृंगार-भावना का उत्पादक है तो कहीं बाबा जी का प्रभाव परम आनन्ददायक शान्तरस की सृष्टि करता है। यदि बंगाली बाबू की अटपटी बातों और कवि द्वारा की गई उपमा की विवेचना से पाठक हंसते हंसते लोट-पोट होते हैं तो कहीं शिव की रौद्र मूर्ति से कांप कर रोमांचित होते हैं। भारत की करुण दशा का वर्णन पढ़ कर किस सहृदय का हृदय करुणा से पूर्ण नहीं हो जायगा। सभी दृश्य अद्भुत स्वरूप का सर्जन करते हुये पाठक को आश्चर्य के सागर में डुबाये रखते हैं।

उपन्यास का प्रकृति-निरीक्षण सूक्ष्म और सजीव है, प्रकृति की सूक्ष्म गतियां भी कवि की तीक्ष्ण दृष्टि से छिपी नहीं रह सकी हैं—

सामने देखा कि एक लता की झमाट में से गुलाब के फूल ऐसी गुलाबी चिड़ियां बोलती हुई निकलीं। चोंच हिला, गर्दन घुमा, इधर उधर देख, फुदक फुदक, पांखे फरफरा, पांखों की जड़ों को चोंच से खुजला, आगे झुक, चोंच उठा, पोंछ हिला, कुहक मारती हुई उठी कि हम सबों की आंखें भी उसी के साथ नाच उठीं। वह चिड़िया गिरह खाती, घेरा लेती, कभी पृथिवी की ओर चूती, कभी पांखे फटकारती, ऊपर उचकती चटपट दक्षिण से उत्तर की ओर चली गई और हम लोगों की आंखें भी अपने साथ ही ले गई।[1]

प्रातःकाल, सायंकाल, चन्द्रमा, वन, पर्वत, उद्यान आदि प्राकृतिक पदार्थों का वास्तविक तथा सजीव चित्रण इस उपन्यास में है। प्रातःकाल का निम्न वर्णन अत्यधिक सुन्दर है—

उस समय श्याम आकाश के तारे टिम टिम करते अस्त हो चले थे। श्याम आकाश पर प्रकाश का चन्दन-चूर सा उड़ चला था। पहाड़ के शृंगों ने अन्धकार के कपड़े से अलग उतारे थे। पेड़ों पर चिड़ियों की पाठशाला सी खुलने लगी थी। पूरब की ओर सिन्दूर की आंधी सी उड़ रही थी, जिसे देख चित्त में अनेक भावना होती थी, कि ये लाखों लाल कमल खिले हैं, कि रजोगुण का ढेर लगाया है, कि सूर्य के रथ की लाल गुम्मज है, कि पूर्व दिशा के ललाट की रोरी है, कि सूर्य की स्तुति करते हुए करोड़ों सिद्धों के गेरुये कपड़े की भड़क है, कि मारे हुये अन्धकार के रुधिर का कीच है, कि करोड़ों ब्रह्मचारियों की फेंकी हुई लाल फूल और रक्त-चन्दन से मिली हुई अर्घांजलि है, कि भूलोक को छोड़ कर भागा क्षत्रियों का प्रताप है, कि ब्रह्मा से आती हुई जहाजों की बनाती पाल है, कि देवताओं की होली की गुलाल है, इत्यादि।[2]

रात्रि के प्रथम प्रहर में उदित होते हुये चन्द्र की शोभा पाठकों को सत्य ही मुग्ध कर लेती है—

इतने में तो नील गम्भीर तालाब पर तैरते हंस की सी, पन्ने की थाली में धरे मक्खन की सी, सघन तमाल लगे श्वेत पुष्प के गुच्छे की सी, श्याम मूर्ति पर लगे चन्दन बिन्दु की सी, यमुना में पौरते बलभद्र की सी, नीलाम्बर में काढ़े जरी के बूटे की सी, हबशियों की फौज में घुसे अंग्रेज की सी, काले कोट पर लटकते हुये चांदी के तगमे की सी, और आकाश में उड़ी जाती आर्यों के यश की सी शोभा देता हुआ चन्द्रमा आकाश में देख पड़ा।[3]

---

१. 'आश्चर्य-वृत्तान्त' पृ० ७५-७६। २. 'आश्चर्य-वृत्तान्त' पृ० १६–१७।
३. 'आश्चर्य-वृत्तान्त' पृ० १५।

इस उपन्यास की वर्णन शैली अत्यन्त रोचक हैं। 'आश्चर्यवृत्तान्त' के सभी वर्णन आश्चर्य उत्पन्न करते हैं। कवियों ने स्त्रियों के अंग-प्रत्यंगों को अनेक सुन्दर वस्तुओं से उपमित किया है। यदि उसी प्रकार की रचना सम्मुख उपस्थित हो तो कितना विचित्र कौतुक उपस्थित हो जायगा, इस तथ्य को व्यास जी अद्भुत रूप में उपस्थित करते हैं —

कवि लोगों के कहने के अनुसार एक ऐसी मूर्ति बनाई जाय जिसमें मुँह के स्थान पर चाँद या कमल लिख दिया जाय और आंखों के ठिकाने दो मछली, आंखों के कोनों के बदले दो चोखे तीर बना दिये जांय, त्योंही कान के ठिकाने सीप, गले के बदले कबूतर, छाती के स्थान पर हाथी का सिर बना दिया जाय, चोटी के ठिकाने मोटी सी काली नागिन, दोनों बांह कमल की नाल, हाथ कमल, कमर के स्थान पर एक दम खाली छोड़ दें और यू ही कमर के नीचे अपना जोर लगाते चले जांय। हम आप लोगों से पूछते हैं, कहिये तो, यह कैसी डरावनी राक्षसी ऐसी मूरत तैयार होगी।[1]

इस उपन्यास की भाषा सरल, रोचक और आकर्षक है और हिन्दी गद्य के विकास काल की परम्परा को द्योतक है। इसकी भाषा में वक्तृत्व कला की छाप है। इसका कारण कवि का एक सफल वक्ता होना है। भाषा में संस्कृत की अलंकृत शैली का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। ऊपर दिये गये उदाहरणों में अलंकारों का बाहुल्य इस कथन की पुष्टि कर रहा है। 'आश्चर्य-वृत्तान्त' के रूप में व्यास जी ने हिन्दी गद्य को एक नवीन प्रोत्साहन दिया जो हिन्दी के इतिहास में उन को सदा विशिष्ट स्थान प्रदान करता रहेगा।

१५. स्वर्गसभा

यह उपन्यास एक पौराणिक आख्यान के रूप में है जिसमें इन्द्र आदि अनेक देवताओं और सरस्वती आदि अनेक देवियों ने ब्रह्मा जी के सभापतित्व में एक सभा का आयोजन किया। वे प्राचीन संस्कृति को भूल कर अनाचार में प्रवृत्त हुई भारतीय जनता के व्यवहार से उत्पीडन का अनुभव करते हुये अपनी वेदना का वर्णन करते हैं। अन्त में नारद जी ब्रह्मा के संकेत से भारत के भ्रमण-वृत्तान्त का वर्णन करके चारों वर्णों के धर्म से पतित हो जाने को कहते हुये हरिनाम के संकीर्तन का महत्व बतलाते हैं।

'स्वर्गसभा' में सभी देवता व्यंगात्मक भाषा में अपना दुःख प्रकट करते हैं। सरस्वती संस्कृत के ह्रास से, काली माता मन्दिरों में पशुबलि से, अग्निदेव यज्ञों में

१. 'आश्चर्य-वृत्तान्त' पृ० ५५।

हव्य के अभाव से, वेद अपने प्रति आस्था के अभाव से, यम वकीलों की बहस, क्षत्रियत्व के विनाश तथा शूद्रों के यज्ञोपवीत धारण से दुःखी है। उपन्यास के अन्त में भगवत्स्मरण के आनन्द में डूबे हुए और भक्तिभाव व्यक्त करने वाले नारद जी द्वारा हरिनाम स्मरण के महत्व का प्रतिपादन इन उत्पीडनों की निवृत्ति के उपाय रूप में है।

यह पुस्तक व्यास जी के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्शों की भावनाओं का प्रतिबिम्ब है, जिनको चुभती हुई व्यंग्यात्मक शैली में कवि ने उपस्थित किया है। न्यायालयों में वकीलों की परम्परा पर इस प्रकार व्यंग्य है—

फिर हमें थोड़े से निज विवादी (सरकारी वकील) पुरुषों की भी आवश्यकता है, क्योंकि जो मृत्युलोक में वकालत या बैरिस्टरी कहते हैं, प्रायः उनको भी मेरे पास पहुंचना पड़ता है। वे कहते हैं कि हमारा दोष हमें समझा दीजिए। परन्तु जब हम समझाने लगते हैं तो इतने प्रश्नोत्तर करते हैं कि हमारी बुद्धि चकरा जाती है।[1]

क्षत्रिय राजाओं के आचरण के विषय में परिसंख्या अलंकार का प्रयोग करते हुये व्यास जी कहते हैं —

बस थोड़े से सभ्य मान्य पुरुषों को छोड़ आजकल चारों ओर यही देख पड़ता है कि राज तो छिछोरों के लिये, तलवार बकरा के लिए, बन्दूक चिड़िया के लिए, नम्रता और प्रेम वेश्याओं के लिये, क्रोध पण्डितों के लिए, उदारता धूर्तों के लिए, कम खर्च देवमन्दिर के लिए, नित्य नियम मद्य के लिए और परहेज शास्त्र के लिए...... ।[2]

इस प्रकार से स्थान स्थान पर मर्मस्पर्शी भावों को अभिव्यक्त करने वाली भाषा में व्यास जी ने अपने आदर्शों को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया।

१६. मूर्तिपूजा

ईसा की उन्नीसवीं शताब्दी में ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज आदि संस्थाओं द्वारा मूर्तिपूजा, श्राद्ध, अस्पृश्यता, तीर्थयात्रा, अवतारवाद आदि मान्यताओं के खण्डन के प्रचार का विरोध करने के लिये अनेक वक्तृतायें व्यास जी ने दीं और शास्त्रार्थ किये। मूर्तिपूजा की आवश्यकता और वेदानुकूलता सिद्ध करने के लिए आपने बरेली, अमृतसर, मेरठ, बांकीपुर, छपरा आदि स्थानों पर व्याख्यान दिये।[3] इन व्याख्यानों को आपके शिष्य बदरीनाथ शर्मा ने इनके जीवनकाल में ही ग्रन्थ के रूप में संकलित करके मूर्तिपूजा के नाम से प्रकाशित किया।[4] इस ग्रन्थ में मूर्तिपूजा की

---

१. 'स्वर्गसभा' पृ० ११।
२. 'स्वर्गसभा' पृ० २२।
३. 'मूर्तिपूजा' पृ० १।
४. 'मूर्तिपूजा' (मुखबन्ध) पृ० ३।

उपादेयता और वेदप्रतिपाद्यता सिद्ध करने के लिए व्यास जी ने प्रथम तो इस पर किए जाने वाले आक्षेपों को प्रश्नों के रूप में उठाया और इसके बाद उनका समाधान किया। इस प्रकार मूर्तिपूजा पर आठ प्रश्न उपस्थित किये गए हैं—

(१) दूसरे के पूजने से दूसरे का सन्तोष कैसे?

(२) निराकार की साकार कल्पना कैसी?

(३) व्यापकता समझ मूर्तिपूजा की जावे तो किसी प्रधान ही पदार्थ की पूजा क्यों होती है?

(४) निराकार की उपासना ध्यान आदि द्वारा हो सकती है तो मूर्तिपूजा क्यों?

(५) मूर्तिपूजा से भारत की इतनी अवनति हो गई और कुछ लाभ नहीं तो फिर क्यों?

(६) सम्प्रदाय भेद क्यों?

(७) वेदविरुद्ध क्यों करना?

(८) प्रमाण क्या?

व्यास जी ने प्रथम इन प्रश्नों का स्पष्ट रूप से अभिप्राय समझा कर पुनः उसका विस्तार से उत्तर दिया और वेद, ब्राह्मण, स्मृति, पुराण, गणित, दर्शन आदि शास्त्रों के उद्धरणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि की। इस पुस्तक से व्यास जी की व्यवहार-निपुणता और तर्कशैली की अनुपमता व्यंजित होती है। आपने पुष्ट प्रमाणों द्वारा सनातन धर्म पर प्रहार करने वाले अन्य मतों का तत्परता और उत्साह से विरोध करके मूर्तिपूजा की प्राचीन परम्परा को सुरक्षित रखने का प्रयास किया।

१७. अवतारमीमांसा

'अवतारकारिका' का नाम संस्कृत पुस्तकों की समालोचना में लिखा जा चुका है। उस प्रकरण में यह कहा गया था कि व्यास जी ने 'निर्गुण और निराकार ब्रह्म पाँचभौतिक शरीर धारण करके इस पृथिवीतल पर अवतीर्ण होते हैं' इस सिद्धान्त के प्रतिपादन के लिये 'अवतारमीमांसा' की रचना की। इसी ग्रन्थ की विषयवस्तु को 'अवतारकारिका' के रूप में संक्षेप से निबद्ध करके उन्होंने इस के अन्त में जोड़ दिया। ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा और विषयवस्तु के सम्बन्ध में जो कुछ 'अवतारकारिका' में लिखा गया है वही इसके सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। दोनों में अन्तर यह है कि अपने कथन की पुष्टि के लिए 'अवतारमीमांसा' में जो वेद, ब्राह्मण, पुराण आदि शास्त्रों के मूल उद्धरण दिए गए हैं, उनके भावों को 'अवतारकारिका' में व्यास जी ने अपने शब्दों में लिखा है। 'अवतारकारिका' में इस ग्रन्थ

की विषयवस्तु का दिग्दर्शन कराया जा चुका है अतः इसको यहां पुनः लिखना आवश्यक नहीं है।

१८. सांख्यतरंगिणी

ईश्वरकृष्णविरचित 'सांख्यकारिका' सांख्य दर्शन के आधारभूत ग्रन्थों में गिनी जाती है।[१] व्यास जी ने इस ग्रन्थ पर सांख्यतरंगिणी नाम से विस्तृत भाषा टीका लिखी। यह पुस्तक पहिले 'वैष्णवपत्रिका' में छपनी प्रारम्भ हुई थी और 'वैष्णवपत्रिका' के बन्द होने के पश्चात् इसका प्रकाशन क्रमशः 'पीयूषप्रवाह' में होने लगा। यहां इसकी ५२ कारिकाओं तक की टीका छपी थी। इसके बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। रचना के पूरा होने पर इसे सम्वत् १९४८ में खड्गविलास प्रेस बांकीपुर से पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया।

१९. तर्कसंग्रह भाषा टीका

'तर्कसंग्रह' न्यायदर्शन का प्रारम्भिक सामान्य परिचय देने वाला एक लघु ग्रन्थ है। इसकी रचना श्री अनन्त भट्ट ने बालकों को द्रव्य आदि सात पदार्थों के सुख पूर्वक बोध कराने के लिए की थी।[२] व्यास जी ने इसकी सरल भाषा-टीका लिखी। इस टीका के लिखने का उनका यह उद्देश्य था कि जो बालक पढ़ते पढ़ते अर्थ भूल जावें वे टीका देख कर अपना कार्य चला लें। व्यास जी की अभिलाषा न्यायसूत्रों पर एक सरल और उपकारी स्वतन्त्र भाष्य लिखने की थी,[३] सम्भवतः उनके असामयिक देहावसान के कारण यह महान् कार्य पूरा न हो सका।

'तर्कसंग्रह' स्वयं ही एक सरल ग्रन्थ है और उस पर व्यास जी ने टीका भी बहुत सुगम भाषा में लिखी है। इसे साधारण विद्यार्थी भी सरलता से समझ सकता हैं। इस टीका में साधारणतः शब्दार्थ ही हैं किन्तु व्याख्या के योग्य स्थानों पर शब्दों को अच्छी प्रकार से स्पष्ट किया गया है।

२०. चतुरंग-चातुरी

व्यास जी अपने समय के शतरंज के प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। आपको बाल्यावस्था से ही शतरंज खेलने का शौक था और अपने पिता के साथ वे शतरंज खेला करते थे। काशी में ऐसा प्रसिद्ध है कि व्यास जी शतरंज के खेलने में बहुत कुशल थे और एक साथ चार चार फलकों पर चार चार व्यक्तियों के साथ शतरंज खेलते थे और विजयी होते थे। अपने आप को वे चतुरंग-चतुर कहते थे। इस के खेल के लिए उन्होंने 'चतुरंग-चातुरी' पुस्तक की रचना की।

---

१. डा० हरदत्त एम० ए० पी० एच०डी० कृत 'सांख्यकारिका का टीका'—इन्ट्रोडक्शन पृ० २१।

२. बालानां सुखबोधाय क्रियते तर्कसंग्रहः। 'तर्कसंग्रह'—१॥

३. पुस्तक के प्रारम्भ में टीकाकार की विज्ञप्ति से।

'चतुरंग-चातुरी' में सर्वप्रथम शतरंज के प्राचीन इतिहास का वर्णन है। इसका प्राचीन नाम चतुरंग है और यह ५००० वर्ष पुराना पूर्णतः भारतीय खेल है। यहीं से यह खेल देशदेशान्तरों में प्रसारित हुआ। तदनन्तर इसमें शतरंज-फलक की बनावट, खेलने की विधि, खेल की विभिन्न अवस्थाओं और मात करने की अनेक विधियों का विस्तार से वर्णन है।

२१. तास-कौतुकपचीसी

व्यास जी काव्य-शास्त्रों के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के कौतुकों में भी रुचि रखते थे। बाल्यकाल से ही आपको जादू के खेलों के प्रति रुचि और उत्साह था। आपके पिता ने भी आपको इसके प्रति उत्साहित किया था और गुणियों द्वारा अनेक खेल सिखलाये थे। ऐन्द्रजालिकों (बाजीगरों) के खेलों को ध्यान से देखने और अभ्यास करने के कारण वे इनके रहस्य और चातुर्य को समझने लगे थे। अपने देशवासियों का इस विषय में अज्ञान देख कर आपको दुःख होता था। इस सम्बन्ध में आप लिखते हैं—

अस्तु क्या किया जावे, हम लोगों के भाग्य में यही था कि हम भारतवर्ष की यह दुर्दशा देखें। पर यह हम प्रायः देखते हैं, कि आजकल अधिकांश लोग कौतुकादिक के रसिक हैं और इसी कारण विदेशी कौतुक-कर्ताओं को इससे बड़ा लाभ होता है।[1]

इन कौतुकों का सर्वसाधारण में प्रचार करने के लिए व्यास जी ने पुस्तकें लिखने का उपक्रम करते हुये 'तासकौतुकपचीसी' पुस्तक लिखी। इसमें आपने तास के २५ अपूर्व खेलों का वर्णन किया।

२२. महातास-कौतुकपचासा

इस पुस्तक को 'तासकौतुकपचीसी' का ही द्वितीय भाग समझना चाहिये। इसमें तास के अन्य पचास खेलों का वर्णन है।

२३. गद्यकाव्यमीमांसा (भाषा)

गद्यकाव्य के स्वरूप और भेदों का निरूपण करने के लिए व्यास जी ने 'गद्यकाव्यमीमांसा' नामक ग्रन्थ की रचना संस्कृत में की थी और पुनः हिन्दी में 'गद्यकाव्यमीमांसा भाषा' लिखी। संस्कृत रचना इस समय प्राप्त नहीं है। संभवतः इसी पुस्तक को हिन्दी कथन और व्याख्या से युक्त करके 'गद्यकाव्यमीमांसा भाषा' के रूप में निबद्ध किया होगा।

---

१. 'तासकौतुकपचीसी' पृ० ३।

२. 'गद्यकाव्यमीमांसा भाषा' पृ० ६-७।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में व्यास जी ने गद्य के महत्व का प्रतिपादन करके संस्कृत में गद्यकाव्यों की न्यूनताओं का उल्लेख किया और उपलब्ध गद्यकाव्यों के दोष दिखाये। तदनन्तर योरोपीय साहित्य के प्रभाव से बंगाली और अन्य देशीय भाषाओं में उपन्यास-साहित्य रचना की प्रवृत्ति का उल्लेख करके उपन्यास शब्द के उद्भव पर प्रकाश डाला। यहां आपने यह तो नहीं बताया कि गद्यकथा-साहित्य के लिये उपन्यास शब्द का प्रयोग कैसे हुआ, अपितु 'साहित्यदर्पण' और 'अमरकोष' के अनुसार उपन्यास शब्द का अर्थ बता कर कहा कि इस समय उपन्यास पद गद्यकाव्य में रूढ हो गया है और उपन्यास पद का अर्थ गद्यकाव्य मान कर उसके लक्षणों और भेदों का विचार किया जाता है।[1]

२४. विभक्ति-विलास

व्यास जी के समय में हिन्दी गद्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में था। उस समय यह विवाद उपस्थित हुआ कि विभक्तियां शब्दों के साथ मिला कर लिखनी चाहिए या अलग। इस विषय का निर्णय करने के लिए व्यास जी ने 'विभक्ति-विलास' की रचना की।

पुस्तक के प्रारम्भ में भाषाओं के स्वरूप पर विचार करते हुये व्यास जी ने लिखा है कि संस्कृत हिन्दी भाषा की जननी है। संस्कृत में जो प्रत्यय हैं वे पहिले स्वतन्त्र शब्दों के रूप में रहे होंगे। भाषा में परिवर्तन के कारण घिस कर वे प्रत्यय कहलाएं जाकर अन्य शब्दों के साथ मिलकर लिखे जाने लगे। अंग्रेजों के आने से पहले भारत में हिन्दी और संस्कृत में सभी शब्द मिल कर लिखे जाते थे। किन्तु अंग्रेजी पुस्तकों के अनुकरण पर जब हिन्दी पुस्तकें भी छपने लगीं तो हिन्दी शब्द भी अलग अलग लिखे जाने लगे। इससे हिन्दी में विभक्तियों के अलग लिखने या मिला कर लिखने का विवाद उत्पन्न हुआ। इस सम्बन्ध में व्यास जी ने श्री डब्ल्यू एथरेण्डन की 'स्टुडेन्ट्स ग्रामर' का उल्लेख करके उनके विभक्तियों को मिला कर लिखने के प्रतिपादन की कड़ी आलोचना की है। आपने अनेक युक्तियों द्वारा यह सिद्ध किया कि विभक्तियां स्वतन्त्र अव्यय होती हैं और इनको पृथक् लिखना ही उत्तम है। जहां विभक्तियों का रूपान्तर हो गया हो वहां मिला कर लिखा जा सकता है, किन्तु जहां विभक्ति के पहिले कोई विभक्ति हो वहां मिला कर नहीं लिखना चाहिये।

२५. साहित्यनवनीत

व्यास जी ने हिन्दी के कतिपय श्रेष्ठ लेखकों और अपनी रचनाओं के कुछ भागों को संकलित करके 'साहित्यनवनीत' नाम से एक पुस्तक का सम्पादन किया। यह पुस्तक उस समय बिहार के स्कूलों के पाठ्यक्रम के लिये स्वीकृत हुई थी।

---

१. 'गद्य काव्यमामांसा' भाषा पृ० ६-७

इस पुस्तक के दो भाग हैं—पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध । पूर्वार्द्ध में गद्य और उत्तरार्द्ध में नाटक तथा पद्य हैं । गद्य-भाग में लल्लूलाल, मक्खनलाल, कुंजबिहारीलाल, प्रतापनारायण मिश्र, बाबू जगन्नाथ शर्मा, तुलसीदास और स्वयं व्यास जी की कुछ रचनाओं के अंश हैं । इसमें व्यास जी के 'आश्चर्यवृत्तान्त' का कुछ भाग तथा धैर्य, क्षमा, ग्रामवास और नगरवास नामक लेख हैं । पद्य-भाग में जायसी के 'पद्मावत', 'तुलसीरामायण', लाल कवि के 'छत्रप्रकाश', भारतेन्दु जी के 'सत्यहरिश्चन्द्र' और 'मुद्राराक्षस' नाटक के कुछ अंश और 'दशरथविलाप', श्रीधर पाठक का 'एकान्तवासी योगी' दामोदरसहाय की 'हनुमान-पश्चात्ताप' नामक रचनायें संगृहीत हैं । इसके अतिरिक्त व्यास जी के 'शाकुन्तल अनुवाद' का प्रथम अंक, 'मरहट्टा नाटक' का प्रथम अंक, 'कंसवध' महाकाव्य का द्वितीय सर्ग, 'काशी-वर्णन' और कोयल, मोर आदि पर छोटी छोटी कवितायें भी संकलित की गई हैं । इस संग्रह को देखने से विदित होता है कि व्यास जी ने 'शाकुन्तल' का अनुवाद और 'कंसवध' महाकाव्य की रचना भी प्रारम्भ की होगी जिनका विवरण अन्य स्थानों पर प्राप्त नहीं होता । 'शाकुन्तलम्' के पद्यों का आपने पद्यों में अति मनोहारी भावानुवाद किया है । आपकी फुटकर कवितायें विशेष रूप से 'काशी वर्णन' अति मनोहर है । 'साहित्यनवनीत' से व्यास जी की सम्पादन कुशलता का भी परिचय मिलता है ।

२६. संस्कृत-संजीवन

व्यास जी बिहार की विभिन्न संस्कृत-पाठशालाओं में प्रधान पण्डित रहे । उस प्रदेश में संस्कृत भाषा की उन्नति और प्रचार के लिए आपने तत्कालीन इन्स्पेक्टर आफ स्कूल बिहार सर्किल श्री पोप महोदय की सहायता से सन् १८८७बिहार-संस्कृत संजीवन नामक समाज की स्थापना का उद्योग किया । इन्स्पेक्टर आफ स्कूल बिहार सर्किल इस समाज के प्रधान (प्रेजीडेन्ट) बनाये गये । व्यास जी जब भागलपुर संस्कृत पाठशाला के प्रधान पण्डित बने तो इस समाज के मन्त्री (सेक्रेटरी) नियुक्त हुए । इस समाज द्वारा व्यास जी ने संस्कृत के प्रचार का उद्योग किया । विद्यार्थियों को परीक्षाओं के लिए तैयार किया, बिहार में परीक्षा-केन्द्र खोलने के उद्योग किये और स्थान स्थान पर जा कर इस समाज के माध्यम से भाषण दिये । संस्कृत की उन्नति के लिये दिये गए इन भाषणों का सारांश संकलित करके आपने इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया ।

३०. निजवृत्तान्त

संस्कृत-साहित्य के अनेक प्राचीन कवियों के समान व्यास जी के जीवन-वृत्त के विषय में साहित्य-प्रेमी सहृदय अन्धकार में नहीं हैं, नाही उनके जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में कोई विवाद है । व्यास जी ने अपने अनेकों ग्रन्थों में अन्त में संक्षेप से

अपना जीवन-वृत्तान्त लिखा। 'बिहारी-विहार' के अन्त में आपने अपने जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी घटनाओं का उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त अपने जीवन की घटनायें तथा तत्कालीन परिस्थितियां आपके द्वारा 'निजवृत्तान्त' नामक पुस्तक में विस्तार से लिखी गई। प्रस्तुत प्रबन्ध में व्यास जी के जीवनवृत्त पर जो कुछ लिखा गया है उसमें इस पुस्तक से पर्याप्त सहायता ली गई है। यह पुस्तक व्यास जी के जीवन काल में प्रकाशित न हो सकी। उनके दिवंगत होने के पश्चात् इसका प्रकाशन खड्गविलास प्रेस बांकीपुर से हुआ।

२८. क्षेत्रकौशल

अम्बिकादत्त व्यास रेखागणित में भी निपुण थे। रेखागणित का प्रचार करने के लिए आपने 'रेखागणित श्लोकबद्ध,' 'रेखागणित भाषा' और 'क्षेत्रकौशल' नामक तीन पुस्तकों की रचना की। इनमें से इस समय केवल 'क्षेत्रकौशल' ही प्राप्त हो सकी है।

'क्षेत्रकौशल' में व्यास जी ने सरल रेखा वाले क्षेत्रों से सम्बन्धित भिन्न २ प्रकार के क्षेत्रों के योग और वियोग की स्थिति समझाई है और कोई कैसा भी क्षेत्र हो उसे वर्गात्मक बना कर पुनः उस पर सब प्रकार की क्रियायें की जा सकती हैं, इन प्रक्रियाओं को बताया है।

व्यास जी इच्छा 'क्षेत्र कौशल' पुस्तक के द्वितीय आदि भाग लिख कर वक्र रेखा वाले क्षेत्रों के योग आदि की क्रिया और घन क्षेत्रों के योग आदि की क्रिया का निरूपण करने की भी थी, किन्तु वे इस कार्य को पूरा न कर सके।

२९. कथाकुसुमकलिका

बालकों को संस्कृत भाषा का अभ्यास कराने के लिए व्यास जी ने जो 'कथा-कुसुम' नाम से छोटी छोटी पच्चीस कथायें संस्कृत में लिखी थीं, यह पुस्तक इन कथाओं का हिन्दी अनुवाद है।

३०. भाषा ऋजुपाठ

पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने 'पंचतन्त्र', 'हितोपदेश' और 'ईसप की कथाओं' के आधार पर कुछ बालोपयोगी कहानियां संस्कृत में लिखी थीं। ये कहानियां 'ऋजुपाठ' के नाम से प्रकाशित हुईं। व्यास जी ने इस 'ऋजुपाठ' के प्रथम भाग को हिन्दी में अनुवादित करके 'भाषा ऋजुपाठ' के नाम से प्रकाशित कराया। इसमें २० कहानियां हैं।

३१. अबोधनिवारण

ऋषि दयानन्द मूर्तिपूजा, अवतारवाद आदि को वेदविरुद्ध कह कर उनका खण्डन करते थे और सामाजिक सुधारों के पक्षपाती थे। व्यास जी का उनसे इन प्रश्नों पर मतभेद था। ऋषि दयानन्द ने साधारण जनता को संस्कृत का बोध कराने और कुछ बोल चाल का अभ्यास कराने के लिए 'संस्कृत-वाक्य-प्रबोध' नामक पुस्तक लिखी थी। व्यास जी ने इस पुस्तक में अनेक अशुद्धियों का अन्वेषण करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि दयानन्द की संस्कृत-व्याकरण कमजोर है। इसलिये उनके द्वारा किए गए मन्त्रों के अर्थ प्रामाणिक नहीं माने जा सकते। व्यास जी ने 'संस्कृत वाक्य प्रबोध' में शब्दाशुद्धि, अर्थाशुद्धि, और अनुवादाशुद्धि के दोष अनेक स्थानों पर निकाले और इनको 'अबोधनिवारण' नाम से छोटी सी पुस्तिका के रूप में संकलित कर दिया।

———

परिशिष्ट-२

व्यास जी को प्राप्त होने वाले पदकों का विवरण

मुखभाग	पृष्ठभाग
(1) Awarded to Pandit Ambikadatta Vyas S.A. For High Merit in Extemporising 100 Original Sanskrit Slokas in Given Subjects in 24 minutes	Literary Society of Benaras Pandits 1881 Ghatika Sataka Medal
(2) Presented to Pandit Ambikadatta Vyas S.A. Bihar Bhushna for His giving Life to Hinduism and Sanskrit in India 1891	His Highness The Maharaja Bahadur Darbhanga's Medal Bharat Dharm Mahamandal, Delhi
(3) His Holiness the Maharaja of Kankoroli Benaras Goswomi Shri Balkrishna Lal's Medal 1894	Awarded to Pandit AmbikadattaVyas S.A. & C. with the Title of Bharat Ratna (Gem of India) for His Admirable Proficiency in Sanskrit Literature & Philosophy and several intellectual powers

(4) Awarded to Pandit Ambikadatta Vyas S.A. & C. with the Title of Bharat Bhushan ornament of India for His Admirable proficiency in Sanskrit Literature & Philosophy and General Intellectual Powers	Grand Literary Meeting His Holiness Goswami Shri Ghanshyamlal Maharaja's Medal 1896 Bombay
(5) Presented by Hon'ble Maharaja Sir Pertap Narain Singh Bahadur K.C.I.E. of Ajodhya	To Pandit Ambikadatta Vyas (Satabdhan)
(6) Presented to Pandit Ambikadatta Vyas Sahityacharya for his Admirable Intellectual Powers and Proficiency in Philosophy and Sanskrit Literature	By Kumar Kamalananda Singh 29th June 1899 of Srinagar
(7) साहित्यशास्त्रनैपुण्यं द्रुतसत्काव्यकौशलम् शतावधानतां विद्यवाग्मितां च मनोहराम्।। गिदौराधिपतिः श्रीमानम्बिकादत्तविद्वरम् प्रीत्या चकार साहित्यसुधाम्बुधिपदांकितम्	श्री १०८ वैद्यनाथो विजयते के० सी० आई० ई० उपाधिधारी 'गिदौराधिपतिः श्रीमान् महाराजधिराज -1 सह बहादुर सम्वत् १९५६

परिशिष्ट-३

व्यास जी की रचनायें

संस्कृत:—

१. अनुष्टुब्लक्षणोद्धार *
२. अवतारकारिका
३. आर्यभाषासूत्रधार (अपूर्ण) *
४. इतिहाससंक्षप (अपूर्ण) *
५. कथाकुसुम
६. कुण्डलीदर्पण *
७. गणेशशतक *
८. गद्यकाव्यमीमांसाकारिका *
९. गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन
१०. छन्दःप्रबन्ध (अपूर्ण) *
११. दुःखद्रुमकुठार
१२. द्रव्यस्तोत्र *
१३. धर्माधर्मकलकलम् (मन की उमंग में संगृहीत)
१४. पातंजलप्रतिबिम्ब
१५. प्राकृतप्रवेशिका *
१६. प्राकृतविचित्रशब्दार्थकोष
१७. बालव्याकरण
१८. मित्रालापः (मन की उमंग में संगृहीत)
१९. रत्नपुराण (अपूर्ण) *
२०. रत्नाष्टक *
२१. रेखागणित *
२२. शिवराजविजय
२३. समस्यापूर्तिसर्वस्व (अपूर्ण) *
२४. संस्कृत-अभ्यास-पुस्तक (दो भाग)
२५. सहस्रनामरामायण
२६. सांख्यसागरसुधा
२७. सामवतम्

हिन्दी:—

१. अबोध निवारण
२. अभिज्ञानशाकुन्तल (अनुवाद) *
३. अवतारमीमांसा
४. आनन्दमंजरी *
५. आश्चर्यवृत्तान्त
६. आश्रमधर्मनिरूपण *
७. ईश्वरेच्छा
८. उपदेशलता *
९. कथाकुसुमकलिका
१०. कलियुग और घी
११. कंसवध (अपूर्ण) *
१२. क्षेत्रकौशल
१३. गद्यकाव्यमीमांसा भाषा
१४. गोसंकट नाटक
१५. घनश्यामविनोद (अपूर्ण) *
१६. चतुरंगचातुरी
१७. चिकित्सा चमत्कार *
१८. जटिल वणिक् (मन की उमंग में संगृहीत)

१९. झूलन झमंक
२०. तर्कसंग्रह भाषाटीका
२१. तासकौतुकपचीसी
२२. दयानन्दमतमूलोच्छेद *
२३. देवपुरुषदृश्य (मन की उमग में संगृहीत)
२४. दोषग्राही और गुणग्राही (अपूर्ण) *
२५. धर्म की धूम
२६. धर्मपर्व (मन की उमंग में संगृहीत)
२७. निजवृत्तान्त
२८. पढ़े पढे पत्थर (अपूर्ण) *
२९. पण्डितप्रपंच *
३०. पश्चिमयात्रा (अपूर्ण) *
३१. पावसपचासा
३२. पुष्पवर्षा
३३. पुष्पोपहार *
३४. पीयूषप्रवाह (मासिक पत्र)
३५. प्रस्तारदीपक (अपूर्ण) *
३६. बिहारीचरित्र (बिहारीविहार में)
३७. बिहारीविहार
३८. बिहारी व्याख्या की चरितावली (बिहारीविहार में)
३९. भारतधर्म (मन की उमंग में संगृहीत)
४०. भारतसौभाग्य
४१. भाषा ऋजुपाठ
४२. भाषाभाष्य (अपूर्ण) *
४३. मानसप्रशंसा *
४४. मूर्तिपूजा
४५. महातासकौतुकपचासा
४६. मरहट्टा नाटक *
४७. वर्णव्यवस्था *
४८. विभक्तिविलास
४९. वेणीसंहार (अनुवाद) *
५०. वैष्णवपत्रिका *
५१. रसीली कजरी *
५२. रांची यात्रा (अपूर्ण) *
५३. रेखागणित भाषा (अपूर्ण) *
५४. ललिता नाटिका
५५. शिवविवाह (अपूर्ण) *
५६. शीघ्रलेखप्रणाली *
५७. संस्कृत संजीवन
५८. सस्कृतसंताप (मन की उमंग में संगृहीत)
५९. सांख्यतरंगिणी
६०. साहित्यनवनीत
६१. सुकविसतसई
६२. स्वर्गसभा
६३. स्वामिचरित *
६४. हो हो होरी

* चिह्नांकित पुस्तकें प्राप्त नहीं हो सकी हैं ।

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में आलोचित व्यास जी की रचनायें:—

संस्कृत:—

१. अवतारमीमांसाकारिका— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी । (प्रथम संस्करण सम्वत् १६५६)

२. कथाकुसुमम्— व्यास प्रेस भागलपुर (तृतीय संस्करण सन् १८६४)

३. गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्— व्यास पुस्तकालय मानमन्दिर, काशी । (पंचम संस्करण सम्वत २००५)

४. दुःखद्रुमकुठार— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी । (सम्वत् १६५६)

५. धर्माधर्मकलकलम्— (मन की उमंग में)

६. पातंजलप्रतिबिम्ब— व्यास यन्त्रालय, भागलपुर । (सम्वत् १६४८)

७. प्राकृतविचित्रशब्दार्थकोष— सामवतम् (पाटलिपुत्रे खड्गविलासयन्त्रालये मुद्रितम् १८८८ ई०) के अन्त में संयोजित ।

८. बालव्याकरण— चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस । (तृतीय संस्करण १८६४ ई०)

९. मित्रालापः— (मन की उमंग में)

१०. शिवराजविजय— व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी । (षष्ठ संस्करण सन् १६४५)

११. संस्कृत-अभ्यास-पुस्तकम्— व्यास प्रेस, भागलपुर ।(द्वितीय संस्करण १८६२ई०)

१२. सहस्रनामरामायणम्— व्यास यन्त्रालय, भागलपुर । (सम्वत् १६५०)

१३. सांख्यसागरसुधा— व्यास यन्त्रालय, भागलपुर । (सम्वत् १६५२)

१४. सामवतम्— व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी । (द्वितीय संस्करण मई १६४७)

हिन्दी :—

१. अबोधनिवारण— व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी । (चौथी बार १६१८ ई०)

२. अवतारमीमांसा— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी । (सम्वत् १६५७)

३. आश्चर्यवृत्तान्त— व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी । (चतुर्थ संस्करण १६४६ ई०)

४. ईश्वरेच्छा— चन्द्रप्रभा यन्त्रालय, बनारस । (२६-१२-१८६८)

५. कथाकुसुमकलिका— व्यास प्रेस भागलपुर । (सम्वत् १६४५)

६. कलियुग और घी— नारायन प्रेस, मुजफ्फरपुर । (१८८७ ई०)

७. क्षेत्रकौशल— चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस । (१८८४ ई०)

८. गद्यकाव्यमीमांसा भाषा— पं० राधाकुमार व्यास, सोमेश्वर गली, मानमन्दिर, काशी द्वारा प्रकाशित। (द्वितीय बार १९१५ ई०)

९. गोसंकट नाटक— खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना। (सम्बत् १९४१)
१०. चतुरंगचातुरी—चन्द्रप्रभा प्रेस, बनारस। (१८८४ ई०)
११. झूलन झमंक—व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी।(द्वितीय बार १९१८ई०)
१२. तर्कसंग्रह भाषाटीका— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी। (सम्वत् १९४१)
१३. तासकौतुकपचीसी— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी। (सम्वत् १९३७)
१४. धर्म की धूम— व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी।(दूसरी बार १९१८ ई०)
१५. निजवृत्तान्त— खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना। (१९०१ ई०)
१६. पावसपचासा— व्यास यन्त्रालय, भागलपुर। (द्वितीय संस्करण सम्वत् १९४२)
१७. पुष्पवर्षा— व्यास यन्त्रालय, भागलपुर। (दूसरी बार सम्वत् १९५०)
१८. बिहारीविहार— भारतजीवन यन्त्रालय, काशी। (पहली बार सम्वत् १९५५)
१९. भारतसौभाग्य— खड्गविलास प्रेस, बाँकीपुर, पटना। सम्वत् (१९४४)
२०. भाषा ऋजुपाठ— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी।
२१. मूर्तिपूजा— लहरी प्रेस, काशी। (द्वितीय बार १९०८ ई०)
२२ मन की उमंग— नारायन यन्त्रालय, मुजफ्फरपुर। (१९४४ सम्वत्-१८८७ ई०)
२३. महातासकौतुकपचासा— चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी। (सम्वत् १९३९)
२४. विभक्तिविलास— व्यास प्रेस, भागलपुर। (१८९० ई०)
२५. ललिता नाटिका— हरिप्रकाश यन्त्रालय, काशी। (सम्वत् १९४०)
२६. संस्कृतसंजीवन— चन्द्रप्रभा प्रेस, काशी। (सम्वत् १९४५)
२७. सांख्यतरंगिणी— खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना। (१८९१ ई०)
२८. साहित्यनवनीत— खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर, पटना। (सम्वत् १९५६)
२९. सुकविसतसई— नारायन यन्त्रालय, मुजफ्फरपुर। (१८८७ ई०)
३०. स्वर्गसभा— व्यास पुस्तकालय, मानमन्दिर, काशी। (द्वितीय बार १९१८ ई०)
३१. हो हो होरी— व्यास यन्त्रालय भागलपुर। (१८९१ ई०)

सहायक पुस्तकें:—

संस्कृत

अभिज्ञानशाकुन्तलम्— राघवभट्ट कृत टीका सहित - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई - (१९५८ ई०)

अभिज्ञानशाकुन्तलम्— नारायण शास्त्री खिस्ते कृत टीका सहित-खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स, वाराणसी - (१९५७ ई०)

अभिज्ञानशाकुन्यलम्— एम० आर० काखे काले द्वारा सम्पादित - अष्टम संस्करण - (१९५७ ई०)

अभिज्ञानशाकुन्तलम्— किशोरकेलि-रुचिरा व्याख्या सहित - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (१९५३ ई०)

अग्निपुराण (काव्यशास्त्रीय भाग हिन्दी अनुवाद सहित) - नेशनल पब्लिशिंग हाउस- (फरवरी १९५९ ई०)

अष्टाध्यायी-सूत्रपाठ— भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस - द्वितीय संस्करण- (१९४२ ई०)

उत्तररामचरितम्— भवभूति - सदारंजन रे - १७ भवानीदत्त लेन, कलकत्ता

ऋग्वेदसंहता— स्वाध्याय मंडल (पारडी) वि० सूरत - (१९५७ ई०)

कादम्बरी— चन्द्रकलाविद्योतिनी टीका सहित - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी- (१९५३ ई०)

काव्यादर्श— दण्डी - प्रकाश संस्कृत-हिन्दी व्याख्या सहित - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - (१९५८ ई०)

काव्यप्रकाश— मम्मट - नागेश्वरी टीकासहित - चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी - (१९५१ ई०)

काव्यालंकार— बिहार-राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना - (१९६२ ई०)

काव्यालंकारसूत्रवृत्ति— विश्वेश्वर सिद्धान्तशिरोमणि कृत हिन्दी व्याख्या सहित - आत्माराम एण्ड सन्स, काश्मीरी गेट, देहली-(१९५४ ई०)

कुन्दमाला— दिग्नाग -सरस्वती भवन, रामजस रोड, नई देहली - प्रथम संस्करण - (१९५५ ई०)

कुमारसम्भव— कालिदास - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई - (१९४६ ई०)

कुवलयानन्द— अप्पयदीक्षित - वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई - (सम्वत् १९६८)

चन्द्रप्रभाचरितम्— महामहोपाध्याय शंकरलाल - चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी - (१९६२ ई०)

चन्द्रमहीपतिः— श्रीनिवास शास्त्री - (सम्वत् २०१६)

तिलकमंजरी— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई - (१९३८ ई०)

दशरूपक— धनिक टीका सहित - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई - (१९४१ ई०)

ध्वन्यालोक— बालप्रिया-लोचन टीका सहित - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (सम्वत् १९९७)

नामालिंगानुशासनम्— डा० हरदत्त द्वारा सम्पादित - (१९४१ ई०)

नाट्यदर्पण— ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट, बड़ौदा - (१९५९ ई०)

पातंजलयोगदर्शनम् – व्यास कृत भाष्य सहित - मदनलाल लक्ष्मीनिवास चण्डक, कचहरी रोड, अजमेर - (१९६१ ई०)
पिंगलछन्दःसूत्र— जीवानन्द विद्यासागर कृत टीका सहित - (१९२८ ई०)
प्राकृतप्रकाश— वररुचि - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (१९४९ ई०)
भरतनाट्यशास्त्र (मूलमात्र) - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी
भरतनाट्यशास्त्र— अभिनवभारती टीका सहित - ओरियन्टल इन्स्टिच्यूट, बड़ौदा (१९५६ ई०)
भगवद्गीता
भासनाटकचक्रम्— ओरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना - (१९३७ ई०)
महाभाष्य— चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (१९५४ ई०)
मन्दारमंजरी— विश्वेश्वर - पर्वतीय पुस्तक प्रकाशन मंडल, काशी -(१९९५ सम्वत्)
महाभारत— गीता प्रेस, गोरखपुर
मालविकाग्निमित्रम्— कालिदास - कर्नाटक पब्लिशिंग हाउस - बम्बई - २
रत्नावली— प्रकाशटीकोपेता - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (१९५३ ई०)
बाल्मीकि रामायणम्— निर्णयसागर प्रेस, बम्बई - (१९३० ई०)
विक्रमोर्वशीयम्— कालिदास - केशव भीखाजी धवाले, बम्बई -४- द्वितीय संस्करण (१९४८ ई०)
वेणीसंहार— भट्टनारायण - ओरियन्टल बुक सप्लाई एजेन्सी, पूना - (१९२२ ई०)
श्रीशिवभारतम्— परमानन्द - आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना - (१९३० ई०)
संस्कृतसाहित्यविमर्शः— द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री - (१९५६ ई०)
साहित्यदर्पण— विश्वनाथ - शालिग्राम शास्त्री कृत टीका सहित-द्वितीय आवृत्ति (१९४१ ई०)
साहित्यदर्पण— विश्वनाथ - कृष्णमोहन शास्त्री ठक्कर कृत टीका सहित - चौखम्बा संस्कृत सीरीज - (१९४७ ई०)
सांख्यकारिका— डा० हरदत्त कृत टीका सहित - ओरियन्टल बुक एजेन्सी पूना - (१९३३ ई०)
सांख्यकारिका — वाचस्पति मिश्र कृत सांख्यतत्वकौमुदी सहित - निर्णयसागर प्रेस, बम्बई - (१९४० ई०)
सांख्यसंग्रह— विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी द्वारा सम्पादित - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (१९२० ई०)
सांख्यसूत्र – प्रेमनाथ तर्कभूषण कृत टीका सहित - २, रमानाथ मजूमदार स्ट्रीट, कलिकाता - (१९३५ ई०)
स्कन्दपुराण— ब्रह्मोत्तरखण्ड

प्राकृत-व्याकरण— हेमचन्द्र
हर्षचरितम् —बाणभट्ट - जीवानन्द विद्यासागर कृत टीका सहित - २, रमानाथ मजूमदार स्ट्रीट, आम्हार्ष्ट पोस्ट आफिस, कलिकाता - (१९३९ ई०)

हिन्दी

आज का भारतीय साहित्य—साहित्य अकादमी - (१९५८ ई०)
आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका— डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - (१९४८ ई०)
उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा— डा० शशिभूषण सिंघल - (१९६० ई०)
नाट्यसमीक्षा— दशरथ ओझा - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, देहली - (प्रथम संस्करण)
प्रबोधिनी— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
प्राकृत भाषाओं का व्याकरण (हिन्दी अनुवाद) - पिशेल - डा० हेमचन्द्र जोशी द्वारा अनुवादित - बिहार-राष्ट्रभाषा - परिषद - पटना -(१९५८ ई०)
भारतवीरत्व— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भारतदुर्दशा— भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
भारतेन्दु नाटकावली— श्याम सुन्दरदास द्वारा सम्पादित
भारतेन्दु ग्रन्थावली— रामनारायणलाल एण्ड सन्स, इलाहाबाद - (सम्वत् १९९२)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र— ब्रजकृष्णदास - हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद-(१९४८ ई०)
भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि— किशोरीदास गुप्त - प्रथम संस्करण (१९५६ ई०)
भारतीय नाट्य साहित्य - (सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ) - डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पापित - यूनिवर्सिटी प्रेस, देहली
भारतीय संस्कृति का इतिहास— कालीशंकर भटनागर - (१९५९ ई०)
महाराष्ट्र जीवन प्रभात (हिन्दी अनुवाद)—रमेशचन्द्र दत्त - इन्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग - अष्टम संस्करण (१९५६ ई०)
विनयपत्रिका— तुलसीदास - विश्वनाथ मित्र द्वारा सम्पादित द्वितीय संस्करण - (सम्वत् २००६)
शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (द्वितीय भाग)— डा० गोविन्द त्रिगुणायत - (१९५९ ई०)
भूषणग्रन्थावली (शिवराजभूषण) - रामनारायणलाल, प्रकाशक तथा पुस्तकविक्रेता- इलाहाबाद - दूसरी बार - (१९५० ई०)
समीक्षाशास्त्र— आचार्य सीताराम चतुर्वेदी - अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी - (सम्वत् २०१०)

संस्कृत साहित्य का इतिहास (हिन्दी अनुवाद) - कीथ - मंगलदेव शास्त्री द्वारा अनुवादित - चौखम्बा विद्याभवन - वाराणसी - (१९६० ई०)
संस्कृत साहित्य का इतिहास— वाचस्पति गैरोला - (१९६० ई०)
संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामजी उपाध्याय - (सम्वत् २००८)
साहित्यशिक्षा— सम्पादक पदुमलाल बख्शी - (१९४९ ई०)
साहित्यालोचन—श्यामसुन्दरदास - इन्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयास - नवम संस्करण (सम्वत् २००६)
हिन्दी उपन्यास में चरित्रचित्रण का विकास— रणवीर रांग्रा एम० ए०, पीएच०डी० भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, देहली - (१९६१ ई०)
हिन्दी-साहित्य-कोष— डा० धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित - ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी - प्रथम संस्करण (सम्वत् २०१५)

बंगला

भूदेवरचनासंभार (अंगुरीयविनिमय) - मित्र एण्ड घोष, १०, श्यामाचरण दे स्ट्रीट, कलिकाता - १२ - द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण - (भाद्र १३६९ शक)

अंग्रेजी

एन एडवान्स्ड हिस्ट्री आफ अन्डिया - आर० सी० मजूमदार एण्ड अदर्स-(१९५१ई०)
औरंगजेब (इन्डिया बाइ इट्स हिस्टोरियन्स)—खाफीखां-द्वितीय संस्करण-१९५२ई०
औरंगजेब— स्टेनले लेनपूले एम० ए०, प्रोफेसर आफ अरेबिक, ट्रिनिटी कालेज, डबलिन क्लेरेन्दन प्रेस, आक्सफोर्ड
भास— ए० एस० पी० अय्यर— (१९५७ ई०)
एन्सिएंट इन्डियन थियेटर— डी० आर० मनकड - (१९५० ई०)
भास— ए० डी० पुसलकर - भारतीय विद्याभवन, बम्वई
क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर— एम० कृष्णमाचारियर - (१९३७ ई०)
दशकुमारचरितम्— एम० आर० काले द्वारा सम्पादित - (१९२५ ई०)
डिक्शनरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर— जोसेफ टी शिप्ले द्वारा सम्पादित - (१९६० ई०)
ड्रामा इन संस्कृत लिटरेचर— आर० वी० जागीरदार - पोपुलर बुक डिपो, बम्बई - (१९४७ ई०)
एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका वोल्यूम—८ - (१९५७ ई०)
ग्रेंट मैन आफ इन्डिया (शिवाजी भोंसले— चार्ल्स ब्रिन्सिड) एल० एफ० रश ब्रुक विलियम्स द्वारा सम्पादित - दी होम लाइब्रेरी क्लब
हिस्ट्री आफ संस्कृत पोएटिक्स— एस० कै० डे - (१९६० ई०)
हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर— वरदाचारी - (१९५२ ई०)

हिस्ट्री ग्राफ संस्कृत लिटरेचर— एस० एन० दास गुप्ता एण्ड एस० के० डे - (१९६० ई०)
हिस्ट्री ग्राफ संस्कृत लिटरेचर— कीथ - (१९२८ ई०)
ए हिस्ट्री ग्राफ इन्डियन फिलोसोफी - जे० एन० सिन्हा, एम० ए०, पीएच० डी०, वोल्यूम-१ - (१९५६ ई०)
हिस्टी ग्राफ दि मरहट्टाज— ग्रान्ट डफ - (१८७८ ई०)
इन्डियन एन्टिक्विटी— (१९०५ ई०)
इन्डियन थियेटर— चन्द्रभान गुप्त - (१९५४ ई०)
एन इन्ट्रोडक्शन टु दी स्टडी ग्राफ लिटरेचर— डब्ल्यू० एच० हडसन -(मई १९४९)
एन इक्ट्रोडक्शन टु मृच्छकटिक— जी० वी० देवस्थली - (१९५१ ई०)
इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी ग्राफ मुद्राराक्षस— जी० वी० देवस्थली - (१९४८ ई०)
एन इन्ट्रोडक्शन टु इन्डियन फिलोसोफी - सतीशचन्द्र चटर्जी एण्ड धीरेन्द्रनाथ दत्त - पंचम संस्करण - (१९५४ ई०)
कादम्बरी— पीटर्सन द्वारा सम्पादित - (१८९९ ई०)
कादम्बरी— पी० वी० काने द्वारा सम्पादित - (१९१८ ई०)
लाज एण्ड प्रेक्टिस ग्राफ संस्कृत ड्रामा— सुरेन्द्रनाथ - चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी - (१९६१ ई०)
दि मेकिंग ग्राफ ब्रिटिश इन्डिया— रेमजे म्योर - (१९२३ ई०)
माडर्न इन्डियन कल्चर— धूर्जटिप्रसाद मुकर्जी - हिन्द किताब लिमिटेड, बम्बई - द्वितीय संस्करण - (१९४७ ई०)
दी नाट्यशास्त्र एस्क्राइब्ड टु भरत— मनमोहन घोष एम० ए०, पीएच० डी० कृत अंग्रेजी अनुवाद - एशियाटिक सोसाइटी ग्राफ बंगाल, १, पार्क स्ट्रीट, कलकत्ता - (१९५१ ई०)
न्यू हिस्ट्री ग्राफ दि मराठाज— सर देसाई - प्रथम संस्करण - (१९४६ ई०)
दि नोवेल एण्ड दि पीपल— राल्फ फाक्स - (१९३७ ई०)
संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी— सर मोनिग्रर विलियम - (१८९९ ई०)
संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी— वामन शिवराम ग्राप्टे - पार्ट २ - (१९५८ ई०)
संस्कृत ड्रामा— इट्स ग्रोरिजिन एण्ड डिक्लाइन - इन्दुशेखर -लीडन, ई० जे० ब्रिल- (१९६० ई०)
संस्कृत ड्रामा इन इट्स ग्रोरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट थियोरी एण्ड प्रेक्टिस - ए० बी० कीथ - (१९५४ ई०)
शिवाजी एण्ड हिज टाइम्स— जे० एन० सरकार - (१९४८ ई०)
ए शार्ट स्टोरी ग्राफ ग्रौरंगजेब— जे० एन० सरकार - (१९३० ई०)

सोर्स बुक आफ मराठा हिस्ट्री— आर० पी० पटवर्धन एण्ड एच० जी० रालीसन
दि थियेटर आफ दी हिन्दूज— एच० एच० विलसन - (१६५५ ई०)
टाइप्स आफ संस्कृत ड्रामा— डी० आर० मनकड - (१६३६ ई०)
दि वेणीसंहार— ए क्रिटिकल स्टडी - ए० बी० गजेन्द्र गदकर - (१६३४ ई०)
विदूषक— जी० के० भट्ट - (१६५६ ई०)

पत्रिकायें

ए वाल्यूम आफ स्टडीज इन इन्डोलोजी प्रेजेन्टेड टु प्रोफेसर काने आन हिज सिक्स्टी एट्स बर्थडे - ७ मई, १६५१
आलोचना— उपन्यास विशेषांक - अक्टूबर, १६५४
पीयूषप्रवाह— जनवरी, १८८५
भारतीय साहित्य— अप्रैल, १६५६
विद्याविनोद प्रथम भाग— सन् १८६४-१८६५
सरस्वती— फरवरी, १६०१ और जुलाई, १६०१
साहित्यसुधानिधि— अप्रैल, जून, जुलाई और सितम्बर १८६४
सुदर्शन— मार्च, १६०१